सूचना.

सूरु गणों! इस पुस्तकका पठन श्रवण करते किसी भी तरहका र्थ समुत्पन्न होवे तो उसका खुलासा ग्रन्थ कर्तासे कीजी. प्रसिद्ध कर्ता गुण दोष विषय जुम्मेदार नहीं.
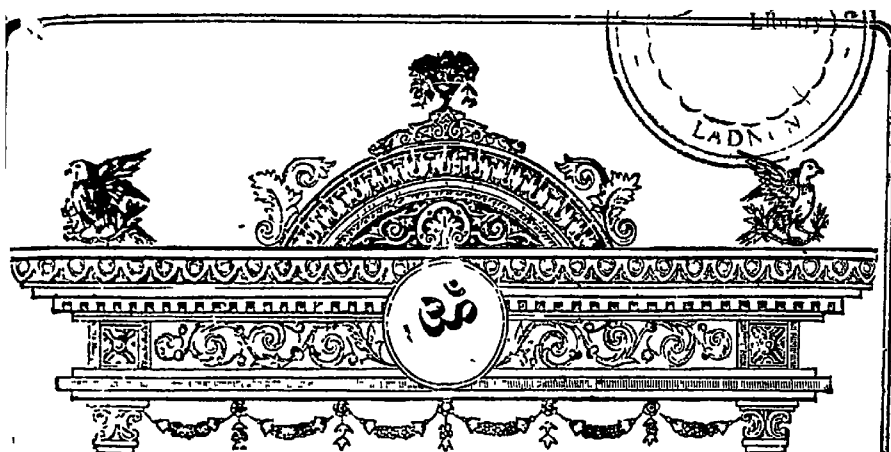
मुक्तिसोपानकी-प्रस्तावना.

गाथा-काव्य

सो तव्वस्स सव्स दुहस्स मुक्को । जंबाहइ सययंजन्तुमेयं ॥
दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो । तो होइ अच्चन्त सुही कयत्थो ॥१॥
अणाइ काल पभवस्स एसो । सव्वस्स दुक्खस्स पमोख्खमग्गो
वियाहि ओ जं समु विसत्तच्चा । कमेण अच्चन्त सुही भवन्ति॥१११

उत्तराध्यायन अ० ३२

इस जगतालय निवासी सब प्राणीयों उन्नति केही इच्छक हैं, उन्नति करो ! २ ऐसा निर्घोष चारोंही तरफ हो रहा है, कोइ स्वय शरीरकी उन्नति करने उद्यमीहैं, कोइ स्वय कुटुम्बकी उन्नति करने पर्यत्नी है, कोइ स्वय जातिकी ग्राम की देसकी उन्नति करने पर्यास करते हैं, ऐसेही कितनेही विद्याकी, ज्ञानकी, धर्मकी, समाज-सम्प्रदायों की उन्नति करने कोसीश करते हुवें भी दृष्टि आते हैं. इत्यादि इन सर्व प्रकार की उन्नति करने का मुख्य उद्देश अत्मोन्नति करने काही है. अथात्-सर्व प्रकारकी उन्नतिके अन्तिम उन्नति जो करने की है, वो अत्मोन्नति ही है. इसलिये अन्य सर्व प्रकार की उन्नतियों है सो अत्मोन्नतिके सोपान पंक्तिये रूप है, अत्मोन्नति साध्य है,

और अन्य उन्नतियों साधन है अर्थात् ऊपरोक्तादि उन्नीतयों होनेसे ही आत्मोन्नति हो सकती है. और आत्मोन्नति करना येही साधको का मुख्य कृतव्यहै. क्योंकि अत्मोन्नति हुवे बाद फिर किसीभी प्रकारकी उन्नति करना बाकी नहीं रहता है. अत्मोन्नति करताने सर्व प्रकारकी उन्नति करली इसलिये वो कृत्या कृत्य कृतार्थ हो गये. अर्थात् वो सर्व दुःखोंसे मुक्त हो परमानन्दी परमसुखी बन जाते हैं ! !

ऐसी जो सर्व उन्नति से अत्युतम शिखरी आत्मोन्नति है सो होनी बहूत ही मुशकिल है, क्योंकि सर्व से ऊंच है और सर्व के अन्तिम की है. जो सहजही होताहो तो हरेक कोइ कर सके, परन्तु आत्मोन्नति कर्ता महात्मा तो इस संपूर्ण जगत् केजन्तुओं की संख्या में से बहुतही थोडे-बिरलेही निकलते हैं. जो कोइ आत्मोन्नति कर सके हैं वो आत्मोन्नति कर्ता-कि जो उस कृतव्य को साध्य कर उसके पुक्त भोमीथें बन गये हैं, उनके सद्बोध को श्रवन मनन पूर्वक ग्रहन कर पालन किया है उसी से कर सके हैं. और जो अब आत्मोन्नति करना चहाते हैं वो भी जब उन पूर्वजोंके आत्मोन्नति कर्ताओं के फरमान पर चलेंगे तबही कर सकेंगे. जहां तक सत्यमेव-तहारूप वो फरमान न मिला, जथार्थ न जाना, यथा विधि न पाला वहांतक कदापि आत्मोन्नति होने वाली नहीं. जो जो इस कार्य में पश्चात पड रहे हैं उसका मुख्य येही सबबहै, इसलिये आत्मोन्नति इच्छकोंको आत्मोन्नति कर्ताओंकी जाच करना अव्वल फरजहै. सो तो इस वक्त बन सकती मुशकिल है, क्योंकी इसकली कालमें इस वर्तमान जमाने-पञ्चम आरे में पूर्ण तोरसे आत्मोन्नति कर परमात्मा बन गये ऐसे महान पुरुष कोइ रहे नहीं. और बन सकेभी नहीं. तब तो यह सद्बोध सब व्यर्थ ही हुवा ! क्योंकी जो काम बनेही नहीं तो फिर कहनेसे-सुननेसे फायदाही क्या ? परन्तु ऐसा नही समझीए. क्योंकी कभी कोइ हीन शक्तिका धारक किसी दुरस्थल प्राप्त करनेका इच्छक एक दिनमें न पहोंच सके तो भी मध्यमें विश्राम ले उसे प्राप्त करता है. तैसेही आत्मोन्नति का इच्छक आत्मोन्नतिके सत्य मार्ग में लगा है वो कदापि इस जन्म में कार्यार्थ नहीं साध सके तो आगमिक भवमें तो जरूरही साध सकेगा. ऐसा ज आत्मोन्नति इच्छकों को आत्मोन्नतिके मार्ग में जरूरही प्रवर्त होना उचित है. वो त्मोन्नति के मार्ग के प्रकाशक परमात्मा अभी नहीं हैं तोभी कुछ हरकत नहीं, कि उनके ही फरमाये हुवे सत्शास्त्र अभि मोजूद है. उनमे आत्मोन्नतिका मार्ग

खूबीके साथ कथा गया है. उत कथन प्रमाणे परवृत कर अनन्तात्मो ओं उन्नति दि-शा परमात्म पदको प्राप्त हुवे हैं. जिससे खातरी होती कि जिनेन्द्र प्रणितही आत्मोन्नतिका मार्ग तहा सत्य है. निशांकित है, परमादरानिय है तबही उपरोक्त गाथामें फर्माया है:— "इस संसारका अति गहन दीर्ध पन्थ जिसमें जीवों अनादि काल×से ारि भ्रमण कर रहे हैं, वो जीवों जो समय धर्म (जिन प्रणित सुत्रानुसार प्रवृतिका सम्यक्‌ प्रकारसे) पालन करते हैं वो अनुक्रमसे सर्व दुःखों से मुक्त हो असन्त परम सुख के भुक्ता बनते हैं. यह आत्मोन्नति (मोक्ष) का मार्ग अनादि कालसे इस जगतालय में प्रवृत रहा है जिसे आराध अनन्त जीवों मुक्ति प्राप्त करी है, वृतमान में महाविदेह क्षेत्र से संख्याते जीवों इसी मार्ग को आराध कर मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं. और आगमिक कालमें इसी मार्गके प्रभावसे निर्वाण पावेंगे अर्थात्–मोक्ष के मार्ग दोनही है. एकही हैं" वोही आत्मोन्नति (मुक्ति) का सत्य न्याय मार्ग इस "मुक्ति–सोपान–गुणस्थानारोहण अढीशत द्वारी" नामक ग्रन्थ में अनुक्रमसे चउदह गुणस्थान द्वारा दर्शाया है. इसे पठन श्रवण कर पूर्ण श्रद्धा पूर्वक यथाविधी आराध–पाल आत्मोन्नति के इच्छको इष्टार्थ सहज से साध सकें इसही उम्मेद से इस ग्रन्थ को प्रसिद्धी में लाने की मुख्य फरज समझ. आत्मोन्नतिके इच्छकों के कर कमलमें सविनय समर्पण कर कृतज्ञता समझताहूं.

लाला सुखदेव सहायजी–ज्वलाप्रसाद.

यह ग्रन्थ निमार्ण होने का मुख्य प्रयोजन.

परम पूज्य पण्डित राज कवीवरेन्द्र श्रीतिलक ऋषिजी महाराजके हस्त लिखित पत्रों (पाने) मुझे दक्षिण देशमे धर्म परिचार करने के मुख्य अधिकारिणी सतिशिरोमणी महासतीजी श्री राम-कवरजी के पाससे संवत् १९५६ में प्राप्त हुवे. जिनमे १४ गुणस्थानों पर ७२ यहां दर्शाता हुं:—द्वारों संक्षेपित यंत्र में लिखे थे. वो यंत्र वैसेकार पत्रे.

	१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५	६	७
१	नामद्वार	मिथ्यात्व	साश्वादन	मिश्र	अव्रावि सम दृष्टि	देश विरा	प्रमत संयति	अप्रमत संयतिं
२	लक्षणद्वार	३ तत्वखोटा माने	किंचित धर्म स्पर्शे	भद्रिकभावी	७ प्रकृति उपशमावे	११ प्र. उपशमावे	१५ प्रकृति उपशमावे	५ प्रमाद खपावे
३	स्थितिद्वार	३ प्रकारकी	ज.उ.६आ वली ७ समे	ज. उ. अ-न्तर मूहूर्त	ज.अं.उत्कृ ६६सागर	ज. अं. उ क्रोड पूर्व	ज.अ.उ. क्रोडपूर्व	ज.१ उ. .
४	क्रियाद्वार	२४इर्यावही टली	२३ मिथ्या त्वी. टली	२४मिथ्या त्व बधी	२३ दूजापर	२२ अव्र तटली	१ आरंभी परिग्र	१
५	कर्म की सत्ताद्वार	८ कीसत्ता	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
६	कर्म बन्ध द्वार	८ बन्धे	८ बन्धे	७ आऊटला	८ बन्धे	एवं	एवं	
७	कर्म वेदे द्वार	८ वेदे	८	८	८	८	८	८
८	कर्म उदयद्वार	८ उदय	८	८	८	८	८	८
९	कर्म ऊदीरणा द्वार	७ तथा ८	एंव	७ आयुटला	७ तथा ८	एवं	एवं	७आयु
१०	कर्म निर्ज्जरा द्वार	८ निर्जर	८	८	८	८	८	८
११	भाव ५ द्वार	३ उ. खे. प.	एवं	एवं	५	५	५	५
१२	कारण द्वार	५ मि अ. प्र. क. जो.	४ मि टला	५ पुर्वके	३ अव्रटला	३ एवं	३ एवं	२ प्रमादटला

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
प्रमत संयति	अप्रमत संयति	नियटी वादर	अनियटी वादर	सूक्ष्म सम्पराय	उप शान्त मोह	क्षीणमोह	सयोगी केवली	अयोगी केवली
१५ प्रकृति उपशमावे	५ प्रमाद खपावे	अपूर्व करण करे	२१ प्र. क्षयोपशमा	२७ क्षयोपशमावे	२८ प्र. उपशमावे	२८ प्र. खपावे	१० बोल पावे	७ बोल पावे
ज.अ.उ. क्रोडपूर्व	ज. १ समय उ. अन्तर	ज. समय उ अन्त	ज. १ समय उत्कृ अंत	ज. १ समय उ. अंतर	ज. एक उ. क्रोर	ज.उ. अंतर मूहूर्त	ज. अंतर उ. क्रोडपु	ज. उ ५ लघुअक्ष.
२ आरंभी परिग्र	१ मायावती	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ इर्यावहि	१ एवं	०
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	७मोहटल	७ एवं	४ घातिटले	४ एवं
एवं	एवं	७ अयु टला	एवं	६ मोह टला	१ सता वेदनी	एवं	एवं	बन्धनही
८	८	८	८	८	७ मोह टला	७ एवं	४ घातीटले	४ एवं
८	८	८	८	८	७ मोहटला	७ मोहटला	१ घातीटले	१ एवं
एवं	७आयुटला	एवं	एवं	५ तथा ६ मो.ट.	५ तथा २ अ. ट.	एवं	२ नाम गोत्र	नहीं
८	८	८	८	८	७ मोहटला	एवं	४ घाती	४ एवं
५	५	५	५	५	५	४उटला	३ क्षायटला	३ एवं
३ एवं	२ प्रमाटला	२ एवं	२ एवं	२ एवं	१ योग	१ एवं	१ एवं	नहीं

	१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
१३	मारगणा द्वार	४ ३-४ ५ ७	नहीं	३ ४.५ ७	२ ५-७	२ ६-७
१४	उपमार्गणाद्वार	नहीं	१ १	१ १	३ ३-२ १	४ ४-३ २-१
१५	परिसहद्वार	२२ पावे २० वेदे	एवं	एवं	एवं	एवं
१६	आत्माद्वार	६ ज्ञा. चा टली	७ ज्ञानटली	६ ज्ञा. चाटली	७ चारिटली	८
१७	जीवकाभेद द्वार	१४	६ २ बी अ. अस २	१ सन्नीप्रज	२ सन्नी प्र. अ.	१ सन्नी प्र.
१८	जोगद्वार	१३ आहा २ नथी	१३ एवं	१० २वै. २ आ १ कार्म	१३ आहा २ नहीं	१२ कार नहीं
१९	उपयोगद्वार	६ अ. ३ द. ३	६ ज्ञ. ३ द. ३	६ अ. ३ द. ३	६ ज्ञा. ३ द. ३	६ एवं
२०	लेश्याद्वार	६	६	६	६	६
२१	समकित द्वार	नहीं	१ सेस्वा	नहीं	४ उ. स्व वे. क्षा.	४ एवं
२२	चरित्र द्वार	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	संयमा संयम
२३	वेदद्वार	३	३	३	३	३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१ ७	१ ८	१ ९	१ १०	२ ११-१२	नहीं	१ १३	१ १४	मोक्ष
५ ८-४ ३-२ १	२ ६-४	२ १-४	२ ८-४	२ ९-४	२ १०-४	नहीं	नहीं	नहीं
एवं	एवं	एवं	एवं	१४ वे दे १२	एवं	एवं	११ वेद ९	११ वेदे ९
८	८	८	८	८	७ कषाटली	७	७	६ जो गटली
१ एवं	१	१	१	१	१	१	१	नोसनी नांअस.
१४ कार नही	१४ ३ मि. १ का. नहीं.	९ ४ मन ४ वच १ का	९ एवं	९ एवं	९ एवं	९ एवं	५त.७म २व.२उ २ का	नहीं
७ ज्ञा. ४ द. ३	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	२ के ज्ञा. के. द.	२ एवं
६	३ शुभ	१ शुक	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	नहीं
४ एवं	४ एवं	२ उ. खा.	२ एवं	२ एवं	२ एवं	१ क्षा	१ क्षा	१ क्षा
३ मा. छे. प.	१ एवं	२ सा. छे.	२ सा. वे	१ सूक्ष्म	१ यथा	१ एवं	१ एवं	१ एवं
३	३	३	३ या नहीं	नही	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

	१४ गुणस्थान	१	२	३	४	५
२४	ध्यानद्वार	आ. ४ रौ ४	८ एवं	९ धर्म १	१० ध.२	११ ध. ३
२५	सज्ञाद्वार	४	४	४	४	४
२६	गतिद्वार	४	४	०	१ दव	१
२७	हेतुद्वार	५५ आहार २टले	५० ५ मि टल	४३ ४ अनं ३ मि ६	४६ ३ मिश्र बढ़े	४० ४अ. १ का. वा. अ. ट.
२८	शाश्वता गुणस्थान	शाश्वता	अशाश्वत	एवं	शाश्वता	एवं
२९	शाश्वतायोगद्वार	१३ आ. २ टलों	१२ ठला	१० ३वे मि. ट.	१३ अमीर	११ उ.मि १का. टला
३०	सन्नी असन्नीद्वार	२	२	१ सनी	२	१. सनी
३१	कर्म प्रकृति बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७
३२	कर्म प्रकृति उदय	११७	१११	१००	१०४	८७
३३	कर्म प्रकृति ऊदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७
३४	कर्म प्रकृति सत्ताद्वार	१४८	१४७	१४७	१४८	१४८
३५	आयुकर्म के भाङ्गे	२८	२८	२६	२०	१२

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१.२ धं. ४	१ अ. ४ य. ४ शु.१	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१. शु. २	१ शु. ३	१ शु. ४
४	नो. सन्या.	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
१	१	१	१	१	१	नहीं	नहीं	मोक्ष
२७. ४प्र ११अ.८-७ आहाय	२४ ३मि. ८ ल.	२२.१वें. १ आ.	१६.६हां सादिटलि	१० ३वेद ३मजा.	२सं. लो. भटला	१ एवं	५ तथा ७ जोग	नहीं
एवं	अशाश्वत	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	शाश्वत	अशाश्वत.
१.२अहा. वाधा	१..४ म. ४व. १का.	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	५. २म. २व.१का	नहीं
१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	नोसन्ना सन्ना	एवं
६३	५१	५८-५६ २६	२२-२१ २०-१२ १८	१७	१	१	१	नहीं
८१	७६	७२	६६	६०	५१	१७-५५	४२	१२
८१	७३	६१	६३	५७	५६	५४-५२	३१	१० तथा नहीं
१४८	१४८	१४८	१४८	१४८	१४८	१०१ ११	८५	८५-१३
६	६	२	२	२	२	१	१	१

	१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
३६	वेदनीय कर्मके भाङ्गे	४	४	४	४	४
३७	गौत्र कर्मके भाङ्गे	२	२	२	२	२
३८	आहारक अनारक	२	२	१ आ.	२	१ आह
३९	कारण ५५ द्वार	५०	५०	५०	५०	५०
४०	समुत्घात २ द्वार	५ प्रथम	५ ,,	४ तेजट	४ प्रथम	६ केवटली.
४१	शरीर ५ द्वार	४ आ.न.	४ एवं.	४ एवं	४ एवं	४ एवं
४२	नीयंठ ६द्वार	नही	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
४३	निमित ८२ द्वार	७४	७४	७४	७४	७४
४४	भाषकऽभाषक	२	१ भा.	१ भा.	२	१ भा.
४५	पढमऽपढम द्वार	२	२	२	२	२
४६	चरमाचरम द्वार	२	२	२	२	२
४७	भवीअभवी द्वार	२	१ भवी	१	१	१

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
४	२	२	२	२	२	२	२	४
२	२	२	२	२	२	१ उंच	१ एव	१ एवं
१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एव	१ एवं	२	१अना.
४७	३८	३२	३०	२५	२३	२३	१५	९
नहीं	नहीं	नही	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	१ केवली	नहीं
५	५	३वै.आ. नहीं	३ एवं	३ एवं	३ एवं	३ एवं	३ एवं	अशरीरी
४ प्रथम	४	१.क्रमा.	१ एवं	१ एव	१निग्र	१ निग्र	१.सना	१सना
७६	६९	६५	६५	६२	६०	६०	४५	३७
१ भा	१ भा	१ भा	१ भा	१ भा	१ भा	१ भा	२	१ अभा
२	२	२	२	२	२	१ पढम	१ एवं	१
२	२	२	२	२	२	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

	१४ गुणस्थान	१	२	३	४	५
४८	गतिअगतिद्वार	४ गत ४ आगत	१गत.३आ.	४गत.४आ.	५गत.१आ.	६गत.३आ.
४९	एकभवमें स्पर्शना	ज.१ उ. ९००	ज.१ उ.२	ज.१उ.प्र. हजार	ज.१उ.प्र. संख्या	ज.१उ.प्र. हजार
५०	घणाभवमें स्पर्शना	ज. २ उ. असंख्य	ज.२ उ. ५	ज.२उ.अ. संख्या	एवं	ज.२ उ.प्र हजार
५१	कालद्वार	काल करे	एवं	काल नहीं	काल करे	एवं
५२	परभवलेजाने द्वार	जावे	जावे	नहीं	जावे	नहीं
५३	अवघेणाद्वार	जं.अंगु. अ. उ१.हजा.यों	एवं	एवं	एवं	ज.१अंगु.उ १हजार यों
५४	इन्द्रिय द्वार	१-२-३-४ ५	२-३-४-५	१ पचेंद्री	एवं	एवं
५५	दंडक द्वार	२४	१९५स्थ.ट.	१६ ३बिकं. टले.	१६ एवं	२ म,ती
५६	अल्पा बहुमद्वार	१२ अनंत गुण	८असंख्या-त गुण	९असंख्या-	१० असं.	७ असं.
५७	एकजीव आश्रीअन्तर	ज. अनंत उ. ६६ सा.	ज. अं. उ. अर्ध पु.	एवं	एवं	एवं
५८	घणाजीव आश्रीअन्तर	अंतर नहीं	ज. एक.सम उ. पल्पक अ. भाग	एवं	अतर नहीं	अंतर नहीं
५९	कर्मनिर्ज्जरा आश्रीद्वार	निर्जरानहीं	एवं	एवं	असंख्यात गुण	एवं

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
८गत २आ	३गत ८आ	३ गत २ आ	एवं	४ गत २ आ	२ गत १ आ	१ गत १ आ	१ गत १ आ	मोक्ष १ आ
ज. १ उ.४ २००	ज.१ उ.४	एवं	एवं	एवं	ज१.उ२.	ज.उ.१	ज.उ.१	ज.उ.१
ज. २ ९००	ज. २ उ. ९००	ज२उ९.	एवं	एवं	ज.२उ.८	ज. उ. १	ज.उ. १	ज. उ. १
एवं	एवं	काल	एवं	एवं	एवं	कालनहीं	एवं	कालकरे
नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
ज.१हाथ उ ५०० धनु.	एवं	ज२हा.उ ५००ध.	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	नोइन्द्रि	एवं
१ मनुष्य	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं
६ संख्यात गुण	५संख्यात	३आठवा वाला संख्या	नव वा३ महोमाहे त गुण	शवा तुल्य	१सबसे थोडे	२अस. गुण	४संख्या त गण	११अनंत गुण
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	अंतरनहीं	नहीं	नहीं
अंतर नहीं	अन्तर नहीं	उ.श्रे.९ वर्षखपक ६मांस	एवं	एवं	उपशम९ वर्ष	क्षपक ६ मांस	अंतर नहीं	अन्तर नहीं
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं

	१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
६०	निरन्तर गुण द्वार	प्रत्येक असंख्या भाग	एवं	एवं	आवलकाके असं. भाग	एवं
६१	देवलोक २६ मर्यादा	२१ स्वर्ग	१२ स्वर्ग	मोनही	१२देवलोक	१२ देव
६२	आयुष्यबन्ध द्वार	४गतिकेबंध	३नर्कटली	नहीं बन्धे	२गति म.दे.	१देवगति
६३	चडपड ४ गति द्वार	१दा दुर	१ परनाल	२ इलाड उलाल	४ ही	३इलाड पर. नाल उलाल
६४	बन्धाके भाङ्गे४ उकाल आश्री १.२क्रम प. ध०	२भांग १.२	२भांगा १.२	एवं	एवं	एवं
६५	वेदनी आश्रीभांङ्गा	२भांगा१.२	एवं	एवं	एवं	एवं
६६	मोहनी आश्री भांङ्गा	२भांगा१.२	एवं	एवं	एवं	एवं
६७	आयुष्य आश्री	४ १-२-३-४	२ १-२-३-४	४ १-२-३-४	४ ३-४	४ १-२-३-४
६८	संघयणद्वार	६	६	६	६	६
६९	पद्दी २ उद्वार	१९	११	७	११	२
७०	सिद्ध स्पर्शना द्वार	निमा	भजना	एवं	नीमा	भजना
७१	आदसमछठाणडीयाद्वा	६ठाण वडी.	छठा	छठा	छठा	छठा
७२	तीर्थंकरस्पर्श द्वार	नहीं	नहीं	नहीं	स्पर्शे	नहीं
७३	तीर्थंकर गौत्रबन्ध	नहीं	नहीं	नहीं	बंधे	बन्धे
७४	पद्वी द्वार	१५.१४रत्न १ मंड.	१५ एवं	१५	६ती.च.वी. आ. म. सा.	२ श्रा. सा.
७५	भाव ५३ द्वार	३४	३३	३३	३५	३४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
८समय स्थिति तक	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
२६ स्वर्ग	एवं	एवं	एवं	९अनुत्त.	एवं	मरे नहीं	मरे नहीं	मोक्ष
एवं	एवं	अबन्ध	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	४ही	२परनाल उलाल	१इलड	एवं	गत नहीं
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ चौथा	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	२भांगा ३४	२भांगा २४	१ भांगा चौथा	एवं	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	२ भांगा ३४	एवं	१ भांगा चौथा	एवं	४ एवं
३ १-२-४	३ १-३-४	२ ३-४	२ ३-४	२ ३-४	२ ३-४	१-४	१-४	१-४
६	६	३ प्रथम	३	३	३	१ प्रथम	१	१
२	२	२	२	२	२	२	४	४
नीमा	नीमा	एवं	एवं	एवं	भजना	नीमा	नीमा	नीमा
छठा	छठा	छठा	छठा	तुला	तुला	तुला	तुला	तुला
स्पर्शे	स्पर्शे	स्पर्शे	स्पर्शे	स्पर्शे	नहीं.	स्पर्शे.	स्पर्शे	स्पर्शे
वन्धे	गन्धे	नहीं	नहीं	नही	नहीं.	नहीं	नहीं	नहीं
३क्षी. सा. स.	एवं	एवं	एवं	एवं	३सा.स	४ती.सा. स.	४ एवं	४ एवं
३३	३०	२८	२२	२२	२१	१९	१४	१३

इस मुजब संक्षेपित ७५ द्वारोंका यन्त्र मिला सो कण्ठाग्र कर लिया, परन्तु इस मेंके तत्व गम्य गुढ ज्ञानकी मुझेपूरी समझ न होनेसे मन बहूतही मुरझाने लगा. सर्व तरहसे खुलासा जानने अति उत्कन्ठा जगी उसवक्त थोडेही अरसे बाद प्रकरण रत्नाकर ' ग्रन्थ का चौथा भाग मुझे मिला जिसमें रहे हुवे छेही ग्रन्थोंका अद्यन्त पठन दत्त चित्त से करने से—कर्म बन्ध उदय उदीरणाकी प्रकृत्तियों का खुलासा कुछ २ होने लगा. कुछ समझा और कुछ नहीभी समझा परन्तु उनको सारंश रूप यन्त्र एक पानपें लिख मेरेपास रक्खा और वारम्वार अणुप्रेहा युक्त पठन मनन करते २ इच्छा हुइकी इस गुणठाण द्वार थोकडे के पुरे १०० द्वार होवे तो वहूतही अच्छा, इस बिचार ही विचार में बहूत वर्ष चले गये परसङ्गानुपेत हैद्राबाद आना हुवा. और सीकंद्राबाद वाले गणेशमलजी समदरीयाको धर्मके शोकीनजान समायिक प्रतिक्रमण थोकडे सूत्रादिका अभ्यास कराया ज्ञानके शोकीन बनाये तब उनका भी कहना हुवाकी इस गुणस्थानाद्वार के १०० द्वार तो पूर्ण जरूरही करना चाहिये ! एसा सुन मनमें निश्चय तो हुवा की कैसेभी कर १०० द्वार पुरे करूं. परन्तु ऐसा गहन ज्ञानका ग्रन्थ मेरे जैसे स्वल्प मतिवाले को बनाना बहूतही बीकट मालुम होने लगा तो भी निश्चय खण्डन नही किया और नवे २ ग्रन्थोंका पठन मनन करते २ जो, जो बात ध्यान में जचती गइ उसकी नोट करते २ ९० द्वार पूरे किये. उसवक्त वाघली (खानदेश) के निवासी धर्म प्रिय ज्ञान रसिक सुकण्ठी भाइ रत्नचन्दजी चोरडीया दर्शनार्थ हैद्राबाद आये. और यहां स्थापन हुवा "ज्ञान बृद्धि खाता" का अवलोकन कर ज्ञानबृद्धि करने की उत्कण्ठा जगी और रु १०० रत्नचन्दजी, दोलतरामजी चोरडीये वाघलीवाले, रु.१०० संचालालजी ऊदारामजी मूथा जामडी वाले, रु. १०० इन्द्रचन्द्रजी वच्छराजजी रांका वाघलीवाले, रु. १०० रत्नचन्दजी रामचन्दजी कांकरीया वाघलीवाले और रु. १०० खेमचन्दजी हंसराजजी बम्ब बोर कुण्डे वाले. यों पांचों सद् ग्रहस्थों मिल ५०० रुपे ज्ञानखाते में अर्पण कर सविनय कहने लगे कि कोइ अभिनव अत्युत्तम ग्रन्थ इस खरचेसे प्रसिद्ध हुवा तो बडा उपकार होगा. उसवक्त मेरे मन में घोटाती हुइ वात अनयास कहवा गइ कि " गुणस्थानारोहण शतद्वारी " ग्रन्थ जो में नवा वनानेका विचार कर रहाहूं सो कहो तो इस खरचसे प्रसिद्ध हो सकेगा. यह उनोंने सहर्ष स्वीकार किया और उसी वक्त "परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थ प्रसिद्ध होने वाला था उसमे जाहीरात भी देवा गइ वश फिरतो यह वात पुक्त

होगइ तव मुझे वडाही फिकर हुवाकी है प्रभु ! ऐसे गहन ज्ञानकी पुस्तकको में कैसै प्रसिद्धीमें धर सकुंगा. आगेक्या होगा इत्यादि.

उसवक्त सुयोगसे जिनके फरमानसे परमात्म मार्ग दर्शक ग्रन्थकी रचनाकी इगथी और जो मुझे ज्ञान वृद्धि के काम में ग्रन्थों और सलहा द्वारा वारम्वार सहायता कर मेरपर महान उपकार करता कच्छ देश को पावन करने वाले आठकोटी मोटीपक्ष समुदायके परम पूज्य श्री कर्म सिंहजी महाराजके शिष्यवर्य ज्ञानानंदी कवीश्वर श्री नागचन्द्रजी महाराजके करकमल में 'परमात्म मार्ग दर्शक' ग्रन्थ गया उसमें 'गुणस्थानारोहण शतद्वारी' की खुशखवर पढते ही गुणस्थानाद्वारका एक ग्रन्थ मेरेपास भेजा. "भद्रपुरुषों विना प्रेरे स्वभाव सेही उपकार करते हैं" उसमें १०० द्वारोंका अवलोकन करतेही मेरे रोम २ विकश्वर हो गये और हिम्मत वन्धीकी अव१०० द्वार सहलाइसे लिख सकुंगा कच्छसे आये गुणस्थान द्वारमें१०४द्वारथे जिसके नाम-१ नाम द्वार, २ लक्षणद्वार, ३ किरियाद्वार, ४ कारणद्वार, ५ हेतुद्वार, ६ इव्यप्रमाण ७ अकर्पा, ८ स्थिति, ९ कर्मवन्ध, १० कर्मउदय, ११ कर्मऊदीरणा, १२ कर्मसत्ता १३ कर्मवेदना, १४ कर्मनिर्ज्जरा, १५ गति, १६ आगति, १७ दण्डक १८ अहारकअनाहारक, १९ सूक्ष्मवादर, २० त्रसस्थार, २१ गति, २२ जाति, २३ दण्णक २४ भाषकऽभापक, २५ परितऽपरित, २६ चर्मऽचर्म, २७ पढमऽपढम, २८ पच्चखाणऽपच्चखाण, २९ सरागीवीतरागी, ३० वीर्य, ३१ काल, ३२ परभवगमन, ३३शाश्वतऽशाश्वत, ३४ विरहकाल, ३५ क्षेत्र, ३६ स्थानक, ३७ परिणाम, ३८ ध्यान, ३९ ध्यानकेपाये, ४० भव्य-भव्या, ४१ छद्मस्त केवली ४२ संयता-संयति ४३ समोह-समोह मरण, ४४ विग्रहा-विग्रगति, ४५ भवसंख्या, ४६ सिद्धजीव स्पर्शना ४७एकसमयमेजीव, ४८ एकसमय में कितनेचवे, ४९ जीवकभेद, ५० गुणस्थान, ५१ जोग ५२ उपयोग, ५३ लेशा, ५४ पर्याप्ता-पर्याप्ता, ५५ छःप्रजा, ५६ सामान्यजोग ५७ सामान्यउपयोग, ५८ ज्ञान, ५९ अज्ञान, ६० दर्शन, ६१ तीर्थअतीर्थ, ६२ कल्प ६३ लिङ्ग, ६४ वेदीऽवेदी, ६५ शरीर, ६६ अवघेणा, ६७ संघयण ६८ संठाण, ६९ कपाय, ७० कपायप्रकृति, ७१ सज्ञा, ७२ इन्द्रिय, ७३ समुद्घात ७४ वेद ७५ प्राण ७६ आहारादिशी, ७७ आहारओजादि, ७८ आहार सचेतादि, ७९ दृष्टि, ८० भाव ८१ प्रणामी, ८२ निवृत्ति, ८३ करण, ८४ पुण्यप्रकृतिवन्ध, ८५ पाप प्रकृत्तिवन्ध ८६ वन्धीकेभाङ्गे, ८७ मार्गणा, ८८ अरोह अवरोह, ८९ गाति दृष्टिन्त, ९० श्रेणी,

९१ परस्पर फर्शना, ९२ आत्मा, ९३ सम्यक्त्व, ९४ संयम,९५ नियंठा, ९६ परि सह, ९७ बन्धकी प्रकृत्ति, ९८ उदयकी प्रकृत्ति, ९९ ऊदीरणाकी प्रकृत्ति, १००स त्ताकी प्रकृत्ति, १०१ पुण्यबन्ध पापबन्ध, १०२ पुण्यपापउदय, १०३ इर्यावहीकेभाङ्गे, और १०४ मार्गणाद्वार. यह १०४ द्वार थे. पूर्व के ७५ और यह १०४ दोनोंमें से छाटकर १२५ द्वार के नाम लिखें और एकेक गुणस्थान पर १२५ द्वार उतारने सुरू किया १२५ पृष्ठका लेख होतें ही विचार बदल यह पद्धती पसन्द नही पडतेही उन १०० पृष्ठ रद्दी कर पुनः द्वितीया वृत्ति लिखनी सुरू करी उसके ५० पृष्ठ लिखाय कि उसी वक्त कच्छ देश से श्री नागचन्द्रजी महाराजकी तरफसे " विचार सार प्रकरण " नामक ग्रन्थकी प्रसादी प्राप्त हुइ, उसमें किसी अन्यही ढब से चउदह गुणस्थानो ८ कर्मो की प्रकृत्तियों पर ९४ द्वारो उतारे थे जिनके नाम १ चारबन्धद्वार और २ मूलबन्धद्वार, ३ उत्तर बन्ध द्वार, ४ ज्ञानावरणीयबन्ध, ५ दर्शनावरणीयद्वार ६ वेदनयिबन्ध, ७ मोहनीयबन्ध, ८ आयुबन्ध, ९ नामबन्ध, १० गोत्रबन्ध, और ११ अन्तरायबन्ध. यह १० बन्ध के द्वार ऐसेही १० उदयके द्वार. ऐसेही १० ऊदीरणा के यह ३१, और ३२ मूलसत्ता, ३३ उत्तारसत्ता, ३४ आठकर्मकीसत्ता, ३५ जीव, केभेद, ३६ गुणठाणा, ३७ योग, ३८ उपयोग, ३९ लेश्या, ४० मूलहेतु, ४१ मिथ्यात्व हेतु, ४२ अविरत हेतु, ४३ कषायहेतु, ४४ योगहेतु, ४५ समुचय हेतु, ४६ अल्पाबहुत, ४७ मूलभाव, ४८ उत्तरभाव, ४९ औदिकभाव, ५० औपशामिक भाव- ५१ क्षयोप शामिकभाव, ५२ क्षायिकभाव, ५३ परिणामिक, ५४ सन्नावाइ, ५५ विशेष जीवभेद, ५६ नर्कभेद, ५७ तिर्यंचभेद, ५८ मनुष्यभेद, ५९ देवभेद, ६० समुचयभेद, ६१ समुद्घात, ६२ ध्यान, ६३ ध्यानके पाय, ६४ वेद, ६५ दन्डक, ६६ योनी, ६७ कुलकोडी, ६८ ध्रुवबन्ध, ६९ अध्रुवबन्ध ७० ध्रुवोदय ७१ अध्रुवोदय ७२ ध्रुवसत्ता ७३ अध्रुवसत्ता. ७४ सर्वघातिक, ७५ देशघातिक, ७६ अघातिक, ७७ पुण्यप्रकृति, ७८ पापप्रकृति, ७९ परावर्त, ८० अपरावर्त, ८१ क्षेत्रवीपाक, ८२ भव विपाक ८३ जीवाविपाक, ८४ पुद्गलविपाक, ८५ मोह नमिकेभाङ्गे, ८६ दर्शना वरणी के भाङ्गे, ८७ वेदनीकेभाङ्गे, ८८ गोत्रकेभाङ्गे, ८९ अन्तरायकेभाङ्गे, ९० नामकेभाङ्गे ९१ आश्रवकेभेद, ९२ संवरकेभेद, ९३ निर्ज्जराकेभेद, ९४ बन्धतत्व, यह ९४ द्वारों थे. अवलके द्वारोंके लिष्टमें इन ९४ मेंसे छाटकर द्वारो मिलानेसे २७५ द्वार पूरे किये. और फिर कर्म ग्रन्थ में से कुछ गोमट सारके कर्म काण्ड से लिये हुवे कुछ स्वकल्पित यों सब मिलाकर २५२ द्वारो हुवे. उनके नाम.

+	१	नामद्वार	♣	२०	परस्पर मार्गणा
÷	२	अर्थद्वार	♣	२१	परस्पर उपमार्गणा
०	३	प्रश्नोत्तरद्वार	♣	२२	अरोह अवरोह
×	४	प्रवेशद्वार	×	२३	चडाचडगति
÷	५	लक्षणद्वार	×	२४	अन्तरकाल
०	६	दृष्टान्तद्वार	×	२५	विरहकाल
=	७	गुणद्वार	×	२६	एकभवमें स्पर्श
×	८	अन्वेषणाद्वार	×	२७	वहूत भवमें स्पर्श
♣	९	उत्पत्तिद्रव्यप्रमाण	♣	२८	परस्पर स्पर्श
♣	१०	पावतीद्रव्यप्रमाण	×	२९	पढमापढम
♣	११	खपतीद्रव्यप्रमाण	♣	३०	शाश्वता शाश्वत
♣	१२	क्षेत्रप्रमाण	♣	३१	परभवगमन
♣	१३	क्षेत्रस्पर्शना	♣	३२	भवसंख्या
+	१४	काल (स्थिति)	+	३३	अल्पा बहुत
×	१५	कालमास	♣	३४	किरिया
♣	१६	भाव प्रमाण	×	३५	मूलहेतु कारण
×	१७	निरन्तरगुण	♣♣	३६	मिथ्यात्व हेतु
♣	१८	मार्गणा	♣♣	३७	अविरत हेतु
♣	१९	उपमार्गणाद्वार	♣♣	३८	कषाय हेतु

⁂	३९	योग हेतू	⁂	५८	देश घाति कर्म प्रकृति
+	४०	समुचय हेतू	०	५९	अघाति कर्म बन्ध
⁂	४१	चार बन्ध	⁂	६०	अघाति कर्म प्रकृति
⁂	४२	समुचय कर्म बन्ध	०	६१	पुण्य कर्म बन्ध
÷	४३	ज्ञानावरणीयबंध	⁂	६२	पुन्यकर्म प्रकृति बन्ध
⁂	४४	दर्शनावरणीयबंध	०	६३	पाप कर्म बन्ध
⁂	४५	वेदनीयबंध	०	६४	पाप कर्म प्रकृति बन्ध
⁂	४६	मोहनीय बन्ध	⁂	६५	परावर्तमान कर्म बन्ध
⁂	४७	आयुष्य बन्ध	⁂	६६	परावर्तमानकर्मप्रकृतिबं-
⁂	४८	नाम कर्म बन्ध	०	६७	अपरावर्तमानकर्म बंध
⁂	४९	गौत्र कर्म बन्ध	⁂	६८	अपरावर्तमानकर्मप्रकृति
⁂	५०	अन्तराय कर्म बन्ध	÷	६९	भूयस्कार कर्म बन्ध
०	५१	ध्रुवकर्मबन्ध	÷	७०	भूयस्कार कर्म प्रकृति
⁂	५२	ध्रुवकर्म प्रकृति बंध	÷	७१	अल्पतर कर्म बन्ध
०	५३	अध्रुव कर्म बन्ध	÷	७२	अल्पतर कर्म प्रकृति
⁂	५४	अध्रुव कर्म प्रकृति बंध	÷	७३	अवस्थित कर्म बन्ध
०	५५	सर्व घाति कर्म बन्ध	÷	७४	अवस्थित कर्म प्रकृति
⁂	५६	सर्व घाति कर्म प्रकृति	÷	७५	अव्यक्त बन्ध
०	५७	देश घाति कर्म बन्ध	+	७६	समुचयकर्मप्रकृति बन्ध

≡	७७	कर्म बन्ध व्यछेद्	०	९६	क्षेत्रविपाक कर्मोदय
≡	७८	कर्मप्रकृति बंध व्यछेद्	⁂	९७	क्षेत्रविपाककर्मप्रकृतिउ
÷	७९	समुचय कर्मोदय द्वार	०	९८	भव विपाक कर्मोदय
⁂	८०	ज्ञानावरणी उदयद्वार	⁂	९९	भवविपाक कर्म प्रकृति.
⁂	८१	दर्शनावरणीय उदय	०	१००	जीवविपाककर्मोदय
⁂	८२	वेदनी उदय द्वार	⁂	१०१	जीवविपाककर्मप्रकृति
⁂	८३	मोहनीय उदय द्वार	०	१०२	पुद्गलविपाक कर्मोदय
⁂	८४	आयुष्य उदय द्वार	⁂	१०३	पुद्गलविपाककर्मप्रकृतिउ
⁂	८५	नाम उदय द्वार	०	१०४	सर्व घाति कर्मोदय
⁂	८६	गौत्र उदय द्वार	⁂	१०५	सर्वघातिकर्मप्रकृतिउदय
⁂	८७	अन्तराय उदय द्वार	०	१०६	देशघातिक कर्मोदय
०	८८	ध्रुवकर्मोदय	⁂	२०७	देशघातिकर्मप्रकृति उ.
⁂	८९	ध्रुवकर्म प्रकृति उदय	०	१०८	अघातिकर्मोदय द्वार
०	९०	अध्रुव कर्मोदय द्वार	⁂	१०९	अघातिकर्मप्रकृति उदय
⁂	९१	अध्रुव कर्म प्रकृतिउदय	÷	११०	समुचयकर्मप्रकृति उदय
०	९२	पुण्य कर्मोदय द्वार	०	१११	कर्मोदय व्यच्छेद
⁂	९३	पुण्य कर्म प्रकृति उदय	≡	११२	कर्मप्रकृति उदयव्यछेद
०	९४	पाप कर्मोदय द्वार	=	११३	समुचय उदीरणा
⁂	९५	पाप कर्म प्रकृति उदय	⁂	११४	ज्ञानावरणी कर्म उदीर

♣♣	११५	दर्शनावरणीकर्म उदीर.	०	१३४	ध्रुवकर्म सत्ताद्वार
♣♣	११६	वेदनिय कर्म उदीरणा	♣♣	१३५	ध्रुवकर्म प्रकृति सत्ता
♣♣	११७	मोहनीयकर्म उदीरणा	०	१३६	अध्रुवकर्म सत्ताद्वार
♣♣	११८	आयुकर्म उदीरणा	♣♣	१३७	अध्रुवकर्मप्रकृति सत्ता
♣♣	११९	नामकर्म उदीरणा	०	१३८	सर्वघातिककर्म सत्ता
♣♣	१२०	गौत्रकर्म उदीरणा	♣♣	१३९	सर्वघातिककर्मप्रकृतिस-
♣♣	१२१	अंतरायकर्म उदीरणा	०	१४०	देशघातिक कर्म सत्ता
×	१२२	समुचयकर्मप्रकृति उदी.	♣♣	२४१	देशघातिकर्मप्रकृतिसता
०	१२३	कर्मोदीरणा व्यच्छेद	०	१४२	अघातिकर्म सत्ता
=	१२४	कर्मप्रकृतिउदीरणा व्य	♣♣	१४३	अघातिकर्मप्रकृति सत्ता
×	१२५	समुचय कर्म सत्ताद्वार	×	१४४	समुच्चयकर्म प्रकृतिसत्ता
♣♣	१२६	ज्ञानावरणी सत्ताद्वार	०	१४५	कर्मसत्ताव्यछेद द्वार.
♣♣	१२७	दर्शनावरणी सत्ताद्वार	≡	१४६	कर्मप्रकृती सत्ताव्यछेद
♣♣	१२८	वेदनीय सत्ता द्वार	÷	१४७	समुचकर्म भंग द्वार
♣♣	१२९	मोहनीय सत्ताद्वार	÷	१४८	ज्ञानावरणी भङ्ग द्वार
♣♣	१३०	आयुकर्म सत्ताद्वार	÷	१४९	दर्शनावरणी भङ्ग
♣♣	१३१	नामकर्मसत्ता द्वार	÷	१५०	वेदनीयभङ्गद्वार
♣♣	१३२	गौत्रकर्म सत्ताद्वार	÷	१५१	मोहनीय भङ्ग द्वार
♣♣	१३३	अन्तरायकर्म सत्ताद्वार	÷	१५२	आयु भङ्ग द्वार

÷	१५३	नात्र भङ्ग द्वार	×	१७२	पा-गाति द्वार
÷	१५४	गौत्रभंग द्वार	×	१७३	जागाति द्वार
÷	१५५	अन्तराय भङ्ग द्वार	♣	१७४	आजातिद्वार
♣	१५६	वन्धिके भाङ्गे	♣	१७५	पाजातिद्वार
♣	१५७	इर्यावहीके भाङ्गे	○	१७६	जा-जातिद्वार
♣♣	१५८	मुल भाव द्वार	♣	२७७	आकाया द्वार
♣♣	१५९	औदायिक भावद्वार	×	१७८	पाकाया द्वार
♣♣	१६०	उपशमिक भाव	○	१७९	जाकाया द्वार
♣♣	१६१	क्षयोपशामिक	♣	१८०	आदण्डक द्वार
♣♣	१६२	क्षायिकभाव	×	१८१	पादंडकद्वार
♣♣	१६३	पारिणामिक भाव	○	१८२	जादंडक द्वार
♣♣	१६४	सनीपातिक भाव	×	१८३	सामान्य जीव भेद
♣♣	१६५	समुचय भाव द्वार	♣♣	१८४	विशेष जीवभेद द्वार
♣	१६६	श्रेणीद्वार	×	१८५	जीवायोनी द्वार
×	१६७	कर्मवेदे द्वार	♣♣	१८६	कुलकोडी द्वार
×	१६८	कर्म तिर्ज्जराद्वार	♣	१८७	सूक्ष्म वादर द्वार
≡	१६९	दशकरण द्वार	♣	१८८	त्रस स्थावर द्वार
÷	१७०	गुणश्रेणी द्वार	♣	१८९	सन्नीऽसन्नीद्वार
×	१७१	आ-गाति द्वार	♣	१९१	भाषकऽभाषक द्वार

×	१९१	आहारकऽनारक	×	२१०	स्वर्गकी मर्यादाद्वार
✿	१९२	ओजादि आहार	×	२११	षटस्थानहानीवृद्धि
✿	१९३	सचितादि द्दहार द्वार	✿	२१२	मूल उपयोगद्वार
✿	१९४	दिशी आहार	+	२१३	अज्ञान द्वार
✿	१९५	पर्याप्त अपार्याप्त	+	२१४	ज्ञानद्वार
✿	१९६	पर्याद्वार	+	२१५	दर्शनद्वार
×	१९७	प्राणद्वार	+	२१६	समुचय उपयोग द्वार
✿	१९८	इन्द्रियद्वार	+	२१७	दृष्टि द्वार
✿	१९९	इन्द्रिय विषयद्वार	×	२१८	भव्या भव्यद्वार
×	२००	सज्ञाद्वार	✿	३१९	चरमा चरम द्वार
×	२०१	वेद द्वार	✿	२२०	परिता परित द्वार
+	२०२	कषाय द्वार	+	२२१	परिसह द्वार
+	२०३	लेश्याद्वार	+	२२२	आत्मा द्वार
✿	२०४	योगद्वार	×	२२३	ध्यान द्वार
×	२०५	शरीर द्वार	✿	२२४	ध्यानके पाये द्वार
✿	२०६	संघयण द्वार	✿	२२५	षठद्रव्य द्वार
✿	२०७	संठाणद्वार	✿	२२६	परिणामद्वार
✿	२०८	वरणद्वार	✿	२२७	वीर्य द्वार
✿	२०९	विग्रहगतिद्वार	✿	२२८	तीर्थ अतीर्थ द्वार

+	२२९	सम्यक्त्वद्वार
♣♣	२३०	संयता संयति द्वार
♣♣	२३१	लिङ्ग द्वार
+	२३२	चारित्र द्वार
♣♣	२३३	नियठा द्वार
♣♣	२३४	कल्पद्वार
♣♣	२३५	परिसह द्वार
♣♣	२३६	प्रमादद्वार
♣♣	२३७	सरागी वीतरागीद्वार
♣♣	२३८	पडवाइ अपडवाइ
♣♣	२३९	छद्मस्त केवलीद्वार
♣♣	२४०	समुदघात द्वार
♣♣	२४१	देवद्वार
♣♣	२४२	परिणामी द्वार
×	२४३	कारण द्वार
×	२४४	निवृति द्वार
♣♣♣♣	२४५	आश्रव द्वार
♣♣♣♣	२४६	संवरद्वार
♣♣♣♣	२४७	निर्जराद्वार
♣♣♣♣	२४८	निर्जरा भेद द्वार
०	२४९	करणी फल द्वार
+	२५०	तीर्थंकर गौत्रोपार्जे
+	२५१	तीर्थंकर स्पर्श
०	२५२	मोक्षद्वार

जिस द्वार के अंक की पीछे + ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारों बहूतस्थान लिखें पाये. जिसके पीछे × ऐसा चिन्ह किया है ' श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके हस्त लिखित पत्र में से लिये हैं. जिसके पीछे ÷ ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारो श्री नागचन्द्रजी के भेजे हुवे गुणठाणाद्वार " में से लिये हैं. जिसके पीछे * ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारों श्री नागचन्द्रजीके भेजे हुवे विचार सार प्रकरण " ग्रन्थ मेंसे लिये. जिसके पीछे = ऐसा चिन्ह किया वो द्वारों छे कर्म ग्रन्थ " मेंसे लिये हैं. जिसके पीछे ° ऐसा चिन्ह किया वो द्वारों गोमठ सारके कर्मकान्ड " से लिये है. जिसके पीछे – ऐसा चिन्ह किया है वो प्रकरण संग्रह मेंसे लिया. और जहां ० ऐसा चिन्ह किया है वो पूर्वापर अपेक्षासे स्वमति से लिखे हैं.

यों सब २५२ द्वारोंकी नोटकर ग्रन्थ लिखना फिर तीसरी वक्त शुरू किया. और ६०० पृष्ट में पूर्ण कर पुनः शुद्धावृत्ति लिखनेका विचार करते संकल्प हुवा कि इस ग्रन्थको मूल कान्ड और अर्थ कान्ड में दो विभाग में विविक्षित कर २५२ द्वारों को गुणनिष्पन्न चारों खाडों में अलग २ बाट लिखनेसे खुलासा अच्छा होगा. तदनुसार शुद्धावृत्ति लिखी जिसके ८०० पृष्ठ हुवे.

जैन तत्व प्रकाश, परमात्म मार्ग दर्शक ध्यान कल्पतरु इत्यादि ग्रन्थों तो फक्त तीन चार महीने जितनी मुदत में ही लिख सकाथा परन्तु इस ग्रन्थको लिखने १॥ वर्षका सुम्मार लग गया जिसका सबब— अव्वल तो इस ग्रन्थ का बिषय बहूतही गहन है. उसे स्पष्ट करने जितनी इसमें मगज मारी करनी पडी वैसी अव्वल किसी भी पुस्तक लिखते नही करनी पडी थी. तोभी इसमें बहुतसे विषयोंको तीन २ चार २ वक्त लिखते ही मनकी पूर्ण खातरी न हुइ तब फक्त मूल प्रमाणे उतारा करनाही उचित समझा. वैसेही किया. और दूसरी जबर अन्तराय का उदय होनेसे मुझे आत्मसाधन में और ज्ञानवृद्धि और कार्य में पूर्ण सहायता के कर्ता-विघन विपत्ती के हर्ता परम पूज्य तपश्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराजके शरीरमें असाता वेदनीयका प्रबल उदय होनेसे सब प्रकारकी सहायता बन्ध पडी और अन्य कार्यमें सन्धना भाग पडा,व्याख्यान आहारलाना औषधोपचार और आने वालोंके साथ वारतालाप वगैरा कार्य मेरेही करनेके होनेसे उधर लक्षकी प्रेरना अधिक होने लगी, लिखते अपूर्ण विषय को छोड आठ २ दिनतक उसे अवलोकन करनेकाभी अवसर प्राप्त हुवा न जिससे उस विषयक अनुसन्धमेंकी विस्मृति होने से घोटाला हो गया बहूत खामीयों रहगइ तब विचार होता है की महारा

ज के आगम हुवे बाद द्वितीया वृत्ती लिखकर कच्छ पंजाव मालवा काडीया वाडमे विचरते पण्डित मुनिराजोंके निग्रानीचे निकला शुद्धि वृद्धि के साथ फिर हाथ से लिखे बाद छपवाऊंगा. इत्यादि विचार ही विचार में रहगया और भव्यतव्यता योग महाराजश्रीका आयु अन्त हो गया. फिर विना कारण एकस्थान रहना होवे नही. एक विन पूर्ण चित्त की स्थिरता और अन्य अनेक ग्रन्थो सहायता नही. जिससे ज्ञान वृद्धि के कार्य में आगे वढना अटका और जो वाकी ३॥ महिने का चौमास का काल वाकी रहाथा. उसमें लिखने और छपने प्रारंभ किये हुवे ग्रन्थो जयसेण वीजय सेण चरित्र, वीरसेण कुसुम श्री चरित्र, सम्वेग गुण चरित्र, सद्धर्म बोध मराठी पुस्तक की द्वितीया वृत्ति इत्यादिको समस्त करना, पुरुफ सुधारना, श्री केवल ऋषि महाराजका चरित्र रचना तथा व्याख्यान और साधुकी नियमित किरिया का करना वगैरा कार्यो गुन्थेन से इस ग्रन्थ की यों त्यो समाप्ति करी. और अपना धर्मका प्रेस आजमेर भेजनेका विचार था परन्तु अवल दिया हुवा जयसेण चरित्र के पांच महिने में कुल पांच ही फारम छापकर दिये वोभी वहुत अशुद्ध जिससे मन हट गया. और सन्मुख ही यह काम होता अच्छा जान यहांके नवीन हुवे 'शारदाप्रेस' के उनका ही मेनेजरको जलदी और शुद्ध कार्य करने का करार कर दिया. पुरुफ में करक्शन कारते भी कितनेक स्थान शुद्धि वृद्धि करी है तोभी इस ग्रन्थ में वहूत अशुद्धियों और खामीयों रह गइ है यह मे निश्चय में कहता हूं. उनके लिये ऊपर दर्शाइ हुइ मेरी लाचारी पर रहम कर पाठक गणो क्षम वकसेंगे? और जैनशास्त्रज्ञ पन्डित महात्मा ओ इसका शुद्धिपत्र वना कर जो वकसीस करेंगे तो सभार स्वीकार द्वितीया व्रत्ति छपानेका प्रसङ्ग हुवा तो योग्य सुधारा जरूर ही करना चाहता हूं जी.

मैं अल्पज्ञ बहुत दोषी हूं। यह ग्रन्थ है महान ॥
मिथ्यालाप दुष्कृत्य करूं। सुधारे जो विद्वान ॥

उन्नत आत्म का दास,

अमोलख ऋषि.

समर्पण पत्र.

स्वर्गस्थ-पूज्य पाद परमुपकारी तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज साहेब की परम पवित्र सेवामें.

जिनोंके कुलमें समुत्पन्न हो जैन धर्म पाया, जिनकी वैराग्य मय मुद्रा ने वैरागी बनाया. जिनोकी हरकत रह से पूर्ण सहायता मिलने से सदान प्राप्त करसका और उसका लाभ अन्यको देनेको जो मेरी फरज थी वो कुछ बजा सका. इत्यादि जो जो कुछ योग्य कार्य कर जैनके चारों तीर्थका और अनेकोका कृपा पात्र जो मेरी पामर आत्मा बनीहै सो सब पुण्य प्रताप आपश्री काही है. इत्यादि सद्गुणों से मनाकर्षण हो यह ' मुक्तिसोपान गुणस्थानारोहण अढीशत द्वारी ' नामक ग्रन्थ आपश्री जी की सेवामें ही समर्पण कर कृतज्ञता समझता हूं.

शिक्षु-अमोल ऋषि.

उपकार पत्र.
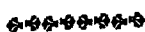
कच्छ देश पावन कर्ता आठकोटी मोटी पक्षी के परम पूज्य स्याद्वाभो निधी श्री कर्म सिंहजी महाराज के शिष्य वर्य पण्डित प्रवर कवीराज श्री नागचन्द्रजी महाराज की सेवा में:—

इस ग्रन्थ के पूर्ण १०० द्वार भी लिखने अशक्त हुवे को २५२ द्वार लिखने जितनी शक्ति की बकसीस आपके कृपा दान किये हुवे " गुणस्थान द्वार " और "विचार सार प्रकर्ण" ग्रन्थों के पठन मनन सेही हुईहै. ऐसे ही तंर आपने परुपकार बुद्धिसे आज ७ वर्ष से उत्साह और सहायता दान दे ज्ञान दान रूप परम लाभ मुझसे दिला रहे हो. यह आपका उपकार अकल्प है जी.

कृपाभिलाषी-अमोलऋषि.

ग्रंथ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

मारवाड देशके मेडते शहरके रइस, मंदरमार्गी बडे साथ ओसवाल कांसटीया गोतके, भाइ कस्तुरचंदजी व्यापार निमित्ते मालवाके आसटे (जोदपूर) ग्राममें आरहेथे, उनका अकस्मात आयुष्य पूर्ण होनेसे उनकी सुपत्नी जवाराबाइने वैराग्य पाकर ४ पूत्रोंको छोड साधुमार्गी जैन पंथ में दिक्षा ली. और १८ वर्षतक संयम पाला. माता पिता व पत्नी के वियोगकी उदासीसे सेठ केवलचंदजी भोपाल शहर में आरहे और पिताके धर्मानुसार मंदीर मार्गीयोंके पंच प्रतिक्रमण, नव स्मरण, पूजा आदि कंठाग्र किये. उसवक्त श्री कंवरजी ऋषिजी महाराज भोपाल पधारे, उनका व्याख्यान सुननेको भाइ फूलचंदजी धांडीवाल केवलचंदजीको जबरदस्तीसे लेगये. महाराज श्रीने सूयगडांगकी सूत्रके चतुर्थ उद्देशकी दशमी गाथाका अर्थ समझाया, जिससे उनको व्याख्यान प्रतिदिन सूननेकी इच्छा हुइ. शनैः शनेः प्रतिक्रमण, पच्चीस बोलका थोक इत्यादि अभ्यास करते २ दिक्षा लेनेका भाव होगया. परंतु भोगावली कर्मके जोरसे उनके मित्रोंने जबरदस्तीसे हुलासाबाइ के साथ उनका लग्न कर दिया. दो पुत्र को छोड वो भी आयुष्य पूर्ण कर गइ. पुत्र पालनार्थ; सम्बन्धीयों की प्रेरणासे तीसरी वक्त ब्याव करनेके लिये मारवाड जाते, रस्ते में पुज्य श्री उदेसागरजी महाराज के दर्शन करने को रतलाम उतरे, वहां वहुत शास्त्रके जाण, भर युवानी में सजोड शीलव्रत धारण करने वाले भाइ कस्तूरचंदजी लसोड केवलचंदजी को मिले. वो उनको कहने लगे कि, 'विषका प्याला सहज ही गिरगया, तो पुनः उसको भरनेको क्यों तैयार होते हो?' यों कहते उनको पूज्य श्रीके पास ले गये, पूज्य श्रीने कहाः—'एक वक्त वैरागी बने थे, अब बनडे (वर) बनानेको तैयार हुवे क्या?' इत्यादि वचनों सुन केवलचंदजी ब्रह्मचार्यव्रत धारणकर भोपालगये. दिक्षा लेनेका विचार स्वजनोंको दर्शाया, परंतु आज्ञा नहीं मिलनेसे एक मासतक भिक्षाचारीकर आज्ञा संपादन करी और सम्मत १९४३ चेत सुदी ५ के रोज श्रीपूनाऋषिजी महाराजकेपास दिक्षा ले पूज्यश्री खूबाऋषिजीमहाराजके शिष्यहुवे. और ज्ञान अभ्यासकर तपश्चर्य करनी सूरू करी १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०, २१, ३०,३१,४१,५१,६१,६३,७१,८१,८४,९१,१०१,१११,१२१ यह तपश्चर्या तो छाछ

केआगारसे करी, और इसके सिवाय छः महीनेतक एकान्तर उपवास वगैरा बहुत तप किया. तथा पूर्व, पंजाब, मालवा, गुजरात, काठीयावाड, झालवाड, सोरठवाड, मेवाड, मारवाड, तेलंगाणा, दक्षिण, वगैरा बहुत देश स्पश

श्री केवलचंदजीके ज्येष्ठ पुत्र अमोलख चंदजी पिताकी साथ ही दिक्षा लेनेको तैयार हुवे, परन्तु बालवयके सबब से स्वजनोंने आज्ञा नहीं दी और मोसाल में पहुंचा दिया. एकदा कवीवर श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके पाटवी शिष्य पंडित श्रीरत्नऋषिजी महाराज और तपस्वी श्रीकेवलऋषिजी महाराज इच्छावर ग्राम पधारे. वहांसे दो कोस खेडी ग्राम में मामाके यहां अमोलख चंदजी थे वो पिताके दर्शनार्थ आये. दर्शन से वैराग्य पुनः जागृत हुआ, और ११ वर्ष जितनी छोटी वय में (सम्वत १९४४ फाल्गुण बदी २ को दिक्षा धारन करली. श्री अमोलख ऋषिजी श्री केवल रुषिजी के शिष्य होने लगे, परंतु उनोंने कहा कि मेरा अभी शिष्य करने का इरादा नहीं है. तब पूज्य श्री खुबारुषिजी महाराज के पास लेगये, पूज्य श्रीने अमोलख रुषिजीको अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्य बनाये. थोडे ही कालमें श्री चेनाऋषिजी और श्री खुबा रुषिजीका स्वर्गवास होनेसे श्री अमोलख रुषिजीने श्री केवल ऋषिजीके साथ तीन वर्ष विहार किया, फिर श्री केवल ऋषिजी एकल विहारी हुवे. और श्री रत्नऋषिजी दुर ग्राम रहे, इसलिये अमोलख ऋषिजी दो वर्षतक श्री भेरू ऋषिजी के साथ रहे, उसवक्त सं. १९४८ के फालगुन में ओसवाल ज्ञाती के पन्नालालजी नाम के ग्रहस्थने १८ वर्ष की उम्मरमे दिक्षा धारन कर अमोलख ऋषिजीके चेले हुवे. उनको साथ ले जावरा ग्राममें आये, वहां श्री कृपारामजी महाराजके शिष्य श्री रूपचंदजी गुरु के वियोगसे दुःखी हो रहे थे. उनको संतोष उपजाने पन्ना ऋषिजी को समर्पण कर दिये, देखिये! एक यह भी उदारता! पीछे श्री रत्नऋषिजीका मिलापहोनेसे उनके साथ विचरे. इन महापुरुषने उनको योग्य जान, बहुत खंतसे शास्त्रभ्यास कराया, जिसके प्रसादसे गद्य-पद्यमें कितनेक ग्रंथ बनाये, और बना रहे हैं. तथा अनेक स्वमति-परमतियों को सत्य धर्ममें द्रढ किये और कर रहे हैं.

श्री अमोलख ऋषिजी के, संवत १९६९ में मोती ऋषिजी नाम के एक शिष्य हुए, कि जिनोंने बंबइ में काल किया.

हमारे सुभाग्योदय से स० १९६२ से तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महारा

ज रस्ते में क्षुधा तृषा आदि अनेक दुष्कर परिसह सहन कर यह क्षेत्र पावन किया और वृद्ध अवस्थाके कारण से अशक्त शरीर होने से यहां विराजमान हुवे थे. और इनकी सेवामें पंडित प्रवर बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलख ऋषिजी महाराज यहां विराजते थे. मुनि श्रीके सद्बोधसे आजतक ५४००० पुस्तके अमूल्य सर्व हिंदमें और ब्रह्मा अमेरिका, आफरिका, आदि देशोंतक दिये गये हैं, इससे खुला मालुम होता हैकि विद्वान मुनिराजों और उदार अग्रगामी श्रावकोंका सम्बन्ध मिलनेसे समयानुसार प्रवृत्ति करने से जग जीवोंको कैसा लाभ मिलता है.

अब हम आत्यन्त अपसोस से कहते हैकि-हमारे इस क्षेत्रको धर्म मार्ग में प्रसिद्ध लाने वाले और ज्ञान दान का अमुल्य दान दिला सर्व हिन्द के धर्मात्माओंको तोष ने वाले तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज वि. सं. १९७१ की चेत सुदी प्रति पदासे बीमारी वहुत ही बडगइ तब सावण वद५ को सर्व साथ अत्यन्त नम्र भावसे खमतखमना करीये.और नवमीके दिन आलोयणा निन्दना कर,अन्नाहारक त्याग किये और १३ मंगलवार के दिन-१०॥ वजे अपने मुखसे संथारा कर १॥ वजे देहोत्सर्ग हुवा !! और श्री अमोलख ऋषि जी उग्रह विहारी हुवे. जिससे जैसे राजा विना रइयत मुनि तैसेही सब यहां का होकर ज्ञान खाता बन्ध पडा है जी.

हमारी नम्र विनंती हैकि जैसा प्रयास ज्ञान वृद्धि का बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी ओर इन के सद्बोध से यहां के तथा अन्यग्राम के श्रावकोने किया हैं. इससे भी अधिक सर्व हिन्दके साधु मार्गीयों से होने की अत्यन्त आवश्यकता है, जो सर्व संघ इस प्रत्यक्ष दाखले को ध्यान में लेकर, ज्ञान वृद्धि-सम्प-वृद्धि वगैरा साधुमार्गी धर्मोन्नति के एकेक कामों का स्वीकार कर यथा शक्ति प्रवृति करेंतो यह पूर्ण शुद्ध धर्म पुनः पूर्ण प्रकाश मय होवे !

धर्मोन्नति इच्छक,

राजा बहादुर लाला-सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रशाद.

श्री मुक्ति सोपान-गुणस्थान रोहण अढीशतद्वारिका

❋ शुद्ध पत्रम्. ❋

☞ पाठक गणों! प्रथम निम्न लिखित अशुद्धियोंको शुद्धकर फिर यत्नासे पढीये.

पृष्ट.	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.
६	२६	नतव्य	अन्यतव्य
७	१३	चिविक्षित	विविक्षित
८	४	अनुघेण	अनुघेणा
११	१७	औवकर्मद्वार	यौवकर्मभंगद्वार
१२	२५	समुठ घाए	समुघाए
२३	९	सयय	संजय
१७	११	द्वोस्यानीरसका	०
२२	२६	रणघात	रसुघात
२५	२५	सज्वला	संज्वल
२६	६	लाभ	लोभ
२६	२८	रण	करण
२८	१०	सम	समय
३६	३	करीना	करना
३९	१५	विराय	विराम
४१	२३	ल	ऌ
४२	७	संघयण	संघयण
४३	२२	अठक	अटक
४४	२०	स्त्रास्त्रवसे	शास्त्रसे व
४५	३	जीवोंगे	जीवोंने
४५	४	में	०
४५	१७	मा	मारे
४५	१८	देवेगेरें	देवेंगे
५०	१	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
५०	१५	दी	दीप
५०	२१	सीतराग	वीतराग
५१	१८	पाव	माव
५९	१३	गुड	गुड
६०	४	मुद्रा	मूपा
६०	१६	संरमणात	में रमणता
६४	३	प्रमाणइ	प्रमाण
६५	२	आश्रय	आश्रव
६६	८	परम तु	पु सन्तु
६९	२	तत्र	व्रत
७१	३	भागवन	भोगवने
७४	१२	भोजन्न	भाजन
८१	९	व्रतिमा	परतिमा
८१	१८	वाम	वाङ्ग
८४	२५	चारिक	उपचारिक
९२	११	आयप्य	आयुप्य
९२	१२	मूसखस्थान	मुखस्थान
९४	२६	रूप और	पारम क.मु.क्ति
०५	१	पत	तप
९७	२७	का	कर
९९	२५	को	की
१००	२४	को को	की
१०३	३	त्व(छाल)चा	त्वचा(छाल)
१०५	२	में	०
१११	८	वोदाणावाकरहाजावे	
,,	१४	कालका	शालाको
११४	२३	मरिता	परिता
११८	४	को	क्रोड
१२१	१८	नइ	इन
१२२	१०	परिवार	परिवारमें
१२३	३-४	दाक्षिण	उत्तर
१२४	४	होजन	योजन
,,	१२	घात	धात
,,	२१	मवर्य	वर्वत
१२५	१६	७ और	और ७

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३१	१४	कथनयाकरे	कथनकर
१३२	२०	न्अय	अन्य
१३३	२२	रूप	रूपी
१३५	११	और	सो
१३८	३	उपत्रासे	उपावसे
,,	१६	मान	मन
१४१	८	स्वभा	स्वभाव
,,	१२	ऐपिन्ड	ऐसे पिंड
,,	१२	ओ	और
,,	१५	ऽर्म-सूर्क	ऽर्क-सूर्य
१४५	११	चडे	जडे
१४७	१६	आताम	आताप
१५५	१२	(धल)	(धूल)
१६२	९	संयमा	संयम
१६४	८	वोध	वन्ध
,,	२५	होवाहै	होताहै.
१६५	५	का	०
१६८	१४	अतिप	आतिम
,,	,,	हांरय	हांस्य
१६९	नोट	भी केए	भी एक
,,	४	स्थानवर	स्थावर
,,	१४	शुभ	०
१७०	१५	संत्तोष	संतोष
१७३	१७	अस्थिपटक	अस्थिर पटक
१७५	५	वेधन	वंधन
,,	१८	प्रकृति	प्रकृति का
१७६	१८	वत	तव
,,	२१	स्त्यानी	०
१७८	२	थीण त्रिक	थीणद्वी त्रिक
१७९	१४	नरगति	नरकगति
,,	१७	अध्यायसाय	अध्यवसाय
१८२	१२	संघयण	संघयण
१८४	८	इस	०
१८९	१	जघस्य	जघन्य
,,	१६	वर्वणा	वर्गणा
१९०	१	अनाति	अनन्ति
,,	१८	वर्गणा	०
१९३	५	धंबाता	बंधाता
१९५	१५	सो	यों
१९६	६	थीणद्ध	थीणद्धी
,,	१३	मिलेता है	मिलता है
,,	२४	वस	सब
१९९	२८	अद्रंत	अद्भुत
२००	५	वत	तब
२०१	१०	गार्त्रकमे	गौत्र कर्म
२०२	१९	प्राति	प्रकृति
२१२	पृष्ठांक	२०२	२१२
२१२	१६	तधा	तथा
२१४	१०	सोने से	होनेसे
,,	१२	वो	वे
,,	२५	सूयकीप्रभाव	सूर्यकी प्रभा
२१५	१६	सो	स
२१७	१२	इथावर	स्थावर
,,	नोट	और भी	और कभी
२२०	,,	पमश	उपशम
२२१	,, १	क्षय	क्षय
,,	,, ३	फेवल	केवल
२२३	३	संयोग	संयोगी
२२५	नोट	संगव	संभव
,,	,,	शत्तका	शक्ता
२२६	पृष्ठांक	१३६	२२६
,,	१	कैमक	कर्मके
,,	१८	असाताक्षयका	आसाताकोक्षय
२२७	४	२२का२२का, २७का,	२२का२१का, १७का,
,,	९	और २	और २ में का
,,	नोट	विवमन्न	विमान
२२८	इस पृष्टमें गडवडबहुतही होगइ है		

पृष्ठ	पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
२२९	९ गपावे	खपावे
,,	१० सत्तान	सत्ता
,,	१९ बाकीकेके	बाकी के
२३०	नो६ प्रत्याख्यानी	अप्रत्याख्यानी
२३१	२ जनन्ता	अनन्तान
,,	५ पूवाक्त	पूर्वोक्त
२३२	२ २ स्य	२ हांस्य
,,	४ हांइन	इन
२३५	१८ और दे	और दो
२३६	१४ सन्त	सत्ता
२४१	४ संज्वसल	संज्वल
२४३	६ तियचायु	तिर्यंचायु
,,	१३ सात ७	सत्ता ७
२४४	१३ जानवाले	जानेवाले
२४७	७ नद्योत	उद्योत
२४७	२६ असिर	आस्थिर
२५०	२ सूक्ष्मपर्याप्ता	सूक्ष्म अपर्याप्ता
,,	नो४ जितन	जितनी
२५१	१७ का, का,	का,
,,	नो१ कामेसे	कायसे
,,	,, और	और
२५२	२ अयः	अयशः
,,	७ साति	राति
,,	१० उदमें	उदय में
२५५	४ योते है.	होते है.
,,	नोट दौर्घाग्य	दौर्भाग्य
२५७	६ इस ओलीपेंभी गडबड होगयी	
,,	१५ सनुष्य	मनुष्य
,,	२१ १-भाया	१ भाझा
,,	२४ तीर्थंकर के	तीर्थंकर के
२५८	२ और २२	और १२
,,	१९ २ पचेन्द्रिय	३ पचेन्द्रिय
,,	२२ यह	यहां
,,	,, ८ वैक्रय	२ वैक्रय
२५९	२ नक में	नर्क में
,,	२७ और ३१का	और ३१
२६०	१७ ८ नरक	२ नर्क
२६१	७ स्थान नहीं	स्थानही
२६२	१२ स्थार	स्थान
२६३	१० लत्ता	सत्ता
२६५	१० चनुष्य	मनुष्य
,,	१६ नको	इनको
,,	१७ ७८ सत्ता	७८ की सत्ता
२६६	१२ व्रत्ततें	प्रवर्तते
,,	नो५ यनके	इनके
,,	,, मोग्य	योग्य
२६७	१९ करो	कर
२६८	१४ यदय	उदय
२६९	नो९ भांह	भाङ्गे
,,	,, बावीके	बाकी के
२७२	१८ जिनन्त	जितना
२७३	६ एकेंद्रियान्हक	एकेंद्रियादिक
२७९	१५ जैसा शमिक	ओपशमिक
२८१	३ गात्र	गौत्र
,,	५ कर्म होतेहै	कर्मके होते हैं
२८३	४ पंश्च	पंच
२८७	७ उदयावसी	उदयावली
,,	१७ नने	होने
२८९	२ परिमाण	परिणाम
२९१	१० खुसासा	खुलासा
,,	१६ उत्कष्ट्रण	उत्कृष्ट
,,	२५ अपकर्वण	अपकर्षण
२९२	२ कर्णो	करणों
,,	५ दही	दोंही
२९३	७ चपकर्ष	अपकर्ष
,,	११ झूलासा	खुलासा
,,	१४ फरसीफरसी	फरसी
,,	१५ थता	तथा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९३	१९	सम्दग	सम्यग
"	२३	निर्ज्जरा	निर्ज्जरा
२९६	७	कर	०
२९७	१९	नन	मन
२९८	१४	निर्यंच	तिर्यंच
"	१८	केशल्यता	कौशल्यता
३०१	१२	पुष्क	पुष्प
"	१७	सति	सात
"	२७	काले	वाले
३०२	४	आढ्य	कण्डया
"	६	रसमा'रसया'	रसया-रसमें
३०३	१७	वर्व	पूर्व
३०५	१४	क वित	कषायला
"	१७	मनुष्य	धनुष्य
३०७	२८	जुड	जुडे
३०८	५	एणधर	गणधर
"	७	आदारिक	औदारिक
"	७	सूत्र	शूक्र
"	१८	हडीयों	हडीयों
३१२	७	दड	पड
३१४	८	यथार्थ	अयथार्थ
३१७	४	व्युछिन्नकिरित्त	व्युच्छिन्नकिरिय
३१८	६	पढते	०
३२१	५	चघन्य	जघन्य
३२३	४	अतिवार	अतिचार
"	२८	"	"
३२५	इसपृष्ठकी पांचवी ओलीभीवडेअक्षरमें		
"	१२	८	८ स्त्रीपरिसह
३२७	५	दर	दूर
"	१७	मुष्य	युष्य
३२८	५	३३ सागर	३ पल्योपम
"	१२	क्रोड पूर्व	देशउणाक्रोडपूर्व
३३०	२०	(इन वचन	(इन मन वचन
३६२	४	कुद्धि	वुद्धि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३५	७	टासस्म	ठाणस्स
३४६	१५	औदायिक	कुछ औदायिक
३५०	६	गुरुमिथ्यात्व	पुरुगलमिथ्यात्व
३५४	४	(अचारी)	(अचौरी)
"	१५	प्रकाा	प्रकार
"	१९-८		२-
३५६	१५	पूर्य	पूर्ण
३५७	१३	गमन गमन	ममनागमन
३५८	१०	सो मोह	सो क्षीण मोह.
३६०	१३	मिथ्यात्त्र	मिथ्यात्व
३६७	१६	वीसरे	तीसरे
३६९	१६	जघस्य	जघन्य
३७०	२	औ	और
"	३	तथा	तथा
"	६	अनन्तांत	अनन्तानन्त
"	१०	क्रेरड	क्रोड
३७१	५	अनन्तात	अनन्तानन्त
३७२	२०	तिजय	विजय
३७४	९	मुहुर्त	०
"	१०	गमत	प्रमत
३७५	३	मुदूर्त	मुहुर्त
३७६		पृष्ठांक ७६६	३७६
"	१८	जाम	जाय
३७७	१२	वेजावे	वेजावे, और बारवे जावें.
३८३	१०	होता है	तेहै
"	१८	१ जघन्य	जघन्य १
३८४	१७	अठातीसवा	अडतीसवा
३८५	१	कौर	और
"	९	मिथ्यात्व	०
३८८	१०	संयनि	संयति
३८९	५	प्रथम	द्वितीय
३९१	३	१९अणय२० अनाभोगा पंकवतीया.	१९अणाभोगवतिया;२०अणवकंखवतिया.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९६	११	बन्ध	बंध
३९९	३	६	०
४०४	१५	आगे पाग	अङ्गोपाङ्ग
४०५	८	होता है.	होतहै.आगे गौ त्र कर्मका बंधनहीं
४०६	१४	कां ३१	३१ का
४०७	१३	प्रकृति	प्रकृति बन्ध
४०९	८	११	१२
४१०	७	अठाय	अठारा
४११	८	कर्म बन्ध	कर्मप्रकृतिबन्ध
४१५	५	२	१
,,	२१	१	२
४१७	५	८	७
४१९	१६	५३	५३में
४३०	३	नस्कात	नरकानु
४३३	१	झीण	क्षीण
४३७	३	लोभ२ ३विनका-	लोभविना२ ३का
४४०	८	३६१	३६
४४२	२२	अघाति	०
४४५	१६	केवली केवली	केवली के
४४७	१२	११२	११३
४५८	नोट	स्य	स्वर्ग
४५९	७	और	०
४६१	८	चउद्वा	चउदवा
,,	२१	संयोगी	सयोगी
,,	२२	सालवा	सोलवा
४६२	२१	सत्तापाती	सत्ताद्वार
४६३	१३	१ अं	५ अं-
४:५	८	मागमें	भागमें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६५	१२	इक्कासवाकर्म	इक्कीसवाकर्मसत्ता
४६६	४	आविरातिमें	आविराति से
४६८	१२	सत्ता	साता
४६९	१८	सत	सत्ता
४७३	९	तिर्यंचाकायु	तिर्यंचायुका
,,	१४	तिर्यंचु	तिर्यंचायु
४८२	९	३ ज्ञान	३ अज्ञान
,,	११	३ दर्शन	३ज्ञान३दर्शन
४८४	१३	हेडिंगरहगया	समुचयभावद्वार
४८८	४	नेलवान्धि	न बान्धि
४८९	१४	और भी	और ४१ वा
४९१	११	सावबा	सातवा
४९३	२०	श्रमी	मिश्र
४९४	१०	अपर्मासे	अपर्याप्त
४९५	इस पृष्ठ में दोद्वार छापने रहगये		
५००	८	हेडिंगके नीचेके ओली	उपरचाहि
५०१	१०	लेश	लेशा
५०३	११	मरणद्वार	स्वर्गमर्यादद्वार
५०६	१३	सयरोगी	सयोगी
५०९	१०	पायेचा	पायेचार
५११	४	तीर्ततीर्थो	तीर्थातीत
५१४	७	प्रमाद्	प्रमाद
५१८	७	३	६
५२१	१५	निर्जरा	निर्ज्जरा

इस सिवाय औरभी बहुतसी अशुद्धियों इस पुस्तक में रहगइ है. जिसका मुख्य सबब विहार करने से पुरुपका करक्सन बराबर न होना तथा बहुतही जलदी से काम पूरा कराने का है इसलिये नम्र विनंती है कि जो जो अशुद्धिया दृष्टि आवे उसे जानावोगे तो संभार स्वीकार द्वितीया वृति छपने के प्रसंग आनेसे सुधारा किया जायगाजी.

अमोल ऋषि.

श्री मुक्ति-सोपानका अनुक्रमणी.

द्वीतिय खण्डानु क्रमणी

तृतीय खण्ड.

चतुर्थ खण्ड.

इति अर्थकांडानुक्रमणी.

अथ मूल खंडानुक्रमणी.

कर्म उदीरणाके १२ द्वारों.

कर्म सत्ताके १२ द्वार.

कर्म भङ्गादि १२ द्वार.

भावादि १३ द्वार.

इति मुक्तिसोपानकी अनुक्रमणी.

ग्रंथ प्रसिद्ध कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

दक्षिण हैद्राबाद में दिल्ली जिल्लेके कानोड (महेंद्रगड) से आकर निवास करने वाले अग्रवाल वंशमें शिरोमणि-धर्म-न्याय-विनय दया क्षमा उदारता--निर्भिमानता आदि गुणों युक्त लालजी साहेब नेतरामजी के सु पुत्र रामनारायणजी का जन्म संवत १८८८ पोष बद ९ का हुवा, और उनके सु पुत्र सुखदेव सहायजीका जन्म संवत १९२० पोष सुद १५ का हुवा, और उनके सुपुत्र ज्वालाप्रसादजी का जन्म संवत् १९५० के श्रावण बदी १ का हुवा. उक्त तीनों लालाजीने सनातन जैन धर्म के पुज्य श्री मनोहरदासजी महाराजकी सम्प्रदायके पूज्य श्री मगलसेनजी स्वामी पास सम्यक्त्व धारण करी है. परन्तु यहां हैद्राबाद में आये पीछे साधु दर्शन न होनेसे जैन मंदिर में जाते थे, और हजारों रुपे खर्चकर मनहर मंदिर भी यहां बनाया है. तथा प्रभावना स्वामीवत्सल आदि कार्यो में अच्छी मदद करते हैं; यहांके जौहरी वर्गमें अग्रेसर हैं. और राज्य दरबार में लाखो रुपेका लेनदेन करते हैं.

लालाजीके तर्फसे एक दानशाळा हमेशा चालु है, और भी सदाव्रत अनाथोंकी सहायता वगैरा पुन्य कार्य अछी तराह करते हैं. संसारिक प्रसंगो में भी लख्खो रुपेका व्यय इन्होंने किया है, ऐसे श्रीमंत होने पर भी बिलकुल अभीमान नहीं है.

जबसे तपस्वीजी श्रीकेवल ऋषिजी महाराज और इनकी सेवामें बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराजका यहां बिराजना हुवाहै तबसे लालाजी सुखदेव सहायजी जरूरी कारण शिवाय हमेशा व्याख्यान श्रवण का लाभ लेते हैं, एकसे ९ वर्ष शास्त्रादि श्रवणकर शास्त्रकी रहस्योंमें बहुत दीर्घ बुद्धिवान बनेहैं. उपभोग परिभोग से बहुत सी रुची मन्द हुइ है, संसार के हरेक कार्यो पापारंभ को घटाकर यत्नका प्रति बंध किया है, और ज्ञान वृद्धी के शोकीन हो 'जैन तत्व प्रकाश' परमात्म-मार्ग दर्शक, ध्यान कल्पतरु, मुक्ति सोपान जैसे बडे २ ग्रन्थों, तथा और भी चरित्रों वगैरा हजारों ग्रन्थों, हजारों रुपे का सद् व्ययकर छपाकर प्रसिद्ध कर जो हिंद के जैन वर्ग आदि को अमुल्य ज्ञानका लाभ दे उपकार किया तथा कर रहे हैं. औरभी इनोंने तीन वर्षसे तूटी हूइ श्वे० स्था० जैन कान्फरन्स को जाग्रत कर ता.१२-१३-

१४ अप्रेल १९१३ को सिकन्द्राबादमें भाराइ जिसमें रु. २१००० का सद्व्यय कि-या, और ७४०० रुपे देकर स्था. कान्फरन्स आफिस को बडा प्रेस सब सामाग्री युत बना दिया. और भी हजारों रूपका सद्व्यय कर हैद्राबाद में एकही वक्त चारों सत्पूरुषोंकी दिक्षा उत्सब किया. तैसे ही प्रथम अपने देशमें भी केइयोंके दिक्षा दिराइ है. ऐसे और भी गुप्त दान अवसर उचित कर यथा अवसर यथा उचित द्रव्य व्यय कर रहे है. यों तन धन मन कर यथा शाक्ति धर्म दीपा रहे हैं, यह लालाजी साहेब की धर्म फैलाव की उत्कंठा हरेक श्रीमंतोंको अनुकरण करने जैसी है. ऐसे उदार कृत्यों से धर्म दीपता है. सद्ज्ञान के प्रसारसे अपने भी ज्ञान वर्णीय कर्म क्षय होते हैं, और पढनेवाले को सुनने वालेको. यों एकेकसे आगे अनेक जीवों को महा लाभ मिलता है. इसलिये यह बात सब ध्यान में ले यथा शक्ति धर्मी बृद्धि करेंगे.इस हेतुसे ही यह संक्षिप्त जीवन चारित्र यहां दिया है.

गुणानुरागी,

सेक्रेटरी-ज्ञान बृद्धि खाता.

इस ग्रन्थके प्रसिद्ध कर्ता सदग्रहस्थोंका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

१ दाक्षिण (खानदेश) के 'बाघली' ग्राममें कूचेरे (मारवाड) से आकर निवास करने वाले शेठ दोलतरामजी चोरडीया की सुपत्नी गुलाब कवरबाइ की कूंख से संवत १९३१ के कार्तिक शुद्ध १ मंगलवारको रतनचन्द्रजी नामक पुत्र की प्राप्ति हुइ. अन्तरायोदय से रत्नचंद्रजी की ४ वर्ष की उम्मर में माताका और आठ बर्ष की उम्मर मे पिता का विजोग होनेसे इनकी दुसरी माताने इनको मदरसे में बैठाकर विद्याभ्यास कराया, तेज बुद्धि कर इनने कूल १९ वर्ष की उम्मर मे मराठी, गुजराथी, उर्दु, इंग्रेजी और मारवाडी लिखने का अच्छा अभ्यास कर अपने व्यापार कार्य में संलग्न हो संसार व्यवहार साध ने लगे.

सं० १९९२ का चातुर्मास-प्रसिद्ध वक्त श्री चम्पालालजी महाराजका मनमाड (नाशीक) में था तब रत्नचन्द्जीको इन महात्माका व्याख्यान श्रवन का लाभ होते ही धर्म के ऐसे शोकीन बनगये कि-सामायिक प्रति क्रमण स्तवनादि कण्ठाग्र कर व्याख्यानादि प्रसंग में एकत्र हुवे जन समोह में खुल्ले दिलसे सुनाने, लगे इनका मञ्जुल स्वर होनेसे श्रोतागण इनकी वाणी को प्रेम पूर्वक ग्रहण करने लगे. = और यह साधु आर्जिकाजी जी अत्याग्रह विंनती कर अपने ग्राम में चातुर्मास भी कराने लगे. सं. १९६१ के चातुर्मास में सतीजी श्री जडावांजीने ६१ उपवास किये. और सं. १९६२ के चातुर्मास में तपश्वीजी श्री केशरीमलजी महाराजने ७१ उपवास किये इनके दर्शनार्थ हजारों नरनारी आये जिनकी वडे उत्साहसे भक्तिकर सर्वप्रिय बनेहैं

सं. १९६२ का चातुर्मास तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी माहाराज का इगतपुरी (नाशीक) था तब भाइ रत्नचदंजी कितनेक भाइयों के साथ दर्शनार्थ गये थे, वहां बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजीका व्याख्यान सुन मोहित हूवे जिस प्रेम के आकर्षाथे हुवे पुनः सं. १९६९ के चातुर्मासमें कितनेक भाइयों के साथ यहां हैदराबाद आये और यहां के ज्ञान बृद्धि खाते का काम देख इनका मन आकर्षाया तब आप खूदने रु. १००) और चार भाइयों के (जिनका जीवन चरित्र आगे लिख

= अबभी यह भाइ अपने ग्राम में साधुका चातुर्मास न होवे तब या! लग्न खर्च आदि अन्य ग्राममें जाते है तब अनेक नर नारी यों की परिषदा में अनेक छंद स्तयन लावणी चोपाइ कथा आदि सुनाकर श्रोतगण को मोहित करते है.

ते हैं उनके) पास से रु. १००-१०० यों सब रु. ५००) ज्ञान बृद्धि खाते में समर्पण किये जिसके खर्च से इस "मुक्ति सोपान-गुणस्थान रोहण अढीशत द्वारी" की पुस्तके ४०० छपाइ है.

२ दाक्षिण (खानदेश) के 'जामडी' ग्राम से निवासी उदयचन्दजी वेदमुथाकी सुपत्नीके कूंखसे सं.१९३६के भाद्रवा सुदी९को संचालालजी नामक पुत्र हुवे यह मराठी आदि विद्याभ्यास कर संसार व्यवहार चलाने लगे, और वाघली वालोंकी संगत में साधू आर्जिकाजीके दर्शनार्थ जाते हुवे धर्मके शोकीन बने यह भाइ जी शरल और नम्र स्वभाव धारी है. जब वाघळीमें प्रसिद्ध वक्ता श्री चम्पालालजी महाराजका चातुर्मासथा तब यह अपने सब परिवार को साथ ले वाघली आकर रहथे और यथा शक्ति धर्म तप व दर्शनार्थ आने जाने वाले की खातर भी उत्सहा भाव से करी थी. यह भी भाइ रतनचंदजी के साथ यहां हैदराबाद दर्शनार्थ आयेथे तब इननेभी१००) रुपे ज्ञानबृद्धि खाते में दिये थे.

३ दाक्षिण (खानदेश) के 'वाघंळी' गामके निवाशी वच्छ राजजी रांका की सुपत्नी की कुंख से सं. १९४२ के मृगश्र सुदि १२ को इन्द्रचन्द्रजी नामक पुत्र हुवे. इनके पिता का सं. १९५६ में वियोग हुवे बाद अपनी सुबुद्धि द्वारा ही विद्याभ्यास कर कर संसार व्यवहार साधनेलगे, प्रसिद्ध वक्ता श्री चम्पालालजी महाराज के चातुर्मास में व्याख्यान श्रवन कर धर्म प्रेमी बने और अपना बन्धा बन्धाया मकान को धर्म स्थान (स्थानक) बना दिया यह भी. भाइजी रत्नचन्दजीके साथ हैदराबाद आये थे तब रु. १०० यहां के ज्ञान बृद्धि खाते में समर्पे थे.

४ 'वाघली' निवसी रामचंदजीकांकरिया की सुपत्नीसे सं. १९२३ के चेत सुदी पूनम को रत्नचंदजी नामक पुत्र हुवे. इनके पिताका सं. १९३५ में बियोग हुवे बाद विद्याभ्यासतो बिशेष न करसके परन्तु पुण्योदय से अच्छे लक्ष्मीवान वने. और श्री चम्पलालजी महाराज का सद्बोध श्रवण कर अच्छे धर्म प्रेमी बने यथा शक्ति धर्म बृद्धि करने लगे. यह भी भाइ रत्नचन्दजी साथ यहां हैदराबाद पधारे थें तब ज्ञान बृद्धि खाते में रु. १००) दियेथे.

५ दक्षिण (धूलिये जिल्हे) के बोरकुंड' गाम में गोठण गांव (मारवाड-जोधपूर जिल्हे) से आकर निवास करने वाले हंसराजजी बंबकी सुपत्नीसे सं. १९२७ में खेमचंदजी नामके पुत्र हुवे. इनका पिताका वियोग सं. १९४६ में हुवा. इनने विद्याभ्या

स कर संसार व्यवहार चलाया. सुभाग्योदय से सं. १९४१ का चातुर्मास तपस्वी राज श्री नंदरामजी महाराजका यहां होनेसे यह धर्म प्रेमी बन सामायिक प्रति क्रमणादि ज्ञानाभ्यास किया और नित्य नियमादि व्रत धारन किये. यथा शक्ति धर्म दीपाने लगे. यह भी भाइजी रतनचंदजी के साथ यहां हैदरावाद पधारेथे तब यहां के ज्ञान बृद्धि खाते में रु. १००) समर्पण कियेथे.

यों इन पांचो भाइयोने जो ज्ञान बृद्धिके कार्य में उदाराश्रय दे ऐसे अपूर्व ग्रन्थ ज्ञानका अमूल्य लाभ दिया है सो कार्य प्रशंसानिय और अनुकरणीय हैजी.

दक्षिण हैद्रावाद-चारकमान. ज्ञानबृद्धि इच्छक,

ता. २०-१-१५. सुखदेव सहाय ज्वाला प्रशाद.
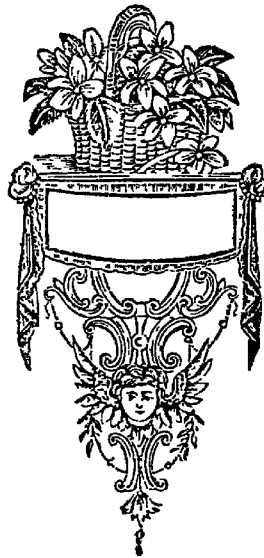
॥ श्री परमात्मायनमः ॥
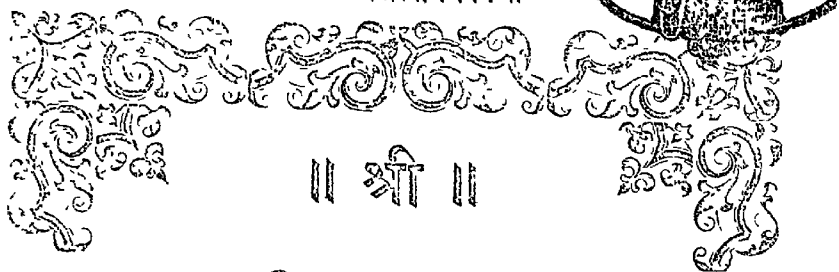
मुक्ति - सोपान.

अपर नाम

गुणस्थान रोहण-अढशितद्वारी

श्री मंगला चरणम्-गाथा

अह सुइअ सयल जग सिहर । मरुव निरुवम सहाव सिद्धि सुहं॥
अनियण मव्वाबाहं । ति-रयण सारं अणु हवंति तं वंदामि ॥१॥

अर्थ—इश्छितार्थ सिद्धि करनेके लिये मैं प्रथम श्री परमात्मा को नमस्कार करताहूं. वो परमात्मा कैसे हैं? तो कि-सर्वांश कर्मोका क्षय कर 'सुइअ'—अर्थात् परम शुचि—परम पवित्र हुवे हैं, जिससे 'सयल जग सिहर'—अर्थात् सकल जगत् में जो सुख है, उन सर्व सुखोंसे उत्कृष्ट-अधिक सुख प्राप्त किया है, वो परमात्माका सुख कैसा है? तो कि-'अरुज'—अर्थात् शरीरिक रोगादि और मानसिक चिन्तादि इत्यादि दुःखों से रहित है, क्योंकि-जहां शरीर और मन दोनों का अभाव है, वहां उन से प्राप्त होते हुवे दुःख होवेही कहां से? अर्थात्—नहीं होवे; इसलिये परमात्मा का सुख 'निरुवम'—अर्थात्—ओपमा रहित निरोपम है. क्यों कि— जिसका अनुभव (समझ) शरीर या मनसे होवे तो उसको किसीभी प्रकार के पदार्थिक सुखकी ओपमा देकर बता सकें; परन्तु ऐसा पदार्थ इस संसारमें कोइ हैही नहीं कि जिस की ओपमा दे सिद्ध परमात्माके सुखकी तुल्यना कर बतावें. क्योंकि—वो सिद्ध परमात्मा का सुख 'सहाव'—अर्थात् स्वभाव सेही उत्पन्न हुवा-स्वभाविक है, न कि—संसारिक सुखों के जैसे पर कृत्रिम होवे. इसलिये सिद्ध परमात्माके सुखकी ओपमा देकर बतावें ऐसा कोइ पदार्थ हैही नहीं. तो फिर वो सुख कैसा है? तो कि-'सिद्धि सुहं'-अर्थात् सिद्ध परमात्मा का सुख 'तिरयण सारं'—अर्थात् ज्ञान दर्शन औ-

र चारित्र इन तीनों सार पदार्थ रत्नों समान धर्मका प्राति पूर्ण पनें-यथातथ्य (जैसी तरहसे करना चाहिये वैसीही तरहसे) आराधना-पालना-स्पर्शना-अन्त तक करने से प्राप्त हुवा है. इसलिये उस सुख का 'अनियण'-अर्थात् कदापि नाश नहीं होता है-अन्त नहीं आता है-ऐसा अनन्त है. और 'मव्वावाह'-अर्थात् उस सुख में कदापि किसी प्रकार की किञ्चित मात्र ही व्याधी, विकल्पता मिश्रता या किञ्चित मात्र नुन्यता-कमी पना होताही नहीं है. ऐसे परम सुख को जो "अणु हवंति"-अर्थात् अनुभव लेते हैं-भोगवते हैं, उन सिद्ध परमात्मा को मेरा त्रि-करण त्रियोगकी विशुद्धि से वारम्वार वन्दना नमस्कार होवो!

❀ परि शिष्ट ❀

यह विश्व अनन्तान्त जीवों से प्राति पूर्ण भरा हुवा है, वे सब जीव गुणकी अपेक्षा से अनन्त प्रकार के हैं, जैसे-ज्ञानादि गुणों में सब से हीन गुण के धारक-और चैतन्यतादि लक्षणों में सब से हीन शक्ति के धारक सूक्ष्म निगोद के जीवों है उन जीवों में से कभी कोइ एक जीव एकार्ध अंश आधिक गुणकी वृद्धि होने से ऊंच दिशाको प्राप्त होता है, यों अन्त गुण पुण्याधिक होते सूक्ष्म निगोद से निकल बादर (बडे) निगोद मय शरीर को प्राप्त होता है, वहां भी अनन्त गुणाधिक पुण्य होने से प्रत्येक एकेन्द्रिय-पृथ्व्यादि स्थावर काय में आता है, यों अनुक्रम से अन्तान्त गुण पुण्याधिक होते बेन्द्रिय-तेन्द्रिय-चौरिन्द्रिय-असज्ञीय पचेन्द्रिय-सज्ञीय पचेन्द्रिय-नरक-देव मनुष्य-पर्याय तक प्राप्त करता है. यहां तक आकर कोइक जीव सर्व दुर्गुणों का सर्वांश नाश कर संपूर्ण गुण मय जब आत्मा बन जाता है तब सर्वज्ञतादि गुण प्रगट होते हैं, उस आत्मा को साकारी (शरीर धारक) परमात्मा कहते हैं. और कुछ काल सकार रहेबाद शरीरादि सर्व संयोगों का सर्वांश त्याग होते निजात्म के खास निज एकही स्वरूप मय जब आत्मा हो सिद्ध स्थान को प्राप्त करता है, उस आत्मा को परम परमात्मा कहा जाता है. वोही आत्मा मंगलाचरण में कथन किये मुजब अनोपम निरावाध परम सुखको अनुभव करता है, सुख भुक्तता है. और उपरोक्त कथन मुजब जो जीवों सहज स्वभाव से निपजते हुवे पुण्याधिकतासे आकर्षा कर सज्ञी पर्याय तक आये हैं ज्ञानादि गुण कुछ विशेषांस जिनकी आत्मा में प्रकाश हुवे हैं, वो-

जीवों श्री आचारांग सूत्र के प्रथमाध्याय के कथनानुसार 'सहसम्भी मइयाए' अर्थात् स्वानुभव (जाति स्मरणादि ज्ञान) से जानकर, या 'परवागरणाणं' अर्थात्–तत्वज्ञोंद्वारा श्रवण कर, 'अन्नेसिं अन्ति एवा सोचा' अर्थात्–किसी का सहज बचन श्रवणकर या ग्रन्थों में पठन कर इत्यादि सम्वन्ध से परमात्माके परम सुख के ज्ञाता–जानकार हुवे हैं, उन को परम सुख प्राप्त कर ने की जिज्ञाषा–अभिलाषा होवे यह स्वभाविक ही है. उनकी जिज्ञषा-इच्छा पूर्ण कर ने जो आत्मा सर्वज्ञ–सकार परमात्मा पद को प्राप्त हुवे हैं उनोने स्वानुभव द्वारा निश्चयात्म पूर्वक परम परमात्मा पद को प्राप्त कर ने के अन्तान्त गुणों को ज्ञान कर जाने हैं, परन्तु वचन द्वारा अनुक्रम से वागरने - समझाने और उन गुणों में जीवों को लगा कर मार्ग में प्रवर्ता कर परमपद प्राप्त करने जितना काल - समय निज पर का न होने से कार्य कों असाध्य जान परम कृपालु अर्हत - सर्वज्ञ देव ने मुमुक्षुओंपर अत्यंत करुणा दृष्टि कर परमात्म पद प्राप्ति के कार्य को सहज साध्य वना ने -स्वल्पज्ञों कों समझा ने उन परमात्मा पद प्राप्ति के अनंतानंत गुणों का समावेश कुछ स्वल्प (थोडी) संख्या में करना उचित समझा कि जिस से सर्व मुमुक्षुओं - परमात्म पद के इच्छकों सहज में समझें और परमात्म पद प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्ति कर परमात्म के परमं सुख के भुक्ता बनें. इस हेतु से उन अनंत गुणों का शिर्फ चउदह (१४) वातों मेंही समावेश कर दिया और उनका नाम 'चउदह गुणस्थान' या 'चउदह जीवस्थान' स्थापन किया. इतनी थोडी संख्या में होने से मुमुक्षुओं शीघ्र समज जावें परमात्म स्थान को प्राप्त कर ने, उत्साही वने, प्रयत्न शील हो पर्यास करें, और परमात्मा बन अनन्त सुख कों भुक्ते.

उन १४ गुणस्थान के नाम इस प्रकार हैंः—

मिच्छे सासण मिस्से । अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥
निअट्टि अनिअट्टि सुहुम । व सम खीण सजोगी अजोगी गुण ॥

अर्थ—"प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान"—जगत निवासी प्रायः सवी जीवों का मूलस्थान अनादि से यही है, कर्मों रुपी महा मेघ घटा से अच्छादित हुवा चैतन्य चंद्र मूर्छित - वे भान दिशा में पडा हुवा काल लब्धि परि पक्व होते-व्याधि वेदनादि सहने से - कुछ कर्मांश पतले पडने से - स्व स्वभाव से - भतव्य. ताके योग्य सहजही ऊंचा आता है - वो पुण्यांश की प्रवलता कर अज्ञान तपश्चरणादि के प्रभाव से इक्कीसवा स्वर्ग (नववी ग्रयवेक तक चले जाता है. इस स्थान में रही हुइ आत्मा इतने

ऊंचे दरजे को प्राप्त कर शकती है इसलिये इसे प्रथम गुण का स्थान - गुणस्थान कहा है.

२ 'सा स्वादन गुणस्थान'—मिथ्यात्व गुणस्थान कों छोड ऊंचा जाकर फिर वो आत्म कर्मों के धक्के से गिर कर-पडकर मिथ्य गुणस्थान को आता है परंतु मिथ्यात्वी नहीं बनता है वहां तक मिथ्यात्व से कुछ-उज्वल-अच्छाही होता है इसलिये इसे दूसरे दरजे के गुणस्थान में स्थापन किया है.

३ तीसरा " मिश्र गुणस्थान " इस स्थान कों प्राप्त हुवा जीव सत्य को और असत्य कों दोनों को एक रूप-एकसा जान ने लगता है, सद्गुणों दुर्गुणों की गडबड होजानेसे इसे मिश्र-मिश्रित कहा है. परन्तु प्रथम गुणस्थान वाला तो असत्य को सत्य, और सत्य को असत्य मानता था, और यह दोनों को एक सा जान ने लगा इतने गुणों की इस में अधिकता होने से इसे तीसरा दरजा मिला है.

४चौथा "आविराति-सम्यग दृष्टि गुणस्थान'-इस स्थानको प्राप्त हुवा जीव सम्यग् दृष्टि बन जाता है अर्थात् यह आत्म सत्य को सत्य और असत्य को असत्य यों यथातथ्य (जैसा होवे वैसाही) जान ने लगता है इस महान गुण की आधिकता होने से इसे चौथा दरजा मिला है. (परन्तु यह कर्मोदय की प्रबलता से कुछ व्रत नियम कर सकता नहीं हैं)

५ पांचवा 'देश विराति गुणस्थान' कों प्राप्त हुवा जीव सम्यग् दृष्टि युक्त कुछ देश से-थोडे व्रत-नियम धारण कर सक्ता है, सो श्रावक कहा जाता है. इस गुणकी अधिकता होने से इसे पांचवा दरजा मिला है.

६छठ्ठा 'प्रमत संयाति गुणस्थान'-इस गुणस्थानको प्राप्त हुवा जीव सर्व विरातिसंयति-साधु होता है. इस गुण की अधिकता होने से इसे छट्टा दरजा मिला है. (परंतु यह प्रमादी आलसी होता है जिस से सर्व विरति पन में बहुधा अनेक प्रकार के सूक्ष्म वादर (छोटे बडे) दोष लगते हैं उनका सुधारा भी करते हैं)

७ सातवा 'अप्रमत संयति गुणस्थान' इस स्थान में आया हुवा जीव सर्वथा आलस-प्रमाद का त्याग कर-अत्मोन्नति कार्य में तत्पर-उद्यमी रहता है इस गुण की अधिकता होने से इसे सातवा दरजा दिया गयाहै. (परंतु यहां विषय कषाय की किञ्चित प्रणति रहती है.)

८ आठवा-"नियट्टि बादर गुणस्थान"-इस स्थान में आया हुवा जीव बादर प्र

त्यक्ष में देखाती हुइ विषय कषाय से निवृत्ति पाता है, इस गुण की अधिकता-होनेसइे से आठवा दरजा दियागया है.

९ नववा "अनयट्टी वादर गुणस्थान"-इस स्थान में आया आत्मा सूक्ष्म वादर सर्व विषयों से और तीनांश कषाय से निवृताता है, इस गुणकी अधिकता होनेसे इसे नववा दरजा मिला है.

१० दशवा-"सूक्ष्म संपराय गुणस्थान" इस स्थान को प्राप्त हुवा आत्मा सूक्ष्म किञ्चित लोभके सिवाय सर्वथा विषय कषाय से निवृतता, है इस गुणकी अधिकताहोनेसे इसे दशवा दरजा दियागया है.

११इग्यारवा-"उपशांत मोह गुणस्थान"-इस स्थानमें आने वाद सूक्ष्म लोभरूप शल्य रहाथा सो भी सर्वथा दवजाता है-वीतराग अवस्था को प्राप्त होताहै, इस गुण की आधिकता होनेसे इसे इग्यारवा दरजा दियाहै (इसने मोह-कषाय को दबाया है, पन्रतु क्षय नहीं किया है जिससे पडवाइ होता है.)

१२ वारवा-"क्षीणमोह गुणस्थान"-इस गुनस्थान में आया हुवा आत्मा सर्वथा मोह-कपायका जड मूलसे नाश करता है. यह पीछा पडता नहीं है, इस गुणकी अधिकता होनेसे इसे वारवा दरजा दिया गया है.

१३तेरवा"सयोगी केवली गुणस्थान"-इस स्थान को प्राप्त होनेसे आत्मा सर्वज्ञ सर्व दर्शी साकारी परमात्मा वन जाताहै इस गुणकी अधिकात होनेसे इसे तेरवा दरजा दिया गया है.

१४ चउदवा 'अयोगी केवली गुणस्थान'—इस गुणस्थान को प्राप्त हुवे वाद आत्म परम परमात्मा वनजाता है-सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, यहां सर्व गुणों संपन्न होने से-फिर कोइ भी कार्य वाकी नहीं रहने से इसे अन्तिम-सर्व से ऊंचा चउदवा दरजा दिया गया है.

मुमुक्षुओं? ऊपरोक्त चउदह वातों का जरा दीर्घ दृष्टि से ख्याल कीजिये कि महान तत्ववेता सर्वज्ञ परमात्माने अपने ऊपर कैसा जवर प्रशाद किया है अति गुढ-गहन विषय को कैसा सुलभ सहज कर समझाया है, इस में अल्पज्ञभी तुर्त समझजाय और ऐसा सहज काम जान इस में प्रवर्त ने उत्सुक वनें!

परन्तु मुझे यहां संशय होता हैकि-ऊपरोक्त चउदह गुणस्थान का ऐसे खुल्ले-सहज अर्थ को पढकर कदाचित कोइ स्वल्पज्ञ विचार करेंगे कि अहो इसमें क्या, यह

तो सहज वातों हैं, इन में अनंतानंत गुणों का समावेश कैसे होता है! यह बात कैसे मानी जाय? वगैरे उन जीवों को यह भाव सद्स्वरूप दर्शाने. वा मुमुक्षुओं को इन १४ वातों के अंदर रहा हुवा अत्यंत गुढ रहस्य को बताकर-हेय-त्याग ने योग्य, ज्ञे-य-जान ने योग्य और उपादेय-आदर ने योग्य कृतव्यों में मायण बना ने, उन अ-नंत गुणोंमें से जो कुछ शास्त्र ग्रंथों में कथा गया है. उसमेंसे भी जोकुछ किंचित हिस्सा मेरे जानने में पढने में और उसमें का कुछ हिस्सा अनुभवने में आया है, उस में से जितना द्रव्यादि की अनुकूलता के अनुसार दर्शानेकी मेरे में शक्ति है और भविष्य है उतनासा विभाग श्री जिन मणित मूल शास्त्रों आचार्यों रचित ग्रंथों वा धारी मुनि आदिके अनुसार खुलासे वार दर्शानेके लिये यह "गुणस्थाना रोह-ण अढी शतद्वारी" नामक ग्रंथद्वारा मसिद्ध करने मयत्न होता हूं!

इस ग्रंथ के मुख्य दो काण्ड (विभाग) किये हैं:—जिसमे से मथम अर्थका-ण्ड में तो ऊपरोक्त १४ गुणस्थान पर २५२ द्वारों (वावतों) को - १ मुल खण्ड, २ कर्मारोहण खण्ड, ३ संसारारोहण खण्ड, और ४ धर्मारोहण खण्ड, इन चारों खण्डों में वाट कर उनके अर्थ संक्षेपमें दर्शा खुलास कर किया है, और दूसरे मूल काण्ड में उन २५२ द्वारों को चारों खण्डों में विविक्षित कर चउदेही गुण स्थानों पर अलग २ उतारे हैं. इसमें भी जो विशेष जानने योग्य वातों हैं उन्हे उसी पृष्ट के नीचें टीप में दाखल की गइ हैं. यों इस गहन ग्रंथ के विषयों का स्पष्टि कारण कर सर्वके समझमें आवे और इष्टार्थ सिद्ध होसके ऐसा बनानेमें मैंने मथा शक्ति मयत्न किया है. में जानता हूं कि इसे लिखते जैसा ज्ञानानन्द मेरी आत्मा में हुवा है वैसाही ज्ञानानन्द पाठको को भी पठन व मनन करने में हुवा चाहिये!

मुमुक्षु—अमोल ऋषि.

* प्रवेशीका *

इस ग्रन्थका नाम "मुक्ति सोपान" रक्खा गया है अर्थात् श्री तीर्थंकर महाराज मोक्ष में गमन करने-जाने के चौदह सोपान (पंक्तिये) फरमाये हैं उन चउदेही पंक्तियों का स्वरुप इसमे समझाया गया है. और इसका अपर (दूसरा) नाम "गुणस्थाना रोहण-अढीशत द्वारी" रक्खा गया है अर्थात् उन चउदेही गुणस्थान (गुणवृद्धि के मंजिलों) में जीवों कैसी तरह से आरोहण करते (चडते) हैं. जिसका विगत वार खुलासे के साथ कथन किया गयाहै. इसलिये दोनोंही नाम यथार्थ कहीये गुणनिष्पन्न-सच्चेहैं.

इस ग्रन्थके दो काण्ड (विभाग) किये गये हैं, जिसमे प्रथम अर्थ काण्ड है क्योंकि हरेएक पदार्थ का मतलव समझ में आनेसे उसका यथार्थ ज्ञानानुभव आत्मा में होता है, और उससे उस ज्ञानमें ज्ञानी आत्म तल्लीन वना रसायण-उत्पन्न करसकते हैं; इसलिये प्रथम अर्थ काण्डमें २५२ ही द्वारों का अलग २ (भिन्न २) खुलासा से अर्थ समझाया गयाहै. और दूसरा मूल काण्ड है जिसमें उस अर्थ काण्ड में दर्शाये २५२ द्वार चउदेही गुणस्थानों पर अलग २ ऊतारे गये हैं.

इस ग्रन्थ के दोनों त्रिभागों चार खण्ड द्वारा २५२ द्वारों चिविक्षित कियेगये हैं जिसमें से प्रथम मूल द्वारारोहण खण्ड है, जिसमें मूल चउदही गुणस्थानो का (अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा विना) स्वरुप समझाया है. जिसेके ३३ द्वारहैं. दूसरे कर्म द्वारा रोहण खण्डमें आठो कर्मों और १४८ प्रकृत्तियों वगैरा भिन्न२ कर चउदेही गुणस्थान पर उतार कर समझाया है, जिसके ७ प्रकरण के १३७ द्वारों हैं. तीसरे संसारारोहण खण्ड में संसारी जीवों में मिलते हुवे अनेक वावतों को चउदेही गुणस्थानों पर उतार समझा या गयाहै, जिसके ४१ द्वारों हैं. और चौथा धर्मारोहण खण्ड में धर्मात्मा में मिलते हुवे अनेक वावतों को उतार के समझाया है, जिसके भी ४१ द्वारों हैं. यों चारों खण्ड के मिलकर सव २५२ द्वारों हैं. जिसका श्वरुप आगे गाथा द्वारा वताते हैं:—

सिरि जिणेसर वन्दामि । भणामि गुणठाणारोहण अढीसत दारी॥
चउदह गुणठाणस्स । चउ खण्ड दुव्वे सरवन्धाओ ॥१॥

अर्थ-प्रथम श्री जिनेश्वर भगवंत को नमस्कार कर के "गुण स्थानारोहण अ-

ढीशतद्वारी" नामक ग्रंथ को दो काण्ड और चारों खंड के २५२ द्वारो कर कहता हुं सो दत्त चित्त से पठन कर मोक्षानु गामी बानिये.

गाथा—नामऽत्थ पणवागरणा । पव्वेसा लक्खण दिठन्त ॥
गुण अवघेण दव्व । लद्ध खय खेत्त खेत्त पम्माण ॥२॥
ठीइ काल भाव गुण - सया मग्ग चउ अवरोह गइ दिठन्ते।
अन्तर विरह फासा - तीओ पढम सासय गमण भव अप्पा बहु॥३॥

अर्थ—प्रथम मूल खंड के ३३ द्वारों के 'नाम' कहताहूं -प्रथम नाम द्वार 'ऽत्थ' केहतां दूसरा अर्थ द्वार, 'पण वागरणा'-कहतां तीसरा प्रश्नोत्तर द्वार, 'पव्वेसा' कहतां-चौथा प्रवेश द्वार, 'लक्खण' कहतां पांचवा लक्षणद्वार, 'दिठन्त' कहतां छट्ठा दृष्टांत द्वार. 'गुण' क० सातवा गुणद्वार, 'अवघेणा' क०-आठवा अवघेणा द्वार, 'दव्व' क० नववा द्रव्य (जीव) प्रमाण द्वार, लद्ध' क० दशवा द्रव्य पावती द्वार 'खय' क० इग्यारवा जीव खपती द्वार, 'खेत्त' क० बारवा क्षेत्र परिमाण द्वार, 'खेत्र पसणा' क० तेहरवा क्षेत्र स्पर्शाना द्वार, 'ठीइ' क० चउदवा स्थिती द्वार, 'काल' क० पंदरव काल प्राप्त द्वार, 'भाव' क० सोलवा-भाव परिमाण द्वार, 'गुणसया' क० सत्तरवा-निरंतर गुण द्वार, 'मग्गचउ' क० मार्गणा के चार द्वारः—अठारवा-मार्गणा द्वार, उन्नीसवा उपमार्गणा द्वार, बीसवा-परस्पर मार्गणा द्वार, 'इक्कीसवा'-परस्पर उपमार्गणा द्वार. अवरोह' क० बावीसवा-उवरोह अवरोह द्वार 'गइ दिठंत' क० तेवीसवा-गतिदृष्टांत द्वार, 'अंतर' क. चौबीसवा-अंतर द्वार, 'विरह' क. पचीवा-विरह द्वार, 'फासतीओ' क० स्पर्शना के तीन द्वारः--छव्वीसवा एक-भव आश्रिय स्पर्शना द्वार, सत्तीबीसवा - बहुत भव आश्रिय स्पर्शना द्वार, अट्ठावीसवा-परस्पर स्पर्शना द्वार, 'पढम' क. उन्नतीसवा प्रथमा प्रथम द्वार, 'सासय' क. तीसवा शाश्वता शाश्वत द्वार 'गमण' क. इकतीसवा पर भव गमन द्वार. 'भव' क. बत्तीसवा भव संख्या द्वार, और 'अप्पाबहु' कहतां-तेंतीसवा अल्पा बहुत द्वार.

गाथा—किरिया कारण हेउ-पंच चउबन्ध नव कम्म बन्ध ओ ॥
ध्रुव चउ घाइ छक्क, पुण्ण पाव दुग्ग परावत्त चउ ॥४॥
भूयकार अप्प अवट्ठि दुग्ग अवक बन्ध विछह दुग्गे ॥
कम्मोदय नव ओ, धुव्व चउ पुण्ण पाव दुग्गे ओ ॥५॥

विवाग अट्ठघाइ - छक - उदय विच्छ हो दुग्गे ॥
उदीरणा दह विच्छोहदु,धुव्वचउ सत्तानव घाइ छक विच्छोह दुग्गे।६
भङ्ग नव बन्ध इरिया । भावट्ठ सेणी वेए निज्जरा ॥
करण गुण सेणीओ । कम्म सत्त भाग ती सत्त सतद्दारा॥७॥

अर्थ-कम्म सत्त भाग तीअठ सत्तद्दारा' कहतां-दूसरा कर्मारोहण खंड के सातों प्रकरण के मिल १३७ द्वारः—(१) कर्मोत्पत्ति प्रकरण के ७ द्वारः—'किरिया' कहतां प्रथम-किरिया द्वार, 'कारण' क० दूसरा मूलहेतु (कारण) द्वार, 'हेउपंच' क०हेतुके पांच द्वारः-तीसरा-मिथ्यात्व हेतु द्वार, चौथा अविरत हेतु द्वार, पांचवा कषाय हेतु द्वार, छठा-जोग हेतु द्वार, सातवा-समुचय हेतु द्वार. (२) कर्म बंध प्रकरण के ३८ द्वारः—'चउ बंध' क० प्रथम चार बंध द्वारः- "नव कम्म बंध ओ" क० कर्म बंध के ९ द्वारः - दूसरा-समुचय कर्म बंध द्वार, तीसरा-ज्ञानावरणीय कर्मबंध द्वार-चौथा दर्शनावरणीय कर्मबंध द्वार, पांचवा वेदनीय कर्मबंध द्वार, छठा-मोहनीय कर्म बंध द्वार, सातवा आयु कर्मबंध द्वार, आठवा नाम कर्मबंध द्वार, नवमा-गोत्र कर्म बंध द्वार, दशवा अंतराय कर्म बंध द्वार. 'धुव्व चउकं" ध्रुव बंध के चार द्वार,ः-इग्यारवा-ध्रुवकर्म बंध द्वार, बारवा-ध्रुव कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, तेरवा-अध्रुव कर्म बंध द्वार, चउदवा-अध्रुव कर्म प्रकृति बंध द्वार, 'घाइ छक' क० घातिक कर्म के छे द्वारः- पंदरवा-सर्व घातिक कर्म बंध द्वार, सोलवा-सर्व घातिक कर्म प्रकृति बंध द्वार, सतरवा देश घातिक कर्म बंध द्वार, अठारवा-देश घातिक कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, उन्नीसवा-अघातिक कर्म बंध द्वार. 'पुण्य पाव दुग्गे' क० पुण्यके दो और पापके दो द्वार-इक्कीसवा-पुण्य कर्म बंध द्वार, बावीसवा-पुण्य कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, तेवीसवा-पाप कर्म बंध द्वार, चौवीसवा-पाप कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार. 'परावत्त चउ' क० परावर्त मान कर्म बंध के चार द्वारः—पचीसवा-परावर्त मान कर्म बंध द्वार, छब्बीसवा-परावर्तमान कर्म प्रकृति बंध द्वार, सत्तावीसवा-अपरावर्त मान कर्म बंध द्वार, अठावीसवा-अपरावर्तमान कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार. "भुयकार अप्प अवठी दुग्गे" क.भुयस्कार के दो, अल्पतरके दो, और अवस्थित के दो यों छे द्वारः—उन्नतीसवा-भुयस्कार कर्म बंध द्वार, तीसवा-भुयस्कार कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, इकतीसवा - अल्पतर कर्म बंध द्वार, बत्तीसवा अल्पतर कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, तेंतीसवा अवस्थित कर्मबंध द्वार, चौतीसवा-अवस्थि-

त कर्म प्रकृत्ति बंध द्वार, पेंतीसवा अव्यक्त कर्म बंध द्वार. 'बन्ध' क० छत्तीसवा-समुचय कर्म बंध द्वार, 'विच्छोह दुगे' क० विच्छोहके दो द्वारः-सेंतीसवा कर्म बंध विच्छेद द्वार, अडतीसवा कर्म प्रकृत्ति बंध विच्छेद द्वार. (३) कर्मोदय प्रकरण के ३६ द्वार "कम्मोदय नव" क० कर्मोदय के ९ द्वारः-प्रथम-मूळ कर्मोदय द्वार, दूसरा-ज्ञानावरणीय कर्मोदय द्वार, तीसरा-दर्शनावरणीय कर्मोदय द्वार, चौथा-वेदनीय कर्मोदय द्वार, पांचवा-मोहनीय कर्मोदय द्वार, छठा-आयु कर्मोदय द्वार, सातवा- नाम कर्मोदय द्वार, आठवा-गोत्र कर्मोदय द्वार, नववा अंतराय कर्मोदय द्वार. 'ध्रुव चउ' क० ध्रुव कर्मोदय के चार द्वार :—दशवा-ध्रुव कर्मोदय द्वार, इग्यारवा ध्रुव कर्म प्रकृत्तियोदय द्वार, बारवा-अध्रुव कर्मोदय द्वार, तेरवा-अध्रुव कर्म प्रकृतियोदय द्वार, "पुण्ण पाव-चउ" क० पुण्यके दो और पापके दो यों चार द्वार-चउदवा-पुण्य - कर्मोदय द्वार, पंदरवा-पुण्य कर्म प्रकृत्तियोदय द्वार. सोलवा-पाप कर्मोदय द्वार, सत्तरवा- पाप कर्म प्रकृत्तियोदय द्वार. 'चउ विवाग अट्ठ' क० चार विपाको के ८ द्वार :—अठारवा-क्षेत्र विपाक कर्मोदय द्वार, उन्नीसवा-क्षेत्र विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, वीसवा भव विपाक कर्मोदय द्वार, इक्कीसवा भव विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, बावीसवा जीव विपाक कर्मोदय द्वार, तेवीसवा - जीव विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, चौवीसवा-पुद्गल विपाक कर्मोदय द्वार, पचीसवा - पुद्गल विपाक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, 'घाइ छक्क' क० घातिक कर्मोदय के ६ द्वारः-छव्वीसवा-सर्व घातिक कर्मोदय द्वार, सत्तावीसवा-सर्व घातिक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, अट्ठावीसवा - देश घातिक कर्मोदय द्वार, उन्नतीसवा-देश घातिक कर्म प्रकृत्तियोदय द्वार, तीसवा - अघातिक कर्मोदय द्वार, इकतीसवा-अघातिक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, 'उदय' क० बत्तीसवा- समुचय कर्म प्रकृतियोदय द्वार. 'विछोह दुगे'-कर्मोदय विच्छेद के दो द्वार :—तेंतीसवा-कर्मोदय विच्छेद द्वार, चौंतीसवा-कर्म प्रकृतियोदय विच्छेद द्वार. (४) कर्म ऊदीराणा प्रकरण के १२ द्वार :— 'ऊदीरणा दश' क० कर्मोकी ऊदीरणा के १० द्वारः— प्रथम-समुचय कर्मोदीरणा द्वार, दूसरा - ज्ञानावरणीय कर्म ऊदीरण द्वार, तीसरा-दर्शना वरणीय कर्म उदीरणा द्वार, चौथा-वेदनीय कर्म ऊदीरणा द्वार, पांचवा - मोहनीय कर्म ऊदीरणा द्वार, छठा-आयु कर्म ऊदीरणा द्वार, सातवा-नाम कर्म ऊदीरणा द्वार, आठवा-गोत्र कर्म उदीरणा द्वार, नव्वा-अंतराय कर्म उदीरणा द्वार, दशवा - समुचय कर्म प्रकृति उदीरणा द्वार. "विच्छोह दुगे" क० व्यच्छेद के दो द्वारः-इग्यारवा-कर्म

उदीरणा व्यच्छेद द्वार, बारवा-कर्म प्रकृति उदीरणा व्यच्छेद द्वार. (५) कर्म सत्ता प्रकरण के २२ द्वारः—'सत्तानव' क.कर्म सत्ता प्रकरण के ९ द्वारः— पहिला समुच्चय कर्म सत्ताद्वार, दूसरा–ज्ञानावरणीय कर्म सत्ताद्वार, तीसरा-दर्श-नावरणीय कर्म सत्ताद्वार, चौथा-वेदनीय कर्म सत्ताद्वार, पांचवा - मोहनीय कर्म सत्त-द्वार छठा-आयु कर्म सत्ताद्वार, सातवा-नाम कर्म सत्ताद्वार, आठवा-गोत्र कर्म स-त्ताद्वार, नवमा अंतराय कर्म सत्ताद्वार, 'धुव्वचउ' क. ध्रुव कर्म सत्ताके ४ द्वारः-दशवा ध्रुव कर्म सत्ताद्वार, इग्यारवा-ध्रुव कर्म प्रकृत्ति सत्ता द्वार, बारवा अध्रुव कर्म सत्ता द्वार, तेरवा अध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता द्वार "घाइ छक्कं" क० घातिक कर्म प्रकृति सत्ता के ६ द्वार : चउदवा सर्व घातिक कर्म प्रकृत्ति सत्ता द्वार, पंदरवा - सर्व घातिक कर्म प्रकृत्ति सत्ताद्वार, अठारवा-अघातिक कर्म सत्ताद्वार, उन्नीसवा - अघातिक कर्म प्रकृत्ति सत्ताद्वार, 'सत्त' क० वीसवा - समुचय कर्म प्रकृत्ति सत्ताद्वार, "विच्छोह दुग्गे" क० कर्म सत्ता विच्छेद के दो द्वार :—इक्कीसवा - कर्म सत्त विच्छेद द्वार, बा-वीसवा-कर्म प्रकृत्ति सत्ता विच्छेद द्वार, (६) कर्म भग प्रकरण के ११ द्वार :— "भंग नव" कर्मो के भांगेके ९ द्वार-पाहिला - समुचय कर्म भंग द्वार, दूसरा-ज्ञानावर-णीय कर्म भंग द्वार, तीसरा दर्शनावरणीय कर्म भंग द्वार, चौथा वेदनीय कर्म भंग द्वार पांचवा मोहनीय कर्म भंग द्वार, छठा आयु कर्म भंग द्वार सातवा नाम कर्म भंग द्वार, आठवा गोत्र कर्म द्वार, नववा अंतराय कर्म भंग द्वार, 'बंधि' क० दशवा बंधी भंग द्वार, 'इरिया' क० इग्यारवा इर्यावही भंग द्वार. (७) भावादि प्र करण के १३ द्वारः—'भवठ'-भाव के ८ द्वार :–पहिला-मूल भावद्वार, दूसरा उदय भाव द्वार, तीसरा उपशम भावद्वार, चौथा क्षयोपशम भाव द्वार, पांचवा - क्षायिक भाव द्वार, छठा पारिणामिक भाव द्वार, सातवा सन्नीपातिक भाव द्वार, 'श्रेणी- क० आठवा श्रेणीद्वार, 'वेद' क० नववा कर्म वेदे द्वार, 'निज्जरा' दशवा कर्म नि र्जरा द्वार. 'करण' क० इग्यारवा दश करण द्वार. 'गुणसेणीं' क०—बारवा गुण श्रेणी द्वार. यह सब कर्मारोहण खण्डके १३७ द्वार हुवे.

गाथा—गइ जाइ काय दण्डग । त्तित्तिओ जीव दुय योनी कुलओ॥
सुहुम तस्स सन्नी । भासग आहारत्तिय पयाय दुग्गे ॥८॥
पाण इन्द्रियदु सन्ना । वेए कसाय लेसा योग सरिर ॥

संघयण संठाण मच्चु । विग्गह सग्ग दव्व संसार दारा ॥९॥

अर्थ—तीसरा-संसारारोहण खण्ड के ४१ द्वारः-'गइ जाइ काय दण्डग तित्तिओ' कहतां-गति जाति काया और दंडक इन चारों के तीन तीन द्वार होनेसे १ २ द्वार होते हैं:—प्रथम-आगति द्वार, दूसरा-पागति द्वार, तीसरा—जागति द्वार, चौथा आजाति द्वार, पांचवा-पाजाति द्वार, छठा - जाजाति द्वार, सातवा- आकाया द्वार, आठवा-पाकायाद्वार, नववा-जाकायाद्वार, दशवा-आदण्डकद्वार, इग्यारवा-पादंडकद्वार, बारवा-जादंडक द्वार, 'जीव दुग्गे'—जीवके दो द्वारः—तेरवा-सामान्य जीवके भेद द्वार, चउदवा-विशेष जीवभेद द्वार, पंदरवा-योनी' क० जीवा योनी द्वार; सोलवा कुल क्रोडी द्वार; 'सुहुम' क० सत्तरवा - सूक्ष्म बादर द्वार; 'तस्स' क० अठारवा-त्रस स्थावर द्वार; 'सन्ती' क० उन्नीसवा-सन्नी असन्नीद्वार; 'भासग'-बीसवा-भाषक अभाषक द्वार, 'आहार चउ' - आहारकके चारद्वारः- एक्कीसवा-आहारक अनाहारक द्वार; बावीसवा-ओजादि आहार द्वार; तेवीसवा-सचित्तादि आहारद्वार; चौवीसवा-दिशी आहार द्वार; 'पयाय दुग्ग'—पर्या के दो द्वारः—पचीसवा- पर्या द्वार; छब्बीसवा पर्याप्ता अपर्याप्ता द्वार. 'पाण' क०—सत्तावीसवा-प्राणद्वार' 'इन्दिय दुग्गे' इंदियके दो द्वार; अठावीसवा-इंद्रियद्वार, उन्नतीसवा-इंद्रिय विष द्वार. 'सन्ना' क० तीसवा-सन्नाद्वार, 'वेए' के० इकतीसवा-वेदद्वार, 'कषाय' क० बत्तीसवा-कषायद्वार. 'लेसा' क० तेंतीसवा - लेशाद्वार, 'योग' चौतीसवा – योग द्वार, 'सरीर' क० पेंतीसवा—शरीर द्वार, 'संघयण' क० छत्तीसवा-संघयणद्वार, 'संठाण' क० सेंतीसवा-संस्थान द्वार, 'मच्चु' क० अडतीसवा-समोयासमोय मरण द्वार, 'गइ' क० उन्नचालीसवा-विग्रहगति द्वार, 'सग्ग' क० चालीसवा-स्वर्ग की मर्यादा द्वार, और 'दव्व' एक चालीसवा-षटद्रव्य द्वार.

गाथा-उवओग पंच दिट्ठी । भव चरम परित पयवी आया ॥
ज्ञाण पाये दव्व । परिणाम वीय तित्थ समत्त संजाय ॥१०॥
लिङ्ग चरित नियंठा । कप्प परिस्सह पम्माय रागीय ॥
पडित छउम समुठघाए । देव परिणामी करण निव्वात्ति ॥११॥
आसव संवर निज्जरादु । फल तित्थ गोय तित्थ पासे ।

मोक्खस कारण ओ। ए एक चालीस धम्मदारा ॥१२॥

अर्थ-धर्मारोहण खण्डके ४१ द्वार :—'उवओग पंच' क० उपयोग के पांच द्वारः—प्रथम-मूल उपयोग द्वार, दुसरा-अज्ञान द्वार, तीसरा-ज्ञान द्वार, चौथा-दर्शन द्वार, पांचवा-समुचय उपयोग द्वार, दिंठी' क० छट्टा दृष्टिद्वार, 'भव' क० सातवा भव्याभव्य द्वार 'चरम' क० आठवा-चरमाचरम द्वार, 'परीत' क० नववा-परितापरित द्वार, 'पयवी' क० दशवा-पदवीद्वार, 'आया' क० इग्यारवा-आत्मा द्वार' झाण' क० बारवा-ध्यान द्वार, पाय क० तेरवा-ध्यान के पाये द्वार 'दव्व' क० चउदवा-षट द्रव्य द्वार, 'परिणाम' क० पंदरवा-परिणाम द्वार, 'वीय' क० सोलवा वीर्य द्वार, 'तित्थ' क० सत्तरवा-तीर्थातीर्थ द्वार, 'समत्त' क० अठारवा-सम्यक्त्वद्वार, 'सयय' क० उन्नीसवा-संयता संयति द्वार, 'लिंग) क० वीसवा-लिंगद्वार, 'चारित्त' क० इक्कीसवा-चरित्र द्वार, 'नियंठे' क० बावीसवा - नियंठा द्वार, 'कल्प' क० तेवीसवा-कल्पद्वार, 'परिसह क० चौवीसवा-परिसह द्वार, पम्माय' क० पच्चीसवा-प्रमाद द्वार, 'रागी' क० छब्बिसिवा-सरागी वीतरागी द्वार, पडित', क. सत्तावीसवा-पडवाइ अपडवाइ द्वार 'छउम' क० अठावीसवा-छद्मस्त वीतरागी द्वार० 'समुधा' क० उन्नतीसवा-समुद घात द्वार, 'देव' क० तीसवा-पांच देव द्वार. 'परिणामी' क० इकतीसवा-परिणामद्विार, 'करण' क० बत्तीसवा-करण द्वार, 'निवत्ती' क० तेंतीसवा-निवृत्ति द्वार, 'आसव' कहतां चोतीसवा-आश्रव द्वार, 'संवर' क० पेंतीसवा-संवर द्वार, 'निज्जरादु' क० निज्जरा के दो द्वारः—छत्तीसवा-निर्ज्जरा द्वार सेंतीसवा-निर्जरा भेदद्वार, 'फल' क० अडतीसवा फल द्वार, 'तित्थगोय' क० उन्नचालीसवा-तीर्थंकर गोत्र बन्ध द्वार, 'तित्थ फास' चालीसवा- तीर्थंकर स्पर्शना द्वार. और 'मोक्ख' कहतां इकतालीसवा-मोक्ष द्वार.

गाथा—इमाओ चउ खण्डे। सव्वे दारा भवन्ति अढीसत ॥

चउदहस्स गुणठाणे। मूल मूल अत्थ अत्थओ ॥११॥

अर्थ—ऐसी तरह से चारों खण्ड में सर्व २५२ द्वारों की रचना कर इसका मूल मतलब तो मूल काण्ड में चउदेही गुणस्थानोपर बतलाया है. और उसका विस्तार के साथ अर्थका खुलासा समझाने अर्थ कान्ड किया गया है.

—❀—❀—❀—❀—❀—

"श्री गुणस्थाना रोहण अढीशतद्वारी"

प्रथम-"अर्थ काण्ड."

प्रथम-खण्ड-"मूलद्वारारोहण का अर्थ"

प्रथम नाम द्वारका-अर्थ.

इस सम्पूर्ण विश्वालय में रूपी अरूपी द्रव्य मय सचेतन अचेतन अनन्त पदार्थ गुण और पर्याय कर के अनेक भाव में परिणमते हैं. उन सर्वोंकी पहिचान नाम सज्ञा सेही होती है. इसलिये प्रथम नाम द्वार कहा, और उस में अनुक्रम से गुणों की बुद्धि होते जीवों चडते हैं जिनके चौदह मुख्य भेद कर अनुक्रमसे १४ ही गुणस्थानोंके नाम और अपर नाम बताये हैं.

२ दुसरा—अर्थद्वार का अर्थ.

नाम ३ प्रकार के होते हैं:—(१) यथार्थ नाम (२) अयथार्थ नाम और (३) अर्थ शुन्य नाम. (१) जो गुण निष्पन्न नाम होवे, अर्थात् जैसा जिस पदार्थका नाम होवे वैसाही उसमें गुण पाता होवे - जैसे जीवका नाम - तीनों ही काल में अमर होनेसे-जीवता रहने से जीव कहते हैं. चैतन्यता युक्त होनेसे चेत्यन्य कहते हैं, द्रव्य प्राण और भाव प्राणका धारक होने से प्राणी कहा जाता है. इत्यादि नाम रक्खें सो यथार्थ नाम. (२) जिस वस्तु का जैसा नाम होवे वैसा उस में गुण नहीं पावे. जैसे जिवका नाम धूला, कचरा, हीरा, मोती इत्यादि रक्खे सो अयथार्थ नाम.

(३)जिसका कुछ अर्थ नहीं होवे जैसे-हँस ने का अवाज,छींकनेका शब्द,वाजिंत्र काअवाज इत्यादिअर्थ शुन्य नाम.इन तीनों प्रकार के नामों में से यथार्थ नामही प्रमाण भूत सर्व मान्य होता है. सोही चतुर्दश गुणस्थान के जो प्रथम द्वार में नाम कहे सो यथार्थ नाम हैं. अर्थात् जैसा जिनोंका नाम है वैसेही उनोंमें गुण पाते हैं सो दूसरे द्वार में बताया हैं.

३—तीसरा-प्रश्नोत्तर द्वारका अर्थ.

किसी वस्तु के नाम के अर्थ दो तरह के होते हैं:— १ व्यवहारिक सो लोक रूढी प्रमाणें, और २ निश्चयिक सो परमार्थिकः—व्यवहरिक से आधिक माननिय निश्चयिक नामार्थ होता है. इसलिये १४ ही गुणस्थानों के निश्चयिक नाम हैं. इन का व्यवहारिक रीति से कोइ उलट अर्थ भाष होवैतो उसका निर्णय तीसरे प्रश्नोत्तर द्वार में किया गया है.

४—चौथा-प्रवेश द्वार का अर्थ.

ऐसे जो गुणों के भंडर रूप जो शुभस्थान है, उन में प्रवेश कर ने गुणज्ञ और गुण वृद्धिक जरूर ही इच्छेगे. उनकी इच्छानुसार कार्य सिद्ध कर ने की रीति-अर्थात् उन गुणस्थानों में प्रवेश करनेका उपाव चौथे प्रवेश द्वार में कहा है.

इस द्वार का सम्पूर्ण खुलासा वार स्वरूप समजाने के लिये उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी दोनों श्रेणीयों का स्वरूप समजाने की वहूतही आ श्यकता है. इस लिये 'सप्ततिका नामक षष्टम् कर्म ग्रंथानुसार जरा विस्तार से दोनों श्रेणीयोंका स्वरूप यहां दर्शाया जाता है:—

"उपयोगो लक्षणम्"—इस तत्वार्थ सूत्र के फरमान मुझब जीवका जो निज खास लक्षण-गुण है सो "उपयोग" है, अर्थात् अनादि काल से आत्मा ज्ञान दर्शन रूप सत् लक्षणों की धारक है. परंतु यह दोनोंही गुणों अनादि से अपने स्वभाव से कर्मों कर अच्छादित हो रहे हैं ढका रहे हैं. जिस के योग से यह आत्मा भ्रमित हुवा निगोद तिर्यंच नरक देव और मनुष्यों की गति मेंनाना प्रकार का रूप धारण कर—बंध—निकाचित—उदय तथा निर्जरा की सत्ता रख ने वाले पुन्य पाप के फळों-का अनेक प्रकार से अनुभव लेता, वो ऊपरोक्त ज्ञान दर्शन रूप उपयोगों के स्वभावसे

उन उन परिणाम अध्यवसाय तथा अन्य २ स्थानादि को प्राप्त होता अनादि काल से मिथ्यात्वी होने पर भी परिणाम विशेष (कर्मोका परिपकता से भाव विशेष) जिस से अपूर्व करणादि ऐसा होता है कि जिसके द्वारा स्वयं आत्माही सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन रूप निजात्म गुणों को उन कर्मों पटलों को अलग कर प्रगट करसकता है,सो कैसे कर सकता है? इस बात का खुलासा उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणीगत जीवों का स्वरूप समझ ने से अच्छी तरह से होसकेगा. इसलिये सोही कहते हैं.

"उपशम श्रेणी"

प्रथम अनंतान बंधि चौकडी और दर्शन त्रिक इन सातों मोहनीय कर्म की प्रकृयियोंकी–रसोदय की अपेक्षा से तो अविरति सम्यग् दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान तक चडे वहां तक उपशम रहता है. और किसिके प्रदेशोदय की अपेक्षा से भी इस ही अविरत्ति सम्मक् दृष्टि चोथे गुणस्थानमें उपशान्त हुइ ही कही जाती है.और अपूर्व करण गुणस्थान में तो यह सातों ही प्रकृत्तियों रसोदय और प्रदेशोदय दोनों उदय आश्रिय भी उपशान्त हुइ कहना; इन सतों में से प्रथम अनंतान बन्धि चौकडी को उपशम कर नेका स्वरूप कहते हैं.

चौथा–अविरति सम्यक दृष्टि, पांचवा-देशाविराति, छठा - प्रमत, और सातवा अप्रमत इन चारों गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थानमें प्रवृत्त ते जीवों में का कोइ भी एक जीव –जघन्य से तेजु लेश्या के परिणाम वाला, मध्यम से पद्मलेश्याके परिणाम वाला,और उत्कृष्टता से शुक्ल लेश्या के परिणामोमे परिणामवाला.इन तीनों शुभ लेश्या के परिणामों में से किसी भी लेश्या के परिणामोमे परिणामता विशुद्धात्मा ज्ञान उपयोग से उपयुक्त एक आयुष्य कर्म विना बाकी के सातों कर्मो को स्थिति कों भोगते२जब सब स्थिति एक कोडा कोडी सागरोंमप में कुछ कम भोगवनी बाकी रहा जाय तब अंतर मुहुर्त पर्यन्त अवदाय मान परिणाम अर्थात् विशुद्ध चित्त की वृत्ति वाला रहता है. ऐसी तरह से रहता हुवा आत्मा परावर्त मान प्रकृत्तियों में की शुभ प्रकृत्तियोंका ही बंध करताहै परंतु असाता वेदनीय आदि अशुभ प्रकृत्तियों का बंध नहीं करताहै और जो अपरा वर्तमान ध्रुव वन्धिकी ज्ञानावरणी आदि अशुभ प्रकृतियों बन्धेतो उसका चौठाणीये रस वंध को छोड कर. दोठाणीया रसबंध करता है, और शुभ प्रकृत्तियों का दो स्थानी रस बंध छोडकर चौस्थानी रस बंध करै; और एक स्थिति बंध को पूर्ण

कर के, दसरा स्थिति बंध करना सुरु करे, सो पीहले २ के स्थिति बंध की आपेक्षा से पल्योपम के संख्याते भाग कमी स्थिति को कर के बंधता है. ऐसीही तरह जो जो आगेको स्थिति बंध करे वो वो पहिले २ के स्थिति बंध से पल्योपम के असंख्यातवे भाग कमी २ करता हुवा स्थिति का बंध करता है.

यों करण काल के अंतर मुहूर्त पर्यंत रहकर फिर अनुक्रम से अलग २ अंतर महूर्त प्रमाण के तीन करणों करता है. जिनके नाम—१. यथा प्रवृत्ति करण, २ अपूर्व करण, ३ अनिवृत्ति करण, और चौथा उपशांत अधा होता है, सोभी अंतर मुहूर्त का ही जाणना.

१. प्रथम-यथा प्रवृत्ति करण का स्वरूप:—यथा प्रवृत्ति करण में प्रवेश कर ता हुवा प्राणी प्रति समय अनंत गुण विशुद्धि की वृद्धि को करता है, और ऊपरोक्त प्रकृत्तियों में से शुभ प्रकृत्तियों के वन्धादि दो स्थानी रस का चौस्थानीये रस को दो स्थानीयां कर बंध करताहै.परंतु यहां तथा विधी तत्प्रयोग्य विशुद्धि के अभाव कर १. स्थिति घात २ रसघात,३गुणश्रेणी और ४ गुण संक्रम इन चारों कामों में का एक भी काम नहीं कर सकता है अनेक जीवों की अपेक्षा कर इस करण में प्रवृत्तने वाले जीवोंके असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अध्यवसाय के स्थानक प्रथमही समय में होते हैं. वो भी छेस्थान पतित होते हैं. और पहिले समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थानक विशेषाधिक होते हैं. योंही दूसरे समय के अध्यवसाय स्थानक से तीसरे समय के अध्यवसाय स्थानक आधिक होते हैं. तीसरे से चोथे समय के आधिक होवें. यों पाहिले २ के समय से आगे २ के समय के अध्यवसाय स्थानक विशेषा धिक होते हैं. जिसकी जो कदापि स्थापना की कल्पना करें तो विषम चतुरस्र क्षेत्र का निरुंधन होता है. ऐसी तरह यथा प्रवृत्ति करण के अन्तिम समय तक आता है वहां तक कहना चाहीये. यहांपे अध्यवसाय के स्थानको विशुद्धिकी अपेक्षा कर के-एकेक से छस्थान वृद्धिवन्त होते हैं वो ऐसी तरह:—यथा दृष्टान्त-दो पुरुषों ने एक साथही यथा प्रवृत्ति करण में प्रवेश किया, उसमे से एक तो सर्व जघन्य विशुद्धि की श्रेणीमें प्रतिपन्न हुवा. और दूसरा सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके अध्यवसाय स्थानक में प्रतिपन्न हुवा. उन दोनों की विशुद्धि का तारतम्य पना यहां वताते हैं-प्रथम जीव के प्रथम समय में सर्व से जघन्य मंद विशुद्धि सर्व से स्तोक (थोडी)

है, उस से उसही पुरुष के फिर दुसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी अधिक होती है. उस से तीसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनंत गुणी, यों अनंतानंत विशुद्धि की बृद्धि करता हुवा इस यथा प्रवृत्ति करण के असंख्याते भाग व्यातिकृन्त करता है. तब जघन्य पद विशुद्धि वाले पुरुष की जो अंतिम जघन्य विशुद्धि हुइ उस से दूसरे पुरुषकी प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुणी अधिक होती है. औंर उस से भी जगन्य विशुद्धि के स्थानक से निवृतता था उसकी उपरीतन जघन्य विशुद्धि अनंत गुणी, उस से दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुणी, उस से तीसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनंत गुणी, उस से भी उसके आगेके समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुणी अधिक. यों ऊपर के और नचिके एकांतर विशुद्धि के स्थानक अधिक २ करते दोनों जीवोंके यथा प्रवृत्ति करण के अंतिम समय में जघन्य स्थान होवे वहां तक कहना. उसके बाद उत्कृष्ट विशुद्धि के स्थानक निरंत्र आन्तिम समय पर्यंत अनंत गुण बृद्धि लिये कहना. यह यथा प्रवृत्ति करण जाण ना.

२ दुसरे अपूर्व करण का स्वरूपः—अपूर्व करण के प्रति समयोंमें जो अध्य-वसाय के स्थानक होते हैं वो असंख्यात लोकों के जितने आकाश प्रदेश होते हैं; उतने होतेहैं और प्रति समय छः स्थान बृद्धि तथा छः स्थान हानी युक्त होते हैं, सोही कहते हैंः- १ प्रथम के उत्कृष्ट विशुद्धि के स्थानक से दुसरा विशुद्धिका स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा कर जो हीन (कमी) होवे तो—१ अनंत भाग हीन होवे, २ असंख्यात भाग हीन होवे, और ३ संख्यात भाग हीन होवे. यह भाग आश्रिय तीन स्थान हीनता के कहे. तैसेही-१ संख्यात गुन हीन होवै. २असंख्यात गुण हीन होवै, और ३अनंतगुनहीनहोवे यह तीनों स्थानों गुण आश्रिय हीनता के जानना यों ६ हानी के स्थानों होते हैं. और जो प्रथम के अध्यवसाय का स्थानक से विशुद्धि की अपेक्षा दुसरा अध्यवसाय का स्थानक बृद्धिलिये होवे तो—१अनंत भागाधिक होवे, २ असंख्यात भागाधिक होवे और ३ संख्यात भागाधिक होवे. तैसेही—१ संख्यात गुणाधिक होवे, २ असंख्यात गुणाधिक होवे, और३अनंत गुणाधिक होवे. यो परस्पर(आपस में)६बृद्धि के और ६ हानी के मिले १२ अध्यवसायके स्थानक होते हैं, यहां अपूर्व करण के प्रथम समय में जघन्य विशुद्धि सब से कमी होती है, वोभी यथा प्रवृत्ति करण के चरम (अंतिम) समय की उत्कृष्ट विशुद्धि स्थानक से अनंत गुण अधिक जानना. उस से प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुण अधिक जानना. उस से दुसरे समय की जघन्य

विशुद्धि अनंत गुण अधिक होती है, और उससे भी दुसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुण अधिक होती है, ऐसे अपूर्व करण के अंतिम समय लग कहना. इस अपूर्व करण में प्रवेश करने वाला प्रथम समय सेही:-स्थिति घात, २ रसघात, ३ गुणश्रेणी, ४ गुण संक्रम, और ५ अन्यस्थिती बंध. यह ५ कामों एकही वक्त इकठे करता है, इनका स्वरूप खुलासा वार कहते हैं:—

(१) स्थिति घात का स्वरूप:-जो क्रोधादि कषाय की स्थिती भोगवनी बाकी रही होवे, उसे सत्ता में से अग्रभाग की स्थिति को उकेरे अर्थात्-उसकी स्थिति भाग का अग्रस्थान उत्कृष्ट तो बहुत सागरोपम प्रमाणें होता है, और जघन्य से पल्योपम के असंख्यात वे भाग प्रमाणें होता है, उस स्थिति के खंड (टुकडे) करे, उसे उकेरना कहते हैं. ऐसी तरह उकेर कर उस के दलिये (चूरा) जो नीचेकी आद्य स्थिति खंड करने की रही है उस दल में उन दलियों को प्रक्षेप करे, यों अंतर मुहूर्त कालतक उस स्थिति खंड को उकेरे. योंही जो फिर बाकी स्थिति रहे उस के अग्रभाग से पल्योपम के असंख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति कर के उसकादल पहिले की तरेही अंतर मुहूर्त बाकी रहै उसे नीचे की स्थिति में मिलावे. यों अंतर मुहूर्त २ की स्थिति में उसका दल मिलाते २ अपूर्व करण के काल में अनेक हजारों स्थिति खंड खप जाते हैं. तब जो अपूर्व करण के प्रथम समय में जितनी कर्म की स्थिति सत्ता थी उस से संख्यात गुण कम स्थिति सत्तारही सो स्थिति घात.

(२) रस घातका स्वरूप:—जो अशुभ कर्म का रस बिन भोगवा हुवा रहा है, उस रस का अनंतवा भाग छोडकर, बाकी रहे अनुभाग के भाग अंतर मुहुर्त में खपावे - विनाश कर, फिर जो अनंतवा भाग बाकी रहा उसका अनंत वा भाग छोडकर बाकी रहे अनुभाग के सब भागों को अंतर मुहूर्त में खपावे, फिर पहले छोडा जो अनंतवा भाग उसका भी अनंतवा भाग छोड कर बाकी रहे अनुभाग के भागों को अंतर मुहूर्त में खपावे, यों अनुभाग खंड के अनेक सहश्र एक स्थिति खंड में व्यति क्रमें, और उस स्थिति खंड के अनेक सहश्र से अपूर्व करण समाप्त होवै. इस खंड के काल से स्थिति खड का काल संख्यात गुणा अधिक और स्थिति खंड से अपूर्व करणका काल संख्यात गुण अधिक जानना,

(३) गुण श्रेणी का स्वरूप:— अंतर मुहूर्त प्रमाण कर्म स्थिति से जो ऊपरकी कर्म स्थिति वर्त रही है उस में से दलिये गृहण कर' अपनी उदयावलिकाकी ऊपर

की स्थिति में समय २ में असंख्यातगुण २ चडता हुवा दलिक सक्रमावे - मिलावे· वो ऐसी तरह कि-प्रथम समय स्तोक, उससे दुसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, उस से तीसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, यों जावत अंतर मुहूर्त के अंतिम समय पर्यंत कहना. यह अंतर मुहूर्त अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से कुछ अधिक काल जानना. यह तो पहिले समय में गृहण किया उस दल का निक्षेप करने की विधि बताइ. यों दुसरे समय से लगा कर अंतिम समय पर्यंत समय २ गृहित दलका भी निक्षेप कर ने की विधि-रीति जाणना. अर्थात्-जो समय २ में दलिक गृहण करे वो सब अलग २ अंतर मुहूर्त के सब अलग २ समय के दल में मिलावे, यों अपूर्व करण के समय अनिवृत्ति करण के समय अनुक्र में कम होते २ बाकी रहे उन में गुण श्रेणि दलिक का निक्षेप शेष बाकी रहे उस में होवै. उस से अधिक - बढे नहीं.

(४) गुण संक्रम का स्वरूपः—जो अपूर्व करण के प्रथम समय में बिना बंधाती ऐसी जो अनंतान बंधि आदिक अशुभ प्रकृति यों है उसका दल बंधती हुइ ऐसी जो संज्वलादि प्रकृत्ति उस में समय २ में असंख्यात गुण अधिक मिलावै, मिला कर फिर पर प्रणाति रूप में परिणमावे, उसे गुण संक्रम कहते हैं. सो पहिले समय सर्व स्तोक (सब से थोडा) संक्रमावे उस से दुसरे समय असंख्यात गुण अधिक संक्रमावै, यों समय २ में असंख्यात गुणाधिक २ बृद्धि पाता हुवा दलका संक्रमण करै.

(५) अन्य स्थिति बंध का स्वरूपः—अपूर्व करण के पहिले समय में जो कर्म का स्थिति बंध कहा उसकी अपेक्षा से अपूर्व करण के दुसरे समय में जो दुसरा स्थिति बंध का प्रारंभ करे वो स्तोक (कमी) जाणना. इसलिये इसे अपूर्व स्थिति बंध कहते है. यहां स्थिति बंध और स्थिति बंध का काल बरोबर ही जानना. इन दोनों का एकही वक्त प्रारंभ होता है. और एकही वक्त में पूरा करते हैं.

यों ऊपारोक्त पांचोंही कामें अपूर्व करण में होते हैं.

३. अनिवृत्ति करण का स्वरूपः—अनिवृति करण में एकही वक्त प्रवेश करने वाले सब जीवोंके प्रथम समय में एकसाही अध्यवसाय का स्थान होता है. अर्थात्-अपूर्व करण के प्रथम समय में जो जीव वर्तता है और जो पहिले वर्ते हैं और जो आगे को वर्तेंगे, उन सबोंका अध्यवसाय स्थानक एकसा-एक रूपीही होता है और प्रथम समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थान अनंत

गुणे अधिक विशुद्धि लिये होते हैं. यों जितने समय अनिवृत्ति करण के हैं उतने समय के अध्यवसाय स्थानक पीछे के अध्यवसाय स्थानक से आगे के अध्यवसाय स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा अनंत गुणें अधिक होते हैं- इसका अनिवृत्ती करण ऐसा नाम देने का मतलव यह है कि-जो इसमें प्रवेश करते हैं. उन सबोंके अध्यवसाय स्थानक का परस्पर निवृत्ति और व्यवृत्ति न होती है, इसकी अपेक्षा से अर्थात्-भेद न होवे सबोंके एकसे अध्यवसाय होवें इसलिये अनिवृत्तिकहा है. यहां समय २ प्रति एकएक अध्यवसाय स्थानक उसके होतेहै उसकी स्थापना मुक्तावलीकी माफिक(०-०-०-०)ऐसी करना. और यहां भी प्रथम समयसे ही स्थिति घातादि पांचोंही काम एक ही वक्तमें अपूर्व करणके जैसेही होते हैं. यों अनिवृति करणका असंख्यातवा भाग गये वाद वाकी एक भाग रहे तव अनंतान वंधीकी नीचेकी उदयावली की मात्र स्थिति को छोड कर वाकी अंतर मुहूर्त प्रमाणसे संक्रमा कर भोगवता है. जैसे मनुष्य गति में वाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली भोगवते हैं. उसेही स्तिवुक संक्रम कहते हैं. अन्त करण को अभिनव स्थिति वंध के काल प्रमाणको अंतर मुहूर्त का कहते हैं. अर्थात् वो अंतर मुहूर्त नवीन स्थिति बंधाद्वा समान जानना. वो अंतकरण के दलिक को उकेर कर पर प्रकृति बंधाती है उसमें संक्रमावे और प्रथम स्थिति का दलिक आवलिका मात्र सो वेद्यमान उदयावत्ति पर प्रकृत्ति में स्तिवुक संक्रम कर संक्रमावे, ×

अव अन्तकरण किये वाद दूसरे समय में अनंतान वंधि की ऊपर की स्थितिका दलिया उपशमाना शुरु करे. वो ऐसी तरह कि-पहिले समय में स्तोक उपशमावे, दुसरे समय उस से असंख्यात गुणा उपशमावे, उसे संक्रमा कर भोगवे. जैसे मनुष्यगति में वाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अयोगी केवली द्विचरम समय में भोगवते हैं. तैसे यहां भी जानना. यों समय २ में असंख्यात २ गुण अधिक चढता हुवा उपशम करता हुवा अंतर मुहूर्त के अंतिम समय अनंतान वंधिका सर्वदल उपशमित होता है. जैसे धूल के पुंज को पाणी की वून्दों से सींच २ कर घनादिक से कूट २ कर सूक्ष्म-(वारीक,) करे, वो ऐसा वारीक करे कि उसे कोइ ग्रहण

+ जो अनुदयी प्रकृत्तिका दल है उस को उदयावति प्रकृत्तिं में मिलाते है, उसे ही स्तिवुक संक्रम कहते है.

नहीं कर सके. तेसै ही कर्म रूप रेणु (धूल) के समूह को विशुद्धि रूप पाणी के प्रभाव से सींच २ कर अनिवृत्ति करण रूप घन से कूट २ कर ऐसा सूक्ष्म करे कि-वो फिर बंधन-संक्रमण-उदय उदीरणा-निद्धत और निकाचनादिक करण को प्राप्त होने अयोग्य होवे. उसे अनंतान बंधिकी उपशमना कहना.*

* [अब यहां—कितनेक आचार्य कहते है कि अनन्तान बान्धि की उपशमना तो नहीं होती है, परन्तू विसंयोजनाही होती है. विसंयोजना भी क्षपण विशेष को कहते हैं. जिसका स्वरूप ऐसा है:—श्रेणिको अप्राप्त हुवे ऐसे चारों गति के सन्नि पचेन्द्रिय पर्याप्ता आविरति सम्यगृदृष्टि जीवों तथा तिर्यंच और मनुष्य इन दोनों गति वाले देश विरति जीवों, तथा प्रमत और अप्रमत मनुष्यों, अनन्तान बान्धि की चारों कषायोंको क्षपानेके लिये जैसे पाहिले कहा वैसेही यथा प्रवृत्ति आदि तीनों करणों करे, परन्तू इतना विशेष जो अनिवृत्ति करण में प्रवेश किया हुवा अन्तर करण नहीं करता है, परन्तू उद्वलना संक्रम कर खपावे सो उद्वलना संक्रम का स्वरूप कहते है.

[उद्वलमान संक्रम का स्वरूप :—अनन्तान बंधि आदि कर्म प्रकृति का दल प्रथम समय पल्योपम के असंख्यात भाग प्रमाण स्थिति खण्ड है उसको अंतर मुहुर्त उकेर कर दूसरी प्रक्रात्तिमें संक्रमावे. योंही दूसरे समय दूसरा स्थिति खण्ड करके उसका कुछ भाग दूसरी प्रक्रात्तिमें संक्रमावे, और कुछ भाग अपनी नीचेकी स्थितिमें संक्रमावे. परन्तू दूसरी स्थितिमें जितना संक्रमावे उससे अपनी नीचेकी स्थिति जों संक्रमावेसो असंख्यात गुणा जानना. यों समय २ मेंस्थिति खण्ड करेवो पीछे २ के स्थिति खण्ड की अपेक्षा-विशेष हीन दलकी अपेक्षा अनन्त गुणा होता है. और संक्रमाने के समय में भी अपनी नीचे की स्थिति में असंख्यात गुणा संक्रमाते हैं. तथा दूसरी प्रक्रति में विशेष हीन २—(कम) करता २ संक्रमावे, यों द्वीचरम समय तक संक्रमाते है. और आन्तिम समय में तो अपनी स्थिति बाकी न रही उस से सब दल को दूसरी प्रक्रात्ति में संक्रमाते है, उसेही सर्व संक्रम-याने उद्वलमान संक्रम कहते हैं.]

यों उद्वल संक्रमण कर आविलाका मात्र बाकी छोड कर सब अनन्तान बान्धिको खपावे. और जो आवालि मात्र रहा है उसे स्तिबुक संक्रम कर वंधमान प्रक्रात्ति में संक्रमा कर खपावे. उसे अनन्तान बान्धिकी विसंयोजना कहते हैं. सो अन्तर मुहूर्त के बाद अनिवृत्ति करण के अन्त में बाकी रहे कर्म के-स्थिति घात, रणघत और गुण श्रेणी होती नहीं है. क्योंकि वो जीव स्वभावस्थही रहते हैं. अर्थात सहज अवस्था में रहते हैं. ऐसी तरह से अनन्तान बंधी की विसंयोजना होती है,]

अब दर्शन मोहनीय त्रिकको उपशमाने की रीति कहते हैं:—

मिथ्यात्वकी उपशमना तो मिथ्यात्वी के तथा क्षयोपशम सम्यक्त्वी के इन दोनों केही होतीहै, और सम्यक्त्व तथा मिश्र मोहनीय की उपशमना क्षयोपशम सम्यक्त्वी के ही होती है. इसमें मिथ्यात्वी के तो ग्रन्थिभेद करते प्रथप उपशमसम्यक्त्वा की प्राप्ति करने वालेके मिथ्यात्व की उपशमना जैसे होती है उसकी रीति कहते हैं-: कोइ सन्नी पंचान्द्रिय पर्याप्ता करण काल के पाहिले अन्तर मुहूर्त काल पर्यन्त समय २ में अनन्त गुणावृधी गत विशुद्धि में प्रवर्तता ऐसा अभव्य सौधिक जीवकी विशुद्धि की अपेक्षा अनन्त गुण विशुद्धिवन्त ऐसा मति अज्ञान, श्रुति अज्ञान और विभंगज्ञान इन में के किसी भी साकार उपयोग युक्त और मनादि तीनों जोगों में से किसी भी जोग युक्त प्रवर्तता जघन्य परिणाम से-तेजुलेश्यामें, मध्यम परिणाम से पद्मलेश्या में और उत्कृष्ट परिणाम से शुक्लेश्या में प्रवर्तता, मिथ्यात्व दृष्टि चारों गतिमें से किसी भी गति वाला, कुछ कम एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति सातों कर्मोंकी वाकी रहे. इत्यादि सर्व पाहिले कीही तरह जहां तक यथा प्रवृत्ति करण और अपूर्व-करण यह दोनों मिथ्यात्व उपशमाने को पूर्ण करे तहां तक कहना. परन्तु यहां इतना विशेष कि-अपूर्वकरण में गुण संक्रमण करता नहीं है. फक्त-स्थितिघात, रसघात गुणश्रेणी, और अन्यास्थिति बन्ध यह चारों कामही प्रथम से प्रारंभ करता है. और गुणश्रेणी दालिक रचना भी उदय समय से लगाकरही जानाना. और फिर अनिवृत्ति करण में भी ऐसेही कहना. फिर अनिवृत्ति करणद्धा के संख्याते भाग गये वाद और फक्त एकही संख्यातवा भाग रहे तव मिथ्यात्व की नीचे की प्रथम स्थिति आनतान वन्धि की तरह अन्तर मुहूर्त मात्र नीचे छोड कर. ऊपर अन्तर मुहूर्त मात्र आभिनव स्थिति बन्ध के अन्तर मुहूर्त जितनी (पहिली स्थिति के अन्तर मुहूर्त से कुछ आधिक) आभिनव स्थिति के वन्ध के काल जैसी, ऐसी मिथ्यात्वकी अन्तकरणाद्धा करे. वो अन्तकरण वाला कर्मदल कुछ उकेर के पाहिले की स्थिति में मिलावे, और कुछ दूसरी ऊपरकी स्थितिमें मिलावे. वहां पाहिले की स्थिति में वर्तता जीव ऊदीरणाका प्रयोग कर प्रथम स्थितिका दल उदया वालिका के ऊपरका है उसे आकर्ष कर उदया वलिका में मिलावे-उसे ऊदीरणा कहते हैं. और जो दूसरी स्थिति के नजदीकसे ऊदीरणा प्रयोग करके उसमें का दल आकर्ष (खेंच) कर उदया वालिका मे मिला-भोगवे. अब उदय और ऊदीरणा करके प्रथम स्थितिका दल भो-

गवता जिसवक्त वो पहिली स्थिति दो आवलिका बाकी रहे तब आगे का अन्त आवे. तब एक आवलिका तक उदय और ऊदीरणा प्रवर्ते. और अन्तिम आंवली में तो ऊदीरणा से भी निवृते. तब अन्तिम आवली में फक्त उदय कोही भोगवता है. फिर उस आवलिका के अन्तिम समय में दूसरी स्थिति के दालिक का रसभेद कर-तीन-पुंज करे. वो ऐसी तरह से कि-उसमें जो देशघातिक एक स्थानीया रस स्पर्द्धक तथा उत्कृष्ट रसोदीरणा की अपेक्षा से दोस्थानीये रस सहित जो दल है सो प्रथम-सम्यक्त्व पुंज तथा कितनेक एकस्थानीये रस स्पर्द्धक सर्व घातिक सहित है, और कितनेक दोस्थानीये रसके स्पर्द्धक सर्वघातिक रहित है; सो दूसरा मिश्रपुंज. और सर्वघातिका चौस्थानिये तथा तीनस्थानीये रसस्पर्द्धक सहित जो दल हैसो तीसरा मिथ्यात्वपुंज. फिर उससे अनन्तर समय में मिथ्यात्व दालिक के उदय के अभावसे उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है.

अब वेदक सम्यक्त्वी के प्रदेशोदय की अपेक्षा से मिथ्यात्व की उपशमना की रीति कहते है:—कोइ वेदक सम्यक्त्वी संयम में प्रवर्तता हुवा अन्तर मुहूर्त काल में दर्शन त्रिका का उपशम करे यहां तीन करण करने पडतें है. उसकी रीति पहिले कहे प्रमाणेही अनिवृति करणद्धा के संख्याते भाग गये बाद अन्तकरण करता है, वो अन्तकरणी अन्तकरण करताहुवा सम्यक्त्वकी प्रथम स्थिति को अन्तर मुहूर्त प्रमाणे स्थापन करे. और मिथ्यात्व मिश्र मोहनीय की प्रथम स्थिति को अवलिका मात्र स्थापे. फिर उसके दालिक को उकेर २ कर सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में मिलावे. वहां मिथ्यात्व और मिश्र इन दोनोंके जो प्रथम स्थिति के दलिक हैं. उनको सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति के दल को रसोदय विपाक के अनुभवने से भोगवते हुवे सो अनुक्रम से क्षयहोवें तब उपशम सम्यक्त्वी होवें. और इन तीनों मोहनीय की ऊपर की स्थिति का दल उपशमानेका तो पहिले जैसे अनंतान बंधिये की ऊपरकी स्थितिका दल उपशमा ने की रीति कही वैसीही यहां जानना

अब चारित्र मोहनीय की उपशमाने की रीति कहते हैं—चारित्र मोहनीय का उपशम कर ने वाले भी पहिले कहे मुजब यथा प्रवृत्ति आदि तीनों करण करते हैं, इस में प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में तो यथा-प्रवृत्ति करण करै, और अपूर्व करण गुणस्थान में अपूर्व करण करे, और अनियट्ठ बादर गुणस्थानमें आनिवृत्ति करण करै,

इन के कर ने का सब स्वरूप ऊपर कहे मुजब ही जाणना, विशेष में इतना हैकि जो अपूर्व करण में गुण संक्रमे तो बंध नहीं होवे ऐसी सब अशुभ प्रकृत्ति को प्रवर्ते. और अपूर्व करणद्धा के असंख्याते भाग गयेबाद - निद्रा प्रचलाका बंध विच्छेद होने बाद बहुत स्थिति खंडों को अति क्रमणे से - अपूर्व करणद्धा के संख्यात भाग गये बाद बाकी एक भाग रहे तब - देव द्विक, पचेंद्रिय जाती, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक, तेजस. कार्मण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण चतुष्क, अगुरु लघु चतुष्क, त्रस नवक, आदेय, निर्माण, और जिननाम इन ३० प्रकृत्तियों का बंध विच्छेद होता है उस के बाद स्थिति खंड प्रथक्त्व जानेसे अपूर्व करण के अंतिम समय - हांस्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चारों प्रकृत्तियोंका बंध विच्छेद होने. हांस्य रति अरति शोक, भय और जुगुप्सा इन छः प्रकृत्तियोंका उदय रहता है.

यहां सर्व मोहनीय कर्म के अंतिम समय - देशोपशमना, निधत्ति, निकाचनना, करण का विच्छेद होवे तब आगे के समयमें अनिवृत्ति करण में प्रवेश करता है; वहां भी स्थिति घात आदिक पांचों कामों पहिले कहे हैं उसही तरह से कर ते हैं. सो अनिवृत्ति करणद्धा के संख्याते भाग गये बाद चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृत्तिका अंतर करण करता है. उस वक्त संज्वलकी चौकडी में की जो कषाय उदयको प्राप्त होवे वो कषाय और तीनों वेदों में सो जो वेद उदय को प्राप्त होवे सो वेद, इन दोनों प्रकृत्ति की प्रथम स्थिति अपने उदय काल के प्रमाण जितनी होती है उन दोनों को छोड कर बाकीकी जो १९ प्रकृत्ति जिसका उदय नहीं है उनकी प्रथम स्थिति आवालिका मात्र होती है, वहां अपने उदय कालका प्रमाणका अल्पा बहुत कहते हैं:—

तीनों वेदों में से स्त्री वेदका और नपुंसक वेदका उदय काल थोडा होता है और स्वस्थान में परस्पर तुल्य होता है. उन से पुरुष वेदका उदय काल संख्यात गुणा अधिक जानना. उस से संज्वलका क्रोधका उदय काल विशेषाधिक, उस से संज्वल के मान का उदय काल विशेषाधिक, उस से संज्वल की माया का उदयकाल विशेषाधिक उस से संज्वल के लोभका उदयकाल विशेषाधिक, इस में जो सज्वला के क्रोध के उदय में उपशम श्रेणीका आरंभ करे, उस के जहां लग अप्रत्याख्यनी और प्रत्याख्यानी इन दोनों क्रोधका उपशम नहीं होवे वहां लग संज्वलके क्रोधका उदय होता है, ऐसेही जो संज्वल के मानोदय-में श्रेणी का आरंभ करे उस के जहां

तक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी मान का उपशम न होवे वहांतक संज्वल के मान का उदय पावे. ऐसेही संज्वल की माया के उदय में श्रेणी का आरंभ करे उस के जहातक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी माया का उपशम न होवे वहांतक संज्वल की माया का उदय होवे. और ऐसेही संज्वल के लोभ के उदय में श्रेणी आरंभ करे उस के अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी और संज्वल के लोभ का उपशम न होवे वहां तक बादर संज्वल के लाभका उदय पावे. यों अपने २ उदय काल की अपेक्षा से उस के उदय में प्रवर्तता श्रेणीका आरंभ करे वो जो कषाय अथवा जो वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करै वो कषाय अथवा वो वेदका उदय काल थाकता हुवा उस के उतने काल की उतनी प्रथम स्थिति होती है. और दुसरे सब की आवलिका मात्र स्थिति प्रथम स्थिति होती है. यहां जितने काल में स्थिति घात करे तथा दुसरे काल का अन्य स्थिति बंध करे उत ने काल में अन्त करण भी करे. यह तीनों ही साथ करे अर्थात् एकही वक्तमें आरंभ करे और एकही वक्तमें पूर्ण करे. परंतु उसका काल प्रथम स्थिति से असंख्यात गुणा अधिक होता है. अब अंतकरण का दल प्रक्षेपने की विधि लिखते हैं:—जिस प्रकृत्ति का जहा बंध और उदय दोनो हैं, उस प्रकृत्ति का अंतकरण सत्कदल कुछेकतो प्रथम स्थिति में मिलाना और कुछेक दूसरी स्थिति में मिलाना. जैसे पुरुष वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करे, उस के पुरुष वेदका बंध होवे और उदयतो हेही, इसलिये पुरुष वेद का अन्तकरण दल दोनों स्थिति में मिलाना. और जिस प्रकृत्ति का उदय तो है परंतु बंध नहीं है. उसका अंतकरण का दल प्रथम स्थिति मेंही मिलाना. जैसे-स्त्री वेदका तो उदय है परंतु बंध नहीं है, उस न स्त्रीवेद के उदय में जो श्रेणी प्रारंभी वो अंतकरण सत्कदल अपनी प्रथम स्थिति मेंही मिलावै. और जिस प्रकृत्ति का जहां उदय नहीं है, और बंध है. उसका अंतरकरण दल दूसरी स्थिति में मिलावे परंतु प्रथम स्थिति में नहीं मिलावें. जैसे-संज्वल क्रोध के उदय में श्रेणी आरंभी वो बाकी तीन संज्वल की कषाय का बन्ध करता है, वो उसका अन्तकरणदल दूसरी स्थिति मे मिलावै. और जिस प्रकृत्ति का बंध तथा उदय दोनों नहीं है, उस का अन्तकरण दल अन्य प्रकृत्ति मे मिलावे. जैसे-दुसरी अप्रत्याख्यानीय और तीसरी प्रत्याख्यानीय कषाय का अंतकरण दल संज्वल अन्य प्रकृति है उस में मिलावे. यों अंतरण कियेबाद प्रथम नपुंसक वेदका उपशम करे, वो प्रथम समय में थोडा दल उपशा-

मावै, दुसरे समय उस से असंख्यात गुणा यों समय २ में असंख्यात गुणा बधता उपशमता हुवा अन्तिम समय में सर्व उपशांत होवे. वहां प्रथम समय से लगाकर द्विचरम समय पर्यंत जो दल उपशमाया है उस से असंख्यात गुणा दल अन्य प्रकृत्ति में मिलावे; और अंतिम समय में जिस प्रकृत्ति में मिलावे उस से असंख्यात गुण उपशमावे. यों नपुंसक वेद उपशमाने से पहिले की अनंतान बंधि चौकडी तथा दर्शन त्रिक इन सातों सहित आठों मोहनीय की प्रकृति का उपशांत होवे. फिर ऊपरोक्त विधि से अंतर मुहूर्त पर्यंत स्त्रीवेदको उपशमावे. फिर हॉस्यादि छेओं प्रकृत्तियोंको अन्तर मुहुर्त पर्यंत उपशमावे. फिर सब साथही मोहनीयकी बाकी रही १५ प्रकृत्ति का उपशांत होवे. उस वक्त पुरुष वेदका बंध उदय और ऊदीरणा का विच्छेद होवे, और उसकी प्रथम स्थिति का भी विच्छेद होवे. जब पुरुष वेद की प्रथम स्थिति दो आवालि बाकी रहे पूर्वोक्त आगे न होवे उस वक्त मार्गदल विशेषदल हुवा इसलिये वहां हांस्यादिक छेओं प्रकृत्ति का दल पुरुष वेद में तो मिले नहीं, तब उन हांस्यादि छेओंका दल संज्वल के क्रोधादिक में मिलावे. यों हांस्यादि छेओं प्रकृत्ति उपशमाये बाद एक समय कम दो आवलि पुरुष वेद उपशमावे, वोभी, प्रथम समय में सब से थोडा, उस से दुसरे समय असंख्यात गुणा अधिक उपशमावे, यों समय २ में असंख्यात २ गुणा अधिक २ उपशमता हुवा. एक समय कम दो आवलिका रहै वहांतक कहना. और कितनाक दल दुसरी प्रकृत्ति में यथा प्रवर्त संक्रम कर संक्रमावे. परंतु प्रथम समय से विशेष हीन दुसरे समय में संक्रमावे. यों समय २ कम २ संक्रमाता हुवा आवलिकाके चरम समय तक जाय; ऐसी तरह पुरुष वेद का उपशांत हुवे बाद मोहनीय की १६ प्रकृत्तियोका उपशांत होवे.

फिर जिस समय हॉस्यादि छेओं प्रकृत्ति का उपशम होवै, उस समय से पुरुष वेदकी प्रथम स्थिति का क्षय होवे. तदनंतर अप्रत्याख्यानी क्रोध और प्रत्याख्यानी क्रोध, तथा संज्वल का क्रोध इन तीनों क्रोधों को एक साथही उपशमावे वो पूर्वोक्त रीति से उपशमाते हुवे जिस वक्त संज्वल के क्रोध की प्रथम स्थिति एक समय कम तीन आंवली बाकी रहे, उस वक्त अप्रत्याख्यनीया और प्रत्याख्यानीया इन दोनों क्रोधका दल संज्वल के क्रोध में प्रक्षेप नहीं करना, संज्वल के मानादिक में मिलावे, क्योंकि-फक्त तीन आंवलि जितनाही क्रोधका दल बाकी रहा है उस में किसी भी प्रकृत्ति का दलका पतद् ग्रह नहीं होता है, अर्थात् उस में दूसरी प्रकृत्ति

के दलका समावेश नहीं होता हैं. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय ऊदीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यनी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृत्ति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का कादल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उस के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंबली का दल सो संज्वल के मान में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष बेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव में उपाव बताया उसही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृत्ति में संक्रमावे. यों समय सम दो आंवलि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृत्ति योंका उपशम हुवा.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका वन्ध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दुसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय में तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यों समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुवा प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय से लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानों को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उस वक्त पाहिले कहे मुजबही संज्वल के मान में अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया मे संक्रमावै, ऐसेही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यों अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमावे तब मोहनीय की २१ प्रकृत्ति का उपशम होता है.

संज्वल के मान के बंध उदय उदीरणा विच्चेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि कही एक आवलिक में उपशमावे. तब २२ प्रकृत्ति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद होवे उसके प्रथम से लगाकर संज्वलकी माया की दुसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले कहे मुजब प्रथम

स्थिति गत करके वेदे. उसही समय से लगाकर तीनों माया का उपशम करने लगे वोभी मान की तरह एक आवली रहे संज्वलकी माया का बंध उदय उदीरणा विच्छेद होवे उस समय अप्रत्याख्यानीय प्रत्याख्यानीय माया उपशांत होवे तब मोहनीय की २४ प्रकृत्ति यों का उपशांत हुवा.

उस वक्त संज्वल की माया का प्रथम स्थिति गत एक आवली तथा समय कम आवलिकोद्विक में बंधा हुवा जो उपर की स्थिति गत दलिक उसको छोड कर बाकी रहा सर्व उपशांत होवे. फिर प्रथम स्थिति गत एक आवालिका को स्तिबुक संक्रम कर संज्वल के लोभ में संक्रमावे. और समय कम दो आवालिका बंधे हुवे दलिक को पुरुष वेदमें उपर केह मुजवही उपशमावे, यों संक्रमावे. फिर समय कम दो आवालिका संज्वल की माया उपशांत होवे तब मोहकी २९ प्रकृत्ति का उपशांत हुवा.

जिस वक्त संज्वल की माया का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा तदनंतर दुसरे समय में ही संज्वल के लोभ की दुसरी स्थिति में सें दलका आकर्षन कर प्रथम स्थिति को रचे उस प्रथम स्थिति लोभ वेदनाद्धा के तीन विभाग दो प्रमाण से करे—उस में प्रथम त्रिभाग का नाम - अश्वकरणाद्धा और दूसरे त्रिभाग का नाम - किट्टि करणाद्धा.

प्रथम अश्वकरणाद्धा विभाग में वर्तता आत्मा पूर्व स्पर्द्धक ÷ में से दल गृहण कर अपूर्व स्पर्द्धक करें. उस स्पर्द्धकी उपरकी वर्गणा के रस विभाग से एक रस विभाग ज्यादा या दो रस विभाग ज्यादा. रस विभाग सहित यों जावत सब जीवों से अनंतगुणा पर्यंत से एक रस विभाग कम रसोपेत कर्म स्कंध दल नहीं मिलता है.

÷ स्पर्द्धक का स्वरूप—जीव अनन्त कर्म प्रमाणु से निष्पन्न स्कन्ध उसे कर्म पणें गृहण करता है, वहा एकेक कर्म स्कन्ध में जो सबसे जघन्य रस है उस के दो विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकें. ऐसा बारीक छेदना हुवा सब जीवों को रस का विभाग देता है. और ऐसेही बरोबरी के जघन्य रस के कर्म स्कन्ध दल उसका समुदाय-उसे-वर्गणा कहते हैं, उस से एक रस विभाग चडता कर्म स्कन्ध की दूसरी वर्गणा. उस से दो रस विभाग चडते कर्म स्कन्धकी तीसरी वर्गणा. यों एकेक रस विभाग चडती २ वर्गणा करता अभव्य से अनन्त गुणी आधिक और सिद्ध से अनन्त गुणहनि प्रमाण वर्गणा का समुदाय उसे स्पद्धर्क कहते है.

अर्थात् सब जीवों से अनंत गुण रस विभाग में अधिक रस सहित जो कर्म स्कंधका दल होवे, ऐसे स्कंध के समुदाय सो दुसरे स्पर्द्धक की प्रथम वर्गणा जाणना. उस से एक रस विभाग जियादा कर्म स्कंध का समुदाय सों दुसरी वर्गणा, यों एकेक रस विभाग जियादा होते २ अभव्यमे अनंत गुण अधिक वर्गणा होवे उस के समुदाय को दुसरा स्पर्द्धक कहना. योंही फिर सब जीवों से अनंत गुण अधिक रस भाग मिलानेसे कर्म स्कंधके समुदाय की तीसरी स्पर्द्धकयों वो भी पूर्वोक्त अभव्यसे अनंत गुण, अनंत वर्गणासे स्पर्द्धक होवे. ऐसे अनंत स्पर्द्धक का बंध जीवने पाहिले किया है. इसलिये इसे पूर्व स्पर्द्धक कहते हैं;और उसमेंसे दल लेकर उस दलको प्रकर्ष विशुद्धिके वस से अत्यंत रसहीन करके अपूर्व स्पर्द्धक करे. क्योंकि इस संसारमें परिभ्रमण करते इस जीवने किसी वक्त बंध आश्रिय ऐसे रस स्पर्द्धक नहीं करे. परंतु अबही विशुद्धिके वश हो करता है; इसलिये इसे अपुर्व रस स्पर्द्धक कहना. अश्वकरणाद्धा बीते बाद दूसरे किट्टि करणाद्धा में प्रवेश करे वहां पूर्व स्पर्द्धक से दुसरे अपूर्व स्पर्द्धक से दल लेकर उस के रसकी किट्टि करे * उस किट्टि करणाद्धाके अन्तिम समय में एकही साथ अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी यह दोनों लोभ को उपशमावे. और उस ही वक्त संज्वलके लोभकाभी विच्छेद होवे. और बादर संज्वल लोभ की बंध उदय उदीरणाका विच्छेद होवे, तब अनियाट्टि बादर गुणस्थान का भी काल पूर्ण होवे, यों नवमे गुण स्थान तक ७ प्रकृत्तियों से लगाकर २५ प्रकृत्तियों तक मोहनियका उपशांत होवे.

फिर नववे गुणस्थान के अन्तिम समय में अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी प्रकृत्ति लोभ की उपशमावे बाद दशवे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में २७ प्रकृत्ति का उपशम होवे. इस गुणस्थान का काल अंतर मुहूर्त प्रमाण काहै. उस में प्रवेश किया हुवा जीव संज्वल के लोभकी उपरकी स्थिति में से कितनी एक किट्टि आकर्ष कर उसकी पहिली स्थिति सूक्ष्म सम्पराय अद्धा जितनी कर के वेदे. और सूक्ष्म किट्टि किया हुवा जो दलिक और समय कम दो आवलिका बंधासो दल उसे उप-

* किट्टिका स्वरूप—जो पहिले स्पर्द्धक से वर्गणा को ग्रहण कर २, अनन्त गुणा रस कमी कर २ बहुत दूर २ रखना. जैसे मिथ्या कल्पना से—जिसके १,०१ रस विभाग है. अथवा एकोत्तरसो बीओत्तरसो थे. उस के पांच पन्दरे पचीस रस विभाग रक्खे उसे किट्टि करण कहते हैं.

शमावे. अन्तिम समय में संज्वल के लोभ का उपशांत होवे, उसही वक्त-५ ज्ञानावरणीय की ५ अंतराय की, ४ दर्शनावरणीय की, उंच गौत्र और यशः कीर्ति इन१६ प्रकृत्ति यों के बंधका व्यवच्छेद करे. उस वक्त वाद दुसरेही समय में उन महात्माओंको उपशांत कषायी कहे जाते हैं क्यों कि यहां ही मोहनीय की सर्व २८ही प्रकृत्तियोंका सर्वतः उपशांत होता है.

वो उपशांत कषायी महात्मा जघन्य से तो एक समय ही रहै, और उत्कृष्ट अंतर मुहूर्त पर्यंत रहै. फिर तो जरूरही पतन को प्राप्त होते हैं. वो पतन दो तरह से होता है:— एक भव से और दुसरा काल से.

(१.) जिसका आयु पूर्ण होजावें उसवक्त मनुष्य भवका क्षय होने से मरकर अनुत्तर विमान में देवता होवे. वहां प्रथम समय मेंही बंध सक्रमणादी आठों कारणों फिर उदय प्रवर्तावे. वो सीधाही इग्यारवे गुणस्थान से चौथे गुणस्थान परही आकर ठेहरता है. परंतु वीच में के गुणस्थानोंको बिलकुलही स्पर्शता नहीं है. और उपशम सम्यक्त्वसे पडकर उसही समयमें वेदक सम्यक्त्वी होताहै, सो भव क्षय पडवाइ जानना- और (२) इग्यारवे गुणस्थान का जो अंतर मुहूर्त का काल है सो पूर्ण भोग कर उपर जाने के रस्ते के अभाव से वो वहां से पीछे पडे, हो जहां २ बंध उदय उदीरणा की प्रकृत्ति का व्यवच्छेद हुवा है तहां२ से पीछा करता जिस तरह से चडेथे वैसीही तरह पीछा पडे, वो पडते हुवे कोइ प्रमत होवे, कोइ अविरति होवे और कोइ— सास्वदानी होकर मिथ्यात्व में भी आते हैं.

यह उपशम श्रेणी एक भव में उत्कृष्ट दो वक्त करते हैं, परंतु जो दो वक्त उपशम श्रेणी करते हैं वो निश्चय से उस भव में क्षपक श्रेणी नहीं करते हैं, परंतु एक वक्त उपशम श्रेणी कर दुसरी वक्त क्षपक श्रेणी करलेवें तो कुछ ना नहीं है.

" क्षपक — श्रेणी. "

क्षपक श्रेणी में प्रवर्त ने वाले महात्मा मनुष्य की-आठ वर्ष से अधिक उम्मर, वज्र बृष नारच संघयण, शुद्ध ध्यान वंत, अविरति-देश विरति-प्रमत संयाति अप्रमत संयती इन में से कोइ भी होवो, परंतु इतना विशेष कि-जो केवल अप्रमत संयाति ही होवेतो पूर्वके जानकर होवे, और शुक्ल ध्यान उपगत होवे. और दुसरे सब धर्म ध्यान उपगत होते हैं. ऐसे जीव शुभ योगमें वर्तते क्षपक श्रेणीका आरंभ करते हैं. वो प्रथम अनंतान बंधि चौककी विसंयोजना कर खपावे, इस विसंयोजना करनेकी विधि पाहिले कह आये हैं वैसेही जाणना तदनंतर-तीनों मोहनीयको क्षपाने प्रवर्त होवे. वहां यथा प्रवृत्ति आदि तीनों करणों पाहिले कहे वैसीही तरहसे करे. परंतु इतना विशेष जो अपूर्व करणके पाहिले समय सेही अनुदिन मिथ्यात्व और मिश्रका दल वो उदय वन्त सम्यक्त्व मोहनीय में गुण संक्रमण कर संक्रमावे, और उन दोनों का उद्वल अर्थात संक्रमण करना शुरु करे. उस वक्त प्रथमतो बडे २ जो स्थिति खण्ड हैं उन्हकों उवेले. उस से दुसरा स्थिति खण्ड बहुत कम उवेले. उस से भी तीसरा बहुत कम उवेळे यों अपूर्व करण के अंतिम समय पर्यंत उवेलना करे. इसमें जो अपूर्व करण के पाहिले समय जो स्थिति का सत्तावन्त होवे उस से असंख्यात गुण कम स्थिति का सत्तावंत होवे.

तदन्तर दुसरे समय में अनिवृति करण में प्रवेश करे, वहां भी स्थिति घात आदि सर्व पूर्वोक्त विधि प्रमाणें ही कर ते हैं. अनिवृत्ति करण के प्रथम समय में दर्शन त्रिक का भी देशोपशमना निद्धति निकाचनाका व्यवच्छेद करे; वहां प्रथम समय से दर्शन मोहनीय त्रिककी स्थिति सत्ताका घात करता २ सहश्रों गम स्थिति खण्ड गये बाद, बाकी जिस वक्त असन्नी पचेन्द्रिय की स्थिति सत्ता समन स्थिति रहे. फिर उतनेही स्थिति खण्ड के सहश्रों गम गये बाद चौरिन्द्रिय की स्थिति समान सत्ता रहे, फिर उतनेही स्थिति खण्डके सहश्रों गम गये बाद, तेन्द्रिय की स्थिति समान सत्ता रहे, फिर उतने ही स्थिति खण्ड के सहश्रों गम गये बाद वेन्द्रिय की स्थिति जितनी सत्ता रहे. फिर भी उतनेही स्थिति खण्ड के सहश्रों गये बाद पल्योपम के असंख्यातवे भाग प्रमाणें दर्शन त्रिक की स्थिति सत्ता रहै, तदन्तर तीनो दर्शन मोहनीय का भी प्रत्येक एकेक संख्यातवा भाग छोड कर बाकी की सर्व स्थिति खपावे तदन्तर फिर भी बाकी छोडा हुवा संख्यात भाग का एक संख्यात वा भाग

छोडकर वाकीकी सर्व स्थिति की घात करता २ स्थिति घात के वहुत सहश्र अति-क्रमें उसवक्त मिथ्यात्व के असंख्यात भाग का खन्डन करे और मिश्र मोह तथा स म्यक्त्व मोह का संख्यातवा भाग का खण्डन करे. उस के वाद यों वहुत स्थिति खण्ड गये वाद, जिसवक्त मिथ्यात्व का दल आंवलिका मात्र रहे, और मिश्र मोह तथा सम्यक्त्व मोह का दल पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाणेही रहता है.

अव स्थिति खण्ड के दल को खण्डन करने की प्रत्येक विधि कहते हैं:—खण्डन किये हुवे ऐसे मिथ्यात्व के दल उनका मिश्र और सम्यक्त्व दोनों में प्रक्षेप करे, और मिश्रका दलतो फक्त सम्यक्त्व मेंही प्रक्षेप करे, और सम्यक्त्व का दल सम्यक्त्व अपने नीचे की स्थिति में प्रक्षेप करे, उसके वाद जो मिथ्यात्व का दल आवालि मात्र रहा है. उस भी स्तिवुक संक्रम कर सम्यक्त्व में संक्रमावे. तव मिथ्या-त्व क्षीण होवे. उसके वाद मिश्र का तथा सम्यक्त्व का असंख्याते भाग कर के उस के खण्डमें वाकी एक भाग रक्खे. फिर उस के भी असंख्यात भाग कर एक भाग वाकी रक्खे. और सर्वो का खण्डन करे. यों कर ते २ कितनेक स्थिति खण्ड गये वाद, मिश्र मोहनीय एक आवालिका मात्र रहै, उस वक्त सम्यक्त्व मोहनीय की स्थि ति सत्ता आठ वर्ष प्रमाण की रहे उस वक्त निश्चय नय के मत से तो सर्व विघ्नोंका नाश हो गया! इसलिये इसे दर्शन मोहनीय का क्षपक (क्षायिक) सम्यक्त्वी) कहना.

तदनन्तर-फिर भी सम्यक्त्व के स्थिति खण्ड को अंतर मुहूर्त प्रमाण उकेरे, उसका दल उदय समय से आरंभ कर सर्व स्थिति सत्ता समय २ संक्रमावे, उस में भी उदय समय सव से थोडी संक्रमावे. उस से दुसरे समय असंख्यात गुण अधिक उस से तीसरे समय असंख्यात गुण आधिक, यों समय २ असंख्यात गुण आधिक २ संक्रमाता २ इस गुण श्रेणी के मस्तक पर्यंत जाणना. उसके वाद ऊपर तो वि-शेष २ हीन जहां लग स्थिति का अंतिम समय होवे वहां लग संक्रमावै, यों अंतर मुहूर्त २ प्रमाण अनेक स्थिति खण्डों को उकेरता है. और निक्षेपण भी करता है, वो स्थिति दल में संक्रमाता द्विचरम स्थिति खण्ड पर्यंत जावे. उस द्वीचरम स्थिति खण्ड से अन्तिम खंड असंख्यात गुणा करे; वो आन्तिम स्थिति खण्ड जिस वक्त उकेरे उसे क्षपक कृत करण ऐसा नाम कहना. इस कृत करणाद्धा में वर्तता ऐसा जीव, किसी पूर्व आयुका वंध किया होतो वो आयु क्षय हुवे मरकर चारों गति में की कि-सी भी गति में अवतार लेलेता है. और लेश्या के विषे पहिले तो शुक्ल लेश्या में था

और वर्तमान में तो अन्य हलकी लेश्या में जावे, इसलिये सम्रक क्षय का शुरु करने वाला प्रस्थापक होकर मनुष्य निष्टापक होता भी चारों गति में का जीव कहा है, और जो पूर्व बंधे हुवे मनुष्य वाला क्षपक श्रेणी शुरु करे, और अन्नतान बंधि चौकडी को खपाकर फिर मृत्यु होणे के संभव से श्रेणी से विरमें तो भी अनंतान बंधि का बीज भूत मिथ्यात्व है उसका नाश हुवा नहीं इसलिये फिर भी कदाचित् अनंतान बंधि सजीवन करते प्राप्त होवे. परंतु जिसने मिथ्यात्व का क्षय किया है वो मिथ्यात्व के विनाश से फिर अनंतान बंधि का बंध नहीं करे. क्योंकि बीज विना अंकूर की प्राप्ति नहीं होती है. और इन सातों प्रकृत्ति कों क्षय कर जो चढते परिणाम में मृत्यु प्राप्त होवे तो अवश्य देवगति मेंही उत्पन्न होवे. और जो पतीत परिणामी होवे तो अनेक प्रकार के परिणामों के संभव से जैसे परिणामकी विशुद्धि में प्रवर्तता मरण करे तैसी गति में जावे, और जिस ने पूर्व आयुका बंध किया है, ऐसा जीव जो उस वक्त काल करै नहीं तो भी सात प्रकृत्ति के क्षयसे निश्चय उन के वैसै हि परिणाम रहे, परंतु आगे की दुसरी चारित्र मोहनीय की प्रकृत्ति खपानेका उद्यम करे नहीं. और क्षणि सम्रक पूर्वायु बंध के सववसे मुक्ति नहीं पावे. तो भी तीसरे अथवा चौथे भव में तो जरूरही मोक्ष पावे; क्योंकि जिस ने देवायु या नरकायु का बंध किया हो तो वो देवता अथवा नरक का भवकर वहां से मनुष्य होकर तीसरे भव में मोक्ष पावे. और जो मनुष्य अथवा तिर्थंच का आयु बंध किये बाद सम्रक क्षय करे, वो नियमा से असंख्या वर्षायुतका बंध करे. (परन्तु जिसनें अवल संख्यात वर्षायु के स्थान में जानेका वन्ध किया हो तो वो सम्रक का क्षय नहीं करता है.) और वो मरकर निश्चय से युगलियाही होवे. ओर वहां तो भव प्रत्यय निश्चय से देवायुकाही बंध है, इसलिये वो देवगति मै जावे, और देवगति में भव प्रत्यय सम्यक्त्व होने के सवव से मनुष्यायु काही वन्ध करे इसलिये वहां से चवकर मनुष्य होवै, और वहां फिर आयुर्वन्ध करे नहीं, फक्त चारित्र गृहणकर बाकी रही २१ चारित्र मोहनिय की प्रकृत्ति का क्षय कर मुक्ति पद प्राप्त करे इस अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वी चौथे भव से मोक्ष प्राप्त करता है.

(इन सातों प्रकृत्ति का क्षय तो अविराति सम्यक्‍ दृष्टि गुणस्थान में ही होता है, और जो करेतो देशाविराति, प्रमत संयति, अप्रमत संयति इन में से कोइभी कर सक्ता है)

और जो आयु विना बन्धे क्षपक श्रेणीका आरंभ करे तो वो अवल इस सम्‌क का क्षयकरे तो वो नियमा से अनुपरत परिणाम वन्त—चडते परिणाम से आगे चारित्र मोहनीय की प्रकृत्तियों को क्षपाने उद्यम कर, तब—यथा प्रवृत्ति आदि तीनो करणों (उपशम श्रेणी में कहे मुजबही यहां) करे. यहां अप्रमत गुणस्थान मे यथा प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण गुणस्थान में अपूर्व करण और आनि वृत्तिबादर गुणस्थान में अनिवृत्ति करण करे. यहां अपूर्व करण में स्थिति घात आदि कर अप्रत्याख्यानी चौकडी और प्रत्याख्यानी चौकडी की आठों कषायों को ऐसी तरह सेखपावे कि-वो अनिवृत्ति करणाद्धा के प्रथम समय मेंहीं उस कषायाष्टक की पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण मात्र स्थिति बाकी रहे. फिर-थीण द्वित्रिक, नरक द्विक, तिर्यंच द्विक, पाहिली चार जाति, स्थावर नाम, उद्योत नाम, सूक्ष्म नाम, साधारण नाम नरगति और तिर्यचगति तत्प्रायोग नाम कर्म की १३ प्रकृत्ति, तथा पूर्वोक्त थीणद्धि त्रिक सो दर्शनावरणी की यों सव १६ प्रकृत्ति यों को उद्वल ना संक्रमकर प्रति समय उवेल २ जब पल्योपम के असंख्यातवे भाग जितनी सी स्थिति वहां रहे तब उन १६ प्रकृत्तियों को प्रतिसमय वन्धती हुइ अन्य प्रकृत्ति में गुणसंक्रमण कर संक्रमा २ कर क्षीण करता २ अनिवृत्ति वादर गुणस्थान के संख्याते भाग गये वाद वाकी एकही भाग रहे तब उन सब प्रकृत्तियों का क्षय करे.

(यहां आचार्यो के दो मत हैं:—(१) अप्रत्याख्यानी चौकडी और प्रत्याख्यानी चौकडी जो पहिले खपानी शुरु करी थी परन्तु अभीतक क्षय हुइ नहीं. उसके वीच में पहिलेही उन १६ प्रकृत्तियोंका क्षय किया, और (२) यह १६ प्रकृत्तियों का क्षय करती वक्त ही वीच में उन आठों प्रकृत्ति का क्षय कर दिया ऐसाभी कितनेक आचार्योंका फरमान है.)

आठ या शोले कषाय खपायेवाद अन्तर मुहूर्त में ९ नो कषाय और संज्वल की चौकडी का अन्त करण करे, फिर नपुंसक वेद की ऊपर की स्थिति वाला दल उवेलने की विधि सेही खपाना शुरु करे, वो अंतर मुहूर्त में उवेलता २ पल्योपम के असंक्यातवे भाग प्रमाण जब स्थिति रहे तब बंधती हुइ प्रकृत्तियोंमें उसका दल गुण संक्रमकर संक्रमावे, यों करते अंतर मुहूर्तमें उसका सर्वतः नाश होवे. फिर वो नपुंसक वेद की नीचे की स्थिति का दल जो नपुंसक वेदके उदय में श्रेणीका प्रारंभ किया हो तो वेद २ कर खपावे, अन्यथा तो आवली मात्र रहे तब उसे उदयवन्त वद्यमान प्रकृ

त्तीमें स्तिबुक संक्रमकर संक्रमावे यों नपुंसक वेद क्षय किये बाद, अन्तर मुहूर्त में स्त्री वेदको भी ऐसी तरह से खपावे. फिर हांस्यादि छेओं प्रकृत्तिका एकही वक्त में साथही क्षय करीना शुरू करे, उन नो कषाय का उपर की स्थितिकी दल पुरुष वेद मे पतद् गृह न होवे इसलिये उस का पुरुष वेद में संक्रम नहीं करता हुवा संज्वल के क्रोध में पूर्वोक्त रीति से संक्रमावे. यों कर ने से अन्तर मुहूर्त में उन छेओं नो कषाय का क्षय होवे, उस ही समय में पुरुष वेद का बन्ध उदय ऊदीरणा का विच्छेद होवे और एक समय कम दो आवलीका बन्धाथा जो पुरुष वेदका दल वो छोडकर बाकी सब क्षय होवे. उस समय में अवेदक होवे. यह पुरुष वेद में श्रेणी करे उसकी विधि कही, और जो नपुंसक वेद में श्रेणी का प्रारंभ करे वो वो पहिलेही स्त्रिवेद और नपुंसक वेद दोनों का एकही वक्त क्षय करे, उस क्षय के समयमें ही पुरुष वेदका बन्धादिका विच्छेद होवे. उसवक्त अवेदक हुवा पुरुष वेद का और हाँस्यषट्क का एकही वक्त में क्षय करे.

और जौ स्त्री वेद के उदय में श्रेणि आरंभे तो पाहिले नपुंसक वेदखपावे उसके क्षय की वक्तही पुरुष वेदके बन्धादिका विच्छेद होवे फिर नपुंसक वेद और हांस्य षटक का एक वक्तमें क्षयकरे.

और जो पुरुष वेदमें श्रेणीकी आरंभकरे तो वो पुरुषवेदी क्रोधको वेदेता हुवा क्रोधके तीन विभाग करे—१ जो घोडे के कान के जैसे छोटे छोटे पुद्गलो के खण्ड करे इसलिये उसे अश्वकरणाद्धा कहते हैं. २ उस रसरहित दल को कूट २ कर किट्टिकी तरह अत्यन्त सूक्ष्म करे उसे दूसरा किट्टि करणाद्धा कहना. ३ वो किट्टि करणाद्धा किये बाद उस किट्टि को वैदे उसे तीसरा किट्टिवेदनाद्धा कहीये. उस में से प्रथम अश्वकरणाद्धा में वर्तता हुवा समय २ में अनन्त अपूर्व स्पर्द्धक सज्वलकी चौकडी के अन्त करण की ऊपर स्थिति में करे; अर्थात सज्वलकी चौकडी के अन्तकरणकी उपरकी स्थिति के प्राति समय अनन्त अपूर्व स्पर्द्धक करे. (स्पर्द्धकरन की विधि पहिले कही वैसीही जाणना) और इस अश्वकरणाद्धा में वर्तता पुरुष वेदका भी समय कम दो आवालिका रूप काल कर के क्रोध में गुण संक्रमण कर के संक्रमाता हुवा अन्तिम समय में सर्वतः संक्रमावे. यों यहां पुरुष वेद का क्षय होवे. और अश्वकरणाद्धा की भी समाप्ती हुइ. फिर किट्टि करणाद्धा में प्रवेश कर संज्वलकी चौकडी की ऊपर की स्थिति गत दलिक की किट्टि कर, वो किट्टि परमार्थ से तो अनन्त है, तो

भी अल्पज्ञों को समजाने स्थूल भेद की अपेक्षा-असत् कल्पना से एके क कषाय की तीन २ कल्पना कल्पनी तव १२ किट्टि होवे, यह तो क्रोधसे क्षपक श्रेणी आरंभे उस आश्रिय कहा.

और जो मानोदय में श्रेणि प्रतिपन्न होवे तो उसे उद्वलन अनेक प्रकार की विधिकर क्रोधका क्षय कियेबाद वाकी रही तीनो कषाय की ऊपरोक्त विधिसे ९ किट्टि करे. और जो माया के उदय मे श्रेणिका आरंभ करेतो क्रोध और मान इन दोनों को उद्वलन विधिकर खपाने से वाकी रही दोनों कषाय की ६ किट्टिकरे. जो लोभके उदय में श्रेणिका आरंभ करैतो क्रोध मान माया इन तीनों को उद्वलन विधिकर उवेलकर खपावे, वाकी रहे एक लोभकी ही ३ किट्टि करे. यह किट्टि करने की विधि कही.

यह किट्टि करणाद्धा पूर्ण हुवे वाद किट्टिवेदना अद्धा में प्रवेशकीया हुवा जो क्रोध मे श्रेणीका आरंभ करे तो वोक्रोध की दूसरी स्थिति में रहा हुवा प्रथम किट्टिका दलिया दूसरी स्थिति में से आकर्ष प्रथम स्थिति गत करके वो जहां तक एक समय अधिक एक आंवलीरहे वहां तक वेदताहै. फिर उसके अन्तर समयमें ऊपरकी दूसरी स्थिति में रहा हुवा दूसरी किट्टि का दल उसको आकर्षकर प्रथम स्थिति गत कर के वोभी एक समय अधिक एक आवली रहे वहां तक वेदे. फिर ऊपर की स्थिति तीसरी किट्टि के दल को आकर्षकर प्रथम स्थिति गत कर वेदताहै. यों तीनो किट्टिवेदनाद्धा में ऊपर की स्थिति के दालिक को गुण संक्रम कर प्रति समय असंख्यात गुण वृद्धि युक्त संज्वल के मान में प्रक्षेप करे, यों तीसरी किट्टि के आद्धाके अन्तिम समय में संज्वल के क्रोधका वन्ध उदय ऊदीरणा का साथही व्यछेद होताहै. और सत्तामें भी अन्तिम समय कम दो आवालिका वधा हुवा दल रहा है उस सिवाय दुसरा नहीं है. क्यो कि सव प्रक्षेप मान में होगया है; उसे आगे के समय में मान की दूसरी स्थिति में से प्रथम किट्टिका दल आकर्ष कर प्रथम स्थिति करके अन्तर मुहूर्त तक वेदते हैं. वहां जो क्रोधका दल वाकी रहा है उसे एक समय कम दोआवालिका गुणसंक्रम कर संक्रमावे और अन्तिम समय तो सर्व संक्रम कर संक्रमावे. अर्थात यहां क्रोध का क्षय हुवा.

योंही मानकी प्रथम किट्टि का दल प्रथम स्थिति में किया हुवा है उसे वेदते २ एक समय आधिक एक आवली वाकी रहै तव फिर दूसरे समय में मानकी ऊपर की

स्थिति का दल आकर्ष कर प्रमथ स्थिति गत कर ऐसेही वेदते २ समयाधिक आवली बाकी रहे. तदन्तर समय में मानकी ऊपर की स्थिति की तीसरी किट्टि कादलआ कर्ष कर उसको प्रमथ स्थिति गत कर जहां तक एक समयाधिक एक आवालिका मात्र रहै वहां तक वेदे. तब उसके अन्तिम समयमें मानका बंध उदय ऊदीरणाका एकही व क्त में विच्छेद होवे.; और सत्तामे एक समय कम दो आवालिका बन्धा हुवा दल रहै. क्यों कि बाकी रहा हुवा दल माया मे प्रक्षेप कर खपाया है.

तैसेही माया का दूसरी स्थिति गत की प्रथम किट्टि का दल उसे प्रथम स्थि- ति गत कर अन्तरमुहूर्त पर्यन्तवेदे. उसमें जो बाकी बचा हुवा मानका दल रहाथा उ- सको समय कम दो आवालिका गुण संक्रम कर अन्तरमुहूर्त पर्यन्त माया में संक्रमावे. और अन्तिम समय तो सर्व संक्रम कर संक्रमावे, तब मानका क्षय हुवा. और मायाकी भी प्रथम किट्टि कादल वेदते समयाधिक आवालिका मात्र रहै तब तदन्तर समयमें आगे की दूसरी स्थिति किट्टि दल को प्रथम स्थिति कर के समय कम आवली रहे वहां त क वेदे. तदन्तर समय में दूसरी स्थिति गत रहा हुवा तीसरी किंट्टि का दलिक उस- को आकर्ष कर प्रथम स्थिति गत कर के वेदे. यों पूर्वोक्त रीतिसे माया की किट्टि के दल को वेदता २ अन्तिम किट्टि का दल प्रथम स्थिति गत कर वेदते हुवे. तब समया धिक आवालिका मात्र रहै, तब मायाका वन्ध उदय उदीरणा का व्यच्छेद हुवा. फक्त एक समय कम दो आवालि सत्ता में रहा है. बाकी के सब को संज्वल के लोभ में मि लया है.

फिर संज्वल के लोभकी ऊपर की स्थिति के प्रथम किट्टि का दल आकर्ष कर प्रथम स्थिति गत करके अन्तर मुहुर्तमें वेद ताहै. बाकी रहा समय कम दो आवीलक संज्वलकी मायाका दल उसको अन्तर मुहूर्त पर्यन्त गुण संक्रम कर लोभमें संक्रमावते अंतर मुहूर्त के अन्तिम समय में सर्व संक्रम कर संक्रमावे. उस वक्त संज्वल के लोभकी प्रथम किट्टि का दल भी समयाधिक आवालिका जितना रहै. तदन्तर समय में संज्वल के लोभके ऊपरकी दूसरी स्थिति की दूसरी किट्टिका दल खेंचकर प्रथम स्थिति गत क र के वेदते २ आगे की तीसरी किट्टि के दल गृहण कर के उसकी सूक्ष्म २ किट्टिक रे. वोभी जहां तक दूसरी संज्वल के लोभको किट्टिका जो प्रथम स्थिति गत किया है उसकी समयाधिक आवालिका मात्र रहै वहां तक करे. उस समय मेंही संज्वलके लो- भ का वन्ध विच्छेद होवे. और वादर कषाय का और ऊदीरणा काभी विच्छेद हो-

वे. और अनिवृत्ति बादर गुणस्थात के काल काभी विच्छेद होवे. इन तीनों का साथही विच्छेद होताहै.

उसके आगे के समय में लोभकी सूक्ष्म किट्टिका दल ऊपरकी दूसरी स्थिति में से आकर्ष कर प्रथम स्थिति करके वेदे, उसे सूक्ष्म सम्पराय कहते हैं. पहिले जो तीसरी किट्टि की बाकी रही आवलिका की अन्तिम किट्टि रही है वो सर्व वेदता हुवा पाप प्रकृति यों में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे, तब लोभकी प्रथम किट्टि की बाकी रही सब आवलिका सो दूसरी किट्टि के दल में संक्रमावे और दूसरी किट्टि की सब आवलिका तीसरी किट्टि के दल में संक्रमा कर वेदे.

अब लोभकी सूक्ष्म किट्टिका दल और पूर्व समय कम दो आवलिका बढा हुवा दल उसकी प्रति-समय स्थिति घातादिक कर के वेदता हुवा सूक्ष्म सम्पराय अद्धा के संख्याते भाग जावे और एक भाग बाकी रहे वहां तक खपावे. अब जो एक समय रहा है उसे संज्वल के लोभ की सब अपवर्तना करणे से अपवर्त कर × अर्थात् संज्वल के लोभकी स्थिति और रसको कम कर के बाकी सूक्ष्म सम्पराय अद्धा जितना रक्खे. अब वो लोभकी अपवर्ती हुइ स्थितिको वेदता २ संज्वल का लोभ समयाधिक आवली मात्र रहे वहां तक जावे. वहां इसकी ऊदीरणा हो-विराय पाकर फक्त उदय करकेही वेदते हैं. वो अन्तिम समय तक जानना. और अन्तिम समय में ५ ज्ञानावरणी. ४ दर्शनावरणी, ५ अन्तराय, १ ऊंच गौत्र १ यशःकीर्ति. इन १६ प्रकृत्तिं का बन्ध विच्छेद होताहै. और मोहनीय के उदय का और सत्ताका भी विच्छेद होता है.

संज्वल के लोभका सर्वांश क्षय किये बाद-क्षीण कषायी हुवे, उनके भी मोहनीय विना, दूसरे सब कर्मोंका-स्थिति घात रसघात-गुणश्रेणी-गुण संक्रम यह पुर्वोक्त विधिसेही इस क्षीण कषाद्धाके संख्याते भाग जावे वहां तक प्रवर्ते. और बाकी एक भाग रहे तब-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणी, ५ अन्तराय,. और २ निद्रा यों

× अपवर्तना का स्वरूपः—जो कर्म की स्थिति रस का घटाना अथात् सज्वल का स्थिति रस घटाकर बाकी सूक्ष्म सम्पराय जितना रक्खे. अभी भी सूक्ष्म सम्पराय अद्धा अन्तर मुहूर्त जितनी रही है. उस वक्त मोहनीयके स्थिति घातादि पांच पदार्थ निवर्ते. परन्तु अभीतक दूसरे कर्मों का स्थिति घातादिक प्रवर्ता ताहै. यहा जो कर्म की स्थिति तथा रसका घटाना उसी का अपवर्तना " कहना.

१६ प्रकृत्ति की सत्ताकी स्थिति सर्व अपवर्त्त मान से अपवर्तन कर अर्थात्-घटा कर क्षीण कषाय के अद्धा जितनी करे, परन्तु निद्रा द्विक की स्थिति स्वरुप की अपेक्षा से एक समय कम करे, और कर्म रुपसे बराबर होवे. सो कषाय अद्धा अभीभी अन्तरमुहूर्त प्रमाण है. उस वक्त उन १६ प्रकृत्तियों के स्थिति घातादि विराम पावे. परन्तू जो दूसरी बाकी रही स्थिति है उसके स्थिति घातादि कायम है. इन १६ प्रकृत्ति की उदय ऊदीरणा करके वेदते २ एक समयाधिक आवली मात्र बाकी रहे वहां तक वेदे. फिर ऊदीरणा से भी विराम (निवृत्ति) पावे. उस वक्त एक आवली मात्र फक्त उदय करके ही वेदते हैं. वो भी क्षीण कषाय के द्विचरम × समय पर्यन्त फिर उस द्वि चरम समय में—छद्मस्त (ढकी हुइ) अवस्थामेंही निद्रा और प्रचला कानाश करे—सत्ताकी अपेक्षा से क्षय होवे, फिर—५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय ५अन्तराय इन १४ प्रकृत्ति का छद्मस्त अवस्था के अन्तिम समय में घात करे.

यों इन १४ प्रकृत्तिका क्षय होतेही दूसरे समय में व्यवहार नय के मतानुसार सयोगी केवली भगवन्त होते हैं ! और निश्चय नय के मतानुसार तो उसही समय में केवली गिनेंजाते हैं ! उस केवल ज्ञान रुप महादिव्य जगत्—चक्षुकर लोकालोक के सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भवों को सर्वांश कर देखते जानते हैं. इस वक्त जो परम पुण्यात्मा जीव तीर्थंकर गौत्र का उपार्जन कर के आये होते हैं उनके यहां *अष्ट प्रतिहार्य, ३४ अतिशाय, ३५वाणी गुण. इत्यादि गुणों की प्राप्ती होती है. यह सामान्य केवली के नहीं होते हैं. यह जघन्य तो अन्तर मुहूर्त पर्यन्त उत्कृष्ठ देशऊणा (८ वर्ष कम) क्रोड पुर्व पर्यन्त भूमण्डल में सुखसे विहार करके सत्य धर्म को पूर्ण प्रकाश में लाते हैं.

इन केवल ज्ञानी भगवन्तों में से जिनके आयु कर्म थोडा होवे और वेदनीय कर्म अधिक होवे तो ८ समयमें समुद्घात हो वो कर्म बरोबर होजाते हैं. समुदघात हुवे वाद अन्तर मुहुर्त बाद व उत्कृष्ट ६ महीने बाद मुक्ति प्राप्त करतेहैं. और बहुत से केवली भगवन्त विना समुद् घात कियेही मुक्ति प्राप्त कर तेहै.

फिर दोनों प्रकार के केवली भगवन्त भी भवोप गृही कर्मों के क्षय करने के

× अन्तिम समय के पहिले के समय को " द्विचरम " कहा जाता है * सामान्य केवली के और तीर्थंकर के फक्त इन गुणों की ही न्युन्याधिक ताहै बाकी तो सर्व गुण बरोबर होते है.

लिये—लेश्यातीत, अत्यन्त अप्रकम्प्य. परम निर्ज्जरा का कारण ऐसा शुक्लध्यानका तीसरा पाया ध्याते हुवे योगोंका निरुंधन करना शुरु कर तेहैं. प्रथम बादर वचन जोग का निरुंधन करने को प्रवर्ते. वहां बादर काया योग कर के बादर मन योग का और सुक्ष्म मन योग कर के बादर वचन योग को रुंधन करे. फिर सूक्ष्म काया योग कर बादर काया जोग का रुंधन करे. फिर उसही कर के सूक्ष्म मन जोग का रुंधन करे, फिर सूक्ष्म वचन जोग का रुंधन करे. फिर सूक्ष्म काया जोग का रुंधन करते सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नामक शुक्ल ध्यान के तीसरे पाये करके उदारीक शरीर के अन्दर रहे हुवे प्रदेशों के छिद्रों को आत्म प्रदेशों को घन रूप कर पूर्ण करे (खड्ड—बुरे) तब दो भागके प्रदेशों घन होने से मूल शरीर से तीसरे भागके जितनी अवघेहना उन आत्म प्रदेशों की घन रुप होकर रहजाती है. इसही ध्यान में प्रवर्त ते हुवे स्थिति घातादि कर सयोगी केवली गुणस्थिान के अन्तिम समय—एक आयुष्य विना बाकी के तीनों कर्मो को अयोगी गुणस्थान की अवस्था है वैसे स्थिति वन्त करे; परन्तु इतना विशेष—जिनकर्मो का अयोगी गुणस्थान में उदय नहींहैं, उन कर्मो की स्थिति स्वरुपापेक्षा करके समय मात्र कम करे. कर्म स्वरुप की अपेक्षा से अयोगी अवस्था जितनी करे.

उस अयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में; २ औदारिक द्विक, ४ तेजस—कार्मण शरीर, १० छे संस्थान, ११ प्रथम संघयण १५ वर्ण चतुष्क, १६ अगुरु लघु नाम, १७ उप घात नाम, १८ परावात नाम २० शुभ—अशुभ विहायो गति. २१ प्रत्येक नाम, २२ स्थिर नाम, २३ आस्थिर नाम, २४ शुभ नाम, २५ अशुभ नाम, २६ निर्माण नाम, २७ सुस्वर नाम, २८ दुस्वर नाम २९ उशाश्वस और ३० दोनो वेदनीय में की एक वेदनीय, इन ३० प्रकृत्ति की उदय और ऊदीरणा का विच्छेद होता है, तब दूसरे समय में अयोगी केवली होते हैं; यहां फक्त पंच लघु अक्षर (अ. इ. उ. ऋ. ल.) उच्चार करने में जितना काल लगता है, उतने काल तक रहते हैं, इसस्थान को प्राप्त होतेही व्यपरित क्रिया—अप्रतिपाती नामें शुक्ल ध्यान का चोथा पाया प्राप्त होता है.

इस गुणस्थान में स्थिति घातादि कुछभी नहीं हैं, फक्त जितनी उदय वाति प्रकृत्ति है उनको वेदता हुवा—खपावे. और जिन प्रकृत्तिका उदय नहीं फक्त सत्तामें हीहै उनके दलिये उने स्तिबुक संक्रम कर उदयवति प्रकृत्ति में संक्रमा कर वेद २कर खपा—

वे. यों अयोगी गुणस्थान के द्वि–चरम समय पर्यन्त कर तेहैं.

अब यहां जो स्वभावसे प्रकृत्तियों का नाश होता है उनके नामः—२ वैक्रय आहारक - शरीर, ४वैक्रय आहारक बन्धन. ६ वैक्रय आहारक संघातन. ८ वैक्र-य आहारक अंगोपांग. ९ देव गति, १० देवानु पूर्व्वी, यह १० प्रकृत्तियों देवगति के बन्ध की वक्त में बन्ध ती है, इसलिये इने देवगति सहचारीणि कही जाती है. इनका भी द्विचरम समय में नाश करते हैं. फिर ३-औदारिक - तेजस - कार्मण यह तीनों शरीर, ६ इन तीनों का बन्धन, ९ इन तीनों का सघातन, १५ छे संघयण, २१ छे संस्थान,२२ औदारिक अंगोपांग, २६ वर्ण चतुष्क, २७ मनुष्यानु पूर्व्वी, २८ पराघात नाम, २९ उपघात नाम३०अगुरुलघु नाम, ३२ शुभा शुभखगति, ३३ प्रत्येक नाम, ३४ अपर्याप्ता नाम, ३५ उश्वास नाम, ३६ स्थिर नाम, ३७ आस्थिर नाम, ३८ शुभनाम, ३९ अशुभनाम, ४० सुस्वर नाम, ४१ दुस्वर नाम, ४२ दुर्भग नाम, ४३ अनादय नाम, ४४ अयशकीर्ति नाम, और ४५ निर्माण नाम. यह ४५ प्रकृत्ति योंका यहां उदय नहीं होने से द्विचरम समय में इनका भी विच्छेद होता है.

अब द्विचरम समयमें खपाया १.जो साता असाता में का एक वेदनीय २ मनु–ष्यायु, ३ मनुष्य गति ४.पचेंन्द्रिय की जाति, ५ त्रस नाम, ६ बादरनाम, ७ पर्याप्ता-नाम, ८, सुभग नाम, ९ आदेय नाम, १० यशर्कार्ती नाम, ११ उंच गौत्र यह ११ ही प्रकृत्ति मनुष्यगति सहगत है, अर्थात् मनुष्यगति में यह प्रकृत्तियों जरूर पाती है, इसलिये मनुष्य शरीर के साथ इन ११ प्रकृत्ति का उदय तो सामान्य केवली में पा ता है, और १२ तीर्थंकर नाम सहित १२ प्रकृत्ति का उदय तिर्थंकर में पाता है, इन १२ प्रकृत्ति का चउदवे अयोगी केली गुणस्थान के अन्तिम समय में सर्वांश क्षय कर ते हैं. "कृतस्न कर्म विप्र मोक्षो मोक्षः" अर्थात्–सर्व कर्मों के बन्धन से मुक्त होना–छूटना उसीको मोक्ष कहते हैं. यों क्षपक श्रेणी प्रतिपन्न महात्माने अनुक्रम से सर्व कर्मोंका नाश करते हुवे चउदवे गुणस्थान के अन्तिम समय सर्व कर्मांश रहित होतेहैं उसही वक्त वो मोक्ष हुवे समजना.

सूत्र–पूर्व प्रयोगाद् - आविद्ध कुलाल चक्रवद्,

ऽसङ्गत्वाद् - व्यपगतलेपा लाम्बुवद्,

वन्ध छेद् , एरण्ड बीज वद्,
तथा गति परिणामच - ऽग्निशिखावच्च ॥
तदन्तर मूर्द्ध गच्छत्या लोकान्तात् ॥ तत्वार्थ सूत्र. अ. १० ॥

अर्थात्- "तदनन्तर" उन कर्मो के सर्वांश से छूटे वाद-(१) जैसे - कुम्भार का घुमाया हुवा चाक, छोडें वाद भी पूर्व के प्रयोग (धक्के) से वहुत कालतक घूमा (फिरा) करता है, तैसाही अनादि से परिभ्रमण करने का जो जीव का स्वभाव कर्म भाव करके हो रहाथा सो उन कर्मो से छूटे वाद भी मुक्ति स्थान में जाने तक की गमन क्रिया करता है. तथा वहुत काल से मुक्ति गमन के लिये तप संयमादि किरिया कर रहे थे उस प्रयोग से मुक्ति में जाते हैं. (२) जेसै-मट्टी से छाया हुवा तुम्वा पानी में डूवा हुवा सो वो मट्टीका का लेप गलनेसे उस संगत से रहित होने से स्व स्वभाव से पाणी के उपर अन्त में आकर ठेहरता हैं, तैसे ही आत्मा रूपतुम्वा जो कर्म रूप मट्टी से लेपाय हुवा संसार समुद्र में डूव हुवा था वो अनेक - अकाम सकाम निर्जरा रूप पाणी के प्रयोग से गलने से उस वजन से मुक्त हो हलका हुवा लोकान्त में मुक्ति है वहां जाकर ठेहरता है. (३) जैसे गोहे-डोडे में (फलमें) एरंडी का वीज वन्धा था वो फल सूक कर गोहा फटतेही एरंड वीज उछलकर उपर जाता है, तैसेही आत्मा कर्म रूप वन्ध से छूटतेही उपर को उछलता - जाता है. और (४) जैसे अग्नि से प्रज्वलित मशाल को जो कभी उलटी भी कर दी तो भी उसकी ज्वाला (झाल) उर्द्ध-उची दिशाकोही स्वस्वभाव से गमन करती है, तैसेही संसार में झुकाने वाले कर्म रूप पवन का अभाव होनेसे आत्मा स्वस्वभाव कर उर्द्ध-मोक्ष को जाती है.

प्रश्न-जो आत्मा का वन्ध से छूटे वाद उर्द्ध गमन करनेका ही स्वभाव है तो फिर मोक्षस्थान में जाकर अठक क्यों जाती है? ठेहर क्यों जाती है? आगे को क्यों नहीं गमन करती है?

उत्तर-"धर्मास्ति काय अभावात्"-अर्थात् जैसे मछलीको गमन शक्ति में पाणी की सहायता से है, तैसेही आत्मा और पुद्गलों का गमन धर्मास्ति काय नामक लोक व्यापी एक द्रव्य की सहायतासे है. अर्थात् धर्मास्तिके सहायसे ही आत्मा और पुद्गल गमन कर शक्ते हैं. उस धर्मास्तिका लोकाग्रके आगे अलोक में अभाव-नास्ति

होने से आत्मा आगे को नही जा सकती है. वहां ही लोक के अन्त में स्थिरी भूत होकर ठेहर जाती है.

श्लोक—दग्धे बीजे यथात्यन्ते । प्रादुर्भवति नाङ्कूरः ।
कर्म बीज तथा दग्धे । नारोहति भवाङ्कूरः ॥८॥

अर्थात्—जैसे दग्ध किया—अग्नि कर जला हुवा बीज से अंकूर का प्रादर्भाव होता है. अर्थात—जले हुवे बीज से अंकूरा नहीं फूटता है, ऐसेही संसारके बीज भूत सर्व कर्मो रूप बीज भस्म भूत होनेसे वो जन्म रूप या किसी प्रकारकी व्याधी-दुःख रूप अंकूर उत्पन्न नहीं करसकते है. जिस से सिद्ध परमात्मा सदा काल अचल और अव्याबाध हैं.

श्लोक—संसार विषया तीतं । मुक्ता नाम व्ययं सुखम् ॥
अव्या बाध मिति प्रोक्त । परमं परमार्षिभिः ॥ २० ॥

अर्थात्—वो मोक्ष स्थान में संस्थित रही हुइ आत्मा—संसार के सर्व विषयों से पर—अर्थात् श्रेष्ट और अव्या बाध अर्थात्—सर्व प्रकार की बाधा ओंसे रहित; अनन्त काल तकही न्युन्या धिकृता रहित एकसी ही बनी रहती हैं, ऐसे निरुपम—अत्युत्तम सुख के भुक्ता हैं.

(५) पांचवा—लक्षण द्वार का अर्थ.

ऐसी तरह से जो अनुक्रम से गुणस्थाना रोहण करते हैं-जों जों आगे २ के गुणस्थानों में वढते जाते हैं, त्यों त्यों उनके आत्म गुण भी आधिक्यता विशुद्धता को लेते हुवे बृद्धि होते हैं. वो गुण कौन से और कैसी तरह बृद्धिपाते है, यह स्वरुप दर्शाने के वासते पांचवा वा "लक्षण द्वार" कहा गयाहै.

प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान के लक्षण में जो शास्त्रवसे अन्यन्य ग्रन्थों से संग्रह कर के मिथ्यात्व के ३४ भेद लिखे गयहैं जिसका अर्थ.

(३४) मिथ्यात्व

सामान्य प्रकार से मिथ्यात्व के दो भेद—१ अव्यक्त मिथ्यात्व. और २ व्यक्त मिथ्यात्व.

१ अव्यक्त मिथ्यात्व सो—जैसे चन्द्रहांस्य मदिरा का सेवन करने से मनुष्य

वे भान हो मूर्च्छित हो पड जाताहै. उसे अपने पराये अच्छे बुरेका कुछभी भान नहीं होताहै,तैसेही सूक्ष्म निगोद से लगाकर असन्नी तिर्यंच तक तो यह एकही मिथ्यात्व निश्चय से पाता है, और बाकी के दंडको के जीवों में से बहुत से जीवोंगे यह मिथ्यात्व में पाताहै. इस मिथ्यात्व के वशमे पडेहुवे जीवों ज्ञानावरणी आदि कर्मो का अति तीव्र रस चन्द्रहॉस मदिरा जैसा प्ररिगमने से वो धर्म अधर्म पुण्य पाप अच्छा बुरा इत्यादि कुछभी नहीं समझते हैं. फक्त सुख दुःख रुप होती हुइ वेदना वेदने सिवाय दूसरा कुछभी ज्ञान उनमें न होनेसे अव्यक्त मिथ्यात्वी कहे जातेहैं.

(२) "व्यक्त मिथ्यात्व" सो-जैसे—किसीको पीलीया का रोग होने से वो श्वेत वस्तु को भी पित (पीली) देखताहै. तैसेही यह मिथ्यात्व एक सन्नी पचेन्द्रिय मेंही पाताहै, इसमिथ्यात्वके वश्य में पडे जीवको कर्मरुप पीलीये के रोगसे ग्रासित हुइ विपरीत बुद्धि कर सर्व पदार्थो विपरीत—उलटेही भाष होते हैं. सत्य को असत्य, असत्य को सत्य; न्यायको अन्याय, अन्यायको न्याय, इत्यादि सब उलट जानते—श्रद्धतेहैं. सो व्यक्त मिथ्यात्वी. आगेजो मिथ्यत्वके भेद किये जावेंगे उन सबोंका समावेश इसमें होताहै.

मुख्यत्व मिथ्यात्व के पांच प्रकार भी कहे हैंः—

(१) "अभिग्रह मिथ्यात्व" सो-जो जीवों-हट ग्राही—कदाग्रही होते हैं. वो अपने ध्यान में जो बात जची सो सब सची, बाकी की सब झूठी जानते हैं, कैसेभी सद्बोध —सदुपाय से उने समजाने कोइ भी समर्थ न होवे. और वो सत्संग भी इसही डरके मानहीं करतेहैं, कि रखे उन ज्ञानी महात्मा के पास जाउंगा तो मेरी श्रद्धा पलटा देवेंगेरे कभी कोइ उनको उसके धर्मकी असत्यता भी बतादेवे तो वो सीधा यह उत्तर प्रदान करें कि—इस मजब में ऐसे २ विद्वान श्रीमान लोक हैं सो वो क्या मूर्खहैं! वश—हमारे आगे यह पंचायत निकालाही मत करो ! ऐसा जो गर्दभ पुंच्छग्रही * कीमाफिक—दुराग्रही होवे सो अभिग्रही मिथ्यात्वी.

---

* किसी एक अनाज का व्यापार करने वाले व्यापारीने फजर होतेही अपने पुत्र से कहा कि तूं आगे चलकर दुकान लगा! में भी पीछेसे आताहुं. परन्तु याद रखना कि-"पाहिले ग्राहक को खाली मत जानदेना." यह हुकम पुत्र प्रमाण कर दुकान पर आया दुकान लगाइ. उस वक्त—एक गद्धेने आकर अनाज में मुंह डाला. तब दूसरा दुकान दार उसे भगाने लगा, तब वो वाणिक पुत्र संतप्त हो बोला कि—खबर दार ! इसे भगाना नहीं, खालेनदो, फिर हिं

(२)"अनाभिग्रह मिथ्यात्वी"—यह हट ग्राही तो नहीं होताहे. परन्तु भोला—निर्बुद्धि—असमझ होता है. यह सब देवों को सव गुरुओं को सब धर्मोंको सब धर्माव लम्बियों को एकसा जान ताहे मान ताहै. सब को वंदन नमन करे. सबकी सुने परन्तु भाव भेद कुछ समझे नहीं. जैसे कुडछी सब पकानों मे फिर आवे परन्तु किसीके स्वादका उसे ज्ञान नहोवे तैसे. इसे सत्यासत्य का निर्णय करने की कुछभी दरकार नहीं होती है, पूछे से जवाव देताहै कि—सब मजवोंमें बडे २ विद्वानों पण्डितों हैं वोक्या सब मूर्ख हैं ? अपन को इस झगडे में पडने की कुछभी जरुर नहीं है. हमारे भावतो सब अच्छे हैं, सब को मानेंगे पूजेंगे जिससेही हमारी आत्मा का उद्धार होजावेगा. ऐ-

---

साब समझ लेंगे. क्योंकि मेरे बाप का हुकम है कि-पाहिले ग्राहक को खाली नही जानदेना. यो सुन सब लोकों हंसने लगे. और उसे समझाने लगे कि—गद्धे को माल खिलाने का तेरे बाप का हुकम नहीं है. यह ग्राहक नहीं है ! परन्तु वो तो एकही मंज्जुर नहीं करे. इतने में तो गद्धा पेट भर कर चला. तब वाणिक पुत्र बोला कि—माल खाया जिसके कुछभी तो दाम देजावो ! इतना अवाज सुनतेही मार के डरके मारे वो गद्धा भगने लगा. उसके पीछे वो वाणिक पुत्र भी भगा और गद्धकी पुंच्छा खूब मजबूत पकडली. उसवक्त गद्धेने उस वाणिक पुत्रके छाती में मुहपर पेरों में लत प्रहार करने शुरुकिये. यह बिटम्बना उस की देखी कितनेक दयालु गृहस्थों जबर दस्ती कर पुंच्छ उसके हाथ में से छोडाने लगे. परन्तु वो छोडे नहीं. कहताहै कि—क्या में मूर्ख हूं ! जो मुफत में माल खाने दूंगा ! यो उसकी अनोखी मूर्खता का अवलोकन कर सब लोक चुपचाप स्वस्थान बैठे. और वो वणिकपुत्र के अङ्गमें जबर प्रहार लगने से मूर्छित हो परवश्य पुच्छ छोड पडगया ! उस वक्त उसका बाप भी आगया, और दूसरे के मुख से अपने पुत्र के मूर्खता के हाल सुन बडाही लजित हुवा. पुत्र को उठा दुकान में लाया. और कहने लगा कि—रेमूर्ख ! गद्धेको माल खिलाने का मेने कब कहाथा ! पुत्र बोला कि—गद्धेको मत खिलाना ऐसाभी तो नहीं कहाथा: तुमारा हुकम उठानें उतना कष्टसहा तो भी मुझे मूर्ख बनाते हो ! वश, जानी तुमारी अक्कल. यों सुन बापजी भी चुपचाप होगये !! भवार्थ—ऐसीही तरह से जो अभिग्रह मिथ्यात्वी होते हैं, वो शास्त्र के और सद्गुरुओ के बचनो का अर्थका अनर्थ कर उनके जोगसे अनेक दुःख-कष्ट भुक्त ते हुवे भी उसका त्याग नहीं करतेहै. वो गर्दभ पुंच्छग्राही वाणिक पुत्र की माफिक निन्दनीय और दुःखी होते हैं.

सा जो होताहै सो अनाभिग्रही मिथ्यात्वी.

(३)"अनाभि निवेशिक मिथ्यात्व" सो–किसीको सत्संगतके प्रसादसे, सत्शास्त्र के श्रवन पडन से, या सत्–चलन वलन वाले सत्पुरुषों के दर्शन से; अपना मान नीय मजव अन्तः करणमें सक्षात् असत्य–झूठ प्रतिभाष होने लग जावे. परन्तु मिथ्या मोहके प्रवलोदय कर उस गृहन किये हुवे असत्य मत का त्यागन नहीं करसके! और श्रीवीतराग के मार्ग को सत्य पथ्य तथ्य न्यायरुप जानता हुवा भी ग्रहण नहीं कर सके !! विशेषत्व–मिथ्यानुराग में मतवाला वनकर अपने असत्य पक्ष को स्थापन करने, वीतराग का न्याय पन्थ का उत्थापन करने-सत्शास्त्रों के कथनोंको लोपे गोपे उत्थापे या विपरीत प्रगमावे, उत्सूत्र की परुपणा से-या कपोल कल्पित खोटे ग्रन्थों रास चोपाइ आदि की रचना रच, वेचारे भोले जीवों को भरम रुप फासमें फसा कूमार्गमें लगावे, सन्मार्ग छोडावे. अपडूवे अन्य अनेकोकों डूवावे, ऐसी तरह जो फूटी नावा का सङ्गाती होवे सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी.

दृष्टान्त—श्रीपार्श्वनाथ भगवन्त के कितनेक * संतानीया साधुओं गोशाले के मत में मिलकर श्रीमहावीर श्वामीजी की निन्दा कनरे लगे, तव श्रीमहावीर श्वामी के श्रावको ने उनसे पूछा कि–आप श्रीपार्श्वनाथ भगवान की परुपणा को भी जानतेहो, और श्रीमहावीर श्वामीजीकी परुपणा को भी जानतेहो. तैसेही गोसालाजी की परुपणा को भी जान गयेहो. इन तीनों में से सत्य परुपना किनकी है सो फरमाइये? तव वो साधुओं वोले कि–हां हम जानते हैं, जैसी परुपणा श्रीपार्श्वनाथ भगवान की थी वैसीही परुपणा श्रीमहावीर श्वामीजी की है; परन्तु हमने जो श्रीगोशालाजी का पक्ष धारन कियाहै, इसालिये हमारा वश पहोंचेगा वहां तक हमतो इस मतकी स्थापना करनेमें और महावीरके मतकी उत्थापना करनेमें कचास नही रक्खेंगे!! हमदुर्गति से नहीं डरतेहैं. यह सुनतेही श्रावको उनके मिथ्यामोहका प्रवल उदय जान चुपचाप उठकर चलेगये! ऐसे मिथ्याहट ग्राही जीवों को अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी जानना.

(४)"संशयिक मिथ्यात्व"सो–कितनेक पुण्यात्मा जीव श्रीजैन धर्मको तो पाये हैं, परन्तु सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के पठन के अभाव से तथा कितनेक सत्संग और सत्शास्त्रका पठन करभी अपनी दुर्बुद्धि के (मोहकी प्रवल ताके) प्रभाव से. या अन्य

* प्रति शिष्य–अर्थात्–शिष्य के शिष्य को सन्तानीया कहते हैं.

मतावा लम्बियों की संगति उनके ग्रन्थों का पठन कर—वीतराग प्रणित सत्कथन मेंसं शयि बनतेहैं—वेमलाते हैं, और असत्कल्पना करते हैं कि सूइ अग्र भाग जितनी थोडीसी जगह में कन्द के अनन्त जीवोंका समावेश, लक्खों योंजन की अवघेणा, प्राचीन श-हरों में क्रोडों घरों की वस्ती, अनन्त सिद्धहोते हुवे भी संसारी जीवों की राशी का नहीं घटना, वगैरा. ऐसी कितनी बातों प्रत्यक्षतामें झूठी दर्शाती है. इत्यादि ऐसीबातों में संशय करे सो संशयिक मिथ्यात्व.

दृष्टान्त—महा वैराग्य वन्त जामलीजी साधु के शरीरमें अकस्मात् महा वेदनी उत्पन्न होते शिष्यों को वीछोना करने का हुकम दिया, औरथोडी देर बाद पूछा कि —" बीछोना हुवा क्या ? " शिष्याने कहां कि—कररहे हैं; यह सुनतेही मन में विचा-र हुवा कि भगवन्त फरमाते हैं कि—"करेमाणे करे" अर्थात—काम करना शुरु किया उसे कियाही कहना. और में यहां प्रत्यक्ष देखता हुं कि—"करे माणे अकरे" अर्थात्—काम करना शुरुकिया उसे किया नहीं कहना, परन्तु काम पूरा किये बादही किया कहना, इसलिये "करे माण करे" यह महावीर का बचन झूठा है. मिथ्यात्व मोहोदय कर ऐसी शंका उत्पन्नहो तेही सम्यक्त्वका नाशकर किलविषी देवहुवे. यह संशय मिथ्यात्व.

(५)"अनाभोग मिथ्यत्व" सो-कर्मोकी प्रबलता कर, तीव्रमोहके उदय, कर जीवों अज्ञान दिशा से चेतन्य हो अचेतन्य रुप होरहे हैं, जिनको अपना पर का विलकुलही भान नहीं है. ऐसे अजान अज्ञानी चारों गति के जीवों को स्वभावसे सहजही यह मिथ्यात्व लगता हैं.

और भी जैन ग्रन्थ में तीन प्रकारके मिथ्यात्व कहे हैं.—१ लोकीक मिथ्यात्व, २ लोकोत्तर मिथ्यात्व. और ३ कूपराबचनी मिथ्यत्व. इन एकेक मिथ्यात्व के-१ देव. २ गुरु, और ३ धर्म इन तीनों से अलग २ तीन तीन भेद करने से ९ भेद होते हैं सो अलग २ कहते हैं:—

(१) "लोकीक देवगत मिथ्यात्व"—जिनो में देव के-भगवन्-परमात्मा के जो गुणों हैं वो तो पावे नहीं. औ अनेक दुर्गुणों प्रत्यक्ष में देखने में आवे ऐसे किसी मनुष्य को देवको या उनकी मूर्ती को देव करके—भगवान् करके माने सो लोकीक देव गत मिथ्यात्व कहा जाताहे; जेसे-१ जिनके पास माला-स्मरणा है, वो प्रत्यक्षही अज्ञानी वा अल्पज्ञ देखातेहैं, क्योंकि-गिनती-संख्या ध्यान में न रहने सेही स्मरणा रक्खी जातीहै. २ जो "अंह ब्रह्मसमी" अर्थात् हमही ब्रम्हहैं, हमारी पूजा करने से मुक्ति मि-

लेगी, वगैरा अहंता के भरेहुवे शब्दोचार करते हैं सो प्रत्यक्षमेंही प्रधान्थ भाश होते हैं ३ जो विमल खड्ग चक्र आदि शस्त्र के धारक हैं वो प्रत्यक्ष ही क्रोधाग्नि से प्रज्व-लित भाप होतेहैं.

(४) जो कहते हैं कि मेंही कर्ता हर्ताहूं, मेरे हुकम विन पत्ता भी नही हल स-कता है, मेही सर्व सामर्थ्य हूं वगेरा शब्दोंसे प्रत्यक्ष में अभी मानी देखाते हैं. ५ जो दगल वाजी ठगाइ करते हैं, छिपकर या रुपवदल कर दूसरे को छलते है-जैसे मोह-नी का रुप वंना भ्रस्मा सुर को भस्म किया ऐसे मायावी गिनेजाते हैं. ६ जो लोभी -लालची होवे. नारेल डोडी जैसे निर्माल्य वस्तु के लोभ में पड शत्रूओं के नाश जै-सा जुलम कर डालें वगैरा, को लोभी कहते हैं. ७ यह मेरा घर कुटुम्बेह यह मेरे रा ज्य सेनाहै, यह मेरे ऋद्धि सिद्धि है ऐसे ममत्वी को रागी कहते हैं. ८ तैसे यह मेरा द्वेषी दुशमन, शत्रु निन्दक है, इसका नाश होवे ! एसे भाव वाले द्वेषी गिनेजाते हैं. ९ जो शोक चिन्ता फिकर करते हैं, हाय विलापात करते हैं रोतेहैं, शिरउर कूटतेहैं, वगैरा सो शोकीहैं. १०जो कहते कुछही हैं और करते कुछही हैं. मनमें कुछही, और व-ताते कुछही ऐसे झूठ बोलने वाले. पापके हिंसाके शास्त्रों का स्थापन कर कुमत का प्रसार करते हैं. ११ दूसरे के वस्त्र भूपण के हरण कर्ता, स्त्री पुत्रादि को भरमा कर उडाने वाले, इत्यादि चोरी करने वाले होवे १२ रखे यह मेरेसे अधिक होजावे. मेरा राजपाट हरण करलेवे. इत्यादि मत्सर भाव धारण कर अपत्सरा आदि के पास सेउ नके तप का भङ्ग कराने वाले वगैरा सोमत्सरी कहे जातेहैं, १३ संग्राम करने वाले, शीकार खेलने वाले, यज्ञ होमादि द्वारा-धर्मके नाम से मनुष्य पशु या किसी वस्तु का होम-हवन कराने वाले, भैंसे वकरे मुर्गे आदिके घातिकसो हिंसक कहे जाते हैं. १४ स्वस्त्री के या परस्त्री के लम्पटी, पुत्री और पशु के साथ भोग करने वाले, ऐसे जबर कामी. धुप दीप पुष्फ फल सुगन्ध, शीतोपचार, उष्णोपचारके कर्ता कराता. स्वशरी र स्वकुटुम्बादि के प्रेम में रक्त रासमंडल खेलना, नाचना नचाना विषय राग गाना, स्त्रीयों के पीछे मारे२ फिरना. वाजिंत्र वजाना वज वाना. वगैरे क्रिडा के करने वाले जगत् जीवों को सुखी दुःखी करना. शरापया आशीर्वाद देना इत्यादि अनेक दुर्गुण जिनो में पाते होवे, वो प्रत्यक्ष कुदेव के लक्षण हैं. एसे देवों को तरण तारण दुंःख निवारण जानकर वन्दे पूजे सो लोकीक देवगत मिथ्यात्व.

(२) "लोकीक गुरुगत मिथ्यात्व" सो-जिनों की आत्मा में गुरु के (साधु) के

गुण पावे नहीं, ऐसा को गुरु करके मानेंसो गुरु गत मिथ्यात्म: जैसे-जो-सचित्त (स जीव) मट्टी-पाणी-अग्नि-हवा-वनस्पति और त्रस (हलते चलते जीवों) इन छजीवों की कायका बधकरने वाले, चकारम कारादि गालीयों असत्य बचनके बोलने वाले: विनादि वस्तु लेवें चोरी करने वाले, स्वस्त्रीया परस्त्री से गमन के करने वाले, धन धान्य चौपद दुपद आदि परिगृह के रखने वाले, रात्री भोजन के कर्ता, मदिरा मांस-कन्द-मूल इत्यादि अभक्ष वस्तु के भक्षण करने वाले. गांजा तमाखू चडस भांग आदिनशा के सेवन करने वाले, स्नान मंजन तेल अतर सुरमा छापा तिलक वस्त्र भूषणादि से शरीर को शोभा करने वाले, साफ नग्न रहे वारंगी वेरंगी अनेक तरहके वस्त्र धारण करने वाले, मुंड मुडाना जटा बडाना, भभूत रमाना इत्यादि अनेक रूप धारण कर ऊदर पूरना करने वाले. इत्यादि अनेक तरह के गुणाविना कोरा आडम्बर-पाखण्ड रचकर जो गुरु तरीके जगत में पूजा रहैं. उनको तरण तारण दुःख निवारण जानकर जो वन्दन नमन पूजन करेसो लोकिक गुरु गत मिथ्यात्व.

३ "लोकिक धर्म गत विथ्यात्व" - जो दुर्गति में पडते जीवों को धर-पकड रक्खे - पडने नहीं देवे, ऐसा जो परम लक्षण धर्म का है सो जिस में नहीं पाता है, फक्त-नाम मात्र धर्म हैं-जैसे देवालयादि बन्धाना, तीर्थ स्नानादि करना, धूप दी यज्ञ हवन दव आदि करना, फल फूल पत्र द्रोब कूंपल छाल आदि तोडना मोडना, षट मलमुर्गे भैंसादि जीवों का वध, इत्यादि कर्मो में धर्म का मानना. तथा होली राखी आदि मिथ्या पर्वो का मानना. एकादशि आदि तप नाम धारण कर कन्द मूल पक्वान मिष्टानादि भोगवना. ऋतु दान कन्यादानादि देना, पंच धूनी तापना इत्यादि अनेक जो ढोंगी कृत्यो है, उसे तरण तारण दुःख निवारण जान पालना स्पर्शना सो लोकीक धर्मगत मिथ्यात्व.

४ "लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व" सो जिन-तीर्थंकर ऐसा नाम तो धारण किया, परन्तु जिनों में तीर्थंकरके गुण नहीं, गोशालावत-उनको तीर्थंकर देव कर माने. धन पुत्र स्त्री यश सुख की प्राप्ति के अर्थे-ग्रह दोष निवारन के अर्थे तीर्थंकरो का नाम स्मरणादि करना इत्यादि इस लोक परलोकके द्रव्यीक सूखार्थ जो रीतराग तीर्थ करों का स्मरन वंदन नमन पूजन करेसो लोकोत्तर देव गति मिथ्यात्व.

५ "लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व"—सो जैन साधुका लिंग भेष तो धारण किया; परन्तु साधुके गुण जिनों में नहीं पाते होवें. पांच महाव्रत पांच समिति तीन

गुप्ति रहित होवें. छेही जीव काया का आरंभ करते होवें. इत्यादि अनाचारी होवें उनको गुरु माने. तथा इस लोक परलोक द्रव्यीक सुखार्थ सुसाधु ओंको दान दे वंदन पूजन सत्कार सन्मानादि करे सो लोकत्तर गुरुगत मिथ्यात्व.

६ "लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व" सो—जैन धर्म तो नाम है परन्तु जिनेश्वर के आज्ञानुसार जिस मे करणी नहीं. देव गुरु धर्म निमिन छेही काया का वध, धूप दीप फूल पान फल का चडाना-भोगोप भोग लगाना, नाचना वजाना वगेरा हो उस में धर्म माने. तथा इस लोक परलोक के द्रव्यीक सुखार्थ संवर करणी सामायिक पोषा आविल उपवास अष्टमादि तप करे सो लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व.

७—९ "कुभा वचनी देव गत मिथ्यात्व" सो—हरी हरादि कुदेव को, "कुभा वचनी गुरुगत मिथ्यात्व" सो-वावा जोगी आदि कुगुरुको, और "कुभा वचनी धर्मगत मिथ्यात्व" सो-यज्ञ होम स्नान तीर्थत्व वगेरे धर्म क्रियाको मोक्ष प्राप्ती की इच्छा से मानना वन्दन नमन करना इनहे मोक्ष दाता जानना सो कुभावचनी देव—गुरु—धर्म गत - मिथ्यात्व.

और भी—जिनेश्वर प्रणित शास्त्रों में—१ ओछी—कमी, २ आधिकी—ज्यादा और ३ विपरीत—अनमिलती श्रद्धनाजानना. परूपना—कहना, और स्फर्शना करना सो भी तीन तरह के मिथ्यात्व गिने हैं:—जैसे

१. तीस गुप्ताचार्य ने आत्मा को एकही प्रदेशी मानी सो, तथा कतनेक मताव लम्बियों आत्माको - जवार के दाने जितनी, या दीपक पात्र या अंगुष्ट सामान वताते हैं सो, और कितनेक-'अपने पर आवेरेलो, तो वात को परीठेलो' इस कहवत मुजव शास्त्र के वचनों को लोपेगोपे छिपावे या अन्य रूपमें परिणामावे इत्यादि ओछी करे सो परूपणा मिथ्यात्व.

२ 'ऐसेही कितनेक कहते हैंकि"—एकही आत्मा सर्व ब्रह्मान्ड मात्र में व्यापक (भरी) हुइ है, तथा धर्म रक्षणार्थ शुद्ध उपकरण रखणे वाले साधु को परिग्रह धारी कहना, शास्त्र में श्री महावीर स्वामीके ७०० केवल ज्ञानी चले हैं और १५७३ तापस को केवल ज्ञान प्राप्त हुवा वताना वगेरा सर्वज्ञ प्रणीत सूत्रोंसे अधिक परुपणा मिथ्यात जाणना.

३ ऐसेही कितनेक श्री सर्वज्ञ प्रणिह शास्त्रों से विपरीत-अन मिलती प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा मिथ्या जानाती वातों को जो सत्य माने मनावे-एसा कपोल कल्पित

मन माने मत चलाने वाले ६ प्रकार के मत इस वक्त में प्रवर्त रहे हैं. जिनका संक्षेपित वर्णन ;—

(१) बौध दर्शन का - स्वरूप.*

बौध मति-१ बुद्धि देव, २ संघ (उनके सर्व मतावलम्बि) और ३ धर्म, इन तीनों को 'रत्न त्रय' मान ते हैं. 'तारा' नामक देवी को उन के शासन (मत) की रक्षक जानते हैं, इन के धर्म गुरुओं-शिर मुंडाते हैं, चरमासनपर बैठते हैं, धातु रंगके वस्त्र रखते हैं, कमण्डल रखते हैं. उन्हे भिक्खु नाम से बोलाते हैं. यह जिस पात्र में भिक्षा लाते हैं, उस में जो पडे उसे शुद्ध समजकर मांस का भी अहार करलेते है. परन्तु ब्रम्हचर्यादि अपनी क्रिया में बडे द्रढ होते हैं, इन की चार शाखा ओं है :— योगाचार, २ सोत्रिक ३ वैभाषिक और ४ मध्यमिक.

बौध मतावलम्बि के माननीय चार तत्वोंः—१ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, और ४ निरोध. इनका खुलासा इस्तरे हैंः पहिले—दुःख को पांच स्कन्ध रुप मानते —१.रुप विज्ञान, रस विज्ञानादि निर्विकल्प जो विज्ञहै सो "ज्ञानस्कन्ध" २ सुखा दुःखा अदुःख सुखा. यह "वेदना स्कन्ध" पूर्वोपार्जित कर्मों से हुवा बता तेहैं. ३ सविकल्प ज्ञान को "सज्ञा स्कन्ध" कहते हैं. ४ पुण्य अपुण्यादि समुदाय से "संस्कार स्कन्ध" मानते हैं. इसके प्रबोध से पूर्वानुभावका स्मरण होना कहते हैं. ५ पृथ्वीधातु तैसेही रुपादि को "रुप स्कन्ध" कहते हैं. इन पांचों स्कन्धो सिवाय आत्मादि कोइ भी पदार्थ नहीं हैं और यह पांचोही तत्व है सो नित्यभी नहीं रहते हैं. इन की क्षीण २ में प्रवर्ती होतीही रहती है, ऐसा कहते हैं इन दुःख तत्व के कारण भूत दूसरा समुदाय तत्वहो ताहैंः—सो ऐसे है कि-जगत् में राग द्वेष का समोह उत्पन्न होता है जिस से यह में हूं. यह मेरा है, यह दूसरे का है यह दूसरा है, ऐसा जो भा-

* कितनेक अज्ञ मनुष्यों जैन मत को बोध मत की शाखा जानते हैं, जिसका मुख्य सबब-जैन के चौवीसवे तीर्थंकर श्री महावीर श्वामी, और बौध मत के स्थापक बुद्ध देव यह दोनों सम काल में होने का; तथा महावीर श्वामी की ज्ञाती और पिताका नाम बुद्ध देव जैसा होने का जाना जाता है. परन्तु जैन के २३ अवतार बुध के पाहिले होगये है, इस लिये जैन मत बहुत प्राचीन है यह बात अब पाश्चिमात्य विद्वानोंने भी अनेक प्रमाण से सिद्ध कर बताइ है.

व उत्पन्न होता है, सो समुदाय तत्व कहाजाता है, इन दोनों तत्वों कोही संसार की प्रवृत्तिके हेतु रूप मानते हैं. इन दोनों तत्वोंसे विपक्षीभूत-मार्ग और निरोध तत्वहैं, जिस का स्वरुप ऐसाहै कि-सर्व पदार्थों क्षीणमात्र रहकर नाश को प्राप्त होते हैं. कि-उसीवक्त दूसरी क्षीण में उसके जैसेही दूसरे पदार्थ उत्पन्न होजाते हैं. पूर्व ज्ञानमें उत्पन्न हुइ वासना को उत्तर ज्ञान तक ठेरहनेकी शक्ति है और क्षीणक परम्परा पूर्वक जो मानसी पातीत होता है उसका नाम 'मार्ग' है, और यह मार्गही निरोध का कारण है. अर्थात्–चित्तकी निक्लेश अवस्था सो निरोध है, और सोही मोक्ष है.

और भी बोधमति १२ पदार्थ मानते हैं:–श्रोत चक्षु घ्राण रस और स्पर्श, यह पांचों इन्द्रियों, और इन पांचों के पांच विषय यों १०, और चित्त तथा शब्दायतन, इन १२ आयतनों की भी क्षीणीक मानते हैं. बौधमतिय-आत्मा को नहीं मानते हुवे फक्त टूटा का अनुसन्धन ज्ञान क्षणों कोही मानते हैं. इस से यह बात सिद्ध होती है कि–क्षुधा और को लगी. भोजन अन्य ने किया, और तृप्ति अन्य कोही आइ. तैसेही औषधी अन्य को दी, रोग अन्य का गया. ऐसेही अनुभव और को हुवा, स्मरण और को हुवा, बन्ध अन्य के हुवा, और मोक्ष अन्य हुवा. तपादिक्लेश किसीने भोगा, और स्वर्गादि प्राप्ति किसी अन्य कोहुइ ! यह सब बातों प्रत्यक्ष में अन्य मिलती हुइ देखाती हैं. और रात्री भोजन तथा मांस आदि अभक्ष का भक्षण यह प्रत्यक्ष में अधर्महैं इत्यादि अनामिलते बनावसे इसे विपरीत परुपणा मिथ्यात्व कहाजाताहै.

(२) नैयायिक दर्शन का स्वरुप.

नैयाकि मति-शिवको देव मानते हैं, गोतमामुनि को गुरु मानते हैं, इन के धर्म गुरुओं वडी कोपीन पहनते हैं, कम्वल औढते हैं, जटा रखतेहैं, जटामें लिंग रखते हैं, शरीर को भस्म रमाते हैं,वगलमें तुम्बी और हाथ में दन्ड रखते हैं, निरस आहार और वनवास पसंद करते हैं, अतिथ पूजा वडी प्रियलगती हैं, कन्द मूल फूल फलादि का आहार करतेहैं और कितनेक स्त्री रखतेहं, कितनेक नहीं भी रखतेहैं, जो स्त्री नहीं रखतेहैं वो उत्तम गिने जाते हैं, बृद्धवस्था प्राप्त होते कितनेक हंसवृत्ति (नग्नपना) धारन करते हैं, शिवजी सिवाय अन्य देव को नमन करने में पाप वताते हैं, उनके भक्तों 'ॐ नमो सिवाय' इस शब्द से नमस्कार करते हैं, तब वो "नमो शिवाय" इस शब्द से आशीर्वाद देते हैं. इनों का मुख्य उदेश यह हैं, कि–किसीने भी १२ वर्ष पर्यन्त 'शैव दिक्षा' का पालन करलिया, फिरवो उसे छोड देवे तो भी मोक्ष पाता है. इनकी–

१ शैव, २ पाशुपत, ३ महाव्रत धर, और ४ काल मुख यह चार शाखाओं है. और गोतम मुनि (अक्षपदमुनि) कृत–'न्यायसूत्र.' उद्योत कर मुनिकृत न्यायवृत्ति भाषा, सर्वज्ञकृत-न्यायसार वगैरा सूत्रों को यह मानते हैं.

नैयायिको–१अवल तो कहते हैं कि-सत्तायोग से सत्व है, और फिर कहते हैं कि-सामान्य, विशेष, समवाय, यह पदार्थों सत्ता के विनाही सत्तहै. २एक स्थान कहा है कि-ज्ञान ज्ञान को आप जानता नही है, क्यों कि-अपने में आपही के क्रियाका विरोध होता हैं, और दूसरे स्थान कहाहै कि–इश्वरका ज्ञान आप आपको जानताहै, और स्वात्मा में क्रिया विरोध नहीं है. ३ आकाश को निरवयवी कह कर फिर कहते हैं कि आकाश का गुण शब्द है (तो अवयव विना शब्दोत्पत्ति कहां से हुइ?)सोभी एक देशमें शुन्यता है सर्वतः नहीं है, और भी यह १६ पदार्थो मानते हैं, उसमें भी बहुत विरोध भाष होताहै. तैसेही इश्वरको कर्ता यह मानते हैं, यह भी बडी विरुधता है. क्यों कि-जो कर्ता हैसो भुक्ताहै, और कृत कर्म फल भोगवनेसे अन्य में और इश्वरमें क्या तफावत्? तथा क़िसी भी वस्तुकी इच्छा होती है तब वो वस्तु निपजाताहै. और इच्छा है सोही दुःख है, अर्थात्-नुन्यता सेही इच्छा होती है, जो इश्वर होकर ही दुःखी हुवा तो फिर इश्वर कायका? इत्यादि सबब से विपरीत परुपक गिने हैं.

(३) वैशेषिक दर्शन का स्वरुप.

वैशेषिक मति का श्रद्धान विशेष कर नैयायिक माति जैसाही है, फरक फक्त इतनाही है कि-वैशैषिक दो ही प्रमाण मानते हैं, और कहते हैं कि-शिवजीने उलूका रुप धारण कर कणाद मुनिको वैशेषिक मतका स्वरुप बताया है, इसलिये इस मतका नाम " औलुक्य " भी है, यह–तर्कशास्त्र, वैशेषिक सूत्र, प्रसस्तकर भाष्य, किरणावली, लीलावती आदि को मानते हैं. नैयायिक की तरह इन को भी विपरीत परुप जानना.

[४] सांख्य दर्शन का स्वरूप.

सांख्यमति के-देव-नारायण, और गुरु-त्रिदन्डीयें होते हैं. इन के धर्म गुरुओं कोपीन पहनते हैं धातुरङ्ग के वस्त्र रखते हैं, कितनेक शिरमुन्डाते है, कितनेक शिखा रखते हैं, और कितनेक जटा बढाते हैं, मृग चर्म का आसन रखते हैं, फक्त ब्राह्मण के घर काही अन्नखाते हैं, जिस में कितनेक तो फक्त पंचग्रास (५ कवल) मात्र खा-

करहीं संतोष करते हैं, और काष्ट की मुहपति भी रक्खते है, इसका सबब यह ऐसा बताते हैं कि "श्वाशो च्छास से जो जीवों हिंसा होती है वो इस से बचती है *" यह पाणीकी जीवानीकी यत्ना बहूत करतेहैं, कहते है कि-"पाणीकी एक सूक्ष्म विन्दूमें से एकेक जीव निकल कर जो भ्रमर जितना बडा शरीर बनावे तो तीनों लोक में समावे नहीं ! इतने जीव एकही विन्दू मं हैं" ? और इनों में कितनेक एकेक महीने तक उपवासभी करतेहैं. इनके मतकी माहिमा इनके "मठार शास्त्र" में ऐसी तरह लिखीहै-

श्लोक-हंस विपच खाद मोदं नित्यं भुक्त्वच भोगान यथाऽभिकामं॥
यदि विदितं कपिल मतं । तत् प्रप्स्यासि मोक्ष सौख्य मचिरेण ॥
पंच विंशति तत्वज्ञो । यत्र यत्रा श्रये रतः ॥
शिखी मुन्डी जटिवापि । मुच्य ते नात्र संशयः ॥

अर्थात्-कपिल मुनिके फरमाये २९ तत्वों को जानने वाला फिर वो हंसे खेले खावे पीवे सदा खुशीरहे. चाहे किसी भी आश्रम में रहै शिखा धारी हो या मुण्डित हो जैसी रुची होवे वैसार है, तो भी वो सर्व उपाधी से मुक्त हो अल्प काल में मोक्षपाता है. इसमें संशयही नहीं है.

सांख्यमत के माननीये २५ तत्वों का स्वरूप.

१. प्रकृत्ति तत्व.-(१) सत्व गुण का सुख लक्षण, चिन्ह प्रसन्नता, प्रसाद-बुद्धि-लाघव-आश्रय-अनभिसंग-अद्वेष-प्रीतादि. सत्व गुण के कार्य-लिंग-आर्जव-मार्देव सत्य-शौच-लज्जा-बुद्धि-क्षमा-अनुकम्पा,-प्रसादादि. जिससे सुखोतपति होती है. उर्द्वलोक निवासी देवताओं में प्रधानतासे सत्व गुणकी ही अधिक्यता है. (२) रजो गुणक दुःख लक्षण है, चिन्ह-संताप-ताप-शोष-भेद-चलित चित्त-स्तंभ-उद्वेगादि. यह रजो गुण कार्य लिंग-द्वेष-द्रोह-मत्सर-निन्दा-वचन-बन्धन-तपादिस्थान हैं. जिससे दुःखोत्प-

* श्लोक—ते प्राणाद तु यातेन । श्वासे नैकेन जंतवः ॥
हन्यते शत सो ब्रह्म । ब्रणु मात्राक्षर वादिना ॥

अर्थ-मुखढके विना श्वाशोश्वास लेनेसे व अणुमात्र शब्दोचार करने से हजारो ब्रम्हका (हजारों प्राणीका) नाश होता हैं.

ति होती है. अधो लोक तिर्यंचनरक में प्रधानता से रजो गुण आधिक्य है. (३) तमो गुण-मोहलक्षण, चिन्ह दीन पणा. दैन्य-मोह-मरण-असादन-वीभत्सा-ज्ञान-गौरवादि तमों गुणके कार्या लिंग है. अज्ञान-मद-आलस्य-भय-दैन्य-कृपणता-नास्तिकता-विषाद-उन्माद-स्वप्नादि तमो गुणके कार्यहैं, मध्यलोकके मनुष्योंमें प्रधानतासे तमो गुण अधिक है. इन तीनों गुणोंकी सम अवस्थाको प्रकृत्ति कहते हैं; प्रधान, अव्यक्त, प्रकृत्तिके नाम है, यह प्रकृत्तियों उत्पन्न और प्रलय राहित स्थिर होनेसे नित्य मान ते हैं. और अन्वय असा धारणी, अशब्दा, अपर्शा, अरसा, अगंधा, अव्यया, इन गुण मय प्रकृत्ति को कहते हैं.२ प्रकृत्तिसे महान नामे दुसरा तत्व अत्पन्न होताहै, इसे बुद्धि भी कहते हैं. जिससे जड चैतन्य मनुष्य पशुका भेद मालुम पडता है. इस के-(१) धर्म, (२) ज्ञान, (३) वैराग्य और (४) एश्वर्य, यह ४ सात्विक बुद्धि के रूप; और (१) अधर्म, (२) अज्ञान, (३) अवैराग्य, और (४) अनैश्वर्य, यह ४ तामसी बुद्धिके रूप यों ८ रूप हैं. ३ इस बुद्धि तत्व से अहंकार नामक तीसरा तत्व उत्पन्न होताहैं. (अहंकार से १६ गुण उत्पन्न होते हैं) ४ स्पर्श, ५ रस, ६ घ्राण, ७ चक्षु, ८ श्रोत्र, (इन पांचों को ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि यह अपने विषय को आप जानती है.) ९ वायु (गुदा), १० उपस्थ, (पुरुष चिन्ह स्त्री चिन्ह), ११ वच (शब्द), १२पाद(पग) १३ हाथ (इन पांचो को कर्मेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि यह काम देती है), १४ मन(यह जब ज्ञानेन्द्रिय से मिलता है तब ज्ञान रूप बन जाता है और कर्मेन्द्रिय से मिलता है तब कर्म रूप बनजाता है क्योंकि इस कि संकल्प बृत्ति है,) १५ रूप तनमात्र से-शुक्ल कृष्णादि वर्ण, १६ रस तन मात्र से तिक्तादि रस १७ गन्धं तन्मात्र से-सुरभ्यदि गंध. शब्द तन्मात्र से-मंज्जुलादि शब्द विशेष, १९ स्पर्शतन्मात्र से मृदु कठिनादि स्पर्श (यह १६ गुण अहंकार से होते हैं) २० रूप तन्मात्रसे अग्निकी उत्पात्ति होती है. २१ रसतन मात्र से-पाणी उत्पन्न होता है, २२ गन्ध तनमात्र से-पृथ्वी उत्पन्न होती है, २३ शब्द तन्मात्र से-आकाश उत्पन्न होता है, २४ स्पर्श तन्मात्र से-वायु उत्पन्न होता है (यों ऊपर कहे पांचों तन्मात्र से पांचों भूतों कि उत्पत्ति होति है) और २५ वा "अकर्ता त्रिगुण भोक्ता" अर्थात्-अकर्ता आत्मा विषय सुखादि के लिये पुण्यादि का कर्ता नहीं है, इसलिये अकर्ता है, क्योंकि आत्मा त्रण मात्र तोडने समर्थ नहीं हैं, इसलिये कर्ता प्रकृत्ति ही है, क्योंकि प्रकृत्ति में प्रवृत्ति का स्वभाव है. "त्रिगुण"-आत्मा सत्वादि गुण राहित है, क्यों कि-सत्वादि गुण प्रकृत्ति का धर्म है. "भोक्ता"

आत्मा भोक्ता भी नहीं है. परन्तु प्रकृत्तियों के वीकार भूत उभय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है उस में संक्रमण होनेसे निर्मळ आत्म स्वरूप के विषे सुख दुःख प्रति बिम्बित होनेसे उदय मात्र भोक्ता कहलाता है. जैसे स्फटिक मणी के पास जैसे रङ्ग का पदार्थ होता है वैसेही रङ्ग मय वो मणी प्रति भाष होती है, यह सांख्य के २५ तत्वोंका स्वरूप संक्षेप में हुवा.

सांख्य माति-सत्व रज और तमो गुण से उत्पत्ति मान ते हैं सो अन मिलतीहै. क्योंकि-गुनी से गुन उत्पन्न होते हैं, परंतु गुनसे गुनी की उत्पत्ति कदापि नहीं होती है; जैसे मट्टी से घडा वनता है, परन्तु घडे से मट्टी कदापि नहीं वनती है. तैसेही आत्माको अकर्ता अभोक्ता मानना सो भी मिथ्या है. क्योंकि आत्म शक्ति की सत्ता विना किसीभी जड पदार्थो में वस्तु उत्पन्न करने की और सुख दुःख रूप कर्म फल वेदने की शक्ति नहीं हैं. इत्यादि सवव से यह भी विपरीत परुपक गिने जाते हैं.

(५) मीमांस दर्शनका स्वरूप.

मीमांस मत का दूसरा नाम 'जैमिनीय' भी कहते है, इनके देव ब्रम्हा, और गुरु वेदों कोही मान ते हैं, अन्य किसी को भी गुरु नहीं मानते हैं. इन के धर्मावलम्बियों-सांख्यमाति की तरह ही-कोइ एक दन्डधारी, कोइ त्रिदंड धारी होते हैं, धातु रङ्ग के वस्त्र पहन ते हैं, मृगचर्म के आसन पर वैठते हैं, कमन्डल रक्खते हैं, शिर मुन्डाते हैं, यज्ञोपवित को तीन वक्त धोकर पानी पीते हैं, शूद्र जातिका अन्न नहीं खा ते हैं, अपन को 'सन्यस्त' कह कर वोलाते हैं, ब्रम्हको अद्वैत मानते हैं, और सब शरीर में एकही आत्मा मानते हैं. ÷ और आत्मा में लय हो जाने कोही मुक्ति मान ते हैं. अन्य-मुक्ति की नास्ति वताते हैं.

मीमांस मत की दो शाखा है—१ पूर्व मी मांस और उत्तर मी मांस. इन में पूर्व मीमांसी तो वहुतकर गृहस्थाश्रमीही रहते हैं, और उत्तर मीमांसी ओंकी ४ शा

÷ श्लोक-एक एवहि भूतात्मा । भूते भूते व्यवास्थितः ॥
एकधा वहुधा चैव । दृश्यते जल चन्द्रवत ॥

अर्थात्-जैसे पानीके भरे हुवे अनेक घडों में एकही चन्द्रमाका प्रति विम्ब अलग २ दिखता, तैसेही एक परमात्मा सर्व आत्मा में व्यापे हुमे हैं.

खा है:—१ त्रिदन्डी, सशिखा, २ ब्रम्हसूत्री, ३ गृहत्यागी, और ४परिगृही. इनमें-एकही वक्त पुत्र के घर में भोजन कर ने वाले, कुटि में रहने वाले, इने 'कुटिचर' कहते हैं. २ पूर्वोक्त लिंग युक्त विप्र के घर का निरस आहार करने वाले, नदी के किनारे रहने वाले, को 'बहुदक' कहते हैं. ३ ब्रम्ह सूत्र, शिखा सहित, कषायवस्त्र, दन्डधारी, ग्राम में एक रात्री और नगर में तीन रात रहने वाले, ब्राह्मण के घर में धूम्र रहित अग्नि हो तब भोजन करने वाले, तपश्चर्यासे शरीर को सुकाने वाले, जो देशों देश फिरते रहते हैं, उनको 'हंस' कहते हैं. इन को जब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब चारों वर्ण के घर का आहार कर ते हैं, और शरीर बिलकुल अशक्त हो जाता है तब अनसन कर देह त्याग ते हैं. और ४ वेदान्तक एकाध्यायी को 'परम हंस' कहते हैं.

यह कहते हैं कि—"हिंसा गार्ध्यत्" अर्थात् जो हिंसा इन्द्रियोंको और व्यक्ष-पोषने को की जाती है वो हिंसा गिनी जाती है. परन्तु वेदोक्त-अश्वमेध, गौमेध, नर-मेध, अजामेध, मधु सपर्क, और पित्र तृप्ति के लिये जो हिंसा की जाती है वो हिंसा नहीं गिनी जाती है. और इनही के वेदोंकी स्मृति में ऐसा लिखा है :—

श्लोक—श्रुयुतां धर्म सर्वस्वं । श्रुत्वा चैव धार्यतां ॥
आत्मानः प्रतिकूलानिं । परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थात्—धर्म श्रवण कर धारन करने का येही सार है कि-किसी आत्मा के भी प्रातिकूल (दुःख प्रद) कृतव्य कदापि नहीं करे!

श्लोक—अन्धे तमसि मज्जाम । पशुभिर्ये यजा महे ॥
हिंसा नाम भवे धर्मो । न भूतोन भविष्यति ॥

अर्थात्—वेदान्ति का कथन हैकि-यज्ञ निमित पशुका बध करने वाला अन्ध और तामसी मनुष्य है, क्योंकि हिंसा करने से धर्म न कदापि नहुवा और न होगा!!

तथाच तत्व दर्शिनः पठन्ति :—

श्लोक—देवो पहार व्याजेन । यज्ञ व्याजेन वाथवा ॥
घ्नन्ति जन्तुन् गत घृणा । घोरान्ते यान्ति दुर्गाति ॥

अर्थात्—देवों की तृप्ति के निमित और यज्ञ के निमित जो पशु का बध करते

हैं वो घोर (अति दुःख प्रद) दुर्गति में जाते हैं. ऐसे वहुत से दाखले दया धर्म की-पुष्टि के उनोके शास्त्रोंमें होते हुवे भी यज्ञ और पित्रादि निमत हिंसा करनेमें दोष नहीं मानते हैं. वल्के धर्म मानते हैं. इसलिये यह भी विपरीत परूपक मिथ्यात्वी गिने हैं

(६) चार्वाक दर्शन का स्वरूप.

चार्वाक मत का दूसरा नाम नास्तिक मत भी कहलाता है. इन के न तो कोइ देव है, और न कोइ गुरु हे फक्त कोइ २ देवीको मानते हैं. इनके शास्त्र में ऐसा लिखा है :—

श्लोक—पृथ्वी जलं तथा तेजो । वायु भूत चतुष्टयम् ॥
आधारो भूमिरे तेषां । मानं त्वक्ष जमेवही ॥ १ ॥
पृथव्यादि भूत संहत्या । तथा देह परिणतेः ॥
मदशक्तिः सुरांगे भ्यो । यद्व तद्व च्चिदात्मानि ॥२॥

अर्थ—पृथ्वी, पाणी, अग्नि और वायु इन चारों भूतों के आधार सेही सर्व श्रेष्टिहै, और जैसे-गुड महुवा पाणी और अग्नि इन चारों के संयोग से मादिरा (दारु) नामक पदार्थ उत्पन्न हो उन्मादका कर्ता होताहै, तैसेही उपरोक्त चारों भूतों के संयोग से आत्माजीव उत्पन्न हो अनेक चेष्टा करता है. और इन चारों के वियोग से या विनाश से आत्माका भी विनाश होता है. इन चारों भूतों शिवाय इस जगत् में दूसरा कोइ पदार्थ है ही नहीं; न कोइ जीव है; और न कोइ पुण्य पाप है, तो फिर पुण्य पाप के फल भुक्त ने के लिये नरक और स्वर्गतो होवेही कहांसे? ऐसे कुवोध से यह लोको निडर वन मांस मादिरा परस्त्री या माता भग्नि को भी सेवन करनेमें चूकते नहीं है. और इनोंने वारे महीने में उत्तम दिन कायम किया है उस दिन एकान्त स्थान में यह सव भेले हो स्त्री को नग्न कर योनी पूजते हैं, और भोग भी करते हैं. इन की वाम मार्ग काचली मार्ग आदि उपशाखाहै, ऐसा व्याभिचारी मत तो प्रत्यक्षही सर्व धर्मो से विरुद्ध विपरीत परुपक देखीताहै. किंवहु.

और भी ठाणांगजी सूत्र में १० प्रकार के मिथ्यात्व फरमाये है. १"धम्म अधम्म सन्ना" अर्थात्—धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व. आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के चोथे अध्याय में फरमाया हैं:—

सूत्र-जेय अतीता जेय पडुप्पन्ना जेय आगमिस्सा अरहन्त भगवन्तो ते सव्वे वि-एवं माइक्खन्ति एवं भासन्ति एवंपण्णवन्ति एवं परूवेति-सव्वे पाणा सव्वे भुया सव्वेजीवा सव्वे सत्ता-णहन्तव्वा, ण अज्जवेयव्वा, णपरिघातव्वा, णपरिता वेयव्वा, ण उद्दवयव्वा,-एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए, समेच्चलोयं खेयन्नेहिं पवेतित्ते.

अर्थ-सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि-अहो जंबु ! जो तीर्थंकर भगवन्त-गये काल में हुवे, वर्त मान में हैं और आवते काल में होंगे उनसबों का एक यही फरमानहै कि-"सर्व प्राणी (बेन्द्रिय तेन्द्रिय- चोरीन्द्रिय) सर्वभूत (बनस्पति) सर्व जीव (पचेन्द्रिय) और सर्व सत्व (पृथवी-पाणी-अग्नि-हवा)-इनको मारेनहीं, परिताप उपजावे नहीं, बन्धन में डाले नहीं, उपद्रव्य करे नहीं, किसीभी तरहसे कदापि किंचित मात्र दुःख देवे नहीं, सोहि दयामय धर्म शाश्वता सनातन है; ऐसा खेदज्ञ(पर दुःख के जान) श्री जिनेश्वरों भगवन्तों का फरमान है.

ऐसे दयामूल शुद्ध पवित्र धर्म को अधर्म श्रद्धे सो द्रव्य से धर्म अधर्म श्रद्वान हुवा, और निश्चय में आत्म स्वभाव ज्ञानादि गुणों सं रमणात से जो धर्मोत्पत्ति होती है, उसे भूल पुद्गलानन्द जड पदार्थो से धर्मोत्पत्ति समझे सो धर्म अधर्मसज्ञा मिथ्यात्व.

२ "अधम्म धम्मसन्ना" अधर्म को धर्म श्रद्धे, अर्थात् यह जीव अनादि से अधर्म मार्ग में रमण कर रहा है, इसलिये अधर्म मार्ग में सहज रुची होतीहै, उस स्वभाव का प्रेरा हुवा हिंसा आदि पांचो आश्रव के सेवन में-अश्वमेधादि यज्ञों में, हिंसक पूजा, तीर्थस्नानादि. या बकरीईद जैसे कृतव्यो में धर्म माने सो अधर्म. धर्मसज्ञा मिथ्यात्व.

३ "साहू असाहू सन्ना" कितनेक भोले जीवों साधुके गुणों से बिलकुलही अवाकिफ होकर सब मनुष्यों जैसेही साधु ओं को जानतेहैं-साधु संसारी के भेद भाव में नहीं समझें, तथा जगत् में सत्पुरुष तो थोडे हैं, और पाखण्डियों मुडचीरे बहुत हैं, उनको देख उनके जैसेही-शान्त दान्त ज्ञानी ध्यानी तपी जपी आदि गुण सागर मुनिवरों को समझते हैं, तथा कितनेक कुमत पक्ष में तने हुवे अपने पक्षके (सम्पदायके)

साधुओं को छोड कर और अन्य सव साधुओं को असाधु समझते हैं, ऊपरोक्त गुण संपन्न मुनिवरोंको निंदक लुप्पक भगवन्त के चोर आदि कहेसो साधु असाधु सज्ञा मिथ्यत्व

४ "असाहू साहू सन्ना"–अर्थात्-असाधुको साधु श्रद्धे जैसे कितनेक कुल परापरा से चले आते मत में फसे हुवे साधु के गुण अवगुण जानने की बिलकुल ही दरकार नहीं रखते हुवे सारंर्भा, सपरिग्रही, विषयी, कषायी, ग्रहस्थ जैसेही कृत-व्योंके करने वाले मन्त्रादि से भरमाकर, सरापादि से डराकर जो पेट भराइ कर ते हैं. मिथ्या अडम्बर वडाते हैं. ऐसे ढोंगी धूतारों को जो साधु माने सो असाधु साधु सज्ञा मिथ्यात्व.

५ "जीव अजीव सन्ना"–अर्थात्–जीव को आजीव श्रद्धे, जैसे कितनेक चार वाक-नास्तिक मतीयों-पंच भूत वादीयों, पृथव्यादि के संयोग से ही जीवोत्पत्ति और भूतोंके वियोग से जीव की नास्ति कहते हैं. कितनेक अद्वेतवादी अनेक जीवोंसे भरे हुवे इस विश्व में फक्त एकही आत्मा व्यापक वताकर सव जीवों की नास्ति कर ते हैं. कितनेक असंख्य जीवोंका पिण्ड जो मट्टी पाणी अग्नि हवा है और अनन्त जीवोंका पिण्ड जो वनस्पति है, इनको निर्जीव मानते हैं, कहते हैंकि यह तो भोगोप-भोग के लिये स्वभाविक ही उत्पन्न हुवे हैं, ऐसे ही कितनेक कीडी मकोडी आदि प्रत्यक्ष में हलन चलन करते हुवे कोही निर्जीव वताते हैं. ऐसे ही कितनेक जैनीयों भी सूका अनाज विगेरे में निर्जीव-आचित्त सज्ञा धारन कर ते हैं, सो सर्व जीव अ-जीव सज्ञा मिथ्यात्व जानना.

६ "अजीव जीव सन्ना"–अर्थात् अंजीवको जीव माने, जैसे कितनक धातु पाषण वस्त्र काष्ट आदि की वनाइ हुइ मूर्ती को साक्षात मनुष्य या पशु तुल्य समज ते हैं. देवता के वैक्रिये किये पुष्पादि को सजीव कहते हैं. इत्यादि जो श्रद्धे सो अ-जीव जीव सज्ञा मिथ्यात्व.

७ "मग्ग उमग्ग सन्ना"—अर्थात्–मार्ग को उनमार्ग श्रद्धे, जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, शील, क्षमा, दया, शरलता, निर्लोभतादि जो सीधा सत्य मोक्ष का मार्ग सर्वज्ञ ने प्रकाश किया है. उसे संसार परि भ्रमण करने का कारण वतावे वगैरा श्रद्धेसो मार्ग उन्मार्ग सज्ञा मिथ्यात्व.

८ "उमग्ग मग्ग सन्ना"—अर्थात् उन्मार्ग को सन्मार्ग श्रद्धे, जैसे-क्रिडा कितु-हुल लीला नाचना गाना वजाना यज्ञ होमादि करना, इत्यादि धूम धाम को मोक्ष

मार्ग समजे सो उन्मार्ग को सन्मार्ग सज्ञा मिथ्यात्व.

९ "रुवी अरूवी सन्ना"-अर्थात् रूपी वस्तु को अरूपी माने, जैसे प्रमाणु पुद्गल, कर्म वर्गणा, वायु काय आदि रूपी पदार्थ होकर भी दृष्टि गोचर नहोनेसे अरूपी माने सो मिथ्यात्व.

१९ "अरूवी रूवी सन्ना"-अर्थात् अरूपी पदार्थोको रूपी माने, जैसे धर्मास्ति काय आदि पंचास्ति काय जो अरूपी है उने, रूपी कहे, सिद्ध भगवन्त जो अवर्ण अगंधादि गुण संपन्न हैं. उनको रक्त वर्णादि को स्थापना करे, जो जीवों मोक्ष प्राप्त हो अरूपी अवस्था धारण करी है उन्हे पुनः अवतार धारण कर रूपी हुवे बतावे. आकाश जो अरूपी है उसे शब्दादि गुणमय कहे. परमात्मा जो अरूपी है, उन से श्रेष्टि रूपी की उत्पत्ति कहे, वगैरा अरूपी को रूपी सज्ञा मिथ्यात्व.

और भी ७ प्रकारके मिथ्यात्व जैन ग्रन्थोंमें कहे हैं सोः—

१ "आविनय मिथ्यात्व"-अर्थात्-श्री जिनेश्वर के, सद्गुरुओं के, शास्त्रों के, वचनों को उत्थापे; भगवन्तको भी भूले-चूके बतावे; चतुर्विध संघका ज्ञानी ध्यानी तपी जपी त्यागी वैरागी इत्यादि गुणवन्तों की निन्दा करें-अवर्ण वाद बोले, इत्यादि आविनय करे सो मिथ्यात्व.

२ "अशातना मिथ्यात्व"—अर्थात्—३३ अशातना करे, गुणोवृद्ध, वयोवृद्ध मान्यवन्त सत्पुरुषोंका सत्कार सन्मान नहीं करे. संताप उपजावे, या तांडना तर्जनादि आशातना करे सो मिथ्यात्व.

३ " आकिरिया मिथ्यात्व"-अर्थात्-कितनेक तो आत्मा को आक्रिया ही मानते हैं, अर्थात्-आत्मा न तो शुभाशुभ कर्म की कर्ता है और न भुक्ता है, और कितनेक आत्मा साधन का उपाव जो यम नियमादि क्रिया की जाती है. उसे व्यर्थ-निर्थक बताते हैं. कितने फक्त एक ज्ञान सेही सिद्धी मानते हैं. क्रिया का साफ निषेध करते हैं. वगैरा यह सब आक्रिया वादी मिथ्यात्वी में गिने जाते हैं.

४"अज्ञान मिथ्यात्व"-अर्थात्-जहां अज्ञान है वहां नियमासे मिथ्यात्व होताही है क्योंकि अज्ञानी धर्मा धर्म-शुभाशुभ कृतव्योंको और उनके फलसे अविज्ञ रहकर, फक्त अन्यके देखा देखी क्रिया करते हैं, और फक्त उस क्रिया से ही मोक्ष मानते हैं. यह ज्ञान का निषेध करते है, इसलिये अज्ञानी मिथ्यात्वी हैं.

५ "परिवर्तन मिथ्यात्व"-अर्थात्-सम्यक्त्वी तो हैं, परन्तु खुशामदी से ला-

लच वश हो मिथ्यात्वी के मिथ्याकृतव्यों में सहाय करना मिथ्यात्वीयों से मिलकर रहना. मिथ्यात्वीयों के जैसे कृतव्यों करना, सो परि वर्तन मिथ्यात्व.

६ "परिणाम मिथ्यात्व"—अर्थात्—व्यवहार में तो सम्यक्त्व का पालन कर ते हैं, परन्तु अभ्यन्तर में मिथ्यात्व मोहका उपशम न होने से परिणामों से मिथ्यात्व का सेवन होता है सो परिणाम मिथ्यात्व.

७ "प्रदेश मिथ्यात्व"—अर्थात्—जो अनादि काल से मिथ्यात्व के दलिये खीर नीर की तरह आत्म प्रदेशों के साथ मिल रहे हैं. वो क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होनेसे ही दूर होते हैं. जहां तक क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति न होवे वहां तक प्रदेश मिथ्यात्व गिना जाता हैं. (इसकी सत्ता इग्यारवे गुणस्थान तक पाती है. क्योंकि वो पडवाइ हो मिथ्यात्व तक आजाते हैं)

यों शास्त्रों और ग्रन्थों के आधर से मिथ्यात्व के ३४ भेद लिखेगये हैं. यह लक्षणों जिनों में पाते होवें. उन्हे मिथ्यात्वी जानना.

दुसरे और तीसरे गुणस्थान का अर्थ मूल मुझवही समझना कुछ विशेष न हो नेसे न लिखा.

चौथा अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान के लक्षणः—

जीवादि नव तत्वों के द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय कर वताया निश्चय और व्यवहार कर द्रव्य के क्षेत्रसे कालसे और भाव से जाने सो कहते हैं;—

१ "जीव तत्व"—सदा जीवता रहे, चेतना लक्षण युक्त; दश द्रव्य प्राण और च्यार भाव प्राण का धारक, प्रदेश आत्मक, ज्ञान दर्शन स्वभाव. द्रव्यार्थिक नय से नित्य. पर्यायार्थिक नय से अनित्य, परिणामी द्रव्य, व्यवहार नय से कर्म का कर्ता और भोक्ता, निश्चय नय से शुद्ध चित्त पर्याय का कर्ता, निज स्वरूप का भोक्ता, उदयीक भाव के मिलापक रूप, छद्मस्तके चेष्टादि लिंग गम्य, केवली के प्रत्यक्ष शरीर प्रमाण. अरूपी सो जीव द्रव्य. और (१) द्रव्य से निश्चय नय के मत से सर्व एक रूप हैं, व्यवहार नय के मत से-नरक तिर्यंच मनुष्य देवादि में अनेक रूप धारण करते हैं. (२) क्षेत्र से सर्व जीवो असंख्यात प्रदेशी लोक व्यापी हैं. (३) काले से निश्चय नय के मत से ध्रोव्य आनादि अनन्त, व्यवहार नय के मतसे चारों गति में शरीर धारण की अपेक्षा उत्पात व्यय होताही रहता है जिस से, सादी सान्त हैं. (४) भाव से-निश्चय नय के मत से सब जीवों पारिणामिक भाव में-अपने २ स्वभाव

में प्रवृतते हैं. और व्यवहार नय के मत से संसारी जीवों शुभाशुभ भाव मे परीण मते हैं.

२ "अजीव तत्व"—सदा निर्जीव रहे, जड लक्षण, प्रमाणड आत्मक पुद्गल प्रदेश आत्मक, धर्मास्ति आदि तीनों द्रव्य- द्रव्यार्थिक नय से नित्य, पर्यायार्थिक नय से अनित्य, घट पटादि रूप पलटता रहै, परिणामिक द्रव्य, और (१) द्रव्य से-धर्मा स्तिके द्रव्य का चलण सहाय गुण, अधर्मास्तिके द्रव्य का स्थिर सहाय गुण, आ-कास्तिके द्रव्यका विकाशदान गुण, काल द्रव्य का-पर्याय प्ररावर्तन गुण, पुद्गल द्रव्यका पूर्ण गलन. (२) क्षेत्रसे-धर्मास्ति अधर्मास्ति और पुद्गलास्ति लोक व्यापक, असंख्या प्रदेशी, आकाश लोकालोक व्यापक, अनन्त प्रदेशी. काल व्यवहारसे अढाइ द्वीप-समय क्षेत्र व्यापक वर्तनसे सर्व लोक व्यापक अप्रदेशी, (३)कालसे द्रव्य नय की अपे-क्षासे तो पांचों ही द्रव्य अनादि अनन्तहैं. और पर्याय से-देश प्रदेश आश्रिय या अगुरु लघु आश्रिय धर्मास्ति अधर्मास्ति उत्पाद व्यय आश्रिय काल, पूर्ण गलन आश्रिय या स्कन्ध परमाणु आश्रिय पुद्गल सादि सान्त हैं. (४) भाव से-चारों द्रव्य तो वर्ण गंध रस स्पर्श रहित हैं, और पुद्गल वर्णादि सहित है.

३ "पुण्य तत्व"—किये कृतव्यों का पुनः शुभ फल दाता सो पुण्य, सुखदा ता लक्षण, पुद्गलिक पदार्थ, आत्मोन्नति कर्ता. साता वेदनीय आदि शुभ प्रकृत्ति का भोगवना सो द्रव्य पुण्य, दान दयालुता, सराग संयम, शुभ परिणामों की प्रवर्ती सो भाव पुण्य. और (१) द्रव्य से-पुण्य के ४२ भेद. (२) क्षेत्र से-पुण्य पुद्गल लोक व्यापी, (३) कालसे-अभव्य आश्रिय संतति अनादि अनन्त, भव्याश्रिय अनादि सां-त, (४) भाव से ९ प्रकार से पुण्य उपार्जन होवे.

४ "पाप तत्व"—जो अवन्नति दिशा में आत्मा को प्राप-पटके सो पाप, दुः-ख दाता लक्षण, पुद्गलिक पदार्थ, मिथ्यात्वादि कर्म प्रकृत्ति सो द्रव्य पाप, मिथ्यत्वा दि के उदय से उपहत मलीन परिणाम सो भाव पाप. और (१) द्रव्य से भोगवने के ८२ भेद, (२) क्षेत्र से-पाप पुद्गल लोका व्यापी, (३) काल से-अभव्याश्रिय अना दि अनन्त, भव्याश्रिय अनादि सान्त, (४) भाव से-१८ प्रकारे पापो पार्जे.

५ "आश्रव तत्व"—कर्म पुद्गल आनेका मार्ग सो आश्रव पुद्गलिक प्रणति रूप, उदायिक भाव की प्रणति रूप सो भाव आश्रव, तसनिमित रूप कर्म दलका आग-म सो द्रव्य आश्रव. और (१) द्रव्य से पुण्य पापादि रूप दालिक का संचय करना

सो, (२) क्षेत्र से-लोक व्यापि, (३) काल से-अभव्याश्रिय अनादी अनन्त, भव्याश्रिय अनादि सान्त, (४) भावाश्रिय-पुन्य पापका उपार्जन करना सो आश्रय.

६ "संवर तत्व"-आते हुवे कर्म पुद्गलों को रोक देवे-आत्मा को लगने न देवे सो संवर, आत्म परिणती रूप, निरुपाधि लक्षण, क्षायिक क्षयोपशमादि भाव रूप, भाव संवर, उस निमित प्रवर्तीसो द्रव्य संवर, और (१) द्रव्य से संवरके ५७ भेद, (२) क्षेत्र से चउदह राजू लोक (त्रस नाल) प्रमाणे. (३) कालसे-क्षायिक भाव आश्रिय सादि अनन्त, और क्षयोपशमिक भाव आश्रिय सादि सान्त, (४) भाव से अपने स्वरूप-ज्ञानादि गुणों में रमण करना सो सम्वर.

७ "निर्ज्जरा तत्व"—आत्मा से सम्बन्ध पाये हुवे कर्म पुद्गलों का झडना सो निर्ज्जरा. संयम तपादि जनक भाव सो भाव निर्ज्जरा, और उससे जोजो कर्म पुद्गल आत्मासे दूर हुवे सो द्रव्य निर्ज्जरा. और (१) द्रव्य से-निर्ज्जरा के १२ भेद, (२) क्षेत्रसे-चउदह राजु लोक (त्रस नाल) प्रमाणें. (३) काल से-सादी सान्त. (४) भाव से सर्व इच्छाका निरूंधन कर सम भाव में प्रवर्तन होवे सो निर्ज्जरा.

८ "बन्ध तत्व"-शुद्धात्म गुणों के प्रतिकूल जो कषाय विषयादि गुणों है उनसे आकर्ष कर जो कर्म पुद्गलों का आत्मा प्रदेशोंके साथ सम्बन्ध होवे सो बंध. कर्म को ग्रहण करने रूप जो चिक्कणास लिये सत्ता है सो भाव बन्ध, उसके जोग से जो कर्मों के दलीकोका जमाव होकर ठेहरे सो द्रव्य बन्ध, और (१) द्रव्य से बन्ध के चार प्रकार, (२) क्षेत्र से-लोक प्रमाण, (३) काल से-सादी सान्त, (४) भाव से राग द्वेष अज्ञानता रूप चीकास सो बन्ध.

(९) "मोक्ष तत्व"-समूल कर्मों का नाश कर आत्माका छूटकारा होना सो मोक्ष. कर्म पडलों के दूर होने से स्वानुभव होना सो भाव मोक्ष, जिसानुभव से कर्मोंके बन्धन से छूटना सो द्रव्य मोक्ष, और (१) द्रव्य से मोक्ष साधन के ४ कारणों, तथा केवल ज्ञानी सो द्रव्य मोक्ष. (२) क्षेत्रसे—अढाइद्वीप प्रमाण. (३) काल से—सर्व सिद्धों आश्रिय अनादि अनन्त, एक सिद्ध आश्रिय सादि अनन्त, (४) भावसे सर्व कर्मो से निर्मुक्तहो सिद्ध क्षेत्र में जो सिद्ध भगवन्त अनन्त ज्ञानादि गुणयुक्त विराजते हैं सो भाव मोक्ष.

यों यह नवों पदार्थो—द्रव्यार्थिक नय से नित्यहैं, पर्यायार्थिक नयसे अनित्य हैं, निश्चय नय से अभिन्न हैं, व्यवहार नय से भिन्न हैं, सामान्य नयसे एक, विशेष नय

से–अनेक, ज्ञान नयसे ज्ञेय, क्रिया नयसे–हेयोपादेय, परस्पर सा पेक्षा, अनन्त धर्मा त्म कथंचित्–उत्पन्न, कथंचित्द्वि नष्ट, कथंचित् ध्रौव्यः यों त्रिरूप एकही समयमें श्रद्धे और भी इने नय निक्षेपे प्रमाण आदि द्वारा जिनेन्द्र प्राणित सूत्रानुसार श्रद्धने की रुची रक्खे सो चतुर्थ गुणस्थान वर्ती धर्मात्मा जानना .

सम्यक्त्वी के ६७ लक्षणों का अर्थ मूल प्रमाणेंही जाणना.

पांचवे गुस्थान के लक्षण.

"श्रावककी ११ प्रतिमा."

आर्य–श्रावक पदानि देव । रेकादश देशितानिय षुखतु ॥
स्वगुणाः गुणैः सह । संत्तिष्टन्ते क्रम विवृद्धा ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीजिनेश्वर भगवन्त ने श्रावकों को गुणवृद्धि करने के इग्यारे स्थानक फरमाये हैं, उनमें श्रावको प्रवर्त तेहुवे जों जों योग्यता को प्राप्त होतेहैं, त्यों त्यों पीछे के गुणों में कायम रहते हुवे आगे को गुणों की वृद्धि करते जाते हैं.

आर्या–दंसण वय साझाइय । पोसह सचित्त राइ भत्तेय ॥
बंभारंभ परिग्गह । अणुमण उदिट्ठ देश विरदोय ॥२॥

अर्थ–उन ११ स्थानक के नाम–१ सम्यक्त्व, २ ब्रत, ३ सामायिक, ४ पौषध, ५ रात्रिभोजन त्याग, ६ साचित त्याग, ७ ब्रम्हचर्य ८ आरंभ त्याग, ९ परिग्रह त्याग, १० अनुमति विरत, और ११ उदिष्ट विरति-देशविरति. इस प्रकार से अनुक्रमें गुणों वृद्धि करते हैं.

आगे इन ११ ही स्थानक कोंका अलग २ विस्तारसे स्वरूप कहत हैंः—

आर्या–सम्यग् दर्शन शुद्ध । संसार शरीर भोग निर्विण्ण ॥
पंचगुरू चरण शरणं । दर्शनिक स्तत्त्व पथ गृह्य ॥ ३ ॥

अर्थ–देश विरति–श्रावक का पद प्राप्त करने का अव्वलही पंक्तिया सम्यक्त्व है, जिसका विस्तार से वर्णन चौथे गुणस्थानमें कियागया है. उनगुणों संयुक्तही जीव इन पञ्चम गुणस्थान में प्रवेश कर यहां सम्यक्त्व की विशेषशुद्धि करते हैं. अर्थात–संसार से शरीर से और भोगों से विरक्त भावी होते हैं. संसारिक कुटम्बको

तो मतलबी जान धायमाता (दूध पिलाने को रक्खी हुइ धाय) बच्चेको लाडलडाती हु इ भी विरक्त रहे त्यों ममत्व बन्धसे विरक्त रहै. व्योपारी ज्यों लाभोपार्जन की इच्छा से द्रव्य व्यय करते हैं; त्यों शरीर को धर्म करणी करने पोषते हुवे विभूषादिसे विरक्त रहैं, और ज्यों व्यश्नी अफीम को जहर जानते प्रमाण युक्त भोगवते है, त्यों भोगोपभोगका प्रमाण कर विरक्त रहते हैं. अर्हन्तादि पंच परमेष्टि केही शरण भूत जानते हुवे अन्य का शरण स्वप्न मात्रमें भी नहीं वांछते हैं, और सर्वज्ञ प्रणित तत्वों के ज्ञान को पथ्य (रुची कारक) आहार की माफिक गृहणकर परिणमाते-पचातेहैं. सो दर्शनिक-सम्यक्त्व रूप प्रथम स्थानक में प्रवर्तक देशाविरती श्रावक कहे जाते हैं.

"शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा ऽ न्यदृष्टि प्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टे रतीचाराः" अर्थात्—१ श्रीजिनेश्वर भगवन्त के अतिगहन समुद्र जेसे वचन अपनी अल्प लोटे जेसी बुद्धि में न समानेसे-ग्राह्यमें न आने से शङ्का-वैम लावे, २ धर्म करणी फलकी या अन्यमतकी वांछा करे, ३ साधुओंके या रोगी ग्लानाके मलीन गात्र देख दुर्गंछा करे, याकरणी का फल होगा कि नहीं ऐसा सन्देह करे, ४ पर (दूसरे) पाखण्डियों की परशंसा (महिमा) करे. और ५ पाखण्डियों का संस्तव (सदा) परिचय-सङ्गति करे, तो सम्यक्त्व में अतिचार (दोष) लगता है. एसा जान सम्यक्त्वी श्रावक इन पांचोंही कामोंसे दीर्घ उपयोग युक्त सदा बचाव करते ही रहते हैं. सम्यक्त्व में दोष लगने नहीं देते हैं.

ऐसीतरह से जब दर्शन-सम्यक्त्व में निश्चलात्मक बन जाते हैं. तब अधिक वैराग्यकी वृद्धि कर ने दुसरे व्रत नामक स्थान में प्रवेश करते हैं. जिसका स्वरूप कहते हैं.

आर्या—निरति क्रमण मणुव्रत । पंचक मपि शील सप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो । यो सौ व्रति नामतो व्रतिकः ॥ ४ ॥

अर्थ—"निःशल्योव्रति"-इस सूत्रानुसार प्रथम-हृदय रूप क्षेत्र(खेतको) तीनो शल्यों से निष्कन्ट-विशुद्ध करतेहैं अर्थात्-प्रथम माया शल्य का निकन्दकर - अभ्यान्तर-अतंरीक चित्तवृत्तिको शरल (ढोंगकी अभिलाषा रहित) बनाते हैं, दुसरे नियाणा-निदान शल्यका निकन्द कर व्रत-धर्म करणी के इहलोक परलोक सम्बन्धि फलकी वांच्छा नहीं करते. निरवांछक (अनररी) करणी कर उसका महान लाभ मा-

स करते हैं. और तीसरा मिथ्यादर्शण-कुमत श्रद्धान का शल्य का निकन्द कर जिन वचनों के युक्त आस्तिक्य बन, की हुइ व्रतादि करणी को निर्मळ-निर्दोष रक्खते हैं. इन तीनो शल्य रहित हृदय क्षेत्र को बना फिर सम्यक्त्व युक्त व्रत बीजारोपण करते हैं सो कहते हैं:-

सूत्र-हिंसा नृतस्तेया ब्रह्मपरि ग्रह भ्यो विरतिं व्रतम् ॥
दिग्दे शानर्थ दण्ड विरति । सामायिक पौषधोपवासो
भोग परिभोगाऽतिथि संविभाग व्रत सम्पन्नश्च ॥

अर्थ-हिंसासे, झूठसे चोरीसे, मैथुन से, और परिग्रह से, पांचों से जो निवृतते हैं-इने छोडते हैं सो पंच व्रत कहे जाते हैं. इन से निवृत्ति दो तरह से होती हैः-"देश सर्व तो अणु महती" अर्थात्-जो सर्वथा प्रकारे इन पांचोही कामों का त्याग करते हैं. सो महाव्रती (साधु) कहे जाते हैं. और इनों की अपेक्षा से जो देश-थोडा सा त्याग करते हैं सो देशव्रती (श्रावक) कहे जाते हैं. +

और दिशाव्रत, पेशव्रत, अनर्था दण्डव्रत उपभोग परिभोग परिमाण सामायिक पौषध उपवास, और अतिथी संविभाग, इन ७ को शीलव्रत कहते हैं, यों १२ व्रतों के धारक श्रावक कहे जाते हैं.

और "व्रत शीलेषु पञ्च पञ्च यथा क्रमम्" अर्थात् उपरोक्त पांचों व्रतों और

---

* साधू तो (२०) बीस विश्वा दया पाळते हैं, और श्रावक (१।) सवा विश्वा दया पाल शक्ते है, जिसका हिसाब इस तरह से हैं;—साधुतो त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवों की हिंसा से निवृते हैं. और श्रावक फक्त त्रस की हिंसा से निवृते, इसलिये १० विश्वे कमी हूवे. साधूतो आरंभिक और संकल्पिक दोनों तरह से त्रस की हिंसा से निवृते हैं, और श्रावक के आरंभ में त्रस की हिंसा निपज जाती ही हैं, परन्तु संकल्प कर (जानकर) मारते नहीं हैं. इसलिये ५ विश्वाही दया रहीं. साधु तो स अपराधी और निरपराधी दोनोंकी हिंसा से निवृते है, और श्रावक तो फक्त निरपराधी की हिंसा से निवृते हैं. इसलिये २॥ अढाइ विश्वाही दया रही. और साधुतो आकोटी अणाकोटी दोनों प्रकार त्रस की हिंसा से निवृते हैं. और श्रावक तो फक्त आकोटी (देख कर) जीव मारने से निवृते हैं इसलिये १। सवा विश्वाही दया जो उतकृष्ट श्रावक होते हैसो पाल सकते हैं.

सातों शीलों के पांच २ × अतिचार हैं सो अनुक्रम से आगे कहते हैं:-

"व्रत और अतिचार"

१ "थूलाओ पाणाइ वायाओ वेरमणं" अर्थात्-बडेजीवों जो हलते चलते प्रत्यक्ष में दृष्टि गोचर आतेहैं ऐसे निरपराधीको जान कर देखकर दोकरण और तीन जोग कर घात करे नहीं. इस व्रतके ५ अतिचारों:-"वन्ध वध च्छेदा-तिभार रोपणा-न्नपाना निरोधा" अर्थात्-मनुष्य पशु पक्षी आदि किसी भी त्रस जीवों को-१ मजबूत बन्धन से वान्धे, २ चाबुकादि से मारे, ३ अवयव-या चर्मका छेदन करे, ४ शक्ति से ज्यादा काम लेवे, और ५ खान पान का निरोध करे- तो इस व्रत में दोष लगता है. ऐसा जान इन ५ कामोंको नहीं करे.

२ "थूलाओ मूसा-वाया ओ वेरमणं" अर्थात्-स्थूल वडा झूठ-जिस से राजा का दन्डका और लोकों का निन्दाका पात्र वनें ऐसा झूठ दो करण और तीन जोग से नहीं वोले, इस व्रत के ५ अतिचारों:—"मिथ्योप देश रहोभ्याख्यान कूट लेख क्रिया-न्यासापहार-साकार मन्त्र भेदाः"—अर्थात्-१ खोटा-झूठा उपदेश देवे, २ गुप्त कर्म प्रगट करे, ३ खोटा खत लिखे, ४ अन्यका द्रव्यादि छिपावे-दवावे,और ५ चुगली करे, तो इस व्रत में दोष लगे. ऐसा जान यह ५ काम त्यागे.

३ "थूलाओ आदिन्ना-दाणाओ वेरमणं" अर्थात्-वडी चोरी जिससे राजके दन्ड का और लोकों के निन्दा-अविश्वास का पात्र वने ऐसी चोरीका दो करण और तीन जोग से त्याग करे. इस व्रत के ५ अतिचारः—"स्तेन प्रयोग तदाहृतदान विरुद्ध राज्याति क्रम, हिनाधिकमानोन्मान, प्रतिरूपकव्यवहाराः" अर्थात्—१ चोर को सहाय देवे, २ चोरका माल लेवे, ३ राजा की आज्ञा उल्लंघे, ४ तोले मापे कम ज्यादा रक्खे, और ५ तत्प्रति रूप वस्तु (हलकी) मिलाकर देवे, तो इस व्रत में दोप लगे, ऐसा जान इन ५ कामोंका त्याग करे.

× त्याग की वस्तु को—१ भोगने की अभिलाषा करे सो अतिकर्म; २ भोगवने केलिये गमन करे सो व्याति कर्म, ३ भोगवने को गृहण करे सो अतिचार. और ४ भोगव लेवे सो अनाचार. इन चारों प्रकर के दोपो में से पाहिले के दोप्रकार के दोषों तो गृहस्थ को सहज लग जातेहैं और उनकी निवृति पश्चाताप व प्रतिक्रमणादि से हो जातीहै. परन्तु. तीसरा दोष तो विन प्रायःश्चित दूर न होता है. इसलिये यहा व्रतों के आतिचारोही दर्शाये गयेहैं.

४ "सदारा संतोस अवसेसं मेहूणाओ वेरमणं" अर्थात्-जिस स्त्रीका पाणी (हाथ) ग्रहण किया है, उसे संतोष उपजे उस उपरान्त सर्वथा मैथुन सेवन करने का एक करण तीन जोग से त्याग करे. इस व्रत के ५ अतिचारः—पर विवाह करणे त्वरिकापरि गृहीता-ऽपरिगृहीता गमना-नङ्ग क्रीडा काम तिव्राभि निवेशा" अर्थात्-१ दुसरे का विवाह करावे, २ पाणी गृहण की हुइ छोटी उम्मर की स्त्री का सेवन करे, ३ स्वस्त्री विना पाणी गृहण(लग्न) की हुइ का सेवन करे, ४ योनी सिवाय दुसरे अंगो से क्रीडा करे, और ५ भोग में लुब्धता रक्खे तो इस व्रत में दोष लगे. ऐसा जान इन ५ कर्मो का त्यागे करें.

५ "थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं"—अर्थात्—स्थूल बडी इच्छा से निवृत्ते धन धान्य आदि की मर्यादा करै कि इतने उपरान्त द्रव्य एक करण तीन जोग से नहीं रक्खूंगा. इस व्रत के ५ अतिचारः—"क्षेत्र वस्तु हिरण्य सुवर्ण धन धान्य दासी दास कुप्य प्रमाणाऽतिक्रमा" अर्थात्-१ खेत घर आदि भूमिका, २ चान्दी सोनादि धातु का, ३ धन (नाणा) धान्य (अनाज) आदि द्रव्यका, ४ दासी दास आदि मनुष्योंका, और ५ जो घरादि के अनेक कार्यो में वस्तु वापरने में आवे उसका प्रमाण एक करण तीन जोग कर (मर्याद) किया है, उससे आधिक वस्तु रखने से इस व्रत में दोष लगता है, ऐसा जान अधिक रक्खे नहीं.

६ "दिशी प्रमाणव्रत"-अर्थात्-पूर्व,पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, और नीची ऊंची इन छेओं दिशा में गमन कर ने का (जानेका) प्रमाण एक करन तीन जोग करे इस व्रतके ५ अति चारः—"ऊर्ध्वाधास्तिर्ग व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यान्तरा धानानि" अर्थात्-१-२-३-ऊंची नीची तिरछी (चारों) दिशी का जो प्रमाण किया है उसके आगे जावे. ४एक दिशीके क्षेत्रका प्रमाण दुसरी दिशीमें मिलावे. और ५याद दास्ति भूलने से याद न आवे वहां तक आगे जावे तो इस व्रत में दोष लगता हैं, ऐसा जान ५ कामों का त्याग करे.

७ "उपभोग परिभोग परिमाण व्रत"-अर्थात्-आहार आदि जो वस्तु एकही वक्त भोगवणे में आवे सो उपभोग, और वस्त्रादि वारम्वार भोगवणें में आवे सो परिभोग इन दोनों प्रकार की वस्तु की जावत् जीव पर्यन्त भोगवणें का प्रमाण(मर्यादा) एक करन तीन जोग कर करे. इस व्रत के ५ अतिचारः—"सचित्त सम्बन्ध सम्मिश्रा भिषव दुःपक्वाहारा" अर्थात्-१ जिसका त्याग किया ऐसी सचित्त (सजीव) वस्तु

का, २ सचित्त मिली हुइ अचित्त वस्तु का, ३ मिश्र वस्तु का,४नशेकी (केफी) वस्तु का, और ५ पूरी पकी न होवे एसी वस्तु का या पक कर विगड गइ हो एसी वस्तु को भोगवने से इस वृत में दोष लगता है. ऐसा जान इन पांचों प्रकार की वस्तु का त्याग करे.

और भी इस वृत के धारक १५ कर्मदान सागते हैं.

अङ्गार वन शकट भाटक स्फोट जीविका।
दन्त लाक्ष रस केश विष वाणिज्य का निच ॥
यन्त्र पीडा निलान्छन मसंयाति दोषणं तथा।
दव दान सरः शोष इति पञ्च दशत्यजेत् ॥

अर्थात्–अग्नि के आरंभ का, २ वन कटाने का, ३ गाडे आदि वाहन वेंचने का, ४ वाहन भाडेदेने का, ५ दांतोका, ६ लाखका, ७ पृथव्यादि फोडनेका, ८ रसक, ९ केश (पशु) का, १० जेहर का, ११ यन्त्र (मीलों) का, १२ अंग भंग करने का, १३, दासादि का, १४ वस्तु जलाने का, और १५ निवाणों से पाणी निकाल ने का. यह १५ प्रकार के व्यापारका भी त्याग कर ते हैं.

८ "अनत्थ दन्ड विरमाण वृत"–अर्थात्–जिस से अपना या दूसरे का कुछ भी मतलव निकलता न हो ऐसे अनर्थ दन्ड (पाप) कामों का एक करन एक जोग से त्याग करे, इस वृत के ५ अति चारः–"कन्दर्प कौत्कुच्य मौखर्य्या समीक्ष्याधि करणो - भोग परिभोगानर्थ वयानि"–अर्थात् १ काम जागृत होवे ऐसी कथा करे, २ अंगकी कुचेष्टा करे, ३ व्यर्था प्रलाप करे (विना काम बोले) ४ पाप कारी वस्तु का संयोग मिलावे, और ५ भोगोप भोग में वृद्धि करे, तो इस वृत में दोष लगता है, ऐसा जान पांचों कामों का त्याग करे.

ऐसी तरह से दुसरी व्रत प्रतिमां में ऊपरोक्त आठों व्रतों को धारण कर, उन के जो जो अतिचारों कह हैं उनको सर्वथा प्रकारे टाल ते-त्यागते हुवे शुद्ध पालते हैं; सो वृत धारी दुसरे पक्तिये पर प्रवर्त ने वाले देशव्रावि (श्रावक) कहे जाते हैं. *

* देखीये उपशक दशाग शास्त्र आणन्दजी आदि १० ही श्रावको ने भगवन्त की समिप्प आठेंही व्रत धारन कियेहै सो.

ऐसी तरह से वृत प्रतिमा में प्रवर्त ते जब वृतों में निश्चलात्मक बन जाते हैं, और अधिक वैराग्य की बृद्धि होती है, तब सर्व बृति (साधुपना) लेने को असमर्थ हुवे. साधु पनेकी वानगी चखने के वास्ते, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारन करते हैं:

चतुरावर्त त्रितय । श्चतुः प्रणाम स्थितो यथा जातः ।
सामायिको द्वि निषद्य । स्त्रियोग शुद्ध स्त्रिसन्ध्याममिवं॥५॥

अर्थात्-सम=समभाव, आय=आवे, इक=जिस वक्त. अर्थात्-जिस वक्त अपनी चित्त वृत्ति की सम भाव में प्रवृती होवे सो सामायिक वृत यह द्रव्य तो सावद्य (हिंसक) जोग (मन बचन काया) से और भाविक राग द्वेष से निवृते, सम भाव में प्रवृत्तिका इस की आराधना करने के वास्ते कम से कम एक मुहुर्त (४८ मिनीट) काल तक का प्रमाण वन्धा है, और विशेष तो आपनी इच्छा होवे वहां तक इस वृत की आराधना श्रावक जन कर सकते हैं. सामायिक वृत आराधन करने की विधी इस मुजब हैकिः-जहां छेही कायका आरंभ विक्रम श्रवन दर्शन न होवे ऐसे एकान्त स्थान में, इर्या पन्थ सोधन पूर्वक जाकर यत्ना पूर्वक गृहस्थ का जो लिंग (भेष-कपडे) हैं, उसें छोडकर, साधु के जैसे पहर ने ओढने के वस्त्र की प्रति लेखना कर-धारन करे, पूंजनी-गुच्छक से जमीन पूंज, एक पट वस्त्र श्वेत रंग का एकही मनुष्य सुख से बैठ सके एसे आसन को बिछा-मुहपाति मुखपर बान्ध, देव गुरु को तिखुत्ता के पाठ से वंदना कर, इतनी धर्म क्रिया करते किसी प्रकार की विराधना हुइ हो उसकी निवृत्ति अर्थ-इर्यावही का सूत्र रूप पाठका उच्चारन कर, उस दोषकी विशुद्धि के लिये-तस्सुत्तरी का सूत्र पाठ कह, कायुत्सर्ग (कायाको एक स्थान स्थिर) कर, मन में इर्यावही सूत्र का अर्थ का चिन्तावन कर, लगे पापके पश्चताप पूर्वक कायुत्सर्ग की समाप्ति कर, दोष निवृत्ति की खुशाली के लिये चौवीस्तव (लोगस्स का) सूत्र कहे. सामायिक वृत धारन करे, फिर नीचे बैठ डावा घुटना ऊभा रखख कमल डोडी वत दोनों हाथों को जोड गोडे पर स्थापन कर तीन आवर्तन युक्त - अर्हन्त को सिद्धको और गुरुको नमुत्थुणं सूत्र से स्तवन कर, ३२ दोष रहित + तीनों यो-

---

+ दशमनं के दोषः-१. सामायिक कीविधी और फलका अजान होवे. २ सामायिक कर कीर्ती-यशःकी वांछकरे. ३ "करुंगा सामाइ तो होवेगा कमाइ" इत्यादि इसलोक के लाभ-की इच्छा करे, ४ में बड धर्मात्माहूं शुद्ध सामायिक करने वालाहूं इत्यादि गर्वकरे. ५ राजा

गों को रक्ख, शास्त्र श्रवण पठन मनन स्मरण स्तवन आदि धर्म ध्यान में रमण करे-जिसे सामायिक वृत कहते हैं. "योग दुः प्रणि धानानादार स्मृत्य नुपस्थानानि"-अर्थात-मन के बचन के और काया के योगों को दुमाति ध्यान-खोटे कार्यो में परवृतावे. आदर रहित सामयिक करे, और सामायिक स्मृति-यददास्ति भूल जावे तो सामायिक में अतिचार लगता है-ऐसा जान इन पांचों दोषों से साफ दूर रहकर सामायिक करते हैं.

ऐसी तरह की शुद्ध सामायिक कमसे कम एक फजर एक दो पहर के और एक श्याम को यों तीन तो जरूर ही करे. ज्यादा करने का अवसर - वक्त मिलेतो लाभ को गमावे नहीं!

ऐसीतरह से तीसरी भूमीका में प्रवृत ते हुवे जब श्रावकजीको कुछर आत्मानु भवका अनन्द चख ने का एक प्रहर के अवकाश में जो मजह प्राप्त होता है, उस

ठेट कुटम्ब आदिके डर से सामायिक करे. ६ सामायिक के फल का नियाणा करे. ७ सामायिक के फल का सन्देह करे (होगाकी नहीं!) ८ क्रोध मान माया लोभ के वश सामायिक करे. ९ गुरु महाराज का और धर्मोप करण का बहुमान नहीं करे. १० दूसरो का अपमान का चिन्तवतन करे.

दश वचन के दोपः—१झूठ बोले, २ विनविचारा बोले, ३ श्रद्धाका भङ्ग होवे ऐसा बचन बोले,४असम्बन्ध—अन मिलता बोले. ५नवकार मन्त्रादि सूत्रका पूरा पाठ उच्चारन नहीं करे. ६ क्लेश उत्पन्न होवे ऐसे मर्मिक् वचन बोले. ७ ठठ्ठा-मस्करी-हाँसी कितुहल करे. ८ स्त्री-की भोजन की, देशकी. राजाकी. चोरकी, आरंभकी इत्यादि विकथा करे. ९ दूसरे की निन्दाकरे-अवरण वाद वाले—और १० सूत्र पाठ आदि गडबड कर जल्दी पूर्ण करदे.

बारह काया के दोपः—१ अयोग्य आसन से बैठे २ अस्थिर आसन से बैठे. ३ दृष्टिकी चपलता करे. ४ पापके-ससार के कामों करे. ५ भींतादि का टेका लेकर बैठे. ६ बारम्बार शरीर को सकोचे प्रसारे, ७ आलस्य-प्रमाद करे, ८ अगमरोडे-करडका करे. ९ शरीर का मैल उतारे १० चिन्ताके आगनसे बैठे-११ निद्रालेवे. और १२ वैयावच्च करावे-हाथ पांव दबावे.

यों१०मनके, १० बचनके, ओर १२ काया केसबामिल ३२ दोषों रहित जो सामायिक करेसे शुद्ध सामायिक कही जाती है.

ही मजह के रसीले बने, वो मजह अधिक विलसने की उत्कन्ठा जागृत होती है, उसे तृप्त करने आधिक काल परमार्थिक वृति में गुजार नें चौथी भूमि का 'पौषध' नामक है, उस में यथा विधि से प्रवेश कर ते हैं सो- कहते हैं:—

पर्वादिषु चतुर्ष्वी । मासे २ स्वशक्ति मनी गुह्या ॥
प्रोषध नियम विधायी । प्रण धिपरः प्रोषधानशन ॥६॥

अर्थात्—जो स्वात्माको ज्ञानादि त्रिरत्नों की यथा विधि आराधना कर और छेही जीवों की काया को अभय दान देकर पोषते हैं—पाल ते हैं-तृप्त करते हैं, उसे पौषधवृत कहते हैं.

यह पौषध वृत सामायिक व्रत की माफि कही यत्ना पूर्वक एकान्त स्थान में सुकुमल पूंजणी से पूंज च्यार हाथ लम्बा और एक हाथ चौडा विछोना प्रति लेखकर विछावै, मुहपाति मुखपर बान्ध कर, हाथ में रजुहरण ग्रहणकर-लघु नीती, बडी नीति, पित आदि के लिये भोजन और स्थान की प्रति लेख स्वासन पर सामायिक व्रत में कही हुइ विधी मूजब प्रति लेखना के दोष की निवृत्ति के लिये 'इर्यावही सूत्र' कायुत्सर्ग आदि करे. फिर-"पौषध व्रत" ग्रहण करने के लिये यही विधि कर पोषध ग्रहण करे. फिर थोडे मे थोडे चार प्रहर विशेष यथेच्छा प्रमाणे १८ दोष रहित आत्मा + ध्यान में काल गुजारे.

※ वस्त्र पात्र स्थान आदि में कोइ जीव जन्तु होवे उनको सूक्ष्म दृष्टिसे देखकर उन्हे तक लीफ नहोवे, ऐसी तरह से एकान्त में स्थापन करे उसे प्रतिलेखना कहते हैं.

+ पोपद के १८ दोप पोपा के पाहिले दिन वर्जना चाहीये-कल पोपा करनाहे इस लियेही-आज. १ स्नान करे २ अब्रह्म (मैथुन) सेवन करे. ३ पोषा के निमितही सरस और ज्यादा आहार करे. ४ पोषाके निमित वस्त्र धोबावे. ५ शरीरको सिणगारे, और ६ वस्त्र रगावे [यह ६ काम पोषाकिये के पाहिले दिन करे तो दोष लगे] और पोषालिये बाद:—१ अव्रति (जिसने संवर सामायिक न कियाहो उस) का आदर सत्कार करे, बैठने को विछोना देवे, वैयावच्च करे. २ अपने शरीर की विभूषा करे. केश-बाल सवैरे. वस्त्र सजावे, वगैरा. ३ अपने शरिर का या दूसरे के शरीर का मेलउतारे. ४ अधिक निद्रालेवे-अर्थात्-पोषेमे दिनको तो सोनही नहीं चाहिये. और रात्रिको पहला छेला प्रहर छोड बीचके दोप्रहर से अधिक निद्रा लेवे ५ गोछा रजुहरण आदिसे शरीर को पूंजे विनाही खाज कुचरे, ६ स्त्रीयोंके

इस व्रत के ५ अति चार :— "अप्रत्यवेक्षिता ऽप्रमार्जितो-त्सर्गादान संस्त रोप क्रमणा:ऽदर स्मृत्यनुप स्थानानि" अर्थात्-बैठने सोने का स्थान वस्त्र लघुनीतिका भाजन भूमीका आदि जोजो वापर ने (उपयोग) में आवे, उन को-१ दृष्टि कर देखे नहीं, २ पूंजनी कर पूंजे नहीं. तैसे ही, ३ विना देखे विना पूंजे हाथ पग आदि शरीर विछोना संकोचे प्रसारे, पूंजणीयादि उपकरण ग्रहण करे, ४ अनादर से-वेगार टालने जैसा व्रतों में वहुमान-पूज्य दृष्टि रहित पौष करे, और ५ पौष करे के पौषाकी स्मृति-शुद्धि भूल जावे, जिस से पौषा के अयोग्य कृतव्यों को समाचरे तो पोषा में दोष लगे. ऐसा जान पांचों काम वर्जते हैं.

उत्सर्ग मार्ग में उपरोक्त विधि प्रमाणे कम से कम एक महीना में छे पौषेत्तो जरूर करे:—दोनो अष्टमी के दो आठ पेहरके ओर चउदश पूर्णीमां का दो तथा चउदश अमावास्या का दो बेला करे के शोलह प्रेहरका पोषा करे. और ज्यादा वन आवैतो वहुत अच्छा.

अपवाद मार्ग में—जो चारों आहार का त्याग कर प्रति पूर्ण पोषा कर ने की शक्ति नहीं हो तो, देशावकाशिक व्रत, ऊपर कही पौषे की विधि माफ कही धारण कर, निरारंभ निर्ममत्व व्रति से प्रवर्ते, इस व्रत में जो तिवीहार के पचखाण पूर्वक उपवास व्रत धारण करे तो-प्राशुक-निर्जीव उष्ण आदि पाणी ग्रहण करते हैं. और रोग या वृद्धावस्थादि प्रसङ्ग से इतनी शक्ति न होवे तो भिक्षा वृत्ति से निर्दोष आहार लाकर उपाश्रय (धर्म स्थान) में भोगवते हैं, या आहार निपजे वाद अचिन्त कि

सिणगार की राजाओं के युद्ध आदि की ! भोजन आदि निपजाते विधी तथा उनके स्वाद की, देश देशान्तरों के रिती रिवाज की, विषय भोगकी निन्दा-कथनी, इत्यादि वीकथाओं करे ७ विना प्रयोजन, विना बोलाया दोवात करते होवे उसबीच में. निर्थक, चुगली, इत्यादि विन अवसर से वचन बोले. ८ लेने देने की हिंशाव व्यापार. तेज मन्दी, इत्यादि बातों करे. ९ ससारी सम्बन्ध नाते मिलावे-सगपण जोडे. १० अपना शरीर. या स्त्रीयादि का शरीर अनुराग दृष्टिसे निरखे तो. ११ जिसके पास सचित वस्तुहो या मुहढके विन वातो करताहो उसके साथ वातों करे, और १२ हांसी. मस्करी रुदन सोक करे, यों ६ पहिले के और १२ पीछे के मिलके १८ दोष होते है, जिनको टाल कर जो पोषा करतेहै सो शुद्ध पोषा कहा जाताहै.

सीभी गृहस्थ के घर को जा फ्राशुक आहार पाणी का जोग वने वो, या हलवाइ आदि दुकान से सधा निपजा हुवा मोल गृहण कर के भी भोगव लेते हैं. परन्तु इन ६ दिनों में संसारिक सर्व प्रकार के कामों से अलग रहते हैं.

यों चौथी भूमीका में प्रवृतते जब अडोल वृत्तिवन्त बनते हैं, और आधिक वैराग्य की वृद्धि होती है तब तप और धर्म की आधिक वृद्धि करने वासते पांचवी 'नियम' भूमि का में प्रवेश कर उपरोक्त नियमों युक्त नियमों में विशेषता करते हैं.

आर्य—अन्नं पानं खाद्यं । लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्यां ॥
सचरात्रि भुक्ति विरतः । सत्वेष्वनु कम्पमान मनः ॥

अर्थात्—प्रथम उपरोक्त ६ दिनों से भी आधिक तप धर्म की वृद्धि करने के लिये विचार कर ते हैंकि-खाते २ अनन्तान्त काल व्यतीत हो गया जगत् के सर्व पदार्थों अनन्तान्त वक्त भोगव आया, तो भी आभितक तृप्ति नहीं आइ, और एक दम सब खान पान छोडूं ऐसा अवसर तथा शक्ति भी नहीं, इसलिये महा अनर्थका हेतु अन्धा खाना-रात्रिको अन्न पाणी पक्वान मेवा तंबोल फलादि सर्व पदार्थों को भोगवने (खाने) के जाव जीव पर्यन्त त्याग करे, जिस से बारह महीनें में छे× महिने के तपका फल प्राप्त कर सकें! और शरीर की ममत्व घटाने-अशुचि निवृत्ति उपरांत सर्व शरीर के स्नान का, हजामत करा ने का, इन्द्रियो निग्रहार्थ-दिन को अब्रम्ह (मैथुन) सेवनका, और धोती की दुसरी लांग लगानेका इन पांच कामोंका त्याग करे.

यों पांचवी भूमीका में तपकी वृद्धि और ममत्व की हानी करते २ जब विषयोंका निग्रह करने मन पर पूरा काबु पुगाने समर्थ बने, तब छट्टी ब्रम्हचर्य भूमिका में प्रवेश करते हैं.

आर्या—मल बीजं मलयोनि । गलन्मलं पूत गन्ध बीभत्सं ॥
पश्यनं गमनंगा । द्विरमति यो ब्रह्मचारिसः ॥

× श्लोक—यः रात्रौ सर्वतः आहारं । वर्जयंति सुमेधरय ॥
तेषां पक्षोप वासेन । फल मांसेन जायते ॥

अर्थात्—जो एक महीने तक रात्री को सर्व आहार पाणी भोगवने का त्याग करता है उसे-एक महीने में १५ उपवास का फल प्राप्त होता है:—महा भारत.

अर्थात्-देखतेही विनता-सूग की उत्पन्न कर ने वाली, पीरू रूद्र मूत्र कर पूरित, दुगन्धा ऐसी स्त्रीकी योनी का सेवन और नव तथा इग्यारे द्वारों से सदा अशुची का झरना ऐसे शरीर से आलिंगन में सुख का मानना यह प्रत्यक्ष अज्ञानताका दर्शक, और असंख्य असन्नी मनुष्य तथा नव लक्ष सन्नी मनुष्यों का घमशान करना यह महानिर्दयी--अधर्मी कृतव्य. ऐसा मैथुन को महा अधर्म--अनर्थ पाप का हेतु जान सर्वथा प्रकार से त्याग कर, + नव वाड, विशुद्ध ब्रम्हचर्यव्रत का स्वीकार करते हैं.

ऐसी तरह से से ब्रम्हचर्य भूमीका में प्रवर्ती करते त्रिना अन देखाते हुवे जीवों की हिंशा से निवृते तो फिर देखाते हुवे स्थावर जीवों का भी भोग क्यों करना? ऐसा करुणा सिन्धु हृदय जव श्रावकजी का होता है. तव सातवी "सचित त्याग भूमीका में प्रवेश करते है.

आर्या—मूल फल शाख शाखा । करीर कन्द प्रासुन बीजानी ॥
नामानि योनि सोयं । सचित्त विरतो दया मूर्ती ॥७॥

अर्थात्-दया मूर्ती श्रावकजी विषय वासना रहित हुवे पुनः उधर मनकी प्रवृत्ति न होवे और अनाथ स्थावर जीवों को अपने कर्मो कर पीडाते हुवे देख अन्तःकरण में 'रे' उत्पन्न होवे तव उन के भोगोंसे अपने शरीर को निवार ते हैं. अर्थात् विंनापका अनाज भाजी फल फूल पत्र निमक मिरच या पाणी आदि सर्व सचित्त पदार्थ खाने का सोगन करते हैं. और अग्नि आदि शास्त्र से निर्जीव हुवा अन्न शाख पाणी आदि के भोगसे क्षुधा तृषा वेदनीको शान्त कर दया धर्मके आराधक वनतेहैं.

ऐसी तरह जव अपना शरीर जो अपनी आत्मा को सुख के साधन रूप था उसके लिये ही आरंभ कर ने की वृत्ति करली तो फिर जो मतलवी-स्वजन परजन है. उन के लिये आरंभ कर व्यर्थ कर्म वन्धन क्यों करना? ऐसी दयामय वैराग्य पूर्ण उरमीयों उछल ने लगे, तव उनको शान्त करने आठवी 'आणारंभ' प्रतिमा स्वीकार करते हैं.

+ विकार उत्पन्न करे ऐसा-१ स्थान, २ दर्शन, ३ कथा, ४ आसन, ३ श्रवन, ६ चिन्तन, ७ अहार, ८ विशेषाहार, और ९ सिणगार, इन ९ कामों को त्याग नेसेही शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पलताहैः—

आर्या—सेवा कृषि वाणीज्य । प्रमुखदारंभतो व्युपारमाति ॥
प्रणातिपात हे तोयों । सव्वारम्भ भी निवृत्तते ॥८॥

अर्थात्—इस संसार में—कर्म भूमी मनुष्यों के क्षेत्र में तीन तरह के कर्मों कर उप जीवी का चलाते हैं:—१ हथीयार वान्धकर-क्षत्री सिपाइ प्रमुख, २कृषी-खेती बाडी कर, कृषान प्रमुफ और ३ मसी-लेख कर वाणिज्य व्योपारी प्रमुख इन तीनों कर्मों में बहुदा छे जीवों की काया का घात का प्रसङ्ग आता है, और इस पाप कर्मों कर उपार्जन किया हुवा द्रव्यका हिस्सा कर्म कर्तासे भी अधिक स्वजन आदिके भोगोप भोग में लगता है, तथापि उन पाप कर्मों का समपूर्ण फल भोगवने का अधिकारी तो वो कर्ता ही होता है. अर्थात् द्रव्य का हिस्सा लेने वाले बहुत हैं परन्तु कर्मों का हिस्सा लेने वाला कोइभी नहीं है' ऐसा जान श्रावक जी परार्थ भी आरंभ-छेही कायकी हिंसा का त्याग कर निरारंभी बनते हैं. अपने अर्थ और परार्थ कदापि किंचित मात्र हिंशा नहीं करते हैं.

यों स्वार्थ और परार्थ हिंसा से निवृत कर जिनका हृदय दया कर कोमल वन गया है, वो फिर उन के सन्मुख होते हुवे कुटारम्भ को दृष्टि कर देख सकते नहीं हैं. अर्थात् अपने सन्मुख होते हुवे घातकी कृतव्यों को देख उनका हृदय रुदन करने लगता है, तब वो घात की कृतव्य न दृष्टि में आवे, और न उनकृतव्योंका आदेश करना पडे, ऐसा पाप से बचने रूप अपना आत्म साधन करने के लिये नववी पेसारंभ प्रतिमा का स्वीकार करते हैं:—

आर्या—व्राह्येषु दश सु वस्तु । ममत्व मुत्सृज्य निर्ममत्व रतः॥
स्वस्थः संतोषः परः । परिचित्त परिग्रही द्विरतः ॥९॥

अर्थात्—निरारंभी और निष्परिग्रही वृति का मजाह भोगवने के लिये आरंभ और परिग्रह से युक्त जिसे अपना घर मान रक्खा था उस स्थान का त्याग कर, शरीर के रक्षणार्थ कुछ वस्त्र वरतन आदि ग्रहण कर बाकी का सब - दश प्रकार कों वाह्य परिग्रह की ममत्व मूर्च्छाका त्याग कर - धर्म स्थान - उपाश्रय में जाकर निवास करते हैं. और ऊपर जो आठों भूमीका में आत्म धर्म साधन की किरिया बताइ है उसका पालन अन्तः करण की स्थिर वृत्ति कर करते हैं. ज्ञान दर्शन च-

रिता चरित रूप धर्म से आत्मा को पोषते हुवे - ज्ञान के ध्यान में सदा निमग्न रहते हैं. कोइ भी किसी प्रकार की आरंभिक सम्माति मांग ने आवे या अपने शरीरार्थ कदापि आरंभी काम करने का किनी को आदेश नहीं देते-हैकि तुम अमुक प्रकारसे यह कार्य करो, आरंभी कार्य में मौन धारण करते हैं. क्षुधा प्राप्त हुवे आपने स्वजन के घर में जो भोजन निपजा हो उसे भोगव आते हैं. सदा धर्म ध्यान में काल गुजारते हैं.

जो निजार्थ और परार्थ आरंभ करना और कराना इन पापों से निवृत्त ते हैं. उन की पाप कार्यों में सहज अरुची उत्पन्न होजाती है. अर्थात्— फिर उनको पापारंभी वो उत्पन्न हुवा काम अच्छा नहीं लगता है. तब अनुमोदन-अच्छा जानना और व्याख्यान करना इस से निवृत्ति करने दशवी 'उदिष्ट कृत प्रतिमा' धारण करते हैं:—

आर्या—अनुमती रारंभ । व परिग्रहे वैहिकेषु कर्म सुवा ॥
नास्ति खलु यश । समाधीर नुमाति विरतः मन्तव्य ॥१०॥

अर्थात्—उपरोक्त भूमीका में दर्शाये मुजब आत्म साधन करते २ जब मनपर पूरा काबु जमाता हैं, तब मनकी सांरभी कार्य के अन्मोदन से सहज निवृत्ति होतीहे, वो - अर्थात्—घर के और परके, आरंभी और सपरिगृही जो कामों सुनने में देखने में जानने में आइ हुइ बातों की, तथा आरंभ से निपजी हुइ वस्तु आहार वस्त्रादि जो भोगव ने में आवे-उन की-परसंस्या-गुणानु वाद करने से-मन कर उस कार्य को अच्छा जान ने से निवृतते हैं. आप हाथ से आरंभ करते नहीं, दुसरे के पास कराते नहीं, और उन के वास्ते किसी ने कुछ आरंभ कर कोइ वस्तु निपजाइ होवे तो वो उसे ग्रहण करते नहीं-भोगवते नहीं. शुद्ध निर्दोष फासुक वक्त सिर जो आहार पाणी वस्त्रादि मिल जावे, उसे ग्रहण कर धर्मार्थ शरीर का निर्वाह करे सदा आत्मानन्द में तल्लीन बने रहते हैं.

ऐसी-तरह प्रवृत्ति करते जब मन पर पूरा कबू पहोंच गया, तब निश्चय होगया कि-अब में साधु वृत्ति - मुनि धर्म का सुख से निर्वाह कर पार पहोंचा सकूंगा ऐसा निश्चय होते प्रथम साधु धर्म को अजमाने इग्यारामी "समण भूए" प्रतिमा में—साधु तो नहीं परन्तु साधु जैसे (नकली साधु) बनते हैं.

आर्या—गृहतो मुनिवत् मित्वा । गुरूप कण्ठ व्रतानि परिग्रह्य ॥
भैक्ष्याशन स्तपस्य । न्नुत्कृष्ट श्चेल खण्ड धरः ॥११॥

अर्थात्—समण भूत बनने के लिये श्रावक गृह लिंग (गृहस्थका रूप दर्शक वस्त्र का) त्याग कर, चोल पट्ट पहन ते हैं, पछोवडी चद्दर ओडते हैं, मुखपर मुहपति बन्धते हैं, उघाडी दन्डी का रजुहरण डाबी बगल में दबाते हैं, काष्टपात्र-झोली में स्थापन कर इर्या समिती पूर्वक स्वज्ञाती के घर में भिक्षार्थ जाते हैं. ४२ दोषों रहित शुद्ध-आहार ग्रहण कर उपाश्रय में आकर ममत्व-मूर्च्छा रहित फक्त धर्म बृद्धि अर्थ शरीर को सशक्त टिका कर रखने बिल में सर्प प्रवेश करे त्यों स्वाद नहीं लेते भोगव ते हैं. इच्छा होतो ग्रामानुग्राम विहार करते हैं, क्षुधा तृषा-शीत-ताप-ताडन-मारन आदि सब परिसहों को सम भाव सहन करते हैं. शिरके दाडी मूछों के वालों का लोच करते हैं. यों आत्मा को निडर बनाते हैं. फक्त यह साधु नहीं है, ऐसी पहचा-न अन्य को होने के वास्ते शिरपर शिखा (चोटी) रखते हैं, इनको कोइ साधु जान नमस्कार करे तो आप खुल्ला कह देते हैं कि में साधु नहीं हूं-में तो समण भूत प्रति माका वाहक श्रावक हूं. इस प्रतिमा के धारक उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं.

श्रावक उपरोक्त ११ गुण श्रेणी की वृद्धि के कर्म से, आत्म शक्तिको अजमा ते ज्यों२ वैराग्य की वृद्धि और आत्म की शक्ति प्रबल होती जाती है त्यों त्यों बडते हुवे साधु भूत बन जाते हैं.

इन इग्यारे प्रतिमा में कहे हुवे स्थान के किसी भी मध्य के स्थान का नीचे के स्थान में रहा श्रावक आराधन करे तो कुछ हरकत नहीं. परन्तु ऊपर चडे हुवे श्रावक तो नीचे के स्थान के गुणों में पूक्त पणें काय रहते हैं. किसी भी गुण की न्युन्यता कदापि नहीं करते हैं.

इन एकादश श्रावक की पडिमा में श्रावक के इग्यारे व्रतों को स्पर्शने का वरणन का समावेश हो गया है. और बारवा जो आतित्य सम विभाग व्रत है, अर्थात् तिथी (दिन) के नियम विन जो अचिन्त्य भिक्षार्थ साधु गृहस्थ के घर में प्रवेश कर शुद्ध आहार गृहण करते हैं. उन के भोजन की वक्त अपने सन्मुख प्राप्त हुवे आहार का हिस्सा करना. अर्थात्—भोजन करती वक्त हमेशा विचार करे कि जो इस वक्त कोइ साधु आजाय तो इस भोजन में का इतना हिस्सा उन के पात्र में डाल कर्तार्थ

वनू! और उसवक्त साधु आवेतो उलट भावसे दान देवे, ऐसे दानार्थि श्रावकको इस वृत के आराधन निमित ५ अतिचार वर्जने चाहीयेः—"सचित्त निक्षेपा-पिधान पर-व्यपदेश मात्सर्या कालातिक्रमाः-अर्थात्-जो वस्तु फ्रासुक-निर्दोष-साधु को देने जैसी होवे उसे सचित्त वस्तुपर रक्खे, २ सचित्त वस्तु कर ढके, ३ आप देने योग्य हो दुसरे पास दान दिरावे, ४ दान दिये पहिले या वाद मत्सर भाव धारन करे, और ५ काल अतिक्रमे-उलंघे तो इस व्रत में दोष लगे. ऐसा जान सुपात्र दानार्थि इन पांचों कामों को वर्जते हैं.

यह बारवा व्रत सर्व स्थानों में जीवों के आदरनीय हैं. इस लिये प्रथम प्रतिमासे लगाकर इग्यारवी वृतिमा के धारक भी अतिथी सम विभाग व्रत का अवसरसे आराधना करते हैं.

इन सिवाय और पांचवे गुणस्थान के लक्षणों का संक्षेपित अर्थ तो मूलपर से ही समझ में आवे जैसा है, विशेषार्थ जानने के लिये जैन तत्व प्रकाश आदि ग्रन्थों को देखीये.

छट्ठे - प्रमत संयाति गुणस्थान के लक्षण.

पांच महावृत—२५ भावना युक्त.

१ " सव्वं पाणाइ वाया ओ वेरमणं"—अर्थात्—सर्व-सूक्ष्म-बादर, त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा से त्रिकरण त्रिजोग से निवृते-त्यागे. इस व्रत की रक्षा के लिये ५ भावनाः"—वाग्मनो गुप्ती र्यादान निक्षेपण समिक्र्या लोकित पान भोजनानि पञ्च" अर्थात्—१.—२ मनको और वचन को पापके कामों से गोपे ('छिपा) कर रक्खे. ३-५ चलती वक्त उपकरण शरीर को धरते उठाते और आहार आदि भोगवतें यत्न सहित प्रवृतने से अहिंसा व्रत शुद्ध पलताहै.

(२) " सव्वं मुसा वायाओ वेरमणं " अर्थात्—किसी को अप्रिय कारी, और मृषा—झूठा वचन वोलने से त्रिकरण त्रियोगसे निवृते. इस व्रत के रक्षाणार्थ पांच भावनाः—"क्रोध लोभ भीरुत्व हास्य प्रत्याख्यानान्य—नुवीचि भाषणं पंच" अर्थात्—१-४ क्रोध का-लोभ का-भयका-हाँस्यका उदय होवे तब वोलना नहीं-मौन धारण करना. और ५ वोलते पहिले वचन का फल विचारना. यों पांचों यत्ना युक्त प्रवृतने से सत्य व्रत शुद्ध पलताहै.

(३) " सव्वं अदिन्न दाणाओ वेरमणं " अर्थात्—मालक के दिये विना या म-

न विना छुपा के लेना जिसे चोरी कहते हैं, उस से निवृते. इस ब्रत के रक्षाणार्थ ५ भावनाः—"शून्यगार विमोचिता वास परोपरोधाकरण भैक्ष्य शुद्धि सधर्म्माऽविसंवादाः पंच." अर्थात्–१. सूने घर में मालक की रजा से रहे, २ पाहिले रहते को निकाल कर न रहे, ३ कोइ मना करें वहां न रहे, ४ आहार आदि शुद्ध ग्रहण करे, और ५ धर्मात्मा से तो क्या परन्तु किसी के साथ भी विसंवाद (झुठ-झगडा) नहीं करे. यों प्रवृतने से दत्त ब्रत शुद्ध फलता है.

४ "सव्वं मेहुणा ओ वेरमणं" देवता मनुष्य और तिर्यंच की स्त्रीके साथ या नपुंसकके साथ मैथुन करने से निवृते. इस वृतके रक्षणार्थ ५ भावनाः—"स्त्री राग कथा श्रवण तन्मनोहराङ्ग निरीक्षण पूर्वरत्तानुस्मरण वृष्येष्टरस स्वशरीर संस्कार त्यागा-पंच" अर्थात्– १ विकार उत्पन्न होवे ऐसी कथा सुणे नहीं, २ गुप्त अंगोपांग निरखे नहीं, ३ पहिले की हुइ क्रिडाको याद नहीं करे, ४ कामो तेजक आहार करे नहीं. और ५ सिणगार सजे नहीं. यों रहने से ब्रह्मचर्यवृत शुद्ध पलता है.

५ "सव्व परिग्गहाओ वेरमणं"–अर्थात्–सजीव निर्जीव किसीभी तरह का परिग्रह (द्रव्य) रक्खे नहीं, इसके रक्षणार्थ ५ भावना "मनोज्ञामनोज्ञे न्द्रिय विषय रागद्वेष वर्ज्जनानि पंच" अर्थात्–मनोहर–शब्द रूप गन्ध रस स्पर्श पर राग करे नहीं. और खराव पर द्वेष करे नहीं. तोही निष्परिग्रह वृत शुद्ध पलता है.

पांच समिति - तीन गुप्ति.

"इर्य्या भाषैषणा दान निक्षेपोत्सर्गः समितयः"–अर्थात्–१ इर्यास मिती सो (१) द्रव्य से–३॥ हाथ आगे की जमीन देखकर चले, (२) क्षेत्र से–रस्ता छोड चले नहीं, (३) कालसे-दिनको प्रकाशिक स्थान में आँखो से देखकर, अप्रकाशीक स्थान में और रात को पूंज कर चले, (४) भाव से–पांचो इन्द्रिय की विषय का और किसी भी वात का चिन्तवन रस्ते चलता करे नहीं.

२ भाषास मितिसो–(१) द्रव्य से दुःख और राग द्वेष उत्पन्न होवे ऐसा बचन बोले नहीं. (२)क्षत्रसे-रस्ते चलता विशेष वार्तालाप करे नहीं, (३) काल से-पहर रात्रि गये वाद जोर से बोले नहीं, और (४) भाव से–विना विचारा शब्द नहीं उच्चारे.

३ एषणा समितिसो–(१) द्रव्य से फासुक निर्दोष आहार गृहण करे, (२) क्षेत्रसे-दो कोश से आगे आहार लेजाय नहीं, (३) कालसे-पाहिले पहरका लाया आ-

हार चौथे पहर में भोगवे नहीं. और, (४) भावसे—अच्छे बुरे आहार वस्त्र मकान पर रागद्वेष नहीं करे.

४ आदान-निक्षेपना समिति सो-उपकरणो—(१)—द्रव्य से यत्ना से गृहण करे और रक्खे, (२) क्षेत्र से-गृहस्थ के घर रक्खकर अन्य ग्राम जाय नहीं, (३) कालसे दोनों वक्त प्रति लेखना करे, और (४) भाव से-ममत्व मूर्च्छा रहित उपयोग में लेवे.

५ परिठावणिया समिति सो—लघुनीत वडीनीत अयोग्य आहार उपद्धी आ-दि-(१) द्रव्य—यत्नसे परिठावे (डाले) (२) क्षेत्र से-ग्रहस्थ निन्दा करे ऐसे स्थान परि ठावे नहीं, (३) कालसे-दिन को देखकर रात को दिने देखी भूमीकामे परिठावे, और (४) भाव से शास्त्रोक्त विधि से परिठावे.

"सम्यग्योग निग्र हो गुप्तिः"—अर्थात्—मन को वचन को और काया को संरम्भ सम्भारम्भ और आरम्भ से सम्यक प्रकार से रोक रक्खना—कु कर्मोमे प्रवृता ना नहीं सो तीनो गुप्ति है,

पांच आचार.

१ ज्ञाना चार सो-ज्ञान को—(१) अकालकी वक्त गृहण नहीं करे, (२) अवि-नय नहीं करे, (३) वहूत मान पूर्वक गृहण करे, (४) यथा विधि ग्रहण करे, (५) ज्ञान दाता का उपकार न छिपावे. (६) अशुद्ध उच्चारन न करे. (७) विपरीत अर्थ नहीं करे, ओर (८) पाठ और अर्थ को प्रमाण भूत जाणे.

२ दर्शनाचारः—(१) जिन वचनों में शंका नहीं लावे, (२) अन्य मत की वांच्छा नहीं करे, ३ करणीका फलका वैम नहीं लावे, (४) मूढ समान धर्माधर्मका अ-ज्ञान न होवे, (५) स्वधर्मीयों की भक्ति करे, (६) धर्म से डिगे को स्थिर करे, (७) चारों संघकी वत्सलता करे, और (८) जैन धर्म की उन्नति करे.

३ चारित्रा चारसो, समिति ३ गुप्ति युक्त सदा प्रवृते.

४ तपाचारसो - १२ प्रकार का विशुद्ध तप करे.

५ विर्याचार सो - धर्मार्थ आप उद्यम करे, दुसरे पासकरावे.

सत्तर प्रकारका-संयम.

पुढवी दग अगणि मरूय । वणसइ वितिं चउ पणिन्दि अजीव ॥
पहुप्पेहा पमज्जणा । परिठवणा मणो वय काय संयमे ॥ १ ॥

अर्थात्–१९-मट्टी-पाणी-अग्नि–हवा–वनस्पति–बेन्द्रिय–तेन्द्रिय–चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन ९ प्रकार के प्राणीयों कि-किंचित मात्र ही घात होना तो दूर रहा, परन्तु दुःख उपजे ऐसा काम करे नहीं करावे नहीं और करते होवे उन्हे अच्छा भी नहीं जाने. १०. अजीव काय संयम सो वस्त्र पात्र आदि निर्जीव वस्तु भी जितने काल तक चले वहां तक चलावे–फाडे तोडे नहीं ११ प्रेक्षनासो–सब वस्तु ओंको देखकर उपयोग में (काम में) लेवे. १२ प्रमार्जना सो–योग्यस्थान वस्त्र पात्र पूंज करवापरे. १३ उप्रेक्षा सो–हितोपदेश से धर्मोन्नति करे, सर्व कार्य उपयोग पूर्वक करे. १४ 'परिठावणा सो' अयोग्य वस्तु को यत्ना से परिठावे. १५-१७ मन वाणी और शरीर को अधर्म मार्ग से निवार धर्म मार्ग में प्रवर्तावे सो संयम.

"बारह प्राकार का तप"

अनशनाव मौदर्य्यं वृतिपरि सङ्ख्यान रसपरित्याग ॥
विविक्त शय्यासन काय क्लेशा वाह्यं तपः ॥
प्रायश्चित विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यानान्युत्तरम्।

अर्थात्–१ अनशन तपसो–दो घडी से लगाकर जावज्जीव पर्यन्त आहार का त्याग करे. २ उनोदरी तपसो–भूख होवे जिससे कम आहार करे, तथा वस्त्र पात्र कम रक्खे. ३ वृत्ति परिसंख्या तपसो-मिले उसीपर निर्वाह चलावे, इस तपका दुसरा नाम भिख्या चारी भी है सो-निर्वद्य भिक्षा वृत्ति से आहार आदि गृहण करे. ४ रसपरित्याग-दूध दही घी तेल मीठा खारा इन छेओंमेंसे एक दोका या सबी का त्याग करे. ५ काया क्लेशसो. निर्ज्जरा के लिये जान कर शीत ताप आदि सहन करे, लोच करे, विहार करे वगेरा. ६ प्रति सलीनता सो–इन्द्रियों कषायों जोगों का निग्रह करे. इसी तप का दुसरा नाम 'विविक्त शय्यासन' हैसो–स्त्री पशु नपुंसक रहते होवें उस स्थान में रहे नहीं, यह ६ वाह्य (प्रगट) तप हुवे. ७ प्रायश्चित लगे पाप को अलग कर ने तप आदि करे. ८ विनय सो–(१) ज्ञान दर्शन चारित्र-को आदर भाव से गृहण करे सो मुख्य विनय. और ज्ञानादि के आराधक आचार्यादि का सत्कार सन्मान वंदन नमन करे सो चारित्र विनय. ९ वैया वृत्य सो–(१) पाद पृष्टादि दावना सो काया चेष्टा जनक वैयावच्च, और (२) वस्त्र पात्र आहार आदि इच्छित वस्तु देना सो परवस्तू जनक वैयावच्च, १९ सज्झायसो–सूत्रादि आप पढे अ-

न्य को पढाव धर्मोपदेश देवेसो. ११ ध्यान सो-चित्त वृत्ती का निगृह कर किसीभी शुद्ध विचार में रमन कराना सो, और १२ काउत्सर्ग-काया को एक स्थान कर स्थिर रहे. तथा इस तपका दुसरा 'व्युत्सर्ग' भी नाम है सो बाह्य अभ्यान्तर परिगृह का-त्याग करे.

सातवे अप्रमत गुणस्थान के लक्षण.

पांच – प्रमाद.

आर्या–मद विषय कषाय । निन्दा विकहा पंचम भणीया ॥
ए ए पंच पम्माया । जीवा पडन्ति संसारे ॥१॥

अर्थात्—१ मद, २ विषय, ३ कषाय ४ निन्दा और ५ विकथा इन पांचों प्रमादों के वश में पडने से जीवों संसारे में पडते हैं.

१ मद ८ प्रकार से होता है:–(१) जाति-माताके पक्षका, (२) कुल पिता के पक्षका, (३) वल-पराक्रम (ताकद) का, (४) रूव-शरीर के तेज दमक पने का, (५) तव-तपश्चर्याका, (६) सुय-सूत्र-विद्या का, (७) लाभ-द्रव्यादि की प्राप्ति का, और (८) इस्सरी-ईश्वरी–परिवारादि की मालकी का. इन आठों अभि मान को जीतें.

२ विषय २३ के विकार २४० होते हैं:—(१) श्रोतेन्द्रिय की (१) जीव शब्द, (२) अजीव शब्द, और, (३) मिश्र शब्द, यह तीनों विषय. इन को शुभ अशुभ से दुगने करने से ६ होते हैं, और इन ६को राग द्वेष से दुगने करने से श्रोतेन्द्रि के १२ विकार होते हैं. (२) चक्षुरेन्द्रिय की-(१)कृष्ण, (२) हरित, (३)रक्त (४)पित और (५) शुक्ल, यह पांच रङ्ग रूप पांच विकार होते हैं. इनको सचित्त अचित्त मिश्र इन तीनों से ती गुणे करने से १५ होते हैं, इन १५ को शुभ अशुभ से दुगुणे करनेसे ३० होते हैं. और इन ३० को राग द्वेष से दुगने करने से चक्षु इन्द्रियके ६० विकार होते हैं, (३) घ्रणेन्द्रिय की-(१) सुर्भीगन्ध, और (२) दुर्भीगन्ध, यह दो विषय. इनको सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों से तिगुण करने से ६ होते हैं. और इन ६ को राग द्वेष से दुगुणे करने से घ्रणेन्द्रिय के १२ विकार + होते हैं.

+ घ्रणेन्द्रिय के १२ विकार को शुभ अशुभ से दुगुणे कर २४ भि कहते हैं.

(४) रसेन्द्रियके १ कटु, २मधु, ३क्षारा, ४तीखा और ५कषायला, यह ५ विषय. इन को सचित्त अचित्त और मिश्रसे तीगुने करनेसे १५होते हैं. इन १५ को शुभ अशुभसे दुगुने करनेसे३० होतेहैं. और३०को राग द्वेषसे दुगुने करनेसे रसेन्द्रियके ६० बिकारहोतेहैं.
(५) स्पर्शेन्द्रिय १गुरु, २लहू, ३शीत, ४ उष्ण, ५ रुक्ष, ६ चीक्कन, ७ सुकुमाल, ८खरदर. यह ८ विषय. इन ८ को सचित्त, अचित्त और मिश्र से तिगुने करने से २४ होते हैं. इन २४ को शुभ अशुभ से दुगुने करने से ४८ होते हैं, और इव ४८ को राग द्वेष से दुगुने करने से स्पर्श इन्द्रिय की ९६ विकार होते हैं. यों पांचों इन्द्रियों के २३ विषय और २४० बिकारों का निग्रह करे.

३ कषाय प्रमादसो १क्रोध, २मान, ३ माया और ४ लोभ, इन चारों कषायों को बहु ही पतली संज्वलनमात्र उपशान्त रक्खे.

४ निन्दा के दो अर्थ होते हैः—(१) जो दर्शनावरणीय कर्मो दय कर आत्मा के चेतना लक्षण गुण हैं उस पर आवरण आकर प्रवश्य-मृत्यु तुल्य बना देवे सो निद्रा कही जाती है. इस जेहर को निकालते-कमी करते हैं. और (२) निन्दा सो अवगुणों को अवर्ण वाद बोलकर प्रकट करना उसे निन्दा कहते हैं, आत्म सुखार्थी जन अपनी आत्मामें दुर्गुण होवे उने जान-प्रकट कर निकालनेका पर्यन्त करते हैं. दुसरा कोइ अपने दुर्गुण बतावे निन्दा करे तो आप सम भाव से-श्रवण कर उपकार सहित स्वीकार अन्तर दृष्टि कर आत्मा में अवलोकन करते हैं; जो वो दुर्गुण आत्मा में पाजावे तो उसे निकाल ने का उपाव करते हैं. और नहीं पावे तोभी बुरा नहीं मानते हैं, क्योंकि उस ने तो उस अवगुणी की निन्दा करी है-मेरी नहीं करी, ऐसा विचारते हैं. और अपने मुख से दूसरे की निन्दा कदापि नहीं करते हैं. अर्थात् पाप की निन्दा करते हैं परन्तु पापीकी निन्दा कदापि नहीं करें. क्योंकि शास्त्रों में निन्दा का नाम "मास भक्खी" कहा है. अर्थात-दुसरे की निन्दा करनी सो मांस भक्षण करने जैसी अपवित्र है. ऐसा जान मुनि मौन रक्खते हैं.

आगे आठवे गुणस्थान से लगाकर चौदवे गुणस्थान का अर्थ सब मूल में कहे मुझबही समझना चाहिये.

छट्ठा - दृष्टान्त द्वार का खुलासा.

३६३ पाखण्डियोंका स्वरूप समझाने प्रथम ५ समवाय कहते हैं:—

१ कालबादी—कहता हैकि—इस जगत का कर्ता काल ही है. उत्पत्ति प्रलय

आदि सब कालाधीन है, प्रत्यक्ष, देखीये! योग्य काल (वय) को प्राप्त होते स्त्री ऋतु प्राप्त होती है, उसे योग्य वय के पुरुष के संयोग सेही गर्भ रहता है, और नियमित काल पूर्ण हुवे ही पूर्ण पूत्र की प्राप्ति होती है. वो लडका योग्य काल जाते ही बोलता चलता खाता पढता द्रव्योत्पत्ति कुटुम्बोत्पत्ति कर वृद्ध हो मरजाता है. ऐसा काल का सम्राज त्रस स्थावर सर्व प्राणीयों पर और जडोंपर अखण्ड प्रवृतता है.

२ स्वभाव वादी—कहता हैकि—जगतोत्पत्ति आदि सर्व काम स्वभावाधीन है, काल से कुछ भी नहीं होता है. जो होता होतो योग्य काल संयोग हुवेही वन्ध्या के पुत्र क्यों नहीं होता है? स्त्रीके दाढी मूछ क्यों नहीं आती हैं? इत्यादिसे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि वो उनका स्वभाव नहीं है. हँसमें शरलता, बुगले में वक्रता, कोकीलाका मधुर स्वर, कागका कटुक स्वर, सर्प के मुख मे जहर मणी में अमृत, पृथ्वी-कठीण, पाणी प्रवाही, अग्नि उष्ण, वायु चलन, इत्यादि सर्व श्रेष्ठी के पदार्थो स्वभाव सेही प्रवृत्त रहे प्रत्यक्ष दिखते हैं!

३ नियत (होनार) वादी-कहता हैकि—जगत का सब कार्य होनार मुझब ही होता है, जो काल और स्वभाव से होता होतो-अम्ब वृक्ष का काल पके स्वभाव से मोर (फ़ुल) तो वहुत आते हैं, परातु फल तो होनहार जितने ही लगेंगे! देखीये! नियत कैसा प्रबल हौकि-रावण को भविष्यण ने मन्दोदरी ने वहूत ही समझाया, परन्तु होनहार के सवबसे किसी काभी नहीं माना, और मारा गया! इत्यादि अनेक दाखलेसे जाना जाता हौकि-सब होनहार मुझवही होता है.

४ कर्म वादी—कहते हैकि—जगत् के सब कामों कृत कर्मानुसारही होते हैं. जो काल स्वभाव और नियत प्रमाणें होते होवेंतो- काल स्वभाव नियत एकसा मिले पुत्रोत्पत्ति होती है, फिर वो अच्छा बुरा, सुखी दुःखी तो कर्मों प्रमाणे ही होता है. प्रत्यक्ष ही देखीये-धनाढय, दरिद्री मूर्ख पाण्डित इत्यादि विचित्र ता पशु मनुष्य और देवों मे भी देखी जाती है सो सब कर्मो जनित ही है!

५ उद्यमवादी-कहता हैकि-जगत के सब कार्यो उद्यम प्रयास कियेसेही निपजते हैं. जो काल स्वभाव नियत और कर्मो से होताहो तो-तोता अश्व आदि एकही कालादि प्रमाणें उत्पन्न हो उद्यम करने से गायन नृत्य आदि अनेक कला में प्रवीन हो वडे २ इन्द्र नरेन्द्रों के मन हरण करते हैं, और प्रत्यक्ष ही दिखता हैकि- आहार वस्त्र भूषण मकान आदि कुल उपयोग में आते हुवे पदार्थो विना उद्यम के नहीं ही

होते हैं, पत्थरोंमेंसे रत्नों मट्टी में से सुवर्ण आदि निर्माल्य वस्तु में से अमूल्य पदार्थो उद्यम से ही प्राप्त होते हैं, किंबहुना सर्व दुःखों का नाश कर निरामय मोक्ष स्थानके अनन्त सुख का देने वाला एक उद्यम ही है!!

ऐसी तरह से इन पांचों वादीयों का विवाद अनादि से चल रहा है, यह पाचों ही एक एक बात को गृहण कर अपने २ पक्ष को तान ते हैं इसलिये मिथ्या त्वी कहे जाते हैं.

इन पांचों से ३६३ पाखण्ड हुवे सो कहते हैं:-

१ क्रिया वादी के १८० भेदः-ऊपर पांच समवाय कहे, उन्हे स्वात्मा और परात्मा से दुगुने करने से १० भेद हुवे, इन को नित्य और अनित्य से दुगुन कर ने से २० भेद हुवे. इने (१) जीव, (२) अजीव, (३) पुण्य, (४) पाप, (५) आश्रव, (६) संवर, (७) निर्जरा, (८)बन्ध, और (९)मोक्ष, इन ९से९ गुने करने से२०×९= १८० हुवे. यह क्रियावादि-आत्मा का और क्रिया का अनादि अनन्त सम्बन्ध मानते हैं, क्रियासे ही गतागति कर पुण्य पाप के फल भोगवना मानते हैं, इन को मिथ्या-त्व में लेने का सवब यह हैकि-आत्मा को अनादि अनन्त सक्रिया मानने से मोक्षकी नास्ति होती है. और यह फक्त क्रियासे ही मोक्ष मानते हुवे ज्ञान की उत्थापना करते हैं. +

२ अक्रिया वादिके ८४ भेदः-ऊपर कहे सो पांच समवाय और छट्ठा-यद-च्छवादी ÷ यह ६ स्वात्मा से और परमात्मा से दुगुने करने से १२ होते हैं, इनको ऊपरोक्त ९ तत्व में से पुण्य पाप * कमी कर ७ तत्व में ७ गुणे करने से १२×७

\+ श्रीभगवति सूत्र के ३० वे समव सरण शतक के पहिसे उदेशे में क्रिया वादिको १४ वे गुणस्थान तक बता कर बहूत उत्तम दर्शाया है. सो वो क्रिया करतूत को मान ने वाले जान ने. परन्तु मिथ्यात्वी नहीं हैं.

÷ यह इच्छावादी कहते हैं कि-कार्या कारण भावका कुछ नियम नहीं हैं, क्यों कि-जैसे मरे मेंडक से भी मेंडक उत्पन्न होते हैं, और गोबर से भी मेंडक होते हैं. अग्नि से भी अग्नि उत्पन्न होती है, और अरणीकी लकडी से भी अग्नी होती हैं, ऐसे अनेक वस्तु होने से कार्य कारण नियम मान ना उचित नहीं है, जो होता है सो सब यद्दच्छा से होता हैं.

* यह पर लोक की नास्ति कर्ता होने से पुण्य पाप की नास्ति करते हैं.

=८४ भेद होते हैं. यह कि कहते हैंकि-जगत् के सर्व पदार्थो क्षीण २ में परावृत पाते दृष्टि आते हैं. पदार्थो की अस्थिरता के सवव से उनको क्रिया नहीं लगतीहैं- न कर्म वन्ध होता है और न उन के फल भुक्तना पडता है.

३अज्ञानवादीकेे६७ भेदः-(१) सत्वं-क्या जीव सत्य है? (२) असत्वं क्या असत्य है?(३)सदसत्वं क्या सत्यासत्यहै? (४) अवाच्यत्वं-जीवको सत्य कैसे कहना? (५) सद्वाच्यत्वं-असत्य कैसे कहना? (६) 'असदवाच्यत्वं'-सत्यासत्यभी कैसे कहना? और (७) सदा सदा वाच्यंत्व-सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं. यह विकल्पों जीव के किये, तैसे नव पदार्थ के करने से ७×९=६२ भेद हुवे, और सत्व, २ असत्व, ३ सदत्वं, ४ अवाच्यत्वं यह × मिलाने से ६७ भेद होते हैं. यह कहते हैंकि-"जानेसो ताने" यह अच्छा, यह बुरा, ऐसे राग द्वेष में ज्ञानी फस मरते हैं. अपन अज्ञानी अच्छे हैं जो किसीकी के झगडे में न फसे, न पाप को जानें, और न पाप लगे.

४ विनरवादी के ३२ भेदः—(१) सूर्य, (२) राजा, (३) ज्ञानी, (४) ज्ञाति, (५) स्थविर, (६) धर्मी, (७) माविन, और (८) गुरू, इन आठोंको-(१) अच्छे जानना, (२) गुणानुवाद करना, (३)नमस्कार करना, और (४)उचित दान देना. इन ४से चौगुन करने से ८×४=३२ भेद होते हैं, यह कहते हैंकि-सव को अपने से अच्छे जान वंदन नमन आदि विनय करने से ही सव सुख की प्राप्ति होती है.

यों चारों वादीयों के मिलकर ३६३ मत भेद होते हैं.

कृष्ण वासुदेव श्रेणिक महराज.

सोरठ देश में देवताकी वसाइ हुइ देव लोक भूत द्वारका नगरी में तीन खन्ड राज के भुक्ता ४२०००, हाथी, ४२००० अश्व, ४२००० रथ ४८००००००००, पायदल, श्री समुद्रविजय आदि १० दशारमहराज, वलभद्रजी प्रमुख ५०० महावीर, पद्युमन प्रमुख ३५००००००० कुमर, संव प्रमुख ६०००० दुर्दन्त, महासेन प्रमुख ३६००० वलवन्त, वीरसेन प्रमुख २१००० वीर, उग्रसेन प्रमुख १६००० मुकट वन्ध राज चाकर, रूकमणी प्रमुख १६००० राणीयों, अनंगसेना प्रमुख अनेक हजारों गणीका, ५६०००००० जादव का परिवार, और भी महा ऋद्धि सिद्धि के

× यहा कितनेक संख्य, २ वेद, ३ शिव, और विष्णव यह ४ मिलता हैं.

धारक बावीस वे तीर्थंकर श्रीरिठनेमी भगवन्त के शिष्य 'श्री कृष्ण वासुदेव' नामक महाराजा थे.

और मगधदेश की राजगृही नगरी में १७१.००००० ग्राम, के ३३०००हाथी, ३३००० अश्व, ३३००० रथ, ३३००००००० पायदल, चेलाणजी प्रमुफ ५०० राणीयों, अभय कुमार प्रमुख २३ कुमर, मगध और अंग दोनों देशका मालक चौवीसवे तीर्थंकर श्री महावीर भगवन्त के शिष्य श्रेणीक नामें महा मंडलीक राजा थे.

इन दोनों महाराजाओंकी सम्यक्त्व की दृढता विषय शक्रेन्द्र देविन्द्र नेपर संस्या करी, जिसे सहन न करते मिथ्यात्वी देवने व्यभीचारी साधु साध्वी का रूप बनाकर धर्म को ढोंग वताने के वास्ते व और भी सब १०८ तरह से परिक्षा करी. परन्तु इन के परिणाम लवलेश भी चालित न हुवे. और इनों ने अपने राज में जाहिर किया था कि जो दिक्षा ग्रहण करेगा उनका महोत्सव और कुटुम्ब का पालन हम करेंगे. ऐसा सुन कर इन की प्राणप्रिय पटराणीयों और पाटवी पुत्रों वगैरा जो जो दीक्षा लेने तैयार हुवे उनको सहर्ष आज्ञा दे स्वतः बडे आडम्बर से उत्सव कर दीक्षा दिलाइ. अपने राज में अमरी पडह बजवाया, जैन धर्मीयों का दाण-हांसल माफ किया, और हरेक तरह से धर्मोन्नाति कर धर्म को विश्व व्यापी-सर्व मान्य बना दिया था. मानो इनोंने अपने तन मन धन जन आदि सर्व स्वय धर्मापण कर विदेही वत - दृष्टाभूत हो राज्य करते थे. इत्यादि इनों के सद्गुणों समोह से आकर्षा कर खुद परमात्मा श्री तीर्थंकर भगवन्त वरम्वार इन के ग्राम को पावन करते थे, और धर्म वृद्धि ज्ञान वृद्धि संघ वृद्धि कराते थे. ऐसा महान् पुण्य की प्रबलता रूप वृद्धि कर इन दोनों महाराजाओं ने श्री तीर्थंकर गौत्र की उपार्जना की है, अर्थात् यह दोनों पूर्वो पार्जित पाप का वदला भुक्त ने फक्त एकही खुलक (छोटा-थोडे आयुका) भव नरकका भव कर अनन्तर आगे के भव में खुद तीर्थंकर-परमात्म पद को प्राप्त कर सर्व जगत्के परम माननिय परम पूज्यनीय हो महन् धर्मकी वृद्धि कर, आयु अन्त अनन्त अक्षय मोक्षके सुखके भुक्ता बनेंगे!

दश श्रावको का वरणन्.

संख्या	श्रावकों केनाम	इनकीस्त्रीकेनाम	रहनेका ग्राम	पास द्रव्य	पास गौसरव्य.
१	आणन्दजी	शिवानन्दा	वाणीयाग्राम	१२ क्रोड	४००००
२	काम देवजी	भद्रा भार्या	चम्पा नगरी	१८ क्रोड	६००००
३	चूलणी भिये	सोमा भार्या	वनारसपुर	२४ क्रोड	८००००
४	सूरदेव	धन्ना भार्या	वनारसपुर	१८ क्रोड	६००००
५	चूल शकत	बहुला भार्या	आलंभीया	१८ क्रोड	६००००
६	कुंडको लीया	पुंस्ना भार्या	कपिल पुर	१८ क्रोड	६००००
७	सकडाल पुत्र	अग्नि मित्रा	पोलास पुर	३ क्रोड	१००००
८	महा शकत	रेवंतीआदि१३	राज ग्रही	२४ क्रोड	८००००
९	नन्दन भिय	अश्वनी भार्या	सावत्थी	१२ क्रोड	४००००
१०	तेतली भिय	फाल्गुनि भार्या	सावत्थी	१२ क्रोड	४००००

यह दशोंही श्रावकों चौवीसवे तीर्थंकर श्री महावीर श्वामीजीके शिष्यों थे. इनोंने पहिली कही हुइ श्रावक धर्म में प्रवेश करने की इग्यारेही भूमिका- गुण श्रेणी का अनुक्रम से यथा विधि शुद्ध सम्पूर्ण आराधन किया है. व्रतों की मर्यादा में जितनी अपने पास ऋद्धि थी उस उपरान्त सर्वथा इच्छा का निरुंधन किया है. इन १० हीने कुल २० वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया, जिस में अन्तिम आयुष्य के ५॥ वर्ष पर्यन्त तो घर धन परिवारका त्याग कर, एकान्त धर्म स्थान में रहकर, एक महीने तक एकान्तर उपवास, फिर दो महीने तक बेले २ पारणे ,फिर तीन महीने तक तेले २ पारणे, यों चढते २ जावत इग्यारे महीने तक इग्यारे २ उपावास के पा-

रण ने कर श्रावक की इग्यारेही प्रतिमा का अधिकाधिक विशुद्धी से आराधन किया और आयु का अन्त नजीक आया जान सलेषण युक्त संथारा किया-मरे वहांतक चारों अहार के त्याग कर एकस्थान स्थिर रह धर्म ध्यान में निर्मग्न हुवे, जिस से ज्ञानावरणीय कर्मदल पतले पडने से ऊपर प्रथम स्वर्ग नीचे प्रथम नरक और चारों दिशीयों पांचसो २ योजन तक देखें ऐसा अवधिज्ञान उत्पन्न हुवाहै. शक्रेन्द्र महाराजने इन की परसंश्या करी तब देवताओं इनको डिगाने आये महा बिकराल रूप बनाकर महा दुःख दिया, तीव्र भयंकर वेदना उपजाइ, कितनक श्रावकों के पुत्रों का रूप बना कर उनके सन्मुख लाकर मारे, घरका धन हरण किया, वगैरा अनेक परिसह उपजायें, परन्तु यह धर्म से किञ्चित मात्रही चलित नहीं हुवेहै. ऐसी तरह से द्रढ श्रावक व्रतों की आराधना कर दशोंही प्रथम स्वर्ग के अरुण नामे विमाण में चार पल्योपम के आयुष्य वाले देवों हुवे. वहां से चवकर दशोंहीं महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम सूखस्थान में जन्म लेकर संममले करणीकर कर्मखपा मोक्ष पावेंगे.

धन्नावा सारथवाही का दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के प्रभूत धनी धन्नावा सारथ वाही की भद्रा भार्या के नागदेव की मान्यता लिये बाद एक पुत्र हुवा जिसका "देवदत्त" नाम रक्खा. उसे शेठ का विश्वासू पंथक दास शिणगार सजा क्रिडा के लिये बाजार में लेगया, बहुत बच्चों में खेलता छोड आप सोगया. वहां तस्कर कला में कौशल्य "विजय" चोर उस देवदत्त को निर्धारस देख उठलेगया, उसके भूषण लेकर उसेमरकर अन्धारे कूवेमें डाल आप वृक्षोंकी कच्छा में छिप गया, पीछे दास जागृत हुवा बचा नहीं मिलने से रुदन करता शेठ से कहा, शेठने राज में इत्तलादी, राज भटों मृत्युक पुत्र को और चोर को ढुंढलाये. शेठ सपरिवार अत्यन्त शोकसे पीडित हो पुत्र का मृत्यु कार्य किया; और चोर को शिरकार ने काष्टके खोड में केद किय. कितनेक दिन बाद शेठ जी दाण की चोरी कर राजा के गुन्हेगार हुवे., उनको राज भटने जिस खोडे में विजय चोर का पांव फसाया था उसी खोडे के एक छिद्र में शेठ के पग को फसाया भोजनकी वक्त शेठाणी ने पंथक दास के हाथ शेठ के लिये तस्कर शाळा में भोजन पठाया, उसे शेठ भोगवने लगे तब वो चोर बोला की इस भोजन का कुछ हिस्सा मुझे भी दीजीये. परन्तु शेठने उसे अपने प्यारे पुत्र का घातिक जान भोजन नहीं

दिया. कुछ देर बाद शेठ को दिशा मात्र (मल मूत्र) की हाजत हुइ, तब चोर से बोले चलो बाहिर में कारण से निवृत होआवुं. चोर बोला तुम ने खायासो तुमही जाओ. परन्तु दोनों का एकही खोडे में पाय होने के सबब से एकले शेठ जा सके नहीं, नम्र हो बोले कि अब भोजन का हिस्सा तुझे देवुंगा चल बाहिर चल. भोजन के रस के लालच से चोर शेठ के साथ बाहिर आया कारण निवेडा, दुसरी वक्त दास भोजन लाया तब उसमें से हिस्सा चोर को भी दिया, यह देख दास ने शेठाणी से कहा, शेठाणी को बहुत बुरा लगा, जब शेठ छूट कर घर आये तब शेठाणी के पूछने से शेठने खुलासा किया कि-मैंने कुछ प्रेम भाव से चोर को भोजन न दिया, परन्तु क्या करूं एक खोड मे होनेसे कारण से निवृत उस के सङ्ग विना न हो सका तब लाचार हो उसे भोजन न देना पडा! यों सुन सब संतोष पाये.

विजय चोर मरकर नरक में गया. धन्ना सार्थ वाही-धर्म घोष ऋषि के पास दिक्षा धारन कर प्रथम देव लोक में गये. आगे महा विदेह क्षेत्र में अवतार ले संयम धारण कर मोक्ष पावेगे.

गाथा—सिव सुहा साहेणेसु । आहार विहिओरिओ जनवट्टएदोए ॥
तमा धणोव्व विजयं । साहुणं तेण पोसिज्जं॥ ज्ञाता सूत्र अ०२

अर्थात्—राजग्रही नगरी समान-मनुष्य लोक, धन्ना शेठ समान साधु, विजय चोर समान-शरीर, भद्रास्त्री समान आचार्य, देव दत्त कुमर समान संयम, पंथक दास समान-सहचारी साधु, राज समान-कर्म, राज भटों समान-कर्म प्रकृत्ति. यों मोक्ष सुख साध ने साधु शरीर पोषते हैं.

आचार्य धर्म घोष ऋषि जीका दृष्टान्त.

चम्पा नगरी में नागश्री नामक ब्राह्मण की स्त्रीने भूल कर कडुवा तुम्बा का शाख बनाये बाद मालुम पडने से जेठाणीयों से डर छिपाकर रख्ख दिया. उसवक्त धर्मघोष आचार्य के शिष्यवर्य धर्म रुचि नामे साधु मांसोपवासी पारणे निमित उस के घर आये, नग श्री साधु को देख खुशी हुइ कि-सहजही उकरडी घर आगइ, तुर्त उठ मुनि के पात्र में सब शाख डालादिया, मुनि पूर्ण आहारकी प्राप्ति हुइ जान तुर्त गुरूजी के पास आकर बताया. बहुत शाख देख गुरुजी को वैम आने से पूछा करते

मुनि ने नाम बता कर कहा कि नाना करते एकही दम सब शाख डाल दिया. गुरुजीने किंचित शाख जबान पर रक्खा तो हलाहल जेहर सा कटुक लगा, तब हुकुम दिया कि ऐसे आहार से तुम प्राणमुक्त हो जावोंगे इसलिये इसे निर्वद्य स्थान परिठा आवो. हुकुम प्रमाणकर कुम्भार के निभाडे में आ परिक्षा निमित एक विन्दु डालकर देखा तो तुर्त अनेक कीडीयों उसे खाते ही मरगइ! मुनिने विचारा कि-किंचित आहार से इतनी हिंसा तो सब डालने से तो महा जुलम हो जायगा. और गुरु जी का हुकम तो निर्वद्य स्थान परिठाने का है. इसलिये निर्वद्य स्थान तो मेरा पेट है, कदापि इस से में मरभी गयातो कुछ फिकर नहीं. क्योंकि मेने संयम दया निमंतही लिया है, लेखे लगेगा! यों सोच तुर्त खीर सक्कर की माफिक उस शाख को खा गये!! कि तुर्तही अति दारुण व्याधि उत्पन्न हुइ, गुरुजी के पास आने अशक्त हो और आयु अन्त समिप्य जान पदोप गमन संथारा कर सर्वार्थं सिद्ध नामें महा विमान में ३३ सागरोपम के आयु वाले उत्कृष्ट सुख के भुक्ता एकावतारी देव हुवे!

आचार्यजी ने धर्म रुची को गये बहुत देर हुइ जान चौकस करने दुसरे साधु को भेजे, वो देख आये और अकाल मृत्यु के हाल दर्शाये. सुन कर गुरुजी कोपायमान हुवे और साधुओं को हुकम दिया कि बीच बजार में खडे हो पुकार कर कहो कि-हमारे तत्रश्वी साधु को नागश्री ब्राम्हणी ने जेहर देकर मारडाले हैं! साधुओंने वैसाही किया. नाग श्रीके कुटुम्बने यह वात सुन उसको घरमें से निकल दी. उसके भी शरीर में कुष्ट रोग प्रगटा और महा निन्दा महा विटम्बना सह कर नरकमें गइ!

मतलब—साधु को किसी के मर्म प्रकाश ने नहीं यह उत्सर्ग मार्ग है, परन्तु अन्य लोक जानेगें कि साधुओं में लडाइ हूइ जिस से एक साधु को जेहर दे मार डाले-या जेहर खा मरगया-इत्यादि धर्म का कलंक दूर करने धर्म घोषाचार्य ने अपवाद मार्ग का आचीर्ण कर नाग श्री की फजीती कराइ. यों छट्टे गुणस्थानी उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्ग में यथा अवसर प्रवृत्ति करते हैं.

धन्ना अणगार का दृष्टान्त.

काकन्दी नगरी के धन्ना शेठ ने ३२ क्रोड सोनैयें (मोहरों) का द्रव्य और ३२ सुन्दर स्त्रीयोंका त्याग कर दिक्षा ले निरन्तर छट २ (बेले २) रूप और पार ने मे लूखा सुका आहार कि-जिसे भिखयारी भी गृहण न करे ऐसा भोगवा. ऐसे दुक्कर

पत से ८ महीने में जिनका शरीर सूककर रक्त मांस राहित फक्त हड्डीयों का पिंजरा रह गया. जिनके-पांव-सुके बृक्ष की छाल जैसे, पांव की अङ्गलीयों-सूकी मूंगकी फली जैसी, पीन्दी-कागले की जंघा जैसी, ढींचण-काग जंघा वनस्पति की गांठ जैसी, कम्मर वुढे वेल के पांव जैसी, पेट चमडे की सूकी मशक जैसा, पांसलियों-कांच के ढग जैसी अलग २ दिखें, छाती पत्ते के पंखे जैसी, वाहां-अगथीये की फली जैसी, हथेली-वड के सूके पत्ते जैसी, हस्तांगुली मूंगकी सूकी फली जैसी, गरदन-कमन्डल के गरदन जैसी, जिव्हा-पलासेके सूके पत्ते जैसी, होट-सूकी इमली जैसे, नाशीका अम्ब की मूकी गुठली जैसी, आंख वीणाके छिद्र जैसी, कॉन प्याज के पत्ते जैसे, मस्तक-सूके तुम्ब फल जैसा. ऐसी तरह सर्व शरीर सूक गयाथा! तोभी-सज्झाय ध्यान भिक्षा प्रति लेखना आदि साधु की सर्व क्रिया ओंका यथा विधि वक्तोवक्त आराधन-पालन करते थें, तव ही खुद श्री महावीर परमात्मा ने श्रेणिक राजा के सन्मुख १४००० साधुओं में उत्कृष्ट करणी के कर्ता धन्ना अणगार कोही बताये हैं. यह एक मास का संथारा कर कुल नव महीने की करणी से सर्वार्थ सिद्ध विमान में एकावतारी देव हुवे हैं.

मेघ कुमारका दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के श्रेणिक राजा की धारणी नामक राणी के अङ्ग से उत्पन्न हुवे मेघ कुमार आसुन्दर स्त्रीयों और वहुत ऋद्धि का त्याग कर श्री महावीर स्वामिके सामिप्य दीक्षा ली, सव से छोटे होंने के सवव से अन्तिम विछाना कर सूते, रात्रि के स्वध्याय ध्यान परिठावणीया आदि क्रिया के लिये मुनियों के अवागमनसे और पतले विछोने से जमीन चुवनेस निद्रा नहीं आइ, तव पीछा घर जानेका विचार कर भगवन्त सन्मुख आकर रजा लेते, शरमागये. तव भगवन्त ने फरमाया कि-अहो मेघ मुनि! इससे पहिले तीसरे भव में तुम वेताढ प्रवर्त के नजीक एक हजार हाथणीयों के मालक श्वेतरंगवाले सुमेर नामें गजराज थे. एकदा उष्ण ऋतु में पाणी पीने को तलाव में प्रवेश करते कीचड में फस गये, तव दुसरा वैरी हाथीने आकर तुमारे को दाँतों से वहुत मारा, जिस से सात दिनों में तुम मरकर विंध्याचल पर्वत के नजीक पुनः सातसो हथणीयों के मालक लालरंगवले गजराज हुवे. वहा तुम ने अग्नि के उपद्रव से वचने एक चार कोश भूमी में त्रण वृक्ष राहित मन्डल वनाया था, जव उ-

ष्ण काल में वन में दव, (अग्नि) लगी तव तुम सपरिवार उस मन्डल में आ खडे रहे; उसवक्त और भी अनेक वनवासी पशुवों वहां खीचो खींच भरा गये. उसवक्त तुमने खाज कुचर ने पांव उठाया, उस पांव की जगह एक सुसलीया आगया, पांव रखते कौमल स्पर्श लगने से नीचे सुसलीये को देख तुमने विचार किया कि-वेचार लायसे वचने मेरे शरण आया और जो मैं पांव रखदूं तो इसकी तो यहांही लाय हो जाय! यों करुणा भाव लाकर तीन दिन पांव ऊंचा रक्खा, जब अग्नि शान्त पडने से सब जीवों भाग गये तब पांव वादी में अकडा हुवा नीचे रखते तुम गिर पडे, और मरकर दया प्रभावे श्रेणिक राजा के पूत्र हुवे.

सोचीये! तीसरे भव में निर्थक महा कष्ट सहा जिसका कुछ भी फल न हुवा और दुसरे भव में दया निमित थोडा भी कष्ट सहा तो यह ऋद्धि और संयम तक प्राप्त कर सके! तो अब यहां कितनाक कष्ट सहना है!, सम भाव से प्राप्त वक्त का लाभ लेवोगे तो आत्माका कल्याण हो जायगा.

ऐसा जिनेंद्र का सद्बोध श्रवण कर मेघ मुनि ने फक्त दया निमित दोनों आँखो की संभाल करने का आगार रक्खा, वाकी सब शरीर मुनिराजों की सेवा में समर्पण कर-तहामन से खूब विनय वैयावच्च ज्ञान ध्यान तप कर विजय विमान में ३२ सागर के आयुवाले एकावतारी देव हुवे.

प्रसन्न चन्द्र राज ऋषि का दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के श्रेणिक राजा गुणशील बाग में विराजे श्री महावीर भगवन्त के दर्शन करने जाते, रस्ते में-प्रसन्न चन्द्र ऋषि को सूर्य के तापमें अडोल ध्यानारूढ देख आश्चर्य चकित हो भगवन्त को नमस्कार कर पूछा कि-महाराज! दुक्कर ध्यानी मुनि मरकर कहां जायगें? भगवन्ते फरमाया कि-जो अभी मरेतो पहिली नरक में जाय. श्रेणिक-हैं, पहिले नरक! भगवन्त-नहीं दूसरी नरकमें, श्रेणिक-है दुसरी!! भगवन्त-नहीं तीसरी. यों श्रेणिक आश्चर्य चकित हो प्रश्न करता गया, और भगवंत चौथी पांचवी छट्टी जावत् सातवी नरक में जानेतक का फरमादिया. श्रेणिक ने फिर भी पूछा कि-ऐसे महा मुनि सातवी नरक में जाय? तब भगवन्त ने फरयाया कि-नहीं छट्टी में यों, फिर भी श्रेणिक आश्चर्य चकित हो पूछता गया और भगवन्त-पांचवी चौथी तीसरी दूसरी पहिली भवनपति वाणव्यातर जोतिषी देवलोक ग्रीवेक

और अनुत्तर विमान का नाम फरमाते ही देव दुंदभी का नाद सुणाया, तव श्रेणिने पूछा कि-यह दुंदभी क्यों वजी? भगवन्त ने फरमाया कि प्रसन्न चन्द ऋषि केवल ज्ञानी हुवे हैं. यों सुण श्रेणिक वडाही आश्चर्य चकित हो पूछा कि-वडी ताजुव की वात है, अवी सातवी नरक और अभी केवल ज्ञान, इसका सवव क्या? तव भगवन्त ने फरमाया कि-तुमारे साथ के एक भटने उन मुनि को देखकर कहा कि-यह साधु वडा निर्दयी है. वेचारे नादान वच्चे पर सव राज भार डाल साधु वन गया, उसे परचक्री सता रहे हैं. इतना सुनतेही राज ऋषि कोपित हो परचक्री के साथ मनोमय संग्राम सुरु किया (उसवक्त तुमारा प्रश्न करना हुवा) अनेक नरों का संहार कर शत्रु को मारने चक्र लेने जव शिरपे हाथ डाला (उसवक्त सातवी नरक के दलिये भेले किये) तो रूंड मूंड मस्तक पाया, उस वक्त चौंक गये, और भान आयाकि-मैंने साधु होकर यह क्या जुलुम किया! यों विचार करने लगे (उसवक्त संचित कर्मों के दलिये खपने लगे) त्यों त्यों ऊंचे चडते गये और शुद्ध ध्यान में एकाग्रता लगने से घन घातिक कर्म नष्ट कर केवल ज्ञान पाये! यों सुण श्रेणिक राज वडे खुशी हुवे, और भगवन्त को तथा राज ऋषि को नमस्कार कर स्वस्थान गये.

यों परिणामों की धाराओंके उतर चड पणे श्रेणी में उत्तर चड होती हैं.

हरकेशीबल ऋषिका दृष्टान्त.

पूर्व भव में जाति का और रूप का अभिमान करने से चण्डाल की जाति में उत्पन्न हुवे, हरा काला रंग का वलिष्ट विद्रूप शरीर होने से 'हरकेशी वल' नाम पाये, कुरूप के अपमान से घवराकर पहाड से पडकर मरती वक्त मुनि के दर्शन होते ही मुनि ने उनको अकाम मरण से वचा कर सकाम मरण मरने का बोध किया, जिसे सुन वैराग्य प्राप्त हो दीक्षा धारन करी, और निरन्तर मांस २ तप करने का अभिग्रह धारन कर वनारसी नगरी के वाहिर यक्ष के मन्दिर में ध्यान धारण कर रहे उन के उग्र तप के प्रभाव से तिंदुक (टींवरू) वृक्ष का वासी देव मुनि का भक्त हुवा. उसवक्त वनारसी पुरीके राजाकी भद्रानाम महा दिव्य रूप की धारक कन्या सहेलीयों के सङ्ग उस यक्ष के अन्धरे देवालय में क्रीडा करने आइ, और मुनि को विद्रूप देख मुह फिराकर थूक दिया, उसी वक्त यक्षने उसका मुह वांका करदिया. पुत्रीका दुःख सुन राजा देवालय में आया तव यक्ष मुनि के शरीरमें प्रवेश का बोला कि-यह

कन्या मुझें देवोंगे तोही आराम पावेगे मुनिके शापसें राज डरकर मुनिके साथ उस भद्राका पाणी ग्रहण कराया कि-उसीवक्त वो यक्ष-मूनिके शरीरमेंसे निकल गया. तब मूनिने भद्रासे कहा बाइ! साधूसे दूर रहे-छीना नहीं. भद्र बोली-अभी आपने मेरा पाणी ग्रहण कर मुझे दासी बनाइ, और अब यह क्या फरमाते हो! साधु बोले-में यह न जानताहूं. में तो कन्क कन्ता का त्यागी साधु हूं यों कहते चलपडे. कन्या रुदन कर ने लगी. राजा आदि बहुत से लोकों मुनि के आडे फिर बहूतही समझाए, परन्तु मु-नि मेरु की माफिक अडोहो वहां से दूर जा अन्य एकान्त स्थान में ध्यान धरा.

कन्याकी यह दिशा देख राजा खेदित हो पुरोहितजी से पूछा कि अब इस कन्या का क्या करना? लोभी पुरोहित जी बोले कि ऋषि पात्रि ब्रह्म पात्रि हो शक्ति है, भोले राजा ने उस भद्रा को पुरोहित जी को देदी. पुरोहित सहर्ष लग्न करने यज्ञा का आरंभ किया.

उसवक्त मुनि यज्ञस्थान की तरफ पारणा (आहार) लेने पधारे, वहां एक अ-ध्यापक बच्चोंको पढा रहाथा, व बोला कि-रे बिकराल रूप और मलीन वस्त्रके धारक भिक्षु! इधर से चलाजा.

यों सुनकर मुनि फिरने लगे. तब वो तिन्दुक यक्ष मुनि के शरीरमें प्रवेश कर कहने लगा कि-में परार्थ किया हुवा विर्वद्य-निर्दोष भोजन का ग्रहण करने वाला सा धु हूं, यहां बहुतसा आहार निपजा देख लेने आया हूं.

ब्राह्मण बोला-वेदों के जानने वाले विप्रों सिवाय यह यज्ञा में निपजा हुवा भोजन दुसरे को कदापि नहीं दिया जाता है,

यक्ष बोला—जैसे कृषी ऊंच नीच दोनों प्रकार के क्षेत्र में बीज डाल कर लाभ प्राप्त करता है. तैसे ही कैसीभी श्रद्धा से मुझे दीजिये.

ब्राह्मण बोला-उत्तम क्षेत्र ब्राह्मणोंकाही है, उन सिवाय दुसरेकोभी नहीं दिया जायगा. क्यों बकवाद करता है. चलाजा.

यक्ष बोला-विषय कषाय युक्त विप्रों का क्षेत्र अलाभ करी है, में ब्रह्मचारी निष्परिग्रही हूं जो मुझे न दोगे तो यज्ञ का फल कैसें प्राप्त करसकोगे?

इतना सुनतेही अध्यापक क्रोध में आ छत्रों को हुकुम दिया कि ब्राह्मणोंके निन्दक अभिमानी इस भिक्षुको मारकर निकाल दो-कि एक दम छत्रों मुनिको मार ने खडे हुवे. उनका कोलाहल सुन भद्रा देख कर बोली-अरे यह क्या जुलम करते

हो! मेरा वमन आहारकी तरह त्याग कर जाने वाले, देविन्द्र नरिन्द्रके पूज्य, इन महानु भाग को सत्ताकर क्यों दुःखी होते हो, यह कोपेंगे तो सब को जलाकर भस्मकर देंगे, ऐसे भद्रा के वचन को जब उन कुमारों न नहीं माना. तब यक्ष ने उनको जमीन पर पछाड रुद्र वमन करते हुवे सुला दिये! और मुनि के शरीर में से निकल आकाश में खडा तमाशा देखने लगा.

यह अनर्थ निपजा देख यज्ञ कर्ता ब्राम्हणों दोड आये, और मुनिको नमस्कार कर कहने लगे. अहो क्षमा समण मुढ बालकों पर इतना कोप करना उचित नहीं हैं. अपराध माफ करो. और इस यज्ञ शाला में से इछित आहार ग्रहण कर हमें कृतार्थ करो.

मुनि बोले—मेरे मन में किञ्चित ही क्रोध नहीं है, परन्तु मेरी वेयावच्च के लिये यक्ष ने यह किया दिखता है. फिर मुनि शुद्ध आहार ग्रहण किया वहां देवों नें पंच द्रव्य की वृष्टि करी, देव दुंदभी बजाइ, और अहो दान महा दान ऐसा शब्दोचार करते अकाश में नृत्य करने लगे.

आश्चर्य चकित हो ब्राम्हणों आपश में कहने लगे कि--तप का फल तो यह प्रत्यक्ष ही दिखता हैकि-चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुवे मुनि देवों से पूजित हो रहे हैं. और यज्ञका फलतो कुछ भी दृष्टि नहीं आता है.

तब मुनि बोले कि-अहो ब्राम्हणों बाह्य शुद्धि से और हिंसक ज्ञय से किसीभी प्रकार का कल्याण होणे वाला नहीं है. जो आत्म कल्याण चाहाते होवो तो धर्मतीर्थ के ब्रम्हचर्य रूप द्रह में स्नान कर, जीव रूप कुंड में तप रूप अग्नि प्रज्वालित कर कर्म रूप इन्धन को जलावो, सर्व जीवों शान्ति रूप मन्त्र का पठन कर पवित्र बनो!

ब्राम्हणों ने यह बोध सहर्ष धारण किया, मुनि बहुत वर्ष संयम पाल बहुत जीवोंका उद्धार कर मोक्ष प्राप्त किया.

सारांश यह हैकि-नीच कुल, कुरूप, बलवन्त, सुख की प्राप्ति के लिये मरण सन्मुख हुवे, ऐसों को अत्युत्तम कुली दिव्य सुन्दराङ्गी राज ऋद्धि आदि सम्पूर्ण जीवित तक के सर्व द्रव्य सुखों को प्राप्ति बलत्कार (अग्रह) से होते ही, उसका विष्टाकी माफिक त्याग कर निजात्म सुख में रमण किया!! ऐसे निर्विषयी निर्वांछिक होवे सो निवृत्ति करणी जानना.

श्री गौतम गणधर का दृष्टान्त.

गोवरधन ग्राम के गौतम गोत्री वसु भूति विप्र की पृथ्वी नामे स्त्रीने इन्द्र भवन का स्वाप्न देख, सुवर्ण वरण बलिष्ट शरीर धारक पुत्र प्रसवा, जिसका इन्द्रि भूति नाम रक्खा, वो योग्य वय प्राप्त होते चार वेद छे शास्त्र चउदह विद्या आदि व्यवहारिक विद्या में महा प्रवीन पांचसो छवों के मालिक होने से जगत में जबर प्रतिष्ठथा पाये. वो मध्य पापापुरी नगरी के सोमल ब्राम्हण के यज्ञ मण्ड में वहुत सन्मान से आकर यज्ञ क्रिया के अग्रभागी कर्ता बने. उसवक्त ऋजु वालका नदी के कण्ठ पर गोदु आसनस्थ श्री महावीर भगवन को केवल ज्ञानी की प्राप्ति हुइ जिनके समवशरण की रचना मध्यपापपुरी के बाहिर देवताओंने रची. वहां क्रोडों गम देव यज्ञशाळ ऊपर हो समव शरण में जाने लगे, यह देख इन्द्र भूति वोले कि-देवों भरम में पड यज्ञ स्थान उलंघन कर कहां जाते हैं? तब किसीने कहा कि-ग्राम वाहिर तीर्थंकर समवसरे हैं, उन के दर्शनार्थ देव जाते हैं. यह सुन अभिमान में उन्मत हो विवाद कर तीर्थंकर का परांजय करने पांचसो छवों के परिवार से समवशरण में आते ही जिनेन्द्र की विभूति पेख दिग मुढ बन गये. और विचार ने लगे कि जो मेरा सन्देह निवारे तोही यह सर्वज्ञ. तब भगवन्त ने फरमाया कि अहो इन्द्र भूति वेद में तीन दकार हैं. जिसका क्या अर्थ होता है? यह तुम्हारे मन सन्देह है, जिसका अर्थ दया दान और दम होता है. इतना सुनतें ही संवेग प्राप्त हुवा, पांच से छवों सहित दीक्षा धारण कर एक मुहूर्त मात्र में १४ पूर्व के पाठी हुवे. जाव जीव वेले २ पारणा का तप धारण किया, चार ज्ञान के धारक हुवे. सदा प्रभूकी सामिप्य रहकर अनेक गम प्रश्नोत्तर किये. एक वक्त विचार हुवा कि-मेरे पीछे से दीक्षा लेने वाले अनेक केवली होगये, और मुझे अभी तक केवल ज्ञान प्राप्त न हुवा, सो करण क्या? यह भाव जान भगवन्त गोतम + को अपने पास बुलाकर कहने लगेकि-अपन गये भव में साथ रहे हैं. और आगे भी बरोबर होंगे, छोटे बडे होतेही रहते हैं. परन्तु तुम्हारा मेरे पर प्रेम है, यह मोह आभरणही केवल ज्ञान को को रोक रहा है. यों सुण गोतम खुशी हुवे, और तप संयम से अपनी आत्माको भावते विचरने लगे.

+ नाम तो इनका इन्द्र भूती थां, परन्तु गोतम गोत्र होनेके सवब से भगवन्त इनको 'गोतम' नाम से ही बोलतेथे.

भगवन्त महावीर स्वामी अपने आयुष्य का अन्तिम अवसर जान गोतम्स्वामी को देव समन ब्राम्हण को प्राति बोधने भेजे, और फिर आधी रात्री को मोक्ष पधार गये. देवगमके आवागमन से भगवन्त निर्वाण प्राप्त हुवे यह समाचार गोतम स्वामी को मालुम होतेही मूरछा खाधरती पर पड गये, और सावध हो कहने लगे कि-हे भगवन्! मुझे अन्तिम अवसर में दूर किया क्या में-आपका पल्ला पकड रोकता कि ज्ञानका हिस्सा मांगता. वगैरे शोक करते २ भान में आ विचारने लगे कि-वो वीतराग सर्वज्ञने जैसा देखा वैसा किया. रे आत्मान्! तूं रागीद्वेषी बन क्यों कर्म बन्ध करता है. वगैरा शुभ ध्यान ध्याते चारों घन घातिक कर्मोंका क्षय कर केवल ज्ञान पाये, और १२ वर्ष वाद मोक्ष पधारे.

सारांश-श्री भगवन्त समान परम विशुद्ध पदार्थपरही धर्म प्रेम भी केवल ज्ञान को आवरण भूत होता है!!

कुंडरिक पुंडरीक का दृष्टान्त.

जम्बु द्वीप की पूर्व महा विदेह की पुष्कलावती विजयकी पुण्डरीकणी राज्यधानी के पद्मनाभ राजा के कुंडरीक कुंवर ने परम सम्वेगी बन दीक्षा धारण कर अत्यन्त दुक्कर तप क्रिया के आचारण से शरीर को कष्ट-शुष्क करडाला. एकदा अपने छोटे भाइ पुण्डरकि को राज्य सुख भोगवता देख मन ललचाया-संयम से परिणाम पडित हुवे, और गुप्त गुरुजी का संग छोड मेहल के पीछे की आशोक वाडी में आकर वैठे. पुंडरीक राजा यह खवर पातेही तुर्त मुनिके पास आये और मन विग्रह देख प्रश्न करने में मुनिने राज्य वैभवकी परसंस्या करी. जिस से भाइ मुनि का मन पडित देख, अपना राज्य भेष (पोशाक) मुनिको दिया. और मुनिका-उतारा हुवा भेष आप धारन कर तीन दिन के उपवास से गुरूजी के दर्शन कर फ्रासुख लुक्खम सुक्खम शुद्ध आहार मिला सो खाने से एकदम शरीर में महावेदन प्रगटी और आयुष्य पूर्ण कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव हुवे.

पीछे कुण्डरीक राज्य भोग में लुब्ध हो ताकत वढने मदिरा मांस का सेवन किया, जिस से अत्यन्त असाद्य वेदना उत्पन्न हुइः सोभी तीन दिन में मरकर सातवी नरक में गये!!

सारांश-शुद्धाचार पाल पडवाइ होने से भी मिथ्यात्वी होजाते हैं.

खन्धक मुनिका दृष्टान्त.

सावत्थी नगरी के कनक केतु राजा की मलया राणी के अङ्ग से उत्पन्न हुवे खन्धक कुमर विजय सेनाचार्य का उपदेश श्रावण कर दीक्षा धारण करी, एकल विहारी हो मास २ खमण तप करते कुंतिनगरी में गौचरी के लिये पधारे. यहां इन के बेनोइ पुरिषषेण राजा गोख में सुनन्दाराणी के सङ्ग चोपड खेल रहे थे, उसवक्त राणी ने मुनि को रस्ते से जाते देख अपने प्यारे भ्रात का स्मरण होते ही आँखो से आश्रु टपकने लगे. यह हाल राणी के देख निघापर से राणी के चित्त का चोर मुनी को जाण, एक दम क्रोध तुर हो नीचे आ भटों को हुकम दिया कि-इस मोडीये को मशाण में लेजा इस के शरीर की तमाम चमडी निकाल डालो! सुभटों दोड कर मुनि को धक्के लगाने लगे; तब क्षमा सागर मुनि ने सबब पूछा, भटोने राजा का हुकुम सुणाया. जिससे मुनिराज विलकूल ही नहीं घबराते भटों साथ मशाण में आ आलोयणा निन्दणा कर सुमेर ज्यों अडोल ध्यानस्थ खडे हुवे. ज्यों सूतार काष्ट को छोलता है, त्यों भटोंने मुनि के सब शरीर का चर्म तीक्षण पालणे से निकाल कर अलग किया! मुनि राज नरक निगोद की वेदना का विचार करते और अपूर्व मुक्ति प्राप्ती का सहज अवसर प्राप्त हुवा जान किंचितही द्वेष भाव धारण नहीं करते. सहर्ष सर्व वैर वदला चुका मुक्ति गये.

जिस वक्त खन्धक कुमर दीक्षाले एकल विहारी हुवे थे, उसवक्त इन के पिता ने गुप्त रीति ५०० सुभटों रक्षा निमित इन के साथ रक्खे थे. वो यह बनोइ का गाम जान बेफिकर हो हजामत स्नान भोजनादि कर्यमें लगे. और थोडा दिन रहतेही मुनि को पलट कर नहीं आये देख सब गाम में चौकस करते फिरते थे, उन को राजा की एक दासीने पैछान कर पूछने से उनने मुनि का हाल कहा, दासीने राणी से कहा, राणी ने राजासे कहा. सुनतेही राजाके ऑखमें से ऑश्रु टपकने लगे. तब राणी अत्यन्त अग्रह से पूछने से होनहार कह दिया. सुनते ही राणी मूर्छित हो पडगइ, हवा के साथ बात नगर में पसर गइ, ५०० सुभटों सुन अत्यन्त क्रोधातुर हो राजा को मारने महल घेर लिया. घर हानी जन हाँसी देख राजा वडा ही घबराया. दाने शाने मनुष्यों ने युक्ति से सबकों समझा कर सुस्त किये.

उसवक्त वहां केवली भगवान पधारे, राजा राणी ५०० सुभट वगैरा बहुत प-

रिषद् के मध्य भगवन् ने फरमाया कि-अहो हितार्थिओं! " कड्डाण कम्मा न मोक्ख अत्थि" अर्थात्-कृत कर्म का फल भोगवे विन छूटका नहीं! सो मत्यक्षही देखीये कि खन्धक मुनिके जीवने तेरह१.२ क्रोड भवके पाहिले एक काचरे फलकी त्व(छाल)चा उतारी थी वोही काचरा यहां पुरिष सेण राजा होकर मुनि की खाल उतारी!! ऐसा जान कर्म वन्ध से डरो! इत्यादि बोध श्रवण कर राजा राणी और ५०० सुभटोंने दीक्षा धारण करी. करणी कर स्वर्ग प्राप्त किया.

सारांश-सब शरीरकी खाल उतार डाली तोभी नाक में शल्य और मनमें द्वेष किंचित मात्र ही नहीं लाये. ऐसी तरह जो कषाय ज्वाला को बुझाकर शान्त करतेहैं सो क्षीण कषायी कहे जाते हैं.

श्री महावीर श्वामीका दृष्टान्त.

क्षत्री कुण्ड ग्राम के सिद्धार्थ महाराजाकी सुलक्षणी त्रसला देवी को १४ महा स्वप्न को दे, दशवे स्वर्गसे चवकर अवतरे, अत्युत्तम ऊंच ग्रहोके संयोगसे जन्मे, छप्पन्नदिग् कुमारि का और चौसठ इन्द्र आदि देवों ने जन्म उत्सव किया, पग के अंगुठे के दवाने से लक्ष योजनका मेरू पर्वत हलाने से 'महावीर' नाम पाये, जन्मसेही तीन ज्ञान युक्त होने से विद्याभ्यास की कुछ जरूर नहीं. युवावस्थान में यशोदाजी नामक स्त्रीके सथ पाणी ग्रहण किया, जिससे एक पुत्रीकी प्राप्ति हुइ; मात पिता स्वर्गस्थ हुवे वाद नंदीवृद्धन भाइ को संतोष ने वृह्मचर्यादि नियम युत्त घर में रहे, फिर वारह महिने तक-३,८८,८०,००,००० इत ने सोनैये का दान दे संयमलिया, उसीवक्त मनः पर्यव ज्ञान की प्राप्ति हुइ. फिर कर्मों का क्षय करने साढी वारा वर्ष और १५ दिन तक अति दुक्कर तप किया, इतने दिन में फक्त इग्यारे महीने उन्नीस दिन आहार लिया और फक्त दो घडी ही निद्राली. देव मनुष्य तिर्यंच सम्वन्धि अति दुःख अनुकुल प्रतिकूल परिसह सहे. जहां २ परिसह उत्पन्न होने का जाना वहां२ सम्मुख होगये. और परिसह दाताओंपर पुनः उपकार कर स्वल्प बोध से स्वर्ग गामी वनाये. ऐसे क्षमा शूर अर्हंत भगवन्त चारों घन घातिक कर्मोका समूल नाश कर, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, चौंतीस अतिशय, आदि महान ऋद्धि को प्राप्त हो द्वादश जाति की परिषद में पेंतीस गुणयुक्त दिव्य ध्वनीका प्रकाश किया, जिस के महान् प्रताप से अभीतक धर्मप्रदीप्त होरहा है. और अन्तिम आठों कर्म क्षय कर मोक्ष पधारे.

गजसुकुमाल मुनीजीका दृष्टान्त.

सोरठ देश द्वार का नगरी के बसुदेव महाराजकी देवकी राणी के अंगसे उत्पन्न हुवे, हाथी के तालुवे जैसे रक्त और सुकुमाल शरीर के धारक गज सुकुमाल कुमर कृष्ण वासुदेव के साथ नेमीनाथ भगवान् के दर्शनार्थ जाते, रस्ते में महा दिव्य रूप-वति सोमल ब्राह्मण की सोमा नामक पुत्री को कृष्णजी देख कर गजसुकुमालजी के पाणी ग्रहणार्थ कुंवारे अन्तेवर में पहोंचा कर, भगवान के पास आये-सविधी वन्दन कर व्याख्यान श्रवन कर गज कुसुमाल जी वैरागी बने. अत्यन्त अग्रह से माता पि-तादि की आज्ञाले दीक्षा धारण करी. और भगवन्त से पूछा की जलदी मुक्ति मिले ऐसा रस्ता मुझे बताइये. सर्वज्ञ प्रभु वैसाही होतब जान हुकम किया कि-महाकाल मशाण में १२वी भिक्षुक प्रतिमा का आराधन करने से शीघ्र मुक्ति मिलेगी. उसी व-क्त भगवन्त को नमस्कार कर महाकाल मशाण में एकही पुद्गलपर अनिमेष-एकाग्र दृ-ष्टि रक्ख ध्यानस्थ खडे रहे. उसवक्त लग्न सामग्री लेकर पीछा आता सोमल ब्राह्मण मशाण में गज सुकुमाल मुनि को ध्यानस्थ देख कोपातुर हुवा. रे पापी! विना का-रण मेरी पुत्री को बाल विद्वापना दे साधु हुवा, तो अब देख मझा. ऐसा कह त-लाव के किनारें की चिक्कनी मठी की मुनिराज के शिरपर चौगिरदा पाल वान्ध ज-लतें मुरदे की चिता में से खेरके झग २ ते अङ्गारके खीरे ठीकरी में ले मुनि राजके शिरपे भर दिये. और अपने घरको चले गया. उस वक्त मुनिराजकी खोपरी जलने लगी, शरीर की नशों तड २ टूट ने लगी, इत्यादि अत्यन्त तीव्र महादारुण प्रबल वेदना उत्पन्न हुइ. मुनि ने शिर हिलाना तो दूर रहा! परन्तु नाक में शल्य भी नहीं डाला विचारा कि-मेरे खुसरेने मेरे शिरपर मुक्ति गमन रूप पाघ बान्धि है. इसे नीचे डाला अनेक जीवों के घात के साथ संयम और प्राप्त होते मुक्ति सुख का गमाने वा-ला कदापि नहीं बनूंगा! यह अलभ्य महा लाभ कदापि नहीं गमावुंगा. इत्यादि नि-श्चय से राग द्वेष रहित शुद्ध भावना भावते सुमेरे गिरी की माफिक तीनो योगों को अडोल स्थिर रक्ख महा परिसह सम भाव सहन करते आठोंही कर्मोंका समूल नाश कर मोक्ष पधारे. बाद शरीर ने धरणीशरण धारन किया!!

सारांश—यों योगों की स्थिरी भूतता होने से मोक्ष मिलती है.

७ सातवा गुणद्वारका अर्थ.

पुद्गल परावर्तन का स्वरूप.

१ द्रव्य से, २ क्षेत्रसे, ३ काल से, और ४ भाव से में यह ४ सूक्ष्म, ४ बादर, यों ८ तरह से पुद्गलों का परावर्तन होताहै और कितनेक स्थान भावसे के स्थान भव से पद्गल परावर्तन के दो भेदरक्खे है, और कितनेक स्थान उन८ में भवसे के दोभेद मिलाकर १० भेद पुद्गल परावर्तन के किये हैं. सो अलग २ यहां कहते हैं :—

१ द्रव्य से बादर पुद्गल परावर्तन सो-(१) औदारिक, (२) वैक्रिय (३) तेजस, (४) मन, (५) भाषा, (६) कार्मण, और (७) श्वाशोश्वास, इन ७ प्रकार के पुद्गलोंके सर्वलोक व्यापी प्रमाणुओं को भेद संघात तथा बादर सूक्ष्म परिणमन कर स्व-स्व वर्गणा योग्य परिणत स्कन्ध औदारिकादि नो कर्म पणे जितने काल में एकजीव अनन्त भव भ्रमण करता परिणमाकर-ग्रहणकर स्पर्श कर-छोडे, उसे बादर द्रव्य पुद्गल परावर्तन कहना. इस में जो एक वक्त ग्रहण किये हुवे पुद्गलों को दूसरी वक्त ग्रहण करे उसे ग्रहीत ग्रहणी द्वार कहना. तथा पहिले कितनेक ग्रहण किये और कितनेक विना ग्रहण किये ऐसे दोनों तरह के मिले पुद्गलों ग्रहण करे उसे मिश्र ग्रहण द्वार कहना. और पहिले ग्रहण नहीं किये ऐसे पुद्गलों को जो ग्रहण करे सो अग्रहीत ग्रहण द्वार कहना. इन तीनों में से ग्रहित ग्रहणद्वार और मिश्र ग्रहण द्वार इन दोनों तरह के पुद्गलोंको छोड कर, अग्रही ग्रहणाद्वार जो पुद्गलों ग्रहण करे, वो पुद्गलों ही यहां गिनती में आते हैं, बाकी के गिनती में नहीं लेना. यों एक औदारिक पणे, दुसरे वैक्रिय पणे, जावत सातवे श्वाशोश्वास पणें सात परिणाम एकेक अणु के होते हैं. यों सर्व वर्ती द्रव्य के सात परिणमत एक जीव पूर्ण करे तब बादर द्रव्य पुद्गल परावर्तन पूर्ण होता है. +

२ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-सर्व लोक वर्ती अणुको औदारिकादि पणे परिणमावे. परन्तु इतना विशेष, जो औदारिक पणे परिणमावते बीचके भवों में जो जो वैक्रियादि पणे पुद्गल ग्रहण करे वो यहां गिनती में नहीं लेना. यों अनन्त

+ इस में आहारकि शरीर ग्रहण नहीं किया, इसका यह सबब हैकिं-एक जीव आहारक शरीर चार वक्त से अधिक नहीं करता है, इसलिये इसके सब पुद्गलों के साथ परावर्तन होता नहीं है. इसलिये गिना नहीं.

भवों कर सर्व लोकके अणु औदारिक पणे परिणमा कर-ग्रहण कर स्पर्श कर-छोडे, उस वक्त प्रथम औदारिक सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होवे. फिर ऐसीही तरह लोक के सर्व अणु के वैक्रिय पणे परिणामावे. ग्रहण कर छोडे तब दुसरा वैक्रिय सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होवे. ऐसे ही तेजस शरीर पणे जावत् सातवा श्वाशोश्वास पर्यंत पणे तक सब पुद्गलों ग्रहण कर स्पर्श कर छोडे, इस में सब से कार्मण पुद्गल परावर्तन कां काल अनन्त है, परन्तु दुसरे की अपेक्षासे स्तोक (थोडा) जाणना. उस से तेजस पुद्गल परावर्त काल अनन्त गुणा, उस से औदारिक पुद्गल परावर्तन काल, अनन्त गुणा, उस से श्वाशोश्वाल पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से मन पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से भाषा पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से वैक्रिय पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा. अव इस अल्प बहुत का सबब कहते हैं:-कार्मण पुद्गल परावर्तन सब भवों में ग्रहण करता है, जिससे जलदी भरा जाता है. उस कार्मण से तेजस अनन्त गुण हीन है, क्योंकि उस से अनन्त गुण अधिक काल में भरावे, यों सर्वोकि अल्प बहुतता अपनी बुद्धि से विचार कर लेना चाहिये. गये काल में एक जीव के अनन्त वैक्रिय पुद्गल परावर्तन हुवे. उस से अनन्त अधिक भाषा पुद्गल के परावर्तन हुवे. उस से अनन्त गुण मन पुद्गल के परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण श्वाशोश्वास पुद्गल के परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण औदारिक शरीर के पुद्गल परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण तेजस पुद्गल के परावर्तन हुवे और उस से अनन्तगुण कार्मण पुद्गल के परावर्तन हुवे. ऐसे सब पुद्गल परावर्तनों एक जीवने अतीत (गये) काल में कर के छोडे हैं. *

२ क्षेत्र से बादर पुद्गल परावर्तन सो-सर्व लोक के आकाश प्रदेशों जो घनां-

* कितनेक आचार्योंका यह मत है कि—औदारिक वैक्रिय तेजस और कार्मण इन चारों शरीर पणे सर्व लोक वर्ती प्रमाणुओं जो गृहण करता है वो गिनती में आते हैं. यों कर के सर्व प्रमाणुओं चारों शरीर पणे परिणमा कर छोडे सो बाद द्रव्य पुद्गल परावर्तन. और अनुक्रम से एकेक शरीर पणे परिणमावे, ऐसी तरह सर्व अणुक एक शरीर पणे परिणमा रहे, फिर दूसरे शरीर पणे परिणामावे. परन्तु औदारिक परावर्त में वैक्रियादि पुद्गल ग्रहण करे वो गिनती में नहीं आवे. यों अनुक्रम से चारों ही प्रकारकी सर्व अणुक परिणमाने से सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होता है.

गुल आकाश खण्डके प्रदेशों का समय २ प्रते हरण करते असंख्यात काल चक्र वीत जावे, ऐसे सूक्ष्म आकाश के प्रदेश हैं. उन सर्व लोक के आकाश के प्रदेशों को जिस वक्त एक जीव अनेक भवकर स्पर्शे अर्थात्-सर्व आकाश प्रदेशों पर मृत्य पावे, उस में जिस आकाश प्रदेश पर एक वक्त मृत्यु पाया, उसही आकाश प्रदेश पर दुसरी वक्त मरण पावे, वो गिनती में नहीं. यों सर्वाकाश प्रदेश को मरण कर स्पर्शे × जिसे बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्तन कहना.

४ क्षेत्र से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-अनुक्रम से अर्थात्-जिस आकाश प्रदेश की श्रेणीपर एक वक्त मृत्यू पाया, उस ही आकाश प्रदेशपर किंचित ही अन्तर नहीं छोडता नजीक दूसरी वक्त मृत्यु पावे, यों मरण कर एक आकश श्रेणी पूर्ण स्पर्शे, फिर दूसरी आकाश श्रेणी इसही तरह से मरण कर सम्पूर्ण स्पर्शे, इस में प्रथम मरण किये स्थान में दुसरी वक्त मरण करे सो गिनती में नहीं, यों अनुक्रम से श्रेणि वन्ध प्रतर वन्ध प्रदिशों मरणकर स्पर्शता हुवा सर्व लोकके सर्व (असंख्यात) आकाश प्रदेश स्पर्शे सो क्षेत्रसे सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

५ काल से बादर पुद्गल परावर्तन सो-वीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम प्रमाण काल चक्रहै, उसके सब समय मरण कर जीव स्पर्शे, अर्थात्-जब काल चक्र शुरू होवे उस के आदि समय से लगाकर अन्तिम समय तक के सब समयों में मरण करे, जिस समय एक काल चक्र में मरण पाया उसी समय बहुते काल चक्रों में मरण पाया वो गिनती में नहीं आते हैं, परन्तु अन्य दूसरे तीसरे चौथे आदि अन्तिम समयतक मरे सो ही गिन्ती में गिने जाते हैं. यों सब काल चक्रे के समयों को मरण कर स्पर्शे सो काल से बादर पुद्गल परावर्तन.

६ काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो—एक काल चक्र के प्रथम समय में मरण कर फिर दुसरे चक्र के दूसरे समय में मरण करे, फिर तीसरे चक्र के तीसरे समय में मरण करे, यों एकेक काल चक्रका एकेक समय ही गिनती में आता है, परन्तु वीच के संख्यात असंख्यात जावत अनन्त काल चक्र तक मरण करे सो गिनती में नहीं आता है, यों असंख्यात मरण में भी अनन्त चक्र वीत जाते हैं. क्योंकि पहिला

× यद्यपि जीवात्म असंख्यात प्रदेशी है सो असंख्याकाश प्रदेश अवगहा रहा है. तद्यपि कार्य की मुख्यताकर एक प्रदेश ही लिया है.

दूसरा तीसरा यों अनुक्रम से समयों में मरण करे सोही गिनती में लिये जाते हैं. ऐसे काल चक्र के अन्तिम समय तक मरण कर स्पर्शे सो काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्त न जानना.

७ भाव से बादर पुद्गल परावर्तन सो-रस बन्ध हेतु कषायादि अध्यवश्याय स्थानक मन्द मन्दतर मन्दतम इन के भेद असंख्यात लोकाकाश प्रमाण है, जिस वास्ते सीत्तर (७०) क्रोडा क्रोड सागरोपम के समय प्रमाण स्थिति स्थानक में असंख्यात रस बन्ध हेतू अध्यवश्पाय स्थानक हैं, वो सब अध्यवश्या स्थानक अनुक्रम से मरण कर स्पर्शे, अर्थात्-इन रसवन्ध के स्थानक किसी वक्त मंद मदतर, मदतम: तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम. ऐसे स्थानक में मरण करे, जिस वक्त एक जीव सर्व स्थानक स्पर्श्य कर पूर्ण करे सो भाव से बादर पुद्गल परावर्तन.

८ भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-पहिले जघन्य अध्यवसाय में मरण पाकर, फिर किसी कालान्तर में उस चडते दुसरे अध्यवसाय स्थानक में मरण पावे फिर उस से चाडते तीसरे अध्यवसाय स्थानक में मरण पावे यों एकेक चढते स्थानक में मरण पावे सो ही गिनती में आते हैं, परन्तु बीच में ज्यादा कम अध्यवसाय स्थानक में मरे सो गिनती में नहीं. यों अनुक्रम से निरन्तर पने जघन्य से लगाकर उत्कृष्ट अध्यवसाय के स्थानक मरण कर स्पर्श्ये उस के बीचमें वोही अध्यवसाय तथा सान्तर अध्यवसाय स्थानक में मरण करे. वो भी गिनती में नहीं आते हैं. पाहिले के अध्यवसाय से चढता स्थानक ही गिनती में आता है. सोभाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

(७-८ प्रकारान्तर से कितनेक आचार्य-५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श्य और २ अगुरू लघु इन २२ बोलों के एक गुण से लगा कर जावत अनन्त गुणतक जितने पुद्गल लोक में हैं उन सबोंको मरण कर स्पर्श कर छोडे सो भाव से बादर पुद्गल परावर्तन, और प्रथम एक गुन काला फिर दो गुन काला यों अनुक्रम से जावत अनन्त गुण काला जितने प्रमाणुओं हैं उने स्पर्शे. फिर एक गुण हरा दोगुण हरा जावत अनन्त गुण हरे प्रमाणुओं को अनुक्रम से स्पर्शे. ऐसे ही फिर लालके, फिर पीलेके, फिर श्वेतके, यौंही २ गंध के, ५ रस के, ८ स्पर्श के, और अगुरू लघु के सर्व प्रमाणुओं प्रथम एक गुण से लगाकर अनुक्रम से अनन्त गुण तक मरण कर स्पर्श कर छोडे. (इन के बीच में कभी ज्यादा गुण के वर्णादि के प्रमाणुओंको स्पर्शे

सो गिनती में नहीं.) ऐसे २२प्रकारकेपुद्गलो स्पर्शे सो भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन)

जो आचार्य भाव के स्थान भव को कहकर ८ बोल पूरे, करते हैं, अथवा भव के दो बोल अधिक कर १० बोल कर ते हैं सो कहते हैंः—

९ भवसे वादर पुद्गल परावर्तन—कोइ जीव नरक गति में जघन्य १० हजार वर्ष आयुष्य से लगाकर एक समय अधिक दो समय अधिक यों एकेक समय बढाता ३३ सागरोपम के आयुष्य तक, और ऐसे दश हजार वर्ष से एकेक समय अधिक २ करता ३१ सागरोपम देवता का आयुष्य तक. तथा जघन्य २५६ आंवलीके एक क्षुलक भव से ऐकेक समय अधिक लगाकर ३ पल्योपम तिर्यंच के आयुष्य को, और जघन्य अन्तर मूहूर्त से लगाकर एकेक समय अधिक करता ३ पल्योपम पर्यन्त मनुष्य के आयुष्य को. यों चारों गति के आयुष्य को मरण कर स्पर्शे सो भव से वादर पुद्गल परावर्तन.

१० भव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-प्रथम नरक में दश हजार वर्षायु भोग मरे, फिर एक समय अधिक दश हजार वर्ष आयुष्य भोग मरे, फिर दो समय अधिक यों अनुक्रम से एकेक समय आधिकरता नरक का ३३ सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करे, वीच में अन्य गति का तथा नरक काही ज्यादा कमी आयुष्य भोगवे सो गिनती में नहीं. फिर ऐसेही तिर्यंचका, फिर ऐसेही मनुष्य का और फिर ऐसेही देवता का जघन्य आयुष्य से समय २ अधिक आयुष्य पाकर मरण कर स्पर्शे सो भव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

यह ऊपरोक्त ८ प्रकार का या १० प्रकार कर के जो पुद्गलों का परावर्तन होने का वरणन् किया सो विशेषत्व जाणना. परन्तु सामान्य प्रकार से तो सब मिलकर एक ही पुद्गल परावर्तन गिना जाता है. ऐसे अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तन संसार निवासी सब जीवोंने इस संसार में किये हैं. जो जीवों मिथ्यात्व गुणस्थान का एकही वक्त त्याग कर देते हैं. वो ज्यादा से ज्यादा अर्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करते हैं. इतने काल वाद तो जरूरही मोक्ष पाते हैं.

८—१२ अवघेणा, उत्पति—पावति—और क्षपति, द्रव्य परिमाण इन चारों द्वारों का अर्थ बताने प्रमाण—बोध कहते हैं.

प्रमाण दो तरह के हैं-१ लौकिक. और २ लोकोत्तर. इस मे प्रथय लौकिक

प्रमाण सो तो जो जगत में-एक, दश, सो, हजार, जावत परार्द्ध,'तक अठारा अंककी संख्या जो अभी प्रचालित है सो, इस सिवाय और भी ४३२०००००० इतने सो र्य वर्ष (३६५ दिन, १५ घडी ३१ पल, ३१ विपल) का एक ब्रह्मका दिक (कल्प) गिन ते हैं. इनत में १४ मनु और १००० महा युग होने का बताते हैं, वगैरा लौकिक प्रमाण कहा जाता है.

और लोकोत्तर गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण ही है, क्योंकि लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोडे) पदार्थों का प्रमाण किया जाता है. और लौकोतर गणित से तो सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनता अधिकता का प्रमाण का बोध कराया जाता है,

लोकोत्तर गणितके दो भेद हैं:—१ संख्यामान, और उपमामान, इसमे संख्यमानके मूल ३ भेद हैं:—१ संख्यात, २ असंख्यात, और ३ अनन्त, इस में-संख्यात का एकही भेद, और असंख्यात ३ भेद हैं:-१ परितासंख्यात, युक्तासंख्यात, और ३ संख्यातसंख्यात, ऐसे ही अनन्त के भी ३ भेद होते हैं:-१ परितानन्त, २ युक्तानन्त, और ३ अनन्तानन्त. यों सब मिल संख्यमान के ७ भेद हुवे. इन सातों को, १ जघन्य (छोटा) २ मध्यम (बीचका) और ३ उतकृष्ट (बडा) यों तीगुने कर ने से संख्यमान प्रमान के २१ भेद होते हैं. इनका खुला से वार स्वरूप समझाने लिये आगे कल्पित उपाय उपमामात्र शास्त्रानुसार लिखते हैं:—

१ अनवस्थित, * २ शालका, ३ प्रतिशलका, और ४ महा शलका. इन चारों नामके चार टौपले. जम्बुद्वीप प्रमाणे एक लक्ष योजनके लम्बे चौडे (गोल)और एक हजार आठ योजनके ऊंडे, इनमेंसे पहिले अनवस्थित टोपलेमें सरशोंके दाणे शिखाऊ (जमीन पर किये हुवे अनाज के ढंग की तरह) भरे. उस में सब १९९७११२९३८ ४५१३ १६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३५ इतने दाणे का समावेश होता है, फिर एक भरा और तीनों खाली ऐसे चारों टोपलों को कोइ देवता उठाकर, उस भरे टोपाले मेंसे-एक दाणा जम्बुद्वीप में दुसरा

* अनवास्थित उसे कहते हैं. जो सदा एकसा न रहे, अर्थात् पीछेके तीनों टोपले तो एक से लक्ष योजनके सदा बने रहते हैं. और अवस्थित तो जहां खाली होता है उसी स्थानकी सूची प्रमाणे (जितना बडा द्वीप व समुद्र होवे उतना) बडा बनाते हैं.

दाणा लवण समुद्र में, तीसरा दाणा धातकी खण्ड में, यों एकेक दाणा अनुक्रम से आगे के द्वीप समुद्रों में रखता हुवा चला जावे. जब उस अनव स्थित टोपले में एक दाणा बाकी रह जावे तब उस दाणे को दुसरे शाल का नामक टोपले में रक्खे, और जिस स्थान वो प्रथम टोपला खाली हुवाथा उस स्थान (द्वीप व समुद्र+की सूची प्रमाणे लम्बा चौडा (गोल) और एक हजार आठ योजन का ऊंड उस अनव स्थित टोपल को बनाके. सरशों के दाणों से शिखाऊ भरे, और फिर आगेके द्वीप समुद्र में एकेक दाणा रखता जावे. जब उस अनवास्थित टोपल में दुसरी वक्त एक दाणा बाकी रहजावे, वो दाणा बाकी रहा जावे, वो दाणा उठा कर प्रथम प्रमाणे उस दुसरे शालाका टोपले में रक्खे, शाला का मे दो दाणे हुवे. और जिस स्थान वो अनवास्थित टोपला खाली हुवा. उस स्थान की सूची प्रमाणे तीसरी वक्त उस अनवास्थित टोपले को बनाकर सरशों के दाणों से शिखाऊ भर कर फिर एकेक दाणा आगे के द्वीप समुद्रों में रखता हुवा जावे. उस में एक दाणा बाकी रह जावे तब वो दाणा लेकर फिर दुसरे शालाका टोपल में रक्खे; यों शाला का में तीन दाणे हुवे. एसीह तर अनवास्थित टोपल में बाकी रहे एकेक दाण कर काल का नामक टोपले को सम्पूर्ण शिखाऊ भरे. और फिर उस शाल्का नामक पाले (टोपले) को उठाकर पूर्वोक्त रीति प्रमाणें ही एकेक दाणा आगे के द्वीप समुद्रों में रखता जावे, जब उस शाला का में एक दाणा बाकी रहजावे, तब वो दाणा लेकर तीसरे 'प्रतिशलका' नामक टोपले में रक्खे. और शलाका को बाजू रखकर. फिर उसही स्थान की सूची प्रमाणे अनवस्थित टोपला पहिला बनावे. और सरशों के दाणों से शिखाऊ भर, आगेके द्वीप समुद्रों में एके क दाणा रखता जावे. जब के उसमें एक दाणा बाकी रह जावे तब उस दाणें को लेकर दूसरे शलाका नामक टोपले में रक्खे. ऐसेही पूर्वोक्त रीतिसे अवास्थित टोपले के एकेक दाणें कर शलाका को प्रतिपूर्ण शिखाऊ भरे. और फिर दूसरी वक्त शलाका को उठाकर आगेके द्वीप समुद्रों में एकेक दाणा रखते आगे जाते वो 'शलाका' में एक दाणा रह जावे तब, उस दाणे को 'प्र-

+ द्वीप व समुद्र की गोलाइ के एक तट से दुसरे सामें के तटकी लम्बाइ के प्रमाण प्रमाण को सूची कहते हैं. जैसे लवण समुद्र की सूची ५ लक्ष योजन की, और धात की खण्ड द्वीप की सूची २५ लाख योजन की.

तिशलाका' नामक तीसरे टोपल में रक्खे. और फिर जिस्थान में शलाका खाली हुवा उसी स्थान की सूची प्रमाणे 'अनवस्थित' प्रथम पाला बना, शिखाऊ दाणे से भर, एकेक दाणा आगेके द्वीप समुद्रों में रखता जावे. जहां वो अनवास्थित में एक दाना रह जावे उसे दूसरे 'शलाका में' रक्खे. यों अनवस्थित कर फिर शलाका को भरे. और फिर शलाका कों उठा एकेक दाणा आगेके द्वीप समुद्रों में रखते एक दाणा रहजावे, उसे तीसरे प्रतिशलाका में रखे. और फिर अनवस्थित 'कर' 'शलाका' कों भरे. और यों बचते हुवे एकेक दाणे कर प्रतिशलाका को भरे. प्रतिशलाका शिखाउ भराये बाद, उसे उठा कर उसमें का एकेक दाणा आगेके द्वीपमें रखते २ जब एक दाणा उसमें रह जाय, तब वो दाणा चौथें 'महा शलाका' नामें डाले में रक्खे. और फिर अनवास्थित के बचेहुवे एकेक दाणें कर 'शलाका' को भरे, और 'शलाका के बचे हुवे एकेक दाणेकर 'प्रतिशलाका' को भरे. और योंही 'प्रतिशलाका' के बचे हुवे एकेक दाणें कर 'महा शलाका' नामक चौथे डाले को भरे. जब महा शलाका भरा जावे, तव उसे उठा नेकि कुछ जुरूरत नहीं, क्यों कि उसमें बचा हुवा दाणा रखने कोइ पांचवा पालों नहीं है. इसलिये उस भरे हुवे 'महा शलाका' नामे चौथे पाले को एक तरफ रख कर. फिर अनवस्थित कर पूर्वोक्त रीतिसे बचे हुवे एकेक दाणें कर, 'शलका' नामक दूसरे टोपलेको भरे. और शलका के बचे हुवे एकेक दाणे कर प्रतिशलाका को भरे, वो प्रतिशलाका तीसरा पालभी भरा जावे तब उसे उठा करभी उस महाशलाका नामक चौथे डालेके पास रख देवे. और फिर अनवस्थित के बचे हुवे एकेक दाण से 'शलाका' को भरे, यों वो दूसरा टोपला शलाका भी भरा जावे, तव उसेभी उठा कर उस प्रतिशलाका पाले के पास रखदेवे. और जिसस्थान वो शलाका भरायाथा उसस्थान प्रमाणे उस अनवस्थित नामक प्रथम टोपले को बना कर, शिखाऊ सरशों के दाणे से भर कर. उस शलाका नामक दूसरे टोपलेके पास रखे. क्यों कि अब इसमें के बचे हुवे दाणे कों भी रखने स्थान नही. रहा. यों चारोंही टोपले डाले पाले भरा जावे. तब चारों टोपले के दाणें को ऊंदाकर एकस्थान ढगला करे, और जो प्रथम द्वीप समुद्रोंमें दाणे डाले हैं उन सब को चुन कर भेले करे, इन दाणें की रासी (ढाग) में मिलावै, और फिर उस सरशों के ढग में से एक सरशों कमी करने से उस ढग में—७५८२६२२५३०७३०१ ०२४११५७२७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८

३२२६०००००००००००००००००००००००००००००००००००
०००
००
००००००००००००० ००००, इतने सरशों के दाणें हैं, इतनी संख्या को उत्कृष्ट संख्याते कहना. इनको उच्चारः—एक में एक का भाग देनेसे या एक को एक से गुण कार करने से कुछ भी हानी वृद्धि नहीं होतीहैं. इस लिये एक को तो संख्याका वाच कहा जाताहै, और दो (२) के अङ्क से संख्या का प्रारम्भ होताहै, इसलिये दोके अङ्क को (१)संख्या को जघन्य संख्याते कहना. और तीन चार पांच जावत् सो, दश सो का एक हजार, सो हजार का—एक लक्ष, एसे चौरासी (८४) लक्षका-एक पूर्वांग, चौरासी लक्ष पूर्वांग का-एक पूर्व + चौरासी लक्ष पूर्व का-एक त्रुटि तांग, चौरासी लक्ष त्रुटितांग का-एक त्रुटित, चौरासी लक्ष त्रुटित का-एक अडडांग,[१] चौरासी लक्ष अडडांग का-एक अडड, चौरासी लक्ष अडड का-एक अववांग, चौरासी लक्ष अववांग का-एक अवव, चौरासी लक्ष अवव का-एक हुहुकांग, चौरासी लक्ष हुहुकांग का-एक हुहुक, चौरासी लक्ष हुहुक का-एक उत्पलांग, चौरासी लक्ष उत्पलांग का-एक उत्पल चौरासी लक्ष उत्पल का-एक पद्माग, चौरासी लक्ष पद्मांगका-एक पद्म, चौरासी लक्ष पद्मका-एक नलीनांग, चौरासी लक्ष नलीनांग का-एक नालीन, चौरासी लक्ष नलीनका-एक निपुरांग, चौरासी लक्ष निपुरांगका-एक अर्थ नेपुर, चौरासी लक्ष अर्थ नेपुरका-एक आयुतांग चौरासी लक्ष आयुतांग का-एक आयुत, चौरासी लक्ष आयुतका-एक प्रयुतांग, चौरासी लक्ष प्रयुतांग का-एक प्रयुत, चौरासी लक्ष प्रयुतका-एक चुलीकांग, चौरासी लक्ष चुलीकांग का-एक चुलिक, चौरासी लक्ष चुलिक का-एक शीर्प पाहेली तांग (यह मध्य के १९२ अंकसो (२) मध्यम संख्याते जानना) और चौरासी लक्ष शीर्प पहलीतांग का-एक शीर्प प्रहेली का होती है. सो (३) उत्कृष्ठ संख्याते जानना. १९४ अंक के आगे संख्या नहीं होती है. यह संख्याते के ३ भेद हुवे.

अब असंख्यात के ९ भेद कहते हैं:—ऊपर कहे मुजब चारों टोपले में के शरशों के दाणों का, और सब द्वीप समुद्रों पें डाले हुवे दाणों को चुनकर उस में

+ एक पूर्वकी संख्याके ७०५६०००००००००० इतने अंक होतेहैं.

मिलकर जो राशी (ढग) करी थी, और उस में से एक दाणा निकाल लियाथा, वो दाणा पीछा उस राशी में डाल देने से-(१) जघन्य परिता असंख्याते होते हैं. और इस जघन्य परिता असंख्याते की राशी कों रास गुणाकरे × फिर उसमें से एक दाणा निकाले कम करे सो-(३)उत्कृष्ट परिता असंख्याता. और जघन्य परिता असंख्याता से एक अधिक, तथा उत्कृष्ट परित असंख्याता से एक कमी उसे (२)मध्यम परिता असंख्याता कहा जाता है. फिर उस उत्कृष्ट परित असंख्याते की राशीमें से वो निकाला हुवा-कम करा हुवा दाणा पीछा उस राशी में डाल देवे सो (४)जघन्य युक्ता असंख्याता. (इतने एक आवली का के समय होते हैं) फिर इस जघन्य युक्ता की राशी को राशगुणा करे, और उस में से एक दाणा कम करे-निकाल लेवे सो (६) उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता, और जघन्य युक्ता असंख्याता से एक आधिक उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता से-एक कमी सो(५) मध्यम युक्ता असंख्याता. फिर उत्कृष्ट युक्ता की रासी मेंसे निकाला हुवा दाणा डाल देवेसो-(७) जघन्य असंख्यात असंख्याता. और इस जघन्य असंख्यात असंख्याते की राशी को राश गुणा कर, एक दाणा कम करे सो-(९) उत्कृष्ट असंख्याता, (इतने धर्मास्ति, अधर्मास्ति, लोकाकास्ति. और जीवास्ति के प्रदेश हैं.) और जघन्य असंख्यात असंख्याते से एक अधिक उत्कृष्ट असंख्यात असंख्याते से एक कमी सो-(८) मध्यम असंख्यात असंख्याते. यह असंख्याते के ९ भेद हुवे.

अब अनन्त के ९ भेद कहते हैंः-फिर उत्कृष्ट असंख्यात असंख्याते की राशी में से निकाला हुवा दाणा पीछा उस में मिला देवे सो (१) जघन्य परिता अनन्ता (इत ने अभव्य जीवों है) फिर इस जघन्य परिता अनन्ते की राशी को रास गुणाकर, उस में से एक दाणा निकालने से, जो रहे सो-(३) उत्कृष्ट परिता अनन्ता, और जघन्य परिता अनन्ता से एक आधिक, उत्कृष्ट परित अनन्त से एक कम सो, (२) मध्यम परिता अनन्ता. फिर उत्कृष्ट परिता अनन्ता की राशी में से निकाला हु-

× जैसे ४ को ४ गुणा करने से १६ होते हैं. तैसेही जितने दाणें की वो राशी है उन सब दाणों को अलग २ एकेक बिखेर कर, उस एकेक दाणे के ऊपर पाहिलेकी राशी जितना एकेक ढगला करे, उने दाणे जितने सब ढगले को भेलें करे उसे राशगुणा कहा जाता है.

वा दाणा पीछा उस में डाल देवे सो-(४) जघन्य युक्ता अनन्ता, और जघन्य युक्ता अनन्ता की राशी को राश गुणा कर उस में से एक दाणा निकाल लेवे सो (६)उत्कृष्ट युक्ता अनन्ता, और जघन्य युक्ता अनन्ता से एक अधिक, उत्कृष्ट युक्त अनन्ता से एक कमी सो (५) मध्यम युक्ता अनन्ता जाणना, फिर उत्कृष्ट युक्ता अनन्ता की रासी में से निकाला हुवा दाणा उस राशी में पीछा मिलावे सो (७) जघन्य अनन्त अनन्ता कहते हैं.

अब आगे केवल ज्ञान के आभिगम परिछदों के प्रमाण स्वरूप बताने उत्कृष्ट अनन्तान्तका स्वरूप कहते हैं:—जघन्य अनन्ता अनन्त राशी को राश गुणा करने से जो राशी उत्पन्न होवे वहा अनन्तान्त का+मध्य भेदहै, इस राशीमें-जीव राशीके अनन्तवे भाग सिद्ध राशी,सिद्ध राशीसे अनन्त गुणी निगोद राशी-वनस्पति काय राशी, जीव रासी से अनन्त गुणी पुद्गल रासी, पुद्गल सेभी अनन्त गुणे तीन काल के समय, और अलोका काश के प्रदेश, यह ६ रासी मिलाना और इस में धर्म द्रव्य के अगुरु लघु गुणके अनन्तान्त अविभाग प्रतिच्छेद मिलाकर जो राशी होवेसो(८) मध्यम अनन्ता अनन्त. इस राशी को केवल ज्ञान के आविभाग प्रतिछेदों के समोह रूप राशी में से घटाना, और जो शेष वचे उस में पुनः वही महा राशी मिलाने से केवल ज्ञान के अविभाग प्रति छेदों का प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है. उक्त महाराशी को केवल ज्ञान में से घटाकर फिर मिलाने का सवव यह है कि-दुसरी रासी से गुणाकार कर ने पर भी केवल ज्ञान के प्रमाण से वहुत कमती रहता है. इस लिये केवल ज्ञान के अविभाग परिछेदों का प्रमाण का महत्व दिखलाने ऊपर युक्त विधान किया है.

इस प्रकार से संख्यामान के २१ भेदोंका कथन समाप्त हुवा.

अब उपमा प्रमाण के ९ भेद कहते हैं:—१ पल्य, २ सागर, ३ सूच्यांगुल,

---

+अनन्त के दूसरे दो भेद होते हैं:-१ साक्षय अनन्त, और अक्षय अनन्त. यहां तक जो संख्या हुइ सो साक्षय अनन्त की हुइ. अब इसके आगे जो भेद कहते हैं सो अक्षय अनन्त के जानना, क्योंकि इस ऊपरोक्त महाराशी में आगे छे राशी अक्षय अनन्त की मिलाइ जाती है. नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते २ जिस राशीका अन्त पार नहीं आवे उसको अक्षय अनन्त कहते है.

४ प्रतरांगुल, ५ घनांगुल, ६ राज्जू, ७ जगच्छेणी, ८ जगत्परतर, और ९ लोक. इन नवोंका अलग २ स्वरूप कहते हैं:—

१ पल्य—पाला, किसी भी वस्तु भरने का स्थान (पिय-खो-कोठार-प्रमुख) या ठाम (पायली-कोठी) होवे उसे पल्य कहते हैं. उस के मपतीसे किसी का प्रमाण समझाया जाय सो-पल्योपम प्रमाण. इसके ३ भेदः-(१) व्यवहार पल्य, (२) उद्धार पल्य, और (३) अद्धापल्य-

(१) व्यवहार पल्य का स्वरूपः-परमाणु=परम=उत्कृष्ट+अणु=पतला, जो सब से वारीक होवे, जिसके दो विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकें, उसे परमाणु कहते हैं. ऐसे अनन्त सूक्ष्म परमाणु का स्कन्ध (पिण्ड) का १ बादर(व्यवहारिक) परमाणु होता है. उसे देवता भी अति तीक्षण शास्त्र कर छेद सके नहीं, अग्नि में जले नहीं, पाणी में भींजे नहीं. ऐसे अनन्त बादर प्रमाणु के स्कन्ध का-एक उष्ण श्रेणिया (गरमीका) पुद्गल होता है, ८ उष्ण श्रेणियाका-१ शीत श्रेणीया (शरदी-ठन्डका) पुद्गल. ८ शीत श्रेणियकी-१ उर्द्धरेणु (तरवर में उडे सो रज) ८ उर्द्धरेणुकी-१ त्रसरेणु (त्रस कायका शरीर) ८ त्रस रेणुकी-१ रथरेणु, (रथ चलते उडे सो रज) ८ रथरेणु जितना जाडा-१ देवकुरु उतरकुरु क्षेत्रके मनुष्य के बालाग्र. ८ देवकुरु उत्तरकुरु मनुष्य के वालाग्र जितना-१ हरीवास रम्यक वास क्षेत्रके मनुष्यका वालाग्र. ८ हरीवास रम्यकवास के मनुष्य के वालाग्र जितना-१ हेमवय हिरणवय क्षेत्र के मनुष्य का वालाग्र, ८ हेमवय हिरणवय मनुष्य के वालाग्र जितना-१पूर्व महा विदेह पश्चिम महाविदेह क्षेत्रके मनुष्य का वालाग्र. ८ महाविदेह क्षेत्रके मनुष्य का वालाग्र जितना-१ लीख, ८ लीखकी-१ सरसों, ८ सरसों का-१ जौ, और, ८ जौका-१ उत्सेद अंगुल. (चारों गति के जीवों का शरीर का माप इस अंगुल से किया जाता है.) ५०० उत्सेध अंगुल का-१ प्रमाण अंगुल (अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर का अंगुल) कहा जाता है (इस से नरकावासे-भवन-देवनगर-विमाण-द्वीप-समुद्र-पर्वत-नदी इत्यादि का प्रमाण वताया जाता है) और भरत एरावत क्षेत्र में जो मनुष्यों होते हैं, उस वर्तमान काल में जितना वडा अंगुल होवें, उसे आत्म अंगुल कहते हैं.(इस से चक्रवर्ति राजा के १४ रत्नादि ऋद्धि का, तथा झारी थाल कटोरे आदि संसार में काम आती वस्तुओं का प्रमाण वताया जाता है) ६ प्रमाणु अगुंलका-१ पउ (मुठी,) २ पउका-१ विलस्त, २ विलस्तका-१ हाथ, २ हाथकी-१ कुच्छ, २ कुछका-१

धनुष्य, २००० धनुष्यका-१ गाऊ (कोश), ४ कोशका-१ योजन.

ऐसे प्रमाणांगुल से निष्पन्न एक योजन का लम्बा-एक योजन काही चौडा (गोळ) और एक योजन का ऊंडा गोळगर्त (कुवे) में-देव कुरु उत्तर कुरु क्षेत्रके युगल मनुष्य के ७ दिन के बच्चे के वालाग्र-ऐसे बारीक कतरे कि-जो आँखों में डालने से खटके नहीं (काजल जैसे) उन से उस कूवे को ठसोठस भरे कि-जिसपरसे जो कभी चक्रवर्ती राजा की सब सेना निकल जायतो भी वो बिलकुल दबे नहीं. गंगानदी का पूर उस पर से निकल जायतो उस में पाणी प्रवेश कर सके नहीं. उस कूवे में—
४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५११२१९२००००००००००००००००००
इतने वालाग्र समाये. इन में से सो सो वर्ष में एकेक वालाग्र निकालते वो कूवा साफ खाली होजाय. एकभी वालाग्र नहीं रहे, उतनें वर्षोका-१ व्यवहार पल्योपम होता है. (इस पल्योपम से देवता नरक और युगलीयों का आयुका प्रमाण किया जाताहै.)

(सो वर्षका प्रमाण-शीघ्रतासे) आँख मीच कर उघाडे (ऑख टमकावे) इतने में असंख्यात समय बीत जातेहैं, ऐसे असंख्यात (जघन्य युक्त प्रमाण) समय की-१ आवलिका, ४४४६ झाजेरी (कुछ ज्यादा) आवलीका×-१ श्वाशोश्वास, ७श्वासोश्वासका एक थोव, ७ थोव की-१लव (घांस काटते एक वक्त में जितना काल लगे उतना काल) ७७ लवका-१-मुहूर्त, ३० मुहूर्त की-१अहो रात्र (दिनरात) १५ अहो रात्र का-१पक्ष, २ पक्षका-१मास, २ मासकी-१ऋतु (ग्रीष्मादि) ३ ऋतु की-१अयन (दक्षीणायन-उत्तरायन), २ अयन का-१ वर्ष, ५ वर्षका-१ युग, २० युगके सो वर्ष होतेहैं.)

(२)अब ऊपरोक्त व्यावहार पल्योपमके वर्षोको असंख्यात कोटी वर्षोके समयों से गुणा कार करने से-१ उद्धार पल्योपम के वर्षों का प्रमाण होता है. (इस उद्धार पल्य के समयों को २५ क्रोडा क्रोड (२५ क्रोडको २५ क्रोड से) गुणा करने से जितने समय होवें, उतने सब द्वीप समुद्रों हैं.)

× २५६ आवलीका का—१ खुल्क भव (निगोदके जीवों का—१ भव) होता है, ६५५३६ भवका—१ अन्तर मुहुर्त होता है, इसमें २५६ को ६५५३६ से गुणाकार करनेसे—१६७७७२१६ इतनी आवलीका होती है, इसमें एक अन्तर मुहूर्तके श्वाशोश्वास के साथ भाग देने से ४४४६ एक श्वाशोश्वास की आवलीका होतीहै. बाकी ५४५८ आवली का रही है. इसे ३७७३ का भाग नहीं लगता है. इसलिये १ आवलीका के ३७७३ भाग करनेसे २४५८ अंश ४४४६ आवली पर आते है. सोही जाजेरा जानना चाहिये.

(३) उद्धार पल्य के वर्षों को असंख्यात कोटी वर्षोंके समयों से गुणाकार करने से-१ अद्धा पल्य के वर्षों का प्रमाण होता है, (इस अद्धा पल्योपम से कर्मोंकी स्थिति का प्रमाण किया जाता है!!) ÷

दशक्रोडा क्रोड व्यवहार पल्योपम का-१ व्यवहार सागरोपम, दशक्रोडा को उद्धार पल्योपम का—१ उद्धार सागरोपम और दश क्रोडा क्रोड अद्धा पल्योपम का १ अद्धा सागरोपम होता है.

३ अद्धा पल्य की अर्द्धच्छेद राशी को रास गुणा करने से जो संख्या आवे उसे सूच्यंगुल कहते हैं (एक प्रमाणंगुल लम्बे और एक प्रदेश चौडे- ऊंचे आकाशमें इतने प्रदेश हैं.)

४ सूच्यंगुल के (सूच्यंगुल को सूच्यंगुलसे गुणें.) वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं.

५ सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं.

६ पल्यकी अर्द्धच्छेद राशाके असंख्यातवे भागको घनांगुल से रास गुणा करनेसे—१ राजूका प्रमाण होता है. +

७ सात राजूकी एक जगच्छेणी (आधी त्रसनाल) होती है.

८ जगत्च्छेणी के वर्गको जगत्परतर कहते हैं. और

९ जगत्च्छेणी के घनको लोक कहते हैं. (यही तीनों लोक के आकाश प्रदेशों की संख्या है.)

यह उपमान प्रमाण के ९ भेदों का कथन हुवा.

इतना जरूर ध्यान में रखना कि—१ जहां द्रव्य का प्रमाण कहा जाय, वहां उतने अलग २ पदार्थ जानना. जहां क्षेत्र का प्रमाण कहा जाय, वहां उतने प्रदेश

÷पाठको! जरा ध्यान दीजीये, कर्मोंकी स्थिति के लिये कितना जबर प्रमाण दिया गया है!! कर्म बन्ध करना सहज है, परन्तु भोगवते बहुत ही मुशीबत भोगवनी पडतीहै! जरा लक्ष में लीजीये !!!

+ ३८१२७९७० इतने मणका—१ लोहेका गोला, ऐसे १००० गोले को भेले करने से १ भार वजन कहते हैं. ऐसा १ भारका गोला कोइ देवता ऊपर से डाले, वो ६ महिने, ६ दिन, ६ पहर, ६ घडीमें जितना क्षेत्र उल्लंघकर नीचा आवे, उतने क्षेत्रको एक राज्जू आया कहना.

जानना. ३ जहां कालका प्रमाण कहा जाय, वहां उतने समय जानना. और ४ जहां भाव का प्रमाण कहा जाय, वहां उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानना.

यह लौकोत्तर (अलौकिक) गणितका कथन हुवा.

१२-१३ क्षेत्र स्फर्शना और क्षेत्र प्रमाण द्वारका अर्थः

लोकालोक का स्वरूप.

संक्षेपमें लोकालोक का स्वरूप इसतरह से हैः— अलोक-अ=नही+लोक=विलोकने-देखने जैसा, अर्थात्-अलोक में फक्त एक आकाश (पोलार) ही है, और कुछ भी नहीं है. इसलिये अलोक कहा जाता है. सो अनन्तानन्त—अपरम्पार-आद्य—न्त् रहित है.

इस अलोक के अत्यन्त मध्य विभाग में षटद्रव्यों के पिण्ड रूप नीचें से ऊपर तक १४ राजू का लम्बा और, नीचे सात राजु चौडा, मध्य मे १ राजू चौडा, ऊपरके अर्ध विभागमें-५ राजू चौडा, ऊपर अन्त में १-राजू चौडा-जैसे एक दीवा उलटा, उसपर दुसरा दीवा सुलटा और उसपर एक दीवा उलटा रक्खा हो, इस आकार ३४३ राजू घनाकार मपति रूप सर्व चराचर पदार्थों का स्थान लोक है. इसके तीन विभाग कल्पे हैंः—१ अधो-नीचालोक, २ मध्य—वीचका लोक, और १ उर्द्ध ऊंचा लोक. इन तीनोंका अलग २ संक्षिप्त स्वरूप वताते हैंः—

१ नीचा लोक का स्वरूपः—अलोक के ऊपर आकाश और घनोदधी घनवाय तनुवाय के तीनों वलीये अर्ध चन्द्रकार मध्य में वीस २ हजार योजन के जाडे. घटते २ अन्त में ६ योजनके रहगये हैं, जिसपर अव्यवहारराशी-इतरीय निगोद का पिण्ड अनन्त अक्षय जीवों से भरा हुवा है. जिसपर सातवी नरक-सात राजूकी लम्वी चौडी और एक राजू जडी (उंचास) में, सब ४९ राजू घना कार में है, इस के मध्य में-१ लक्ष ८ हाजार योजन का जाडा और १ राजू का चौडा पृथ्वी का पिण्ड है, जिसके ५२॥ हजार योजन नीचे और ५२॥ हजार योजन उपर छोड, वीच में ३ हजार योजन की पोलारहे, जिसमें एक पांथडे में ५ नरकावासे में असंख्यात नेरीये हैं. जिनका ५०० धनुष्य का शरीर और ३३ सागर का आयुष्य है.

जिसपर छट्टी मघा नरक-छे राजू लम्वी चौडी, एक राजू जाडी, ४० राजू

घनाकार विस्तारमें है. जिसके मध्यमें-१ लक्ष१६००० योजन जाडा, और १ राजू लम्बा चौडा पृथ्वी पिण्ड है, जिस में एक हजार योजन उपर एक हजार योजन नीचे छोड कर बीच में १ लक्ष १४ हजार योजनकी पोलारहे, जिसमें ३ पाथडे, २ आन्तरे, ५ कम १ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये हैं-जिनका २५० धनुष्य शरीर और २२ सागर का आयुष्य है.

जिसपर पांचवी रिठा नरक—पांच राजूकी लम्बी चौडी, एक राजू की जाडी ३४ राजू घनाकार में है. जिसके मध्य—१ लक्ष १८ हजार योजनका पृथ्वी पिण्डहै, जिस के एक हजार योजन ऊपर एक हजार योजन नीचे छोड बीच में १ लक्ष १६ हजार योजन की पोला रहे, जिस में पांच पाथडे, ४ आन्तरे, ३ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये रहते हैं, जिनका १२५ धनुष्य का शरीर, और १८ सागर का आयुष्य है.

जिसपर चौथी अजंना नरक-चार राजू की लम्बी चौडी, एक राजूकी उंची-२८ राजु के विस्तार में है. जिसके मध्य में १ लक्ष २० हजार योजनका पिण्ड है, जिसके एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड के बीच में १० लक्ष १८ हजार योज, न की पोलार है, जिसमें ७ पाथडे, ६ आतरे, १० लक्ष नरकावासे असंख्यात नेरीये है. जिनोंका ६२॥ धनुष्यका शरीर, और १० सागरोपम का आयुष्यहै.

जिसपर तीसरी सीला नरक तीन राजूकी लम्बी चौडी एक राजूकी उंची२२ राजू के विस्तार में है. जिसके मध्य में १ लक्ष २८ हजार योजनका पृथ्वी पिण्ड है, एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड बीच में १ लक्ष २६ हजार योजनकी पोलार है, जिस में ९ पाथडे ८ आंतरे, १५ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये हैं, जिनके ३१। धनुष्य का शरीर और ७ सागरका आयुष्य है.

जिसपर दुसरी वंसा नरक-दो राजुकी लम्बी चौडी, एक राजू की उंची, १६ राजू घनाकार में हैं. जिसके मध्य १ लक्ष, ३२ हजार योजन का पृथ्वी पिण्ड है, जिसके एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड बीच में-१ लक्ष ३० हजार योजनकी पोलारहै, जिसमें-११ पाथडे, १० आन्तरे, २५ लक्ष नरकावासे है में असंख्याते नेरीये हैं. जिनका १५॥ धनुष्य १२ अंगुल का देहमान और ३ सागर का आयुष्य है.

जिसपर पहिली घम्मा नरक-एक राजूकी लम्बी चौडी, और १ राजूका उं-ची, १० राजू घनाकार में है, इसके मध्य १ लक्ष ८० हजार योजन का पृथ्वी पि-

ण्ड है, जिसमे से एकेक हजार योजन ऊपर नीचेका छोडा बीच में १ लक्ष ७८ हजार योजन की पोलाड है, जिसमें १३ पांथडे, १२ आन्तरे ३० लक्ष नरक,वासेमें असंख्यात नेरीये हैं. जिनकी ७॥ धनुष्य ६ अंगुल का शरीर, और उत्कृष्ट १सागर का आयुष्य है.

सातों नरक के–४२ आन्तरमें से प्रथम नरक के १०अन्तर छोड बाकीके सब खाली पडे हैं. और ४९ पांथडे हैं सो सब पोले हैं. जिन में ८४ लक्ष नरकावासे हैं उन में नेरीये रहते हैं.

पहिली नरक के दश अन्तरमें ११ हजार ५ सो ८३ योजन कुछ झाजेरी जगह है. जिसमें १ क्रोड ७१ लक्ष भवन हैं. उन में असंख्यात, भवन पति देवों १० जाति के रहते हैं. जिनका ७ हाथ का शरीर और एक सागरका आयुष्य है.

२ तिरछा लोकका वरणन्-एक राजू का लम्बा चोडा गोळ. १८०० योजन का ऊंच १८ राजू घनाकार में तिरछा लोक है.

पहिली नरकके उपर जो १००० योजनका पृथ्वी पिण्ड छोडाहै, उसमें १०० तो योजन नीचे छोडना, जो नीचे लोककी हद्दीमेंही हैं, और १०० योजन उपर छोडना, बीचमें८०० योजनकी पोलारमें आठ जातिके व्यन्तर देवोंके असंख्यात नगरेहैं. और उपर१००योजन छोडे उसमेंके१० योजन उपर छोडना, और१०योजन नीचे छोडना,बीच में८० योजनकी पोलारहे; जिसमे ८ जातिके वाण व्यन्तरके असंख्याते नगरे हैं. नइ दोनों स्थान में रहने वाले देवोंका ७हाथका शरीर और एक पल्योपमका आयुष्य है.

१० योजनके छोडे हुवे पिण्ड पर समभुमी है, सो एक राजू की लम्बी चोडी गोळ है, इस के बहूतही मध्य भाग में सुदर्शन मेरू पर्वत मलस्थंभ जैसा गोळ नीचे १० हजार योजन चौडा, और कम होता २ उपर शिखरपर १ हजार योजन चौडा रह गया है. और मूल में से शिखरतक १ लक्ष योजन का उंचा है, इस के मूल में समभूमी पर तो–१ भद्रशालवन है, २५०० योजन उपर नंदनवन है, ६२५० योजन उपर सोमानस वन है, और ३६००० योजन उपर पडंग वन है, (यहां तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक इन्द्रादि देव करते हैं) इस वनके मध्यमें ४० योजन की उंची चूली का (चोटी जैसी डोंगरी) है.

इस मेरू पर्वत के चारों तरफ चूडीके आकार फिरता हुवा १ लक्ष योजनका लम्बा चौडा गोळ जम्बुद्वीप है. मेरू पर्वत पास पूर्व पश्चिममें महा विदेह क्षेत्र है, जि-

सके १६ विजय पूर्व में, और १६ विजय पश्चिम में मिलके ३२ विजयों है-एकेक विजय २२ सो १२ योजन झाझेरी लम्बी है, ११ हजार ८ सो ४२ योजनकी चौडी है, एक महा विदेह के पास बखारापर्व और एक के पास अन्तर नदी होनेसे १६ बखारा पर्वत ५०० योजन चौडे, और १२ नदी १२५ योजन चौडी दोनों विजय प्रमाणें ही लम्बे हैं.

महाविदेह क्षेत्र में २४ वी नलीनावति विजय १००० योजन जमीनमें उतरती हुइ उंडी चलीगइ है, इसे अधोगामिनी विजय भी कहते हैं. इस के १०० योजन नीचेके नीचे लोकमें गिन जाते हैं.

महा विदेह के मध्य भाग में पूर्व मे सीता और पश्चिम में सीतोदा नामे महानदी है सो १० लक्ष १४ हजार नदीयोंके परिवार समुद्र गइ हैं.

महा विदेह क्षेत्र के मनुष्यों का ५०० धनुष्य का शरीर, और क्रोड पूर्वका आयुष्य सदा चौथा आरा (सत्ययुग) प्रवर्तता है.

मेरू पर्वत के पास दक्षिण में देवकुरु क्षेत्र + और उत्तर में उत्तर कुरु क्षेत्र ११ हजार ८ सो ४२ योजन झाजेरा है, इसमें सदा पाहिले आरे जैसी रचना है, युगल मनुष्य होवे हैं, तीन गाउ का शरीर तीन पल्योपम का आयुष्य होता है.

देव कुरु क्षेत्र के पास दक्षिण में नीषध पर्वत और उत्तर कुरु के पास उत्तर मे नीलवन्त पर्वत ४०० योजन उँचे, ९४१५६ योजन पूर्व पश्चिम में लम्बे, १६८४२ योजन २ कला ÷ उत्तर दक्षिण में चौडे हैं.

निषेध पर्वत के पास दक्षिण में हरीवास क्षेत्र और नीलवन्त पर्वत के पास उत्तर में रम्यक वास क्षेत्र ७२९०१ योजन १७ कला लम्ब, और ८४२१ योजन १ कला चौडे है. इन में सदा दुसरे आरे जैसी रचना रहती है. यहां के युगलमनुष्यों का दो गाउ का शरीर और दो पल्योपम का आयुष्य होता है.

हरि वास क्षेत्र के पास दक्षिण में महा हेमवन्त पर्वत और रम्यकवास क्षेत्र के

+ देवकुरु क्षेत्र में रत्नोका जम्बु नामक वृक्ष १२ योजन का ऊचाहै. उसपर अणाढी नाम जम्बू द्वीप का मालक देवता के रहन के भवनहै, वहां देवता रहने से इसद्वीप का नाम जम्बुद्वीप कहा जाताहै.

÷ १ योजन १९ के भाग करने उसमे के १ भाग को १ कला कहते है.

पास उत्तर में रूपी पर्वत-२०० योजन उंचा, ५४१२९ योजन १६ कला लम्बा, ४२१० योजन १० कला चौडा है.

महा हेमवन्त पर्वत के पास दक्षिण में हेमवय क्षेत्र और रूपी पर्वतके पास द-क्षिण में एरणवय क्षेत्र ३७६७४ योजन १६ कला लम्बा, और २१५५ योजन ५ कला चौडा है. इसमें तीसरे आरेकी रचना सदा रहती है, यहांके युगल मनुष्योंका १ गाउका शरीर, और १ पल्योपम का आयुष्य होता है.

हेमवय क्षेत्र के पास दक्षिण में चूल हेम पर्वत और एरणवय क्षेत्रके पास उत्त र में शिखरी पर्वत-१०० योजन उंचा, २४९२५ योजन लम्बा, और १०५२ योजन १२ कला चौडा है.

चूल हेम पर्वत के पास दक्षिणमें भरत क्षेत्र और शिखरी पर्वत के पास उत्तरमें एरावत क्षेत्र-१४४७१ योजन लम्बा, ५२६ योजन ६ कला चौडा है, इसमें ६ आरे सर्पिणी कालके सुलटे और ६ आरे उत्सर्पिणी काल के उलटे सदा वारे सिर पवर्त ते हैं. जिस में शरीर और आयुष्य आरा प्रमाणें होता है.

इन भरत एरावत क्षेत्र के मध्य वीच में वेताड पर्वत १०७२० योजन १२ कला लम्बा, ५० योजन चौडा, और २५ योजनका उंचा है, इस पर्वतपर १० योजन जावे वहां १० योजन चौडी पर्वत जितनी लम्बी दो श्रेणियो (बरोबर जगह) है. व-हां दक्षिण में ५० और उत्तर में ६० नगर है, जिसमें विद्याधर मनुष्य रहते हैं; इस-के उपर और भी दश योजन जावे वहां दो श्रेणियों है. उस में १० जाति के त्रिझ-मक देवता रहते हैं. इस पर्वत में नीचे जमीनपर तमस और खन्ड प्राप्त नामक दो गुफा १२ योजन चौडी और पर्वत जितनी लम्बी है, (इस में सचक्रवर्ति राजा खन्ड साधने को आते जाते हैं-

जम्बु द्वीपके चौगिरदा जगति (कोट) ३१६२२७ योजन ३ गाउ १२८ धनु-ष्य १३॥ अंगुल झाजेरा घेराव लिये हैं.

इस जगति के पास बाहिर चौगिरदा फिरता गोळ चूडी जैसा २ लक्ष योजन का चौडा लवण समुद्र है. यह किनोरपर वालाग्र जितना उंडा है, और बढते२ मध्य ९५ हजार योजन जावे वहां १ हजार योजन उंडा है.

जम्बु द्वीप में रहे चूलहेम शिखरी पर्वत के चारों छेडों से आठ दाडों (डोंगरी यों) निकल कर लवण समुद्र में ८४००० योजन लम्बी गइ हैं, उन एकेक दाडों पर

५६द्वीपे हैं. इनपर युगल मनुष्य रहते हैं, उनका८०० धनुष्यका शरीर ऊंचा, और पल्यके असंख्यातवे भाग आयुष्य है.

लवण समुद्र के मध्य में चारों दिशा में-बडवा, युग, केतु और इश्वर नाम के चार पातल कळशे १ लक्ष योजन उंडे, बीच मे ५० हजार योजन चौडे, मुख औरतला १ हजार योजनका चौडा, बायुका, पाणी बायु मिश्रित, और पाणी का, ऐसे ३ कान्ड युक्त, दुसरे ७८८४ छोटे कळशके परिवारसे है.

लबण समुद्र के मध्य में १६ हजार योजन उंचा और १० हजार योजन चौडा चारों तरफ फिरता पाणी का डगमाला (ढग) है. गौतम द्वीपा, वेलन्धरके द्वीपा चाद्र सूर्यक द्वीप आदि हैं.

लवण समुद्र के चारों तरफ फिरता बलियाकार धातकी खन्ड द्वीप चार लक्ष योजनका चौडा है. इस्के मध्य दक्षिण और उत्तर में दो इषुकार पर्वत ५०० योजन उंचे, और धातकी खन्ड जितने लम्बे पडने से पूर्व घात की खन्ड और पश्चिम घात की खन्ड ऐसे दो विभाग होगये हैं. एकेक धातकी खण्ड में जबुद्वीप में कहे मुझब सब पदार्थ–क्षेत्रों पवर्तों नदयों वगैरा है. दोनो धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत और सब जंबुद्वीप से दुगने पदार्थ हैं.

धातकी खण्ड के चारों तरफ बलीया कार ८ लक्ष योजन का कालोदधी समुद्र है, यह इस किनारे से उस किनारे तक एकसा हजार योजन का ऊंडा है.

कालोदधीसमुद्र के चारों तरफ बलीयाकार पुष्करार्ध द्वीप १६ लक्ष योजन का चौडा है, इसके मध्यबीच में बलीया कार चौतरफ फीरता मानुषोत्तर पर्वत १९२१ योजनका उंचा है, इसके अन्दरही मनुष्यों की बस्ती है, धात की खन्डद्वीप की तरह इस में भी दो मेरू प्रवर्व और क्षेत्र पर्वत नदी वगैरा सर्व वस्तु है. इस अडाइ द्वीप मनुषोत्तर पर्वत के बाहिर के पुष्करार्थ द्वीप में व आगे मनुष्यों की उत्पत्ति वस्ती, बादर अग्नि, नदी, द्रह, बदल, बिजली, गर्जारव, वर्षाद, खड्डे, दुष्कालादि नही हैं. फक्त देवता और तिर्यंचो रहते हैं.

पुष्कर द्वीपे के चौतरफ बलयिाकर पुष्कर समुद्र ३२ लक्ष योजन का है, जिसके चौफेर वारुणी द्वीप ६४ लक्ष योजनका, जिसके चौफेर वारुणी समुद्र (मदीरा जैसा पाणी वाला) १२८ योजन. यों आगे एकेक से दुगुणे-क्षीर द्वीप, क्षीर समुद्र, घृत द्वीप, घृत समुद्र, इक्षु द्वीप, इक्षु समुद्र, नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर समुद्र, आदि अ-

संख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र है, अन्तिम स्वयंभु रमण समुद्र एकही अर्ध राजू प्रमाण चौडा है, उस के आगे १२ योजन अलोक है.

मेरु पर्वत के पास सम भूमी से ऊपर ७९० योजन तारा मंडल है उसपर १० योजन सूर्य है, उसपर ८० योजन चंद्रमा है. उपर ४ योजन नक्षत्र माळ, उपर ४ योजन ग्रह माळ, उपर ४ योजन बुद्ध, उपर तीन योजन शुक्र, उपर तीन योजन वृहस्पति, उपर तीन योजन मंगल, उपर तीन योजन शनी, यों ११० योजन में जोतिषी चक्र हैं.

उंचा लोकका वरणनः-शनिश्वर के विमान से १॥ राजु उपर, १९॥ राजू के विस्तार में जम्बु द्वीप के मेरु से दक्षिण की तरफ तो पाहिला सुधर्मा देवलोक १३ प्रतर ३२ लक्ष विमानों असंख्यात देव युक्त है. और उत्तर में ईशाण देवलोक १३ प्रतर २८ लक्ष विमान, असंख्यात देव युक्त है. दोनों देवलोक के देवताओंका ७ हाथ का शरीर, और २ सागरोपम का आयुष्य है.

इन दोनों देवलोक की हद के उपर-१ राजू उंचास में और १६॥ राजू घनाकार में मेरू से दक्षिण में तीसरा 'सनत्कुमार' देवलोक बारे प्रतर, और १२ लक्ष विमान, उत्तर मे चौथा महेन्द्र देवलोक १२ प्रतर, ८ लक्ष विमान, असंख्यात देव युक्त है. दोनों देवलोकोंके देवका ६ हाथका शरीर,७और सागरोपम का आयुष्य है.

इन दोनों देव लोकको हद से आधा राजू उपर, २० राजू घनाकार में मेरुपर बरोबर पांचवा देवलोक ६ प्रतर, और ४ लक्ष विमान में असंख्यात देवों ५हाथ का शरीर और १० सागर के आयु वाले रहते है.

पांचवे देवलोक की तीसरी अरिष्ट प्रतर के पास, दक्षिण दिशा में आठ कृष्ण राजी पृथ्वी परिणाम रूप श्याम वर्ण की है, जिस में आठ विमान आठों दिशी में और एक विमान मध्य में यों ९ विमानों में, ९ लोकान्तिक देव २०७०० देवोंके परिवार से, ५ हाथका शरीर और "लोकान्तिका नामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्" इस सूत्रानुसार-सर्व देवोंका आठ सागरोपम का आयुष्य है. (यह तीर्थंकरोंको दिक्षा के अवसर में चेताते हैं.)

पाचवे देवलोक के उपर बरोबर अद्धा राजू उंचा, और १८॥ राजू के विस्ता-

+ घर मे मजल होती है. तैसे देवलोकों में मजलें है उसे प्रतर कहते है.

र में छट्ठा 'लान्तक देव लोक' ५ प्रतर और ५० हजार विमान में असंख्यात देवों ५ हाथ शरीर और १४ सागर आयुवाले रहते हैं.

छठे देवलोक के पाव राजू उपर बरोबर सातवा महा शुक्र देवलोक ७। राजू घनाकार में ४ प्रतर ४० हजार विमान असंख्यात देवों ४ हाथका शरीर, और १७ सागर आयुवाले रहते हैं.

सातवे देवलोक के पाव राजू उपर बरोबर आठवा सहसार देवलोक ७। राजू घनाकार में चार प्रतर और ६ हजार विमान में असंख्यात देवों चार हाथ का शरीर और १८ सागर आयुवाले रहिते हैं.

आठवे देवलोक के उपर पाव राजू दक्षिण में नववा आण देवलोक, और उत्तर मे दशवा पाण देवलोक १२॥ राजू घनाकार में दोनों के चार प्रतरो और चारसो २ विमाणो में असंख्यात देवताओं तीन हाथ का शरीर, और नवबे में १९ सागर, दशवे मे २० सागर आयुवाले रहते हैं.

इन दोनों देवलोक के उपर आधा राजू दक्षिण में इग्यारवा अरण देवलोक और उत्तर में वारवा अचुत देवलोक १०॥ राजु घनाकार में चार २ प्रतरों के तीनसो २ विमाणों मे असंख्यात देवों ३ हाथ का शरीर और २२ सागरोपम का आयुंष्य वाले रहते हैं.

यहांतक के देवलोको को कल्प कहते हैं, इनों में-इन्द्र सामानीक, लोकपाल, त्रायत्रिशक, आत्मरक्ष, परिषद, अनिका, आदि अनेक प्रकारके देवो हैं. वो इन्द्रकी आज्ञा प्रमाणे चलते हैं. और आगे सब कल्पातीत-अहमेन्द्र देव हैं.

इन दोनों देवलोकोके उपर १ राजू एकके उपर एक-भद्दे, सुभद्दे सुजाय, सुमान से, सुदंशण, पियदंसण, अमोए, पडीभद्द और जसोधर, यह नवग्रीवेक के ३१८ विमाण आठ राजू घनाकारमें है, इनमें देवोंका २ हाथका शरीर पहिली ग्रीवेक में २३ सागर आगे एकेक सागर वढता २ नववी ग्रीवेक में ३१ सागर का आयुष्य है.

नवग्रीवेक से एक राजू उपर विजय विजयन्त जयन्त अपराजित यह चारों विमान तो चारों दिशा में हैं, और सर्वार्थ सिद्ध विमान इन चारों के मध्य में, यों पांचों अनुत्तर विमान ६॥ राजू घना कार में है. इन में देवों का एक हाथ का शरीर, और ३३ सागर का आयुष्य है.

सर्वार्थ सिद्ध से १२ योजन उपर सिद्ध शीला सीधे छत्रके संस्थान में श्वेत सु

वर्ण की ४५ लक्ष योजन की लम्बी चौडी गोळ है.

सिद्ध शिळा के उपर सिद्ध क्षेत्र एक योजन उपर और सब ११ राजू के विस्तार में है. यहां उपर के ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल जितने जाडे और ४५ लक्ष योजन जितने लम्बे चोडे स्थान में अनन्त सिद्ध भगवन्त परमात्म हैं. उन सबों-का सिर आलोक से लगा है. यह संक्षेप में लोकालोक का वर्णन् समाप्त हुवा.

☞ काल प्रमाण द्वारका खुलासातो पीछे कहे प्रमाण बोधसे जाणना. बाकी के आगे कहे सब द्वारोंका खुलासा मूल मुझवही जाणना. तथा उपरोक्त द्वारोंके खुलासे से जाणना.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के वालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज रचित मुक्ति सोपान श्री गुणस्थान रोहण अढीशतद्वारी प्रथम अर्थ काण्ड का मूल द्वारा रोहण का अर्थ नामक
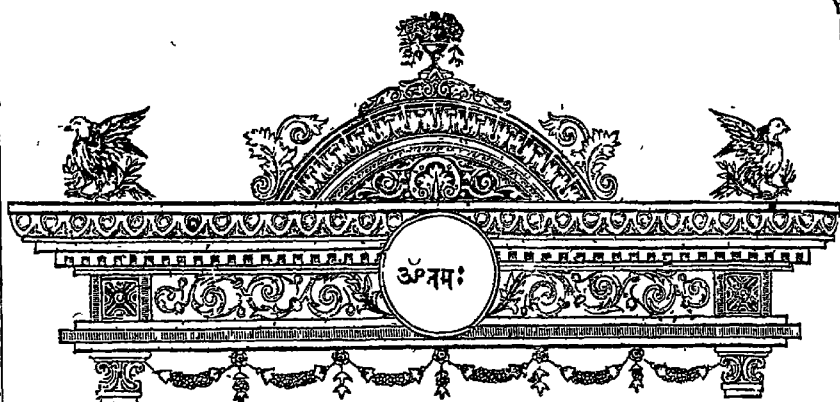
* द्वितीय-कर्म द्वारा रोहण खण्ड. *

प्रथम मूल द्वारा रोहण खंडमें गुणस्थाना रोहणकी विधी विविध द्वारों कर बताइ, सो गुणस्थानारोहण तो कर्मो की हीनता से होता है. अर्थात् ज्यों ज्यों कर्मदल आत्म प्रदेशसे पतले पडते जातेहैं-झडते जातेहैं, त्यों त्यों आत्म लाघवत्व (हलके पने) को प्राप्त हो उंचसे उंच दिशाको प्राप्त करतीहै, सोही गुणस्थानारोहण जाणना. इसलिये गुणस्थानारोहण-गुण वृद्धि के इच्छकों को कर्मोको पतले करने उनके स्वरूप का ज्ञान जरूरही होना चाहिये.और इसलिये ही कर्मा रोहण खन्ड कहते हैं.

जैसे मट्टीका सुवर्ण का अनादि सान्त सम्बन्ध है, तैसे ही जीवका और कर्म का अनादि सान्त सम्बन्ध है, वो कर्म सामान्य प्रकार से तो एकही और विशेष पनेसे (१) जो कर्म पुद्गलोंका पिण्ड सो द्रव्य कर्म, और (२) कार्य में कारण का व्यवहार होने से उन पुद्गलोंके द्रव्य में फल देने की शक्ति उस से उत्पन्न हुवा अनादि परिणाम सो भाव कर्म, तथा-(१) ज्ञानादि आत्मा के गुणों का घात करे सो घातिक कर्म, और (२) जो पुद्गल प्रणाति रूप आत्मा के साथ परिण में परन्तु गुणों की घात नहीं करे सो अघातिक कर्म. ऐसे दो भेद भी होते हैं. और घातिक कर्म के ४ भेद, तथा अघातिके भी चार भेद, दोनों मिलकर ८ भेद भी होते हैं. इन की १४८प्रकृत्तियों हैं, इसलिये १४८भेदभी होते हैं. असंख्यात लोक व्यापि कर्म पुद्गलों होने से असंख्यात भेद, कर्म पुद्गलोंके स्कन्ध अनन्त होनेसे अनन्त भेद, और

जगत में अनन्त जीवों हैं, एकेक जीव अनन्त कर्म पुद्गल की वर्गणा कर घेरा हुवाहै इसलिये अनन्तानन्त भी कर्मोंके भेद होते हैं.

यहां मुख्यत्व ८ कर्मोंकी १४८ प्रकृत्तियों कहते हैं.

इह नाण दंसण वरण । वेअ मोहाउ नाम गोआणी ।
विग्घं च पण नव दु। अठवीस चउ तिसय पण विहं।।गोमठसार

अर्थ–१ ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृत्ति, २ दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृत्ति, ३ वेदनीय कर्म की २ प्रकृत्ति, ४ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृत्ति, ५ आयुष्य कर्म की ४ प्रकृत्ति, ६ नाम कर्म की ९३ प्रकृत्ति, ७ गौत्र कर्म की २ प्रकृत्ति, और ८ अन्तराय कर्म की ५ प्रकृत्ति. यों ८ कर्मो की १४८ प्रकृत्तियों होती है. इन सर्वोंका खुलासे वार आगे वरणन् करते हैं:–

ज्ञानावरणीय कर्म.

जिससे वस्तु का स्वरूप जाना जावे सो 'ज्ञान' यह आत्मा का निजगुण है, सब गुणों में अव्वल दरजे का गुण है, इसलिये यह पूज्य होनेसे प्रथम ग्रहण कियाहै, जीव रूप लोकालोक प्रकाशी सूर्य को केवल ज्ञानावरणीय रूप वद्लोंने ढका है, तो भी अक्षर का अनन्तवा भाग सब जीवों के उघाडा रहता है; + वो वद्लों पतले पढते हैं त्यों सूर्य का प्रकाश वढता है, तैसेही ज्ञानाभरण कम होने से मति श्रुति आदि ज्ञान प्रगटताहै, और वद्लों जाडे होनेसे सूर्यका तेज आवरता-कमी पडताहै, तैसे ही ज्ञानाभरण से पंचज्ञान की मन्दता होती है. सोही ज्ञानावरणीय की ५ प्रकृत्ति.

१ 'मति ज्ञानावरणीय'–पांचों इन्द्रिय और मन कर जो भाव जानने में आवे सो मति ज्ञान. इसके दो भेद:–(१) व्यंजनावग्रह और (२) अर्थाव ग्रह. व्यंजे=प्र-

+ यहा श्रुत केवल ज्ञान साधारण पर्यात्राक्षर लेना. जिसलिये अभिधेय वस्तु धर्म सो स्वपर्याय है, और अनाभिधेय वस्तु धर्म सो पर पर्याय है, और केवल ज्ञानकातो अनाभिधेय अभिधेय दोनों पर्याय हैं, यों दोनों ज्ञान के पर्याय एक से होते हैं, सो पर्यायाक्षर, उसका अनन्तावा भाग उत्कृष्ट तो श्रुत केवली के होता है, और जघन्य भाग निगोद मे जीवोंके आहार सज्ञादि चेतना रूप होता है. जो कभी इतना ढक जाय तो जीव चैतन्य पणाके अभाव से अजीव कहवाने लगजाता परन्तू ऐसा होताही नही हैं.

काशे+अवग्रह–मिलकर. अर्थात्–जिन इन्द्रियों का ज्ञान दूसरे पदार्थ को मिलकर, आप में उसे प्रणमा कर फिर उसका स्वरूप ग्रह-जाने उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं. यह अवग्रह-श्रोत, घ्राण, रस और स्पर्श, इन चारों इन्द्रिय से होता है, क्योंकि इन चारों इन्द्रियोंके विषय पदार्थ शब्द गन्ध रस और स्पर्श्य, आकर इन्द्रियों को लगते हैं, तबही वो उनके गुणको समझती है. और चक्षु इन्द्रिय तथा मन इन से यह अवग्रह नहीं होता हैं, क्योंकि-यह दोनोंही अपने से दूर रहे हुवे विषय रूप-रंग को और अन्य के भाव को ग्रहण करते हैं. जो काभि यह विषय को स्पर्श के ग्रहण करेतो अग्नि देख भस्म होजावे, और कॉचकी सीसीमें छिद्र होजावे, वगैरा-इसलिये दोनोंके व्यंजनावग्रह नहीं है, बाकी की चारों इन्द्रियोंकेही है. सोही व्यंजनावग्रह के चार भेद कहे जाते हैं. इसकी स्थिती-जघन्य आवलिका के असंख्यातवे भाग की, उत्कृष्ट पृथक्त्व श्वास प्रमाणें-तीसरे मिश्र गुणस्थान जितनी जाणना. (२) 'अर्थावग्रह' जो पदार्थोका अर्थ=मतलब का अवग्रह-ग्रहण करेसो, इस के ४ प्रकार हैं:–(१) पांचों इन्द्रिय और मन के विषय! जब अपने २ स्थान को प्राप्त होते वो उन्हे ग्रहण करे अव्यक्त ज्ञान से सो-'अवग्रह' इसकी स्थिति-एक समयकी, (२) अव्यक्त पने ग्रहण किये छेही विषयों का निर्णय करने विचार करे कि यह क्या है? सो 'ईहा', इसकी स्थिति अन्तर मुहूर्त की, (३) विचार ते पूर्ण निश्चयात्म बनजावे कि-यह येही है, ÷ सो 'अपाय.' इसकी स्थिति अन्तर मूहूर्त की. (४) और उस निश्चय किये अर्थ को, वासना संस्कार पूर्वक बहुत कालन्तर तक धार रक्खे, दुसरी उसके जैसी वस्तु देखने से सुनने से उसका ज्ञान हो आवेसो 'धारणा.' इसकी स्थिति असंख्याते कालकी, क्योंकि-जाति स्मरण ज्ञान भी इस धारणाके पेटेमें है. × यों इन अर्थाव ग्रहे के चारों भेदोंको पांचों इन्द्रिय और छट्ठा मन से ६ गुना करने से २४ भेद होते हैं, और उपरोक्त व्यंजनावग्रहके ४ भेद इस में मिलाने से २८ भेद माति ज्ञान के होते हैं:–

२ श्रुति ज्ञान–से अक्षर जाने इसके १४ भेदः

÷ यह निर्णय–निश्चय छत्ते धर्म से सो सम्यग ज्ञान, और अछत्ते धर्म का करे सो मिथ्या ज्ञान है.

× जाति स्मरण ज्ञान से पिछले ९०० भव जो सन्नी के लगोलग किये होवेतो देख सकता है, बीच मे असन्निका भव हुवा हो वहांसेही आगे दिखना बन्ध होजाताहै.

(१) अक्षरश्रुत—पत्रादि पर लिखे सो—'सज्ञाक्षर,' मुखसे उच्चारन करेसो 'व्य-जनाक्षर', यह दोनों द्रव्य श्रुत. और इन से अर्थात् पढकर-देखकर, या सुनकर इन्द्रियावरण की क्षयोपशम लब्धिद्वारा अनाभिदेय पदार्थ के अनन्तवे भाग अभिधेय पदार्थ को जाने सो-'लब्धाक्षर', यह भाव श्रुत. इन तीनों प्रकारके अक्षरों को जाने सो अक्षर श्रुत.

(२) 'अनक्षर श्रुत'—अक्षर के उच्चार विना खाँसी छींक डकार वगासी आदि किसी भी चेष्टासे मतलब समझे सो अनक्षर श्रुत.

(३) 'सज्ञीश्रुत'—विचारे, निर्णय करे, समुचय अर्थ करे, विशेष अर्थ, चिन्तवे और निश्चय करे, यह६बोल सज्ञी में पातेहैं, इन६ बोल सहित सूत्र धारेसो सज्ञिश्रुत

(४) 'असज्ञी श्रुत' ऊपरोक्त ६ बोल विना पूर्वापर अलोचाविना पढे पढावे सुने सुनावे सो असज्ञी श्रुत.

(५) 'सम्यग श्रुत'—सर्वज्ञ या दश पूर्वतक पाढे हुवेके वचनोको या कथित सूत्र ग्रन्थोंको यथा तथ्य श्रद्धे सो सम्यग श्रुत ÷

(६) 'मिथ्याश्रुत'—अज्ञानता से मन काल्पित कथनया करे रचे हुवे काम शास्त्रा जोतिप वेदके आदि पाप शास्त्र हैं सो मिथ्याश्रुत.

(७-१०) सादि, अनादि, शान्त, और अनन्त, इनो चारों श्रुतका अर्थ, द्रव्य क्षेत्र, काल, और भाव कर बताते हैं:—(१) द्रव्य से कोइ जीव मिथ्यात्व को छोड सम्यक्त्व में आया तव श्रुत ज्ञान की आदि हुइ, और पडवाइ हो पीछा मिथ्यात्व में गया तव अन्त हुवा, तथा केवल ज्ञान पाया तव अन्त हुवा. और वहूत जीवों आश्रिय अनादि अनन्त है, क्योंकि ऐसा वक्त कदापि नहीं था और.न होगा कि जब श्रुत ज्ञान नथा और न रहेगा. (२) क्षेत्रसे-भरत ऐरावत क्षेत्र में तीर्थ की प्रवृत्ति होवे तव श्रुत की आदि होवे, और तीर्थ का व्यच्छेद होवे तब श्रुतका अन्त होवे. और महा विदेह आश्रिय अनादि अनन्त है. (३) कालसे-उत्सर्पिणी अवसर्पिण काल से तीसरे आरे के अन्त तथा आदि में श्रुतकी आदि होती है, और छेट्ट आरे की आदि में

÷ यथार्थ जानने के सवव से सम्यग दृष्टि को मिथ्याश्रुत भी सम्यगश्रुत हो परगम जाता है. और कदाग्रही होनेके सवव से मिथ्यादृष्टि को सम्यगश्रुत भी मिथ्याश्रुत हो परणम जाता है.

श्रुतका व्यच्छेद होता है. और (४) भाव से भव्य जीवों श्रुतकी प्राप्ति करे तव आदि होवे, और केवल ज्ञान पावे तब अन्त होवे. और अभव्य के श्रुति अज्ञान हैसो अनादि अनंत है.

(११) 'गमीश्रुत' द्रष्टी वाद की माफिक लड बंध पाठ होवे सो गमी श्रुत.

(१२) 'अगमी श्रुत'—एकादशांगी तरह आगे पीछे पाट होवे सो अगमी श्रुत.

(१३) अंगपविठ श्रुत सो-आचाराङ्ग आदि शास्त्र.

(१४) अंगबाहिर श्रुतसो-दशवैकालिकादि शास्त्र.

मतिज्ञान से श्रुतिज्ञान भिन्न होने के कारणः—(१) मतिज्ञान श्रुतिज्ञान का कारण है. और भाव श्रुतज्ञान कार्य है. (२) मतिज्ञान निरक्षार है श्रुतिज्ञा साक्षर है.(३) माति ज्ञान—अभाषक मुक्का है. श्रुतिज्ञान भाषक है. (४)और "श्रुति माति पूर्वक" इसतत्वार्थ सूत्रानुसार-मतिज्ञान हुवे बादही श्रुतिज्ञान होताहै. इसलिये श्वामि, विषय, प्रमाण परोक्षता, और सधर्म के वास्ते पाहिले मतिज्ञान कह कर फिर श्रुतज्ञान कहाहै.

माति श्रुतिज्ञान का सम्बन्धः—(१) माति और श्रुति इन दोनों ज्ञान का क्षीर नीर की तरह सम्बन्ध है. (२) माति श्रुतिज्ञान विना कोइ भी जीव नहीं है. सम्यग दृष्टि के ज्ञान को ज्ञान कहते है, और मिथ्या दृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं. उत्कृष्ट माति श्रुति ज्ञानी सर्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जानने से श्रुतकेवली कहातेहैं. ऐसे जो श्रुतज्ञाने है उस ढके प्रकाशने नहीं देसो श्रुतज्ञाना वरणीय.

(३) अवधि ज्ञान-मर्याद युक्त रुपी पदार्थ जाने इसके ८ भेदः—

(१) भेदः—अवधि ज्ञान दो तरह से होवे, (१) नरक स्वर्ग में और तीर्थ करों को स्वभावसे जन्म से ही होता हैं, (२) अन्य मनुष्य या तिर्यंचके क्षयोपशम करणी. करने से होता है,

(२) 'विषय'—नरकके जीवो जघन्य आधाकोश उत्कृष्ट ४ कोश अवधि ज्ञान से देखे. देवताओं संख्यात वर्षायुवाले २५ योजन, पल्योपम के आयुष्य वाले-संख्यात द्वीप समुद्र, और सागरोपम आयुष्यवाले-असंख्यात द्वीप समुद्र देखे-तिर्यंच जघन्य अंगुलके असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र देखे, मनुष्य जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोक और लोक जैसे अलोक में असंख्यात खण्ड देखे *

* अलोक में अवधी ज्ञान से देखने जैसा पदार्थ तो हेही नही फक्त सत्ता बताइ है.

(३) 'संठाण'—नरक-त्रिपाई के, भवनपति-पाला के, व्यन्तर-पडह के, जोतिषी-झालरके, देवलोकके देव—मृदंग के, ग्रीवेकके देव-फूलचंगेरीके, अनुत्तर विमान के देव-कंचूकीके, और मनुष्य तिर्यंच जालीके आकार से नानाप्रकारसे देखते हैं.

(४) 'बाह्यभ्यन्तर'—नरक देव के अभ्यन्तर अवधी ज्ञान, तिर्यंच के बाह्य अवधि ज्ञान, मनुष्यके-बाह्य अभयन्तर दोनों तरह का अवधि ज्ञान.

(५) 'अणुगामी-अणाणुगामी'—जो आँखों की तरह जहां जावे वहां साथ रहे, और चारों तरफ देखे सो अणुगामी अवधि ज्ञान. यह चारों ही गति के जीवों को होता है. और जो स्थापित-दीवेके जैसा उत्पन्न होवे उसी स्थान से या हरेक एक दो दिशीमें त्रिक्रम से देखे सो अगुणाणुगामी अवधिज्ञान, यह मनुष्य तिर्यंच दोनों गति में होता है.

(६) 'देशसे सर्वसे'—जो मर्याद सहित देखे सो देशसे. और सर्वलोक तथा कुछ अलोक देखे सो सवसे. नरक देव तिर्यंच के देशसे अवधिज्ञान. मनुष्य के देशसे सर्व से दोनों तरहका अवधिज्ञान.

(७) हायमान वृद्धमान अवस्थितः—परिणामोंकी संक्लेशता कर घटता जाय सो 'हायमान,' विशुद्धता कर वढता जाय सो वृद्धमान, मध्यस्ताकर उपजे उतनाही वना रहे सो 'अवस्थित,' नरक देव के अवस्थित अवधीज्ञान, और मनुष्य तिर्यंचके दोनों तरहका.

(८) 'पडवाइ अपडवाइ'—जो उपजकर चलाजावे सो पडवाइ, औरजन्मान्ततक या आगेके भवों तक वना रहे सो अपडवाइ, नरक देव के अपडवाइ, मनुष्य तिर्यंच के पडवाइ अपडवाइ दोनों तरहका.

अवधि ज्ञानी—(१) द्रव्य से जघन्य अनन्त में भाग रूपी द्रव्यको जाने-देखे, उत्कृष्ट-सर्व रूप द्रव्य जाने. एकेक प्रमाणुओं चडते अनन्त द्रव्यों हैं, यों द्रव्यविधि के अनन्त भेद होते हैं. (२) क्षेत्र से जघन्य अंगुलके असंख्यातवे भाग क्षेत्र से लगा कर प्रदेशाधिक होते उत्कृष्ट सपूर्ण लोक और लोक जैसे अलोक में असंख्यात खंड वे देखे-यों क्षेत्रसे असंख्यात भेद होते हैं. (३) कालसे-जघन्य आंवलीका के, असंख्यातवे भाग से समयाधिक होकर उत्कृष्ट अतीत अनागत असंख्यात काल चक्रतक जाने यों, कालसे भी असंख्यात भेद होते हैं. और (४) भाव से-जघन्य अनन्त भाव उत्कृष्ट अनंत भावोंको जानें, यों भाव से अनंत भेद ऐसे अवधि ज्ञान का आवरण—

ढक्कन करे सो अवधि ज्ञानावरणी.

४ मनः पर्यव ज्ञानावरणीय के दो भेद-१ ऋजुमति और विपूलमति (१) ऋजुमति सो-सामान्य पणे, स्थूल पणे इसने घटलाने का चिन्तवन किया ऐसा मनोगत भाव जाने, (२) विपुलमति-विस्तीर्ण पने बहुत पर्याय सहित जाने, जैसे इसने घटलाने का तो चित वन किया है, परंतु-अमुक धातुका अमुक-वर्णका आकारका परिमाणका वगैरा सब विस्तार से जाने.

मनः पर्यव ज्ञानी–(१) द्रव्यसे-ऋजुमति मनो वर्गणा के अनंत द्रव्य को जाने. उस से विपुलमति बहुत प्रदेश के अति सूक्ष्म मनो द्रव्य को जाने. (२) क्षेत्र से-तिरछा अढाइ द्विपतक, ऊंचा जोतिषीके उपर के तले तक, नीचे ऊंडी विजय- रत्न प्रभा पृथ्वी के खुलक प्रतर तक, यों १८०० योजन में रहे सन्नि पचेन्द्रिय के मनोगत भाव को जाणे, विपुलमति-इस से अढाइ अंगुल क्षेत्र अधिक और विशुद्ध पणे जाणे (३) कालसे-ऋजुमति वाला पल्योपम के असंख्यातवे भाग अतीत अनागत में चिन्तवन किये व करेगा उसे जाने. विपुलमति वाला कुछ अधिक जाने. और (४) भावसे ऋजुमति चिन्तवन किये हुवे असंख्यात पर्याय को जाने, विपुलमति कुछ विशेष जाने. ऐसे मनः पर्यव ज्ञान का जो आवरण करे सो मन पर्यव ज्ञानावरणी.

५ केवल ज्ञान–इसका एकही भेद है. केवल ज्ञानी–(१) द्रव्य से रूपी अरूपी सर्व द्रव्य को जाने, (२) क्षेत्र से-लोकालोक का सब क्षेत्र जाने. (३) कालसे-सर्वाद्धा विषय जाने. और (४) भाव से-सब गुण पर्याय विषय है. एक रूप-शुद्ध-निरुपाधी-अप्रतिपाति-शुद्धात्म सम्पूर्ण गुण-सर्व विशेष प्रकाश रूप सो केवल ज्ञान. इसका आवरण-ढक्कन करे सो केवल ज्ञानावर्णीय.

यों पांचों ज्ञान को आवरण करने वाली ज्ञानावर्णीय कर्म की पांच प्रकृत्ति.

२ दर्शनावरणयि कर्म.

अव्वल ज्ञान हुवे से तुर्त ही दर्शन होता है, अर्थात्–ज्ञानको साकर उपयोग कहा है सो पदार्थों का आकर जानने वाला विशेष रूप सो ज्ञान, और जो सामान्य निराकारोपयोग रूप वस्तुका अववोध जाति गुण क्रियादि विशेषण रहित धर्मीमात्र विषय करे, सो निर्विकल्प रूप अवबोध उसे दर्शन कहते हैं. जैसे आँखपर पट्टा बान्धने

से किसीभी वस्तुको देख सकता नहीं है और उस पट्टे में छिद्र होने से कुछ प्रति भाष होता है, और सर्वथा पट्टा दूर होनेसे पुर्ण प्रकाश होता है, त्यों दर्शनके भी चार प्रकार होते हैं.-(१) आँखों से पटादि प्रदार्थ का सामान्य रूप देखा जावे सो चक्षु दर्शन, उसे नहीं देखने देवेसो चक्षु दर्शनावरणीय. (२) आँखोविना चारों इन्द्रियों से तथा मन से जो शब्दादि अर्थ का सामान्य बोध होता है. तथा परभव से आते हुवे रस्ते में द्रव्येन्द्रिय की सहायता विना जो बोध होवेसो अचक्षु दर्शन. इसका जो आवरण-ढक्कन करे सो अचक्षु दर्शनावरणीय, (३) द्रव्यादि की मर्याद सहित जो रूपी पदर्थों हैं, उनको देखे सो अवधि दर्शन. इसका आवरण करे सो अवधि दर्शनावरणीय, (४) सर्व द्रव्योंका सामान्यंश का बोध होवेसो केवल दर्शन-इसका-निरूंधन-आवरण करे सो केवल दर्शनावरणिय.+

और निद्रासे सर्व दर्शनोंका घात होनेके सबबसे निद्राको भी दर्शनावरणीयका उदय कहा जाता है, और कर्मों की मन्दता कर शब्दादि से जाग्रत होता है. प्रबलता कर मुर्छित होता है इस कारण से निद्राके पांच भेद कहे हैं. (१) जो मद खेद आदि दूर करने सोवना. सोवतेही तुर्त निद्राका आना, शब्द मात्र से तुर्त जाग जाना, उसे 'निद्रा' कहते हैं. (२) जो लोट पलोट आदि अनेक दुःख से आवे, बुलन्द आवाज शरीर घुणघुणादि अनेक दुःख से जागावे तो भी मुशकिल से आँख उघडे, सो 'निद्रा निद्रा' (३) उभे २ बैठे २ निद्रासे झोके, खावे कुत्ते की तरह निद्रा में अंगका वचन का चलन होवे सो 'प्रचला;—(४) अत्यन्त चिन्तासे नशे से निद्रा के वश बिलकूल बे सावधानी रहे, अंगपछाडे या घोडे की तरह रस्ते चलता उंघे × सो प्रचला प्रचला, ५ जो—(१) निद्राके अव्वल चिन्तवन किया कार्य निद्रामें करे सो 'थीनद्री' निद्रा. (२) स्त्यान=एकस्थान+ गृद्ध=लुब्ध होना, अर्थात्— आत्माकी ऋद्धिको एक स्थान रोक अचेत बनादेना सो

+ मनके विषय चिन्तवन किया द्रव्य विशेष रूप होता है इसलिये मनः पर्यव ज्ञान का दर्शन नही कहहे. और श्रुतिज्ञान मातिज्ञान पूर्वक होता है इसलिये मातिज्ञानके चक्षु और अचक्षु दो दर्शन कहे हैं.

× कहते हैंकि—घोडा दो स्थान जागता है एकतो दाणा खाते कंकर दात नीचे आवे तब और संग्राम होवे तब.

'स्त्यान गृद्ध' निद्रा. इस निद्रा में अर्थ चक्रवर्ति का बल प्राप्त होता है, * जो इस निद्रा में मरेतो नरक गति ही होती है.

यह ४ दर्शन और ५ निद्रा मिल दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृति हुइ.

३ वेदनीय कर्म.

उपरोक्त ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के तीव्र आभरण के उदयकर अज्ञानताके योगसे तीव्र विपाक भोगवते हुवे(१)जो नरकादि गतिमें दुःख की प्राप्ति होवे-वेदे-भोगवे, सो असाता वेदनीय कर्म, और (२) तीव्र क्षयोपशम के योग्य से सूक्ष्म अर्थ जानते जो देवादि गति में साता सुख वेदनेमें आवे सो सातावेदनीय. जैसे मधू (सहेत) लिप्त खड्ग धारा को जिव्हां कर चाट ने से प्रथम तो मीठा रसका सवाद आता है, और फिर जिव्हां कटने से दुःख होता है, ऐसे ही साता वेदनीय के क्षयसे असाता का उदय होता है और असाताका क्षय से साता का उदय अनुक्रम से बना रहता है.

४ मोहनीय कर्म.

जैसे मादिरा पान करने से मनुष्य वावला हो जाता है, तैसे मोहनीय कर्म के उदय कर जीव अपना हित अहित कुछ समझ सकता नहीं है; कदाचित समझ भी जायतो कर सकता नहीं है. इस के दो भेदः—(१) जैसे बुखार के जोर से पथ्य आहार पर रुचि नहीं होती है, तैसे 'दर्शन मोहनीय' के उदय कर शुद्ध-देव-गुरू-धर्म पर रुचि नहीं होती है, और कु-देव-गुरू-धर्म पर रुचि जगती है. (२) जैसे बंधी खाने में पडा हुवा मनुष्य इच्छित भोग भोगवने समर्थ नहीं होता है, तैसेही "चारित्रमोहनीय" के उदयकर जीवों-धर्म तप संयम का आचरण कर सकते नहीं है.

प्रथम कही दर्शन मोहनीय जिसके तीन भेदः—(१) जैसे नशा का पदार्थ भोगवने से मूर्च्छित हुवा जीव माति की विकलता होनेसे पदार्थों को विपरीत देखता है, तैसे-मिथ्यात्व मोहनीय" के उदय चौठाणीया तीठाणीया दोठाणीया रस सहित अनुपहत सर्व घातिक रस तत्व सद्दहणा में विपर्यास का करने वाला होता है. (२) जै-

* कमबल वाला होवे तो भी दुगुना तीगुना बल आजाता है.

से उस मादक पदार्थका आधा नशा कमी होने से विकलता कम होती है जिससे सुकार्य करता २ कुकार्य भी करने लग जाता है. तैसे "मिश्र मोहनीय" के उदय कर दो ठाणीया रस रहने से कुछ सम्यक्त्व के कार्य करता २ मिथ्यात्व का भी, कार्य करने लगजाता है, और उन दोनोंको एकसा अच्छा श्रद्धान करता है. (३) जैसे साफ नशा उत्तर गये बाद उसकी खुमारी यत्किंचित रहती है जिससे जरा विचार उचार आचार में तफावत आजाती है, तैसे ही "सम्यक्त्व मोहनीय" वालेने मिथ्यात्व के दलको यथा प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण कर मन के परिणाम उज्वल कर चौठाणीया त्रिठाणीया और दो ठाणीयां रस को निवार कर फक्त एक ठाणीया रस बाकी रखा है वो जीव, जीवादि की परिक्षामें मुरझाय तो नहीं, परन्तू आत्म स्वभाव रूप उपशम क्षायिक सम्यक्त्वकी उन के प्राप्ति होवे नहीं. सूक्ष्म पदार्थो में विशेषादेश शंकित हो सम्यक्त्व में मेल लगालेता है.

(२) चारित्र मोहनीयकी २ प्रकृत्तिः—(१) कषाय, और (२) नो कषाय, इसमें कषाय की १६ प्रकृत्ति और नोकषाय की ९ प्रकृत्ति, दोनों मिल चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृत्ति होती है, सो कहते हैंः—

कष=रस+आय=आवे. जिससे संसार का कष आकर आत्म प्रदेशोंपर जमें और जिससे संसार परि भ्रमण का कार्य निपजे सो कषायचार प्रकार की होतीहैः—१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ. इन चारों को अनन्त वन्धि, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय, और सज्वलन इन चारों से चौगुने करने से १६ भेद होते हैं, सो आगे दृष्टान्त युक्त कहते हैं.

(१) अनन्तान वन्धि कषाय सो—अनन्तान=अनन्त संसारकी अनुवन्धि वृद्धि करे, इस कषायवाला कदाग्रह रूप कुयुक्ति से वुद्धिके शुन्य पणे कर-एकान्तवादिकी रूचि टले नहीं. अन्यमतपर रागयुक्त, सन्मतपर द्वेषी, ऐसाजीवं बाह्य वृत्ति कर कदापि कषायोदय मन्दभी देखाय तो भी युक्ति हीन पक्षपाति को नियमा से अन-

+ अनन्तान वन्धि चौक और तीनों दर्शन मोहनीय इन से श्रद्धान में फरक पडता है, इसलिये इन सातों प्रकृति को दर्शन मोहनीयमें गृहणकी जाती है. और. यहां जो २५ प्रकृत्ति को चारित्र मोहनियकी कही है सो फक्त सम्मास अपेक्षाकर जानना. निश्चय नयसे तो अनन्तान वन्धि चौक विना २१ ही प्रकृति चारित्र मोहनीयकी है.

न्तान बन्धि काही उदय जाननां. इसके चार भेदः-१ अनन्तान बन्धि क्रोधसो पत्थरकी तराड जैसा फटेवाद किसीभी उपवासे मिलेनहीं, तैसेही इस कषाय वालेका मन फटा हुवा पीछा नहीं मिले,(२)अनंतानबंधी मानसो पत्थरके स्थंभ जैसा किसीभी उपवासे नमे नहीं, तैसेही अभिमानी नमे नहीं-'हट्ट छोडे नहीं' ३'अनन्तान बन्धि माया'सो वांशकी गांठ जैसी गुप्त-गांठमें गांठ किसी तरहसे सीधी होवै नहीं, तैसे-दगल बाजी किसीभी उपावसे छोडे नहीं, गुढ मायावी होवे.(४)और अनन्तान बान्धि लोभ सो-किरमजी मजीठके रंग जैसा. जलजावे तो भी रङ्ग नहीं जावे, तैसे ही महालोभी. चमडी जावो परन्तु दमडी मत जावो. ऐसा महा तृष्णावाला होवे. इन चारों कषायकी स्थिति जाव जीव की, × जो इन कषायों में मरेतो नरक में जावे, और इन कषायोंका उदय जहां तक रहे वहांतक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है.

(२) अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय सो-अ=नहीं+प्रत्याख्यान-पच्चखाण, इस कषाय वाला-पुद्गलोंको अनित्य असार जानता हुवा भी कर्मोदय कर उनपर से मम-त्व घटा सकता नहीं हैं, छोड सकता नहीं है. कदापि व्यवहार साध ने करभीले और अन्तः करण में यह कषाय बनी होतो उनका फल सकाम निर्जरा रूप नहोने दे पुण्य वृद्धि रूप होसके, इसके ४ भेदः—(१) अप्रत्याख्यानी क्रोध सो सूके तलावके जमीन की तराड जैसा पीछा पानी बर्षे तब मिले. तैसेही फटा हुवा मान बहुत पर्यत्न करने से मिले. (२) अप्रत्याख्यानी मान सो काष्ट के स्थंभ जैसा बहूतही पर्यन्त कर नेसे कुछ नमें. तैसे अन्य का जबर दाव लगने से अभीमान छोड सन्मार्ग अङ्गीकार करे. (३) अप्रत्याख्यानी माया सो मेंढके शृंग (सींग) जैसी बाँका पना बहुत पर्यत्नसे मिटे. त्यों वो बहुत उपाव किये दगलबाजी प्रगटकरे.(४)'अप्रत्याख्यानी लोभ'सो गाडेके पइडे का खंजन (पइयोंके मध्यमें लगा तेलका कीट) का रंग जैसा,सो क्षारादिक जबर पर्यास से धोने से निकले, तैसेही जबरी से या विशेष बोध से द्रव्य का कुछ सदुव्यय कर सके. इन चारों कषाय की स्थिति १२ मांस की, इस कषाय में मरेतो

+ यह जो कषायों की बर्षादि की स्थिति कही है सो फक्त अल्पज्ञी को समझाने के लिये ही कही है क्योंकि बाहूबलीजी १२ महीने तक स-मानी रहे तोभी चारित्र का घात न हूआ, और प्रसन्न चन्द्रराज ऋषि अन्तर मुहुर्त मात्र में तीव्र अनन्तान बान्धि क्रोधो दय से नरक के दालिये संच लिये. इसलिये निश्चय नय से तो परिणामों की धारा परही बन्ध का विशेषत्व है.

तिर्यंच गति में जावे. इसका उदय रहे वहांतक देश व्रत भी धारण नहीं कर सके.

(३) 'प्रत्याख्यानावरणीय कषाय'-प्रत्याख्यान=पच्चखाणके+आवरणीय=अन्तर करनेवाली, इस कषाय के उदय में सम्पूर्ण ममत्व को त्याग सर्व व्रति न होने दे. और व्रति (साधु) हुवे वाद जो कभी इस कषाय का उदय होवे तो वो उदय रहे वहां तक संयम करणी के यथा तथ्य फल निर्ज्जरा रूप न होते पुण्य वृद्धि हो जावे. इसके ४ भेदः—(१) प्रत्याख्यानी क्रोध सो-धूल में खेंची हुइ लकीर के जैसा हवा चलने से मिटजावे, त्यों क्रोध कर थोडे सद्बोध से क्षमा कर लेवे. (२) प्रत्याख्यानी मानसो वेंतके स्थंभ समान थोडा जोर देनेसे नम जावे, त्यों वो थोडा समझाने से मान तज विनीत वन जावे. (३) प्रत्याख्यानी माया सो चलते हुवे वेलका मात्र (पेशाव) समान हवालगने से सूक जावे, त्यों थोडे उपाव से माया-कपट त्याग देवे. (४) प्रत्याख्यानी लोभ सो कीचड के रङ्ग के जैसा सूक ने से झड जाय, त्यों थोडे बोधसे लोभ त्याग सन्मार्ग में द्रव्य व्यय करे. इन चारोंकी स्थिति-४ महीने की, इस कषाय में मरेतो मनुष्य होवे, और इस कषाय का उदय वाला साधू व्रति धारण नहीं करसके.

४संज्वलन कषाय—सं=थोड+ज्वलन=प्रज्वले. प्रकट होकर तुर्त विरलयहो जावे, इसके उदय में संयमी भी शुद्ध चारित्र का आराधन नहीं करसकते हैं. इसके ४ भेदः-(१) संज्वलन क्रोध सो पाणी की लकीर के समान तुर्त मिल जावे. त्यों क्रोध के कडवे फल जान तुर्त शान्त पडजावे, (२) संज्वलन मान सो तृण के स्थंभ जैसा हवा लग ने से तुर्त झुकजाय, त्यों उसकी आत्मा सकोमल होवे, (३) 'संज्वलनमाया सो वांशकी छोंती के जैसी तुर्त सीधी होजाय, त्यों तुर्त निष्कपटी-शरल वन जावे. और (४) संज्वलन लोभ सो हलद पतंग के रङ्ग समान धूप लगे उड जावे, त्यों निर्लोभ अवस्था में सदा रहे. इन में क्रोधकी स्थिति दो महीनेकी, मानकी एक महीनेकी, माया की १५ दिनकी, और लोभकी अन्तर मुहूर्त की. इस कषाय के उदय में मरेतो देवगति पावे. और इसका उदय रहे वहांतक यथाख्यात चारित्रकी, व केवल ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवे.

जिस कषाय का जिस स्थान में उदय होने की मना है वहां उसका उदय होनेसे अनाचार लगता है, होती कषाय के उदय मे अतिचार लगता है. जैसे-संयमी के संज्वलनका उदय होतो अतिचारलगे और१.२कषायका उदय होवेतो अनाचार जानना

[नो कषकाय उसे कहते हैंकि जो कपायको उत्पन्न करनेका मूल कारण होवे, जैसे कहवत् हैकि--" झगडेका मूल हाँसी, और रोगका मूल खाँसी. " ऐसेही नवों का जानना उन ९ नवों का नाम कहते हैं.—] (१) 'हांसी सो' भांड चेष्टादि सकारण से तथा विना कारण से हंसना आवेसो. (२) 'रतिसो'- इन्द्रियों को अनू कूल सामग्री मिलने से या विना कारण मन में सुख वेदेसो. (३)'अरति' सो-इन्द्रियोंके प्रतिकूल संयोग मिलने के कारण से तथा विना कारण मन में उद्वेग होवे सो. (४) 'भय'—दुष्ट मनुष्यादि देखने से भय होवे-सो एह लोगभय, सिंह सर्पादि देखनेसे भय होवै सो परलोग भय, चोरादि वस्तू का हरण करनेसे भय होवे सो आदान भय. विद्युतादि से अचिन्त्य भय उपजे सो अकस्मात भय. उदर पूरण का भय सो आजीवका भय, मरण भय, पूजाश्लाघा भय ,यह ७ प्रकार से डरकी प्राप्ति सो. (५) 'शोक'-इष्ट वियोगादि कारण विना कारण जिस कर्मोदय कर शोककी प्राप्ति होवे. (६) 'दुगंच्छा'-सो दुर्गन्ध कुरूप आदि वस्तू देखे या विना देखे मत्सर-'ग्लानी आवे सो (इन ६ ही प्रकृत्तियों को 'हांस्य षटक' कहते हैं) (७) 'स्त्रीवेद'-जो पुरुष के दर्श स्पर्श की इच्छा होवे सो. इसकी विषय बकरीयों की लेंडी की अग्निके जैसी छेडे त्यों ज्यादा होवे. (८)'पुरुषवेद'-जो स्त्रीके दर्श स्पर्श की अभिलाषा करेसो-इसकी विषय सूके घांसकी अग्निके जैसी प्रज्वलित हो तुर्त शान्त पड जावे. और (९) 'नपुंसक वेद'-स्त्री पुरुष दोनोंका दर्श स्पर्शकी इच्छा होवेसो-इसकी विषय दवाग्नि के जैसी सदा प्रज्वालित रहे.(यह ३ वेद मिल ९ नो कषाय हुवे) उपरोक्त दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृत्ति और चारित्र मोहनयि २५ प्रकृत्तियों सब मिल मोहनीय कर्म की २८ प्रकृत्ति हुइ.

आयुष्य कर्म.

जैसे अपराधी पुरुष को राज पुरुष काष्ट के खोडे में कब्ज कर देते हैं, उस की जितने कालकी मुदत होती है उस के पहिले वो उस खोडे में से निकल सकता नहीं है. तैसे ही कर्म के अपराधी आत्म ने नरकादि गाति रूप खोडमें जितनी मुदत (आयुष्य) वन्ध कर प्रवेश किया है, उस मुदत पाहिले निकल नहीं सकताहै. इस कर्म की ४ प्रकृत्तियों;—१. महा आरंभ, महा परिग्रह, पचेन्द्रिय का वध, और मदिरा मांस का आहार करने से जीवों नरक गाति का आयुष्य वान्ध कर नरक में जाकर रहे सो 'नरकायु,' २ माया, मत्सर, झूठ बोलना, खोटे माप तोल करने से जीवों ति-

र्यंच गतिका आयुष्य वंधकर तिर्यंच गतिमें जाकर रहैसो-'तिर्यंचायु.' ३ भंद्रिक, विनित, शरल दयालुता कर मनुष्यायु वन्धकर मनुष्य गतिमें रहैसो मनुष्यायु. ४सराग संयम, संयमा संयम, अकाम निर्ज्जरा, वाल तप कर देवायु बान्ध देवगतिमें जाकर सुख भोगवे सो 'देवायु.' (यह आयु कर्म की चार मकृत्ति जानना.)

६ नाम कर्म.

जैसे चित्रकार विचित्र रङ्ग और विचित्र उपकारणों कर सपद अपद आदि, विचित्र मकर के चित्र चित्रता है, तैसे नाम कर्मोदय कर जीवों के एकेन्द्रियादि विचित्र जातिमें सूक्ष्म स्थूल स्थावर जंगमादि विचित्र रूप रङ्ग आकार स्वभा विभाव मय शरीरों की प्राप्ति होती है. इसकी मुख्यतो दो प्रकृत्ति हैः-१शुभ नाम. और (२) अशुभ नाम. और उत्तर-प्रकृत्ति ९३ होती है सो अलग २ कहते हैं.

पिण्ड समुदाय-दो चार आदि अनेक प्रकृत्तियों मिल जो एकही नाम से वोलाइ जावे उन्हे पिण्ड प्रकृत्ति कहते हैं, ऐपिण्ड प्रकृत्ति के मूल तो १४ भेद हैं, औउत्तर ६५ भेद होते हैंः—

(१) गति नाम कर्म. गति-जावे, जो एक पर्याय में से दूसरी पर्यायमें जावे उसे गति नाम कर्म कहते हैं, जिसके४भेदः-(१) नरक-न-नही ऽर्म-सूर्क-जहां प्रकाश नहीं, फक्त अन्धाराही होवे सो नर्क, और उसमें रहे सो नेरीये-न=नही+रइ=रति=सुख. जिनको सुख नहीं सो नेरीया. ऐसा स्थान और नाम पावे सो "नरगाति नाम कर्म." (२) तिर्यंच=जो तिरछे विशेष वढे, या तिरछे लोक में विशेष पावे. ऐसा जन्म पावे सो "तिर्यंच गति नाम कर्म" (३) मनुष्य=जो मनीच्छित कार्य को साध सके एसी गति में अवतरे सो "मनुष्य गति नाम कर्म" (४) देव=दिव्य-प्रकाशिक शरीर के धारक. ऐसी गति में अवतरे सो "देवगति नाम कर्म."

(२) "जाति नाम कर्म"-इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोप शमकर जो, इन्द्रियों में जान ने की शक्ति प्रगट होवे सो भावे न्द्रिय. और इन्द्रिय पर्याप्ति नाम कर्मोदय कर जो प्रत्यक्ष में स्पर्शादि इन्द्रियों देखने में आवे सो द्रव्ये इन्द्रिय. इनदोनों करजीव पहचान ने में आवे कि यह एके न्द्रियादि. जातिका है सो जातिका नाम कर्म. इस के ५ भेदः-(१) जो फक्त एक स्पर्शेन्द्रिय के धारक पृथव्यादि पांच स्थावरों है सो-"एकेन्द्रिय नाम" (२) जो स्पर्श्य और रस इन दोनों इन्द्रियों के धारक किटकादि जी-

वों है सो "वेन्द्रिय नाम." (३) जो स्पर्श रस और घ्राणेन्द्रिय के धारक षटमलादि जीवों है सो "तेन्द्रि नाम." (४) जो स्पर्श रसघ्राण और चक्षुइन्द्रिय के धारक मक्षिकादि जीवों है सो "चौरिन्द्रिय नाम." और (५) जो स्पर्श. रस घ्राण चक्षु और श्रोतें न्द्रिय के धारक मनुष्य पशु पक्षी आदि जीवों हैं सो "पचेन्द्रिय नाम्र कर्म."

(३) "शरीर नाम कर्म"–जिसमें जीव कालकी मर्याद (आयुष्य) प्रमाणे स्थिर होकर रहै उसे शरीर कहते हैं. इस के ५ भेदः--(१) जो औदार=प्रधान. अर्थात्-जो सब शरीरों में श्रेष्ठ, मोक्ष मार्ग का साधक, तीर्थंकर गणधरादि महान् पदका धारक, हाडि मांसादि सप्त धातु का पूतला, मनुष्य तिर्यंच के होवे सो औदारिक शरीर. (२)जो अच्छा बुरा छोटा वडा सुरूप कुरुप मनुष्य पशु आदि चाहे जैसा रुप अपने शरीर का बना लेवे. ऐसा शुभ पुद्गलों का देवों का शरीर और अशुभ पुद्गलों का नेरीयों का शरीर सो-"वौक्रिय शरीर." (यह शरीर मनुष्य तिर्यंचकेभी लब्धि से होता है) (३) चउदह पूर्वके पाठी लब्धिवन्त महामुनि संशय की निवृत्ति के लिये या तीर्थंकरों की ऋद्धि देखने केलिये आकश या स्फटिकरत्न जैसा स्वच्छ अतिसूक्ष्म आहारक वर्गणा का स्कन्ध एक हाथ भर का पूतला बनावे सो आहारक शरीर (४) गृहण किये आहाराको या कर्म वर्गणा के पुद्गलों को पचाने वाला व तेजो लेश्या प्रगट करने के हेतु भूत अनादि निधान सो-"तेजस शरीर" और (५) गृहण किये आहारको या कर्म वर्गणा के पुद्गलों को आत्म प्रदेशकी साथ क्षीर नीर की तरह अन्योन्य अनुगत होवे कर्मो का वीकार सो "कारमाण शरीर."

(४)अंगो पाङ्ग नामकर्म-दो बाहु (भुजा.) दोऊरु (जंघा) पीठ, मस्तक, उदिर (पेट) और हृदय, इन ८ को अङ्ग कहते हैं. और हाथ को लगी हुइ अंगुलीयों, तथा जंघा को लगे हुवे घुटने (गोडे) इनको उपांग कहना. और नख हस्थरेखा तथा मस्तकादि के बाल, इनको अङ्गोपाङ्ग कहना;-इसके तीन भेद;-(१) जो औदारिक शरीर से सम्बन्ध धर रहैं सो औदारिक अङ्गोपाङ्ग (२) जो वैक्रिय शरीर से लगे हुवे सो वैक्रिय अङ्गोपाङ्ग. और ३ जो आहारक शरीर पणे परिणमे सो आहारक अङ्गो पाङ्ग.

☞ तेजस और कारमण शरीर जीवके क्षीर नीर की तरह से मिलरहा है. इस लिये न उनका कोइ संस्थान है, और न उनके अङ्गो पाङ्ग है.

(५) "वन्धन नाम कर्म"–जैसे राल राख गूंद आदि पदार्थोसे किसी भी प्रकारके दो अलग २ पदार्थों का जोडने से उनका सम्बन्ध कितनेक काल प्रयन्त रहता है,

तैसेही जिन कर्मोदय कर शरीरमें परिणमें हुवे पुद्गलोंका कितनेकका पाहिले वन्ध किया, और कितनेक पुद्गलों ग्रहण कर नवीन वन्धन करता है, उन पुद्गलोंका जो आपस्र में वन्ध पड कितनेक काल (शरीर की स्थिनी) तक टिक रहे और भी नवे २ पुद्गलोंको ग्रहणकर शरीर की वृद्धि होती है सो वन्धन नाम कर्म है. इस वन्धके दो प्रकार भगवति सूत्र में किये हैं. (१) शरीरकी उत्पति के समय जितने पुद्गल पूर्वोपार्जन किये थे उतने सव उस समय होते हैं. इसलिये उस वक्त के वन्ध को सव वन्ध कहना. और (२) फिर समय २ उस वन्ध पुद्गलोंमेंसे हीनता होती रहे, इसलिये शरीर के अन्ततक देश वन्ध किया जाता है. इस वन्ध के-५ भेदः— * (१) औदारिक पुद्गल गृहण कर के जो शरीर की वृद्धि होवे सो "औदारिक वन्धन" (२) वैक्रिय पुद्गल ग्रहण कर जो वैक्रिय शरीर वन्धे सो, 'वैक्रिय वधन.' (३) आहारक पुद्गल ग्रहण कर जो आहारक शरीर वन्धे सो "आहारक वन्धन." (४) तेजसके पुद्गलों ग्र-

*प्रकारन्तर से इन पाचों वन्धन के-१५ भेद होते हैं. (१) पाहिले गृहण किये ओदारिकके पुद्गलों उनके साथ नवीन औदारिकके पुद्गलोंका वन्ध पडेसो औदारिक औदारि वन्धन. (२)औदारिकके साथ तेजसका वन्ध पडेसो औदारिक तेजस वन्धन.(३)ओदारिकके साथ कार्मण का वन्ध पडे सो "औदारिक कार्मण वन्धन" (४) औदारिक साथ तेजस और कार्मण दोनों का वन्धन पडे सो "औदारिक तेजस कार्माण वन्धन."(५) वैक्रिय के साथ वैक्रिय के पुद्गल वन्धे सो "वैक्रिय वैक्रिय वन्धन" (६) वैक्रियके साथ तेजस का वन्धन पडे सो "वैक्रिय तेजस वन्धन." (७)वैक्रियके के साथ कार्मणका वन्ध पडेसो "वैक्रिय कार्माण वन्धन" (८) वैक्रिय के साथ तेजस और कार्मण दोनों का वन्ध पडे सो "वैक्रिय तेजस कार्मण वन्धन." (९) आहारक के साथ आहारक का वन्धन पडेसो "आहारक आंहारक वन्धन." (१०) आहारक के साथ तेजस का वन्ध पडे सो "आहारक तेजस बन्धन ." (११) अहारक के साथ कार्मण का वन्ध पडे सो "आहारक कार्मण वन्धन." (१२) आहारक के साथ तेजस और कार्माण दोनों का वन्ध पडे सो "आहारक तेजस कार्माण वन्धन" (१३) तेजस के साथ तेजस का वन्ध पडे सो "तेजस तेजस वन्ध"न(१४) तेजस के साथ कार्माण का वन्ध पडे सो "तेजस कार्मण वन्धन" और (१५) कार्मण के साथ कार्मणका वन्ध पडे सो" कार्मण कार्मण वन्धन" यों वन्धन की ५ के स्थान १५ प्रकृत्ति ग्रहण करने से नाम कर्म की सत्र १०३ प्रकृत्ति होतीहै.

हण कर जो तेजस शरीर का बन्ध करे सो "तेजस बन्धन." और (५) कार्मणके पुद्गलों ग्रहण कर कार्मण शरीर का बन्धन करे सो "कार्मण बन्धन."

☞ इन ५ के पाहिले के तीनों शरीरका तो देश बन्ध और सर्व बन्ध दोनों होते हैं. और तेजस कार्मण के देश बन्ध तो है परन्तु सर्व बन्ध नहीं है, क्योंकि-यह दोनों अनादि सम्बन्धि हैं.

६ "संघातन नाम कर्म"—जैसे बिखरे हुवे तृणों को बुहारी से बुहार कर एकत्र करते हैं और फिर उसका भारा बान्धते हैं. तैसे ही संघातन नाम कर्म के उदय कर औदारिकादि के बिखरे हुवे जगत् में के पुद्गलों को एकत्र करता है, तब उसका शरीर रूप भरा बन्धता है-वन्धन पडता है. इस संघातन के ५ भेदः—(१) औदारिक शरीर के विखरे पुद्गलोंका जो संघात करे-मिलावे सो-"औदारिक संघातन," (२) वैक्रिय के पुद्गलों का संग्रह करे सो-वैक्रिय संघातन (३) आहारक पुद्गलों का संग्रह करे सो--"आहारक संघातन." (४) तेजस के पुद्गलों का संग्रह करे सो-"तेजस संघातन," और (५) कार्मण के पुद्गलों का संग्रह करे सो-"कार्मण संघातन"

७ "संघयण नाम कर्म"-आस्थि-हड्डीयों का सान्धना-मिलाकर जमाना-मजबूत करना उसे संघयण कहते हैं:-यह संघयण ६ प्रकार के होते हैं:-(१) दोनों तरफ के दोनों हाड मरकट बन्ध से बन्धे होवें, उसपर तीसरा हाड पट्टे की माफिक वींटा होवै, उसपर उन तीनों हाडियोंको भेदे-ऐसी वज्रमय खीला होवे जो उन हडीयोंमें ठोका हुवा होवै, जिससे सब हडीयों स्थिरी भूत होगइ होवे, ऐसा जिनका मजबूत शरीर होवेसो "वज्र ऋषभनाराच संघयण." + (२) दोनों तरफ की हडीयों मर्कट वन्ध कर मजवूत बन्धी होवे, उसपर हाड पट्टा भी विष्टित होवे. परन्तु उनके बीच खीली न होवे. सो-"ऋषभ नाराच संघयण."-(३) दोनों तरफसे हडीयों मर्कट

+ दोनों हडीयों को स्थिर करने पट्टे जैसी तीसरी हड्डी उसपर वेष्टित होवे. उसे पट्टा कहते-हैं. और दोतीन हडीयों को भेद कर जो सान्धि को दृढ करे जो चौथी हड्डी खीली रूप हो-वे उसे बज्र कहतेहैं. और दोनों हडीयोंके आंकडे मिले पीछे छूटे नही उसे नाराच कतेहैं. जैसे बन्दरी फलांग भरती हैं तब उसका बचा उसके हृदय को दृढ ग्रहण करता है, तैसे हडीयों के बंधन को मर्कट बन्ध कहते है.× संघयण हडीयोका होताहै. देवता के और नारकी के वैक्रिय शरीर में हडीयोंने होनेसे असंघयणी कहे जातहै.

वन्धन से वन्धि होवे, परन्तु हाड पट्टी और हाड खीली दोनों नहीं होवे सो "नारच संघयण."(४)एकही तरफ मर्कट वन्ध होवेसो "अर्धनाराचसंघयण."(५) फक्त हड्डीयों की सन्धि मिली हो-केल वृक्षकी तरह तुर्त नम जावे-सो-कीलिका संघयण. और(६) जिसके शरीर की हड्डीयों-एकेक हड्डीके आधार से रही होवे, जराक धक्का लगने से अलग हो जावे, सो-"छेवटा संघयण." कहा जाता है.

८ "संस्थान नाम कर्म"-जो प्रत्यक्ष में शरीका आकार देखने में आवे उसे 'संस्थान' कहते हैं, जिसके ६ प्रकार:-(१) 'समचतुरस संस्थान'-सम-वरोवर+चतु=चारों तरफ के+अस्र=खोनें. अर्थात पद्मासन लगाकर वैठे वाद-दोनों घुटने और दोनों स्कन्ध के वीच के चारों तरफ के अन्तर की डोरी वरावर आवे सो-'समुचतुरस्र संस्थान.' (२) जैसे (निग्रोध-वड) के वृक्ष का ऊपरका भागतो अच्छा देखाता-हे. और नीचेका विभाग चर्डे आदि के सवव से खराव लगता है, तैसेही जिसके शरीर का नाभी ऊपर का भाग विलक्षणों पेत पूर्ण प्रमाण युक्त होवे, और नीचें का भाग वरोवर न होवे सो "निग्रोध परिमन्डल संस्थान."(३) जैसे खुरसाणी इमलीका झाड नीचे तो शाखा प्रतिशाखादि कर अच्छा देखाता है, और ऊपर ठूठा निकलनेसे खराव देखाताहै. तैसेही जिसके शरीरका नाभी नीचेका भाग अच्छा होवे और उपरका आकार अच्छा नहोवे विद्रूप होवेसो-'सादि संस्थान'(४)जिसके हाथ पेर मुख ग्रीवादि अङ्ग सुन्दर होवे, और हृदयपर तथा पृष्टपर हड्डीका पिण्ड निकला होवेसो,-'कुब्ज संस्थान.' (५) जिसके फक्त हाथ पेर छोटे होवें, वाकीका सव शरीर वरोवर होवे-जो ठेंगणा होवे सो-"वावना संस्थान." और (६) जिसके सर्व अङ्गोपाङ्ग अशोभनीक होवे, अध प्रज्वलित मुरदे के जैसा भयंकर देखाता होवे सो "हुंड संस्थान."

९ 'वर्ण नाम कर्म'—शरीर के विषय पुद्गलों का वाह्य रूप में रङ्ग परिणाम होवे सो 'वर्ण नाम' इसके ५ भेद:-(१) कोयले या काजल जैसा शरीर का काला रङ्ग होवे सो-"कृष्ण वर्ण नाम." (२) सूवे की पंख जैसा हरे रङ्ग का शरीर होवे सो-"नील वर्ण नाम." (३) हिंगलु के जैसा लाल रंग का शरीर होवो सो "रक्त वर्ण नाम." (४) हरताल जैसा पीले रंग का शरीर होवे सो- "पित वर्ण नाम." (५) और चन्द्रकोर्ण जैसा गौर वर्ण शरीर होवे सो-"श्वेतवर्ण नाम."

१० "गन्ध नाम कर्म"-घ्राणेन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य वास मय जो शरीर के पुद्गलों होवे सो गन्ध नाम कर्म. इसके २ भेद:-(१) केशर कस्तूरी जैसी शरीरकी

सुवास आवे सो-"सुरभि गन्ध नाम", (२) लशणादि जैसी कुवास आवे सो-"दुर्भि-गन्ध नाम."

११ "रस नाम कर्म"-रसेन्द्रिय के परिक्षित-रस मय शरीरके पुद्गलों परिणमेंसो रसनाम कर्म, इसके ५भेदः-(१)लींबके जैसा कडवा रस हो सो "कटुरसनाम." (२) सुंठ के जैसा तीखा रस होसो "तिक्त रसनाम," (३) हरडेके जैसा कषायला रस होसो "कषायला रस नाम." (४) इमली जैसा खट्टा रस हो सो "आमलन रस नाम" और (५) सक्कर जैसा मीठा शरीर होवे सो-"मधुरसनाम."

१२ "सपर्श्यनाम"-स्पर्श्येन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य जो पुद्गलों शरीर भाव को प्राप्त हुवे हो सो स्पर्श्य नाम-इसके ८भेदः-(१) लोहेके जैसा भारी शरीर होवेसो "गुरु स्पर्श्य नाम." (२) अर्कतुल (आककी रुइ) जैसा हलका शरीर होवेसो- "लघु स्पर्श नाम." (३) मक्खन जैसा कोमल शरीर होवेसो-"मृदु स्पर्श नाम." (४) गौ-जिह्वा के जैसा खरदरा शरीर होवे सो-"वासट स्पर्श नाम." (५) हीम के जैसा शी-तल-ठन्डा शरीर हो सो-"शीत स्पर्श नाम." (६) अग्नि के जैसा उष्ण स्पर्श हो सो-"उष्ण स्पर्श नाम."(७)तेलके जैसा चिक्कना शरीर होवेसो "स्निग्ध स्पर्शनाम." और (८) राखके जैसा लुक्खा शरीर का स्पर्श होवे सो "रुक्ष स्पर्शनाम कर्म."

५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, और८ स्पर्श, सब मिल २० बोलों की व्याख्या यहां अलग २ शरीको ग्रहण करकी गही है सो मुख्यता में जानता हुवा एकही वर्णादि व्यवहार से धारण किया है. निश्चय नय करी गोणता रूप तो प्रत्येक एक २ शरीर में अलग २ बीसही बोल पाते हैं.÷

१३ "आणू पूर्व्वी नाम कर्म"-जैसे रस्सी से खेंचा हुवा बैल उन्मार्ग गया भी सन्मार्ग आ जाता है, तैसे-वक्र गति में जाति हुइ आत्मा को खेंचकर नियामित गतिमें

÷ इन २०·बोलों में से-१ काला और २ नीला, यह २ वर्ण. १ दुर्गंध, १ कटु और २ तिक्त यह २ रस. १ गुरु २ रुक्ष ३ खरखरा और४ शीत यह ४ स्पर्श. यह ९ प्रकृति लोको में अनिष्ट लगनेसे अशुभ गिनि जातिहै. इस लिये पाप प्रकृति कहतेहै. और-१ रक्त, २ पित, ३ और श्वेत, यह ३ वर्ण. १ सुरभिगन्ध. १ कषायला २ अम्लान और मधु यह ३ रस. और १.मृदु, २लघु, ३स्निग्ध४ उष्ण यह ४स्पर्श. यह११प्रकृति लोकमें अच्छी लगने से शुभ गिनी जातीहै, इसलिये इनको पुण्य प्रकृति कहते हैं.

खेचकर लेजाय उसे अनुपूर्व्वी कहते हैं; इसके ४ भेद:-(१) जीव को नरक गति में खेंच करले जावे सो "नरकानुपूर्व्वी"(२)तिर्यंच गतिमें खेंच करले जावे सो- "तिर्यंचानुपूर्वी"(३)मनुष्य गतिमे खेंचकर लेजावे सो मनुष्यानुपूर्व्वी.(४)और ४ देवगति खेंचकर ले जावे सो देवगतियानुपूर्व्वी.

१४ ,विहायोगति नाम कर्म."-विहायो-आकाश में या अवकाश में ÷ गति गमन करे सो विहायो गति (इस में आकाश नाम आने से इसे 'खगति' नाम से भी बोलाते हैं:-) इस के दो भेद:-(१) राजहंस, सिंह, हस्ती आदि जैसी शुभ चालसे चलेसो - शुभ विहायोगति. और (२) गर्धव ऊंठ आदि जैसी खराव चालसे चलेसो अशुभ विहायोगति. +

यह सामन्य से १४ तथा विशेपसे ६५ पिण्ड प्रकृत्ति कही.

अव प्रत्येक प्रकृत्तियों अर्थात् जिसके दो भेद नहोवे, एक अपने रूपमें ही वनी रहे.जिसके८ भेद;-(१)"पराघातनाम"सो-जिसके सन्मुख वोलते हुवे वडे सामर्थ भी शंक लावे, उस के शब्द मावसे शत्रुओं कम्पाय मान होजावे, जो वडी राज शभा में भी वोलता हुवा डरे नहीं.सोपराघात*२'उश्वाश नाम' सो-शरीर के अभ्यन्तर का वायु मुखद्वारा और नाकद्वारा सुख से आगमन होवे. ऐसा लब्धि × वन्त जीव होवेसो--उश्वास नाम. (३) 'आताम नाम'-सूर्यके विमानके जो रत्नहैं वो वादर एकेन्द्रिय पर्याप्ता पृथवीके जीवहैं. उनके शरीरका स्वभाविक स्पर्श तो शीतहै, तोभी उनका प्रकाश उष्ण पडता है.येही आताप नामकर्म.×(४)'उद्योतनाम कर्म'-उपर कहा आताप नामकर्म उसका सूर्य जैसा उष्ण प्रकाश जानना, और यह जैसा चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र ताराओंके विमानका शीलत प्रकाश, तथा देवताओं वैक्रिय रूप वनावे, लब्धि वन्त मुनि वैक्रिय रूप वनावे, तथा आ-

---

+ पहिले जो ४ गतिका वरणन् कहा सो-परभव गमन आश्रिया जानना. और यहां २प्रकार की गति कहीसो-इस भव आश्रिय जाणना. गोमट सारमेंतो आकाश में गमन कर्ताकों-ही विहायो गति कही है.

* गोमट सार के कर्म काण्ड में लिखाहै कि-तीक्षण सींग, नख दाढ, सर्प, सिंह, आदि जीवों के शरीर से दूसरे के शरीर की घात होतीहै. इसलिये उसे परा घात नाम कहना.

× शास्त्र में लब्धिको क्षयोपशमिक कही है सो प्रयायिक शब्दहे, क्यों कि-वैक्रय आहारक लब्धि उदायिक भाव में है, तथा विर्यान्तरायके क्षयोपशम से भी होती, है इसालिये उदयिक क्षयोपशमिक कहने में कुछ हरकत नही.

गीया नामक चौरिन्द्रिय जीवके उडते प्रकाश पडे. इत्यादि के शरीर का शीतल प्रकाश पडता है सो सब 'उद्योतनाम.' (५) "अगुरु लघू नाम"-जिनोका शरीर ऐसा भारीभी न होवे जो आपका शरीर आपसेही संभले नहीं, और एसा हलका भी न होकि-वायु से उड जावे, ऐसा मध्यस्त 'शरीर होवे सो-अगरु लघू नाम.' "(६) तीर्थंकर नाम कर्म"-तिर्थंकर नाम उपार्जन करने वाले प्राणी प्रदेशोदय से ज्ञान एश्वर्यता, अन्य प्राणीयों से अधिक होवे, तीर्थंकर के भव में अवतरे तब पञ्चकल्याण (चवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष) का महोत्सव चौसठ इन्द्रादि असंख्य देवों वगैरा करते हैं:-१ उनको अहार निहार करते चर्म चक्षु देख सके नहीं, २ पसीना मेल रज रोग रहित महा दिव्य प्रकाशी सुन्दर शरीर होवे. ३ सुगन्धि श्वाशोश्वास, ४ रक्त मांस गौ दुग्ध जैसा उज्वल और मधुर. यह ४ अतिशय तो जन्मसे ही होते हैं, और भोगवाली कर्म भोगे बाद सर्वारंभ परिग्रह को त्याग दिक्षा ले दुक्कर करणी से चार घनघातिक कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन पावें. साधू साध्वी श्रावक श्राविका इन चारों तीर्थकी स्थापना करे. तथा समवसरणकी रचना, तीस अतिशय वगैरा महान पुण्य प्रताप का प्रकाश होता है, महान उपकार कर सर्व कर्मोंका क्षयकर मोक्ष पधारतेहैं. सो तीर्थंक नाम(७)'निर्माण नाम'-जैसे-बढाइ(सुतार)काष्टके हाथ पांव मस्तक आदि अङ्गोपाङ्ग अलग २ बनाकर, फिर यथा योग्यस्थान उन सबको जमाकर, 'सुन्दर पुतली' बनाते हैं, वैसे जीवोंके शरीर के अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म उत्पन्न कर्ता है, और फिर इस निर्माण नाम कर्मोदयकर वो अङ्गोपाङ्ग सब निज स्थानमें २यथा योग्य रीति से जम जाते हैं. उसे निर्माण नाम कहते हैं,(८)"उघपात नाम कर्म" जैसे रोज नामक पशुके सींगोका बहुत फेलाव होने से किसी वक्त झाडी में शिर फस नेसे मरना पडता है, अर्थात् उसका शरीर उसीकी घातका कर्ता हुवा. ऐसे ही पडजीभी, चौदन्ता आदि दुःख दाता अङ्ग होवे सो "उमघात-नाम कर्म." यह ८ प्रत्येक प्रकृत्तियोंका नामार्थ कहा.

---

* प्रश्न-अग्निके भी उष्ण प्रकाश पडताहै तो क्या उसकेभी आतप नाम कर्मका उदय समझणा?

समाधान-अग्निके आताप नाम कर्म का उदय नहीहै, क्योंकि अग्नि काय के शरीर का स्वाभावि कही उष्ण प्रकाश है, सो नजीक रहने से अधिक उष्णता मालुम पडतीहै और दूर रहने से कम उष्णता मालुम पडती है, और सूर्यतो दूर रहाभी एकसा प्रकाशताहै, तथा अग्नि काय का शरीर स्वभाविकही रक्त प्रकाशी है. तैसा सूर्यका नहीं इसलियेअग्निमे आतापनाम नहीं है.

अब "त्रस दशका"–अर्थात् त्रस आदि दश प्रकृत्ति कहते हैं:—(१) "त्रस नाम"-जो दुःख से त्रास पावे, सुख से संतोष पावे यह उनके भाव प्रत्यक्ष में देखने में आवे, शीत उष्णादि दुःखप्रद स्थान को छोड सुख स्थान में जावे, इत्यादि लक्षण युक्त बेंद्रिय, तेंद्रिय, चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, में उत्पन्न होवे सो त्रस नाम. (२) 'बादर नाम'–जिन जीवों का शरीर सर्वो के देखने में प्रत्यक्ष आवे ऐसा शरीर होवे सो-बादर नाम. (३) 'पर्याप्ता नाम'–पुद्गल के उपचय से हुवा जो पुद्गल परिणमन हेतू शक्ति विशेष १ जो जीवों पुद्गलों को ग्रहण करे खल रस अलग अलग करे, सो "आहार पर्याप्ति."२जो शक्ति विशेष रस हुवा उसे सात धातु पणे परिणामावेसो 'शरीर पर्याप्ति', ३ उस धातू को द्रव्येन्द्रिय पणे परिणमाने की जो शक्ति सो 'इन्द्रिय पर्याप्ति', ४ श्वाशोश्वास वर्गणादल ग्रहण कर श्वाश पणे परिणमावे सो 'श्वाशोश्वास पर्याप्ति'. ५भाषाके द्रव्य ग्रहण कर भाषा पणे परिणमावे सो 'भाषा पर्याप्ति'. और ६ मन के द्रव्य ग्रहण कर मन पणे परिणमावे सो-"मन पर्याप्ति." इन ६ पर्याप्ति में से-एकेन्द्रिय में पहिले की चार पर्याप्ति होती है. बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरीन्द्रिय और असन्नी पचेन्द्रिय इन में मन विना पांच पर्याप्ति होवे, और सन्नी में ६ ही पर्याप्ति होवेहैं. इनमें से जिनमें जितनी पर्याप्ति होवे वो प्रथम समय सब पर्याप्ति का आरंभ एक साथही करे, फिर एक समय में आहार पर्याप्ति पूर्ण करे, फिर अन्तर मुहूर्त में शरीर पर्याप्ति पूर्ण करे, फिर औदारिक शरीर वाला तो अन्तर मुहूर्त २ अन्तर से बाकी रही पर्याप्ति पूर्ण करे. और वैक्रय तथा आहारक शरीर वाला समय २ के अन्तर बाकीकी पर्याप्ति पूर्ण करे. आगे दो पर्याप्ति सूक्ष्महै, इसलिये कालका फरक पडजाताहै, यथा दृष्टान्त-छे स्त्रीयों सूत कातना एकही समय शुरु किया. उसमें से जो स्थूल जाडा सूत कातै सो शीघ्र पूर्ण करे, और बारीक काते तो देरसे पूर्ण होवे. यों-१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, यह ३ पर्याप्ति पूर्ण किये पहिले कोइ भी जीव कदापि मरता नहीं है, इसलिये इन३ पर्याप्ति पूर्ण करे उसे 'करण पर्याप्ता' कहना. और जिसके जितनी पर्या है उतनी पुर्ण करे उसे लब्धि पर्याप्ता कहतेहैं.(४)"प्रत्येक नामकर्म"सो-एक शरीरमें एकही जीव रहे, ऐसे शरीरमे रहेसो प्रत्येक नाम (५)"स्थिर नाम कर्म"—हडीयों दांतों नशों अङ्गोपाङ्ग सब स्थिर होवे. अव्यय व द्रढ होवे सो स्थिर नाम. (६) "शुभ नाम कर्म" (६) जिसके अङ्ग का स्पर्श दुसरे

को होने से हर्ष उत्पन्न करे जैसे नाभी के उपर के अङ्गका किसी को संघट्टा होने से बुरा नहीं लगता है, सो शुभ नाम. (७)"सोभाग्य नाम" पर उपकार किये विना या स्वजनादि सम्बन्ध विना सब जन को इष्ट कारी लागे, सुबाहु कुमारकी तरह, सो सो भाग्य नाम" (८) "सुस्वर नाम सो" कोकिला जैसा सुस्वर होवे. (९) "आदेय नाम सो-जिसका बोला हुवा कैसा भी बचन सब को मन्योंग लगे. शुभ शकुन की तरह ग्रहंण करे सो आदेय नामी जाणना और (१०) "यशः कीर्ती नाम"-जो एक देश में विस्तरे सो कीर्ती, चारों दिशा में फैले सो यशः, यह दोनों जिसके होवे सो यश कीर्ती नाम.

अब 'स्थावर दशका'— अर्थात् स्थावर आदि १० प्रकृत्ति कहते हैं;-(१) 'स्थावर नाम"सो जो पृथ्व्यादि पांचो स्थावर स्ववशसे हलन चलन नहीं करसकेसो. स्थावर २सूक्ष्म नामः—जिनोंके असंख्यात शरीर का समागम होनेसे भी जो दृष्टि नहीं आवे सो सूक्ष्म नाम. (३) "अपर्याप्त नाम" सो पूर्वोक्त छे:पर्याप्ति में से-पहिलेकी तीन पर्याप्ति पूर्ण नहीं करे वहां तक-करण अपर्याप्ता. और जितनी जिस स्थान पर्या बान्धने की है. वो पूर्ण बन्धे नहीं वहां तक लब्धि अपर्या कहना. (४) साधारण नाम वनस्पति-निगोद्-कंद् मूल आदि में एकेक शरीर में अनन्त २ जीवों हैं, उन में रहे सो साधारण नाम. (५) अस्थिर नामसो-जैसे कान भापण केश इत्यादि सब हिलेत रहे, ऐसे आस्थिर अव्ययव होवे सो अस्थिर नाम. (६) 'अशुभ नाम' जैसे नाभी के नीचे का किसीभी अङ्ग का किसी को संघटा हो जावे तो वो बुरा मानता है, तैसे अशुभ अङ्गोपाङ्ग होवेसो अशुभ नाम.(७)'दौर्भाग्य नामसो' विना वैर,विरोध और विना नुकशान कियेही जो दुसरेको अप्रिय-अनिष्ट लगे सो-"दौर्भाग्य नाम"(८)दुस्वर नाम-काग मंजार आदि की तरह जिसका स्वर अनिष्ट खराब होवेसो. दुस्वरनाम. (९) "अनादेय नाम" जो अपने जान में सब को अच्छे लगे ऐसे बचन वोले, तोभी उस के बचन किसीकोभी अच्छे नहीं लगे, आप शकुन समझे सो अनादेय नाम. (१०) और 'अपयशः कीर्ती नाम' सो—उत्तम काम करते भी जिसका अपयश होवे, लोको अवरण वाद वोलै सो अपयश नामः

यह ६५ पिन्ड प्रकृत्ति, ८ प्रत्येक प्रकृत्ति, १० त्रस दशका, और १० स्थावर दशका सब मिल ९३ नाम कर्म की प्रकृत्ति होती हैं.+

+ जो मूल प्राप्ति शरीर बन्धन ५ है. उसके जो १५ भेद पीछे किये है वो बन्धकी

७ गौत्र कर्म.

जैसे कुंभकार-कुम्भ कळश आदि उत्तम वरतन निपजावे तो वो अक्षत धूपादिसे पूज्य होतेहैं, और मदिराका घट बतावेतो मदिरा निकाले बाद भी दुर्भिगन्ध कर दुगंच्छनीय, निन्दनीय होतेहैं. ऐसेही गौत्र कर्म के भी दो भेद होते हैं:-(२) इक्षाग, उग्र राज भोग आदि महाजनोंके कुलमें जन्म लेवे सो ऊंच गोत्र. और (२) भिक्षुक चन्डाल आदि नीच कुल में जन्म लेवेसो नीच गौत्र.

८ अन्तराय कर्म.

जैसे राजा ने भन्डारी को हुकम दिया की इसे लक्ष रूपे इनाम के देवो. परन्तु वो रूपे देना भन्डारी के इक्त्यार है; तैसे वस्तु तो सब प्रकार की प्राप्त होगइ परन्तु उनका लाभ लेने देना यह अन्तराय कर्म टूटेके इक्त्यार है, इसके ५ भेद :- (१) 'दानान्तराय'-पात्र में देने योग्य शुद्ध द्रव्य भी पास है, लेने वाले शुद्ध पात्रका भी योग्य है. देने के भाव भी हैं, इतना सब योग होकर भी दान नहीं दिया जावे सो दानान्तराय. (२) चहा जैसी वस्तु उस के पास है. वो दातार है. देनेके भाव भी हैं, तोभी उस वस्तु की प्राप्ति न होवे, तथा बहूत होंश्यारीसे व्यापार करते भी उस में लाभ की प्राप्ति न होवे सो 'लाभान्तराय.' ३ असन पान खादिया स्वदिम इत्यादि सब भोग के पदार्थोंका जोग मिलाहे, भोगवने की तीव्र इच्छाभी है, परन्तु भोगवे नहीं जावे सो 'भोगन्तराय.' (४) वस्त्र भूपण आसन शैया आदि, सब उप भोगकी इच्छित सामग्री मिली है, भोगवने की तीव्र इच्छाभी है, परन्तु भोगव सके नहीं सो- 'उपभोगन्तराय'-और (५) मिथ्यात्व की क्रिया करने समार्थ होकर वो क्रिया नहीं कर सके सो 'वालवीर्यान्त राय'—तथा साधु श्रावक मोक्षकी क्रिया ज्ञानादि त्रीरत्न की आराधना करने समर्थ होकर भी आराध नहीं सके सो पंडित वीर्यान्तराय.

---

१० प्रकृत्ति इस में मिलाने से नाम कर्म की १०३ प्रकृत्ति सब होती है.

कर्म और कर्म पकृत्तियोंका संक्षेप में नाम बताने वाला यन्त्र.

नंबर.	१ ज्ञानावरणीय कर्म. की ५ पकृत्ति.	
१	मतिज्ञानावरणीय	१
२	श्रुतिज्ञानावरणीय	२
३	अवधिज्ञानावरणीय	३
४	मनःपर्यत्र ज्ञानावरणीय	४
५	केवल ज्ञानावरणीय	५
	दर्शनावरणीय कर्मकी ९ प्रकृत्ति.	
६	चक्षु दर्शनावरणीय	१
७	अचक्षु दर्शनावरणीय	२
८	अवधि दर्शनावरणी	३
९	केवल दर्शनावरणी	४
१०	निद्रा	५
११	निद्रा निद्रा	६
१२	प्रचला	७
१३	प्रचला प्रचला	८
१४	थीणद्वी निद्रा	९
	३ वेदनीय कर्मकी २ प्रकृति.	
१५	साता वेदनीय	१
१६	असाता वेदनीय	२

नं.	४ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृत्ति.	
१७	मिथ्यात्व मोहनीय	१
१८	मिश्र मोहनीय	२
१९	सम्यक्त्व मोहनीय	३
२०	अनन्तान बन्धि क्रोध	४
२१	अनन्तान बन्धि मान	५
२२	अनन्तान बन्धि माया	६
२३	अनन्तान बन्धि लोभ	७
२४	अप्रत्याख्यानी क्रोध	८
२५	अप्रत्याख्यानी मान	९
२६	अप्रत्याख्यानी माया	१०
२७	अप्रत्याख्यानी लोभ	११
२८	प्रत्याख्यानी क्रोध	१२
२९	प्रत्याख्यानी मान	१३
३०	प्रत्याख्यानी माया	१४
३१	प्रत्याख्यानी लोभ	१५
३२	संज्वलन क्रोध	१६
३३	संज्वलन मान	१७
३४	संज्वलन माया	१८
३५	संज्वल लोभ	१९
३६	हाँस्य	२०
३७	रति	२१
३८	अरति	२२
३९	भय	२३
४०	शोग	२४
४१	दुगंच्छा	२५

४२	स्त्रीवेद	२६
४४	पुरुष वेद	२७
४४	नपुंसक वेद	२८

५ आयुष्य कर्म की ४ प्रकृति.

४५	नरकका आयुष्य	१
४६	तिर्यचका आयुष्य	२
४७	मनुष्यका आयुष्य	२
४८	देवता का आयुष्य	४

६ नाम कर्म की ९३प्रकृत्ति.

४९	नरकगति	१
५९	तिर्यंच गति	२
५१	मनुष्य गति	३
५२	देव गति	४
५३	एकेन्द्रिय जाति	५
५४	बेन्द्रिय जाति	६
५५	तेन्द्रिय जाति	७
५६	चौरिन्द्रिय जाति	८
५७	पचेन्द्रिय जाति	९
५८	औदारिक शरीर	१०
५९	वैक्रिय शरीर	११
६०	आहारक शरीर	१२
६१	तेजस शरीर	१३
६२	कार्मण शरीर	१४
६३	औदारिक अङ्गोपाङ्ग	१५
६४	वैक्रिय अङ्गोपाङ्ग	१६
६५	आहारक अङ्गोपाङ्ग	१७
६३	औदारिक वन्धन	१७
६७	वैक्रिय बंधन	१९
६८	आहारक बंधन	२०
६९	तेजस बंधन	२१
७०	कार्मण बंधन	२२
७१	औदारिक संघातन	२३
७२	वैक्रिय संघातन	२४
७३	आहारक संघातन	२५
७४	तेजस संघातन	२६
७५	कार्मण संघातन	२७
७६	वज्र वृषभ नाराच संघयन	२८
७७	ऋषभ नारच संघयण	२९
७८	नारच संघयण	३०
७९	अर्ध नारच संघयण	३१
८०	केलिक संघयण	३२
८१	छेवटा संघयण	३३
८२	समचतुरस्र संस्थान	३४
८३	निगोद पारिमंडल संस्थान	३५
८४	सादिया संस्थान	३६
८५	वावना संस्थान	३७
८६	कुवडा संस्थान	३८
८७	हुंड संस्थान	३९
८८	कृष्ण वर्ण	४०
८९	नलि वर्ण	४१
९०	रक्त वर्ण	४२
९१	पित पर्ण	४३
९२	श्वेत वर्ण	४४
९३	सूरभीगन्ध	४५
९४	दुर्भिगन्ध	४६
९५	कटुक रस	४७
९६	तिक्त रस	४८
९७	कषायला रस	४९
९८	अम्लान रस	५०

९९	मधुर रस	५१
१००	कर्कश स्पर्श	५२
१०१	मृदु स्पर्श	५३
१०२	गुरू स्पर्श	५४
१०३	लघु स्पर्श	५५
१०४	शीत स्पर्श	५६
१०५	उष्ण स्पर्श	५७
१०६	स्निग्ध स्पर्श	५८
१०७	रूक्ष स्पर्श	५९
१०८	नरकानु पूर्व्वी	६०
१०९	तिर्यंचानु पूर्व्वी	६१
११०	मनुष्यानु पूर्व्वी	६२
१११	देवानु पूर्व्वी	६३
११२	शुभ विहायोगति	६४
११३	अशुभ विहायोगति	६५
११४	पराघात नाम	६६
११५	उश्वाश नाम	६७
११६	आताप नाम	६८
११७	उद्योत नाम	६९
११८	अगुरु लघु नाम	७०
११९	तीर्थंकर नाम	७१
१२०	निर्माण नाम	७२
१२१	उपघात नाम	७३
१२२	त्रस नाम	७४
१२३	बादर नाम	७५
१२४	पर्याप्त नाम	७६
१२५	प्रत्येक नाम	७७
१२६	स्थिर नाम	७८
१२७	शुभ नाम	७९
१२८	सोभाग्य नाम	८०
१२९	सुस्वर नाम	८१
१३०	आदेय नाम	८२
१३१	यश कीर्ति नाम	८३
१३२	स्थावर नाम	८४
१३३	सूक्ष्म नाम	८५
१३४	आपर्याप्त नाम	८६
१३५	साधारण नाम	८७
१३६	आस्थिर नाम	८८
१३७	अशुभ नाम	८९
१३८	दौर्भोग्य नाम	९०
१६९	दुखर नाम	९१
१४०	अनादेय नाम	९२
१४१	अयशकीर्ती नाम	९३

७गोत्र कर्म की २ प्रकृत्ति.

१४२	ऊंचा गौत्र	१
१४३	नीच गौत्र	२

८अंतराय कर्मकी ५प्रकृत्ति.

१४४	दानान्तराय	१
२४५	लाभान्तराय	२
१४६	भोगान्तराय	३
१४७	उपभोगान्तराय	४
१४८	वीर्यान्तराय	५

" द्वितीय कर्मारोहण द्वारार्थ. "

३४—प्रथम क्रियाद्वार का अर्थ.

मूल कर्मोत्पति का कारण क्रियाही है. अर्थात्–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग इन पांचों में-उठाण कम्म बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम इन पांचोंका संयोग होने से क्रिया निपजती है. वो किरिया इस विश्व में भरे हुवे कर्म वर्गणाके अनन्तान्त पुद्गलोंका परावर्तन होरहा है उन्हे खेंच कर आत्म प्रदेशोंके साथ सम्बन्ध करतीहै. "सकषाया कषाययोः साम्परायिके र्य्यायथपो" इस तत्वार्थ सूत्रके वचनानुसार क्रिया दो प्रकारकी है;–सकषाइ जीवोंके जो क्रिया लगती है उसे सम्पराय क्रिया कही जाती है, वो कषाय के योग से बन्ध स्थिति प्राप्त करती है. और कषाय रहित महात्मा को जो फक्त जोगों प्रवृत्ति कर क्रिया लगती है सो इर्यावही क्रिया कही जाती है. सो कषाय रूप रस-चिकास के अभाव से बन्ध स्थिति नहीं पाती है. काँच पर लगी रज (धूल) की तरह तुर्त दूर होजाती है.

इस में प्रथम सम्पराय क्रिया कही जिस के २४ भेद कहते हैं.

१ काइया क्रिया. इसके दो भेदः–(१)काया-शरीर पर ममत्व भाव धारन कर व्रत प्रत्याख्यान तप संयम करता डरे, कि रखे धर्म करने से मेरा शरीर दुर्बल होजायगा. और शरीर के पोषणार्थ छेही काया का कुटम्ब करता डरे नहीं सो अणाउत काया क्रिया. (२) उठते बैठते हलन चलनादि करते यत्ना नहीं रक्खे सो दुप्रयुक्त काइया क्रिया.

२ आहीगरणीय क्रियाः-शस्त्र से लगे जिसके दो भेद;–(१) शस्त्र की धारा तीक्षण करावे, हाथा आदि लगावे सो संयोजनाधि करणी. और (२) नवीन शस्त्र निपजावेसो निव्रतनाधि करणी. ऐसेही इसके वचनाअश्री दो भेद;–ज्यूना क्लेश-खमाया क्लेश ऊदीरेसो संयोजनाधि करणी, और (२) नवा क्लेश करेसो निव्रतनाधि करणी

३ 'पाउसीया क्रिया'—द्वेष परिणामों से लगे. इसके दो भेदः(१) सजीव वस्तु मनुष्य पशु क्षुद्री जीवोंपर द्वेष करेसो जीव पाउसीया,(२)शीत ताप विष पाषणादि निर्जीव नस्तुपर द्वेष करनेसे लगेसो अजीव पाउसीया.

४ 'परीतापनिया क्रिया'–परिताप (दुःख) उपजाने से लगे, इस के दो भेदः–(१) जीवको दुःख दे सो जीव परितापनीय, और(२)अजीवका निकारण छेद न भेदन करे सो अजीव परिता पनिया किरिया.

५'पाणाइवाइ क्रिया'सो जीव काया अलग २ करे, इसके दो भेदः–(१)अपने से दुसरे की घात करे, तथा आप घात करे सो सहत्थ पाणावाइ, और (२) दुसरे के हाथ से दुसरे को मरावे, या दुसरेके हाथसे घात करावे सो परहत्थ पाणाइवाइ क्रिया.

६ आरंभीय क्रिया–किसी भी पाप कार्य का प्रारंभ करे, इसके दो भेदः–(१) पृथव्यादि छेही जीव काया का मर्दन करे सो जीव आरंभी, और (२) साकट वाहन मुशलादि करावे सो अजीव आरंभी.

७ परिग्गाहीया क्रिया–ममत्व भाव से लगे, इसके दो भेदः—(१) दो पद चौपद मणी आदि पर ममत्व करे सो जीव परिग्गहाहीया; और (२) वस्त्र भूषण मकानादि की ममत्व करे सो अजीव परिग्गहाहयिा.

८ 'मायावातिया क्रिया'—कपट करने से लगे, इसके दो भेदः–(१) ऊपर शुद्धाचारी रहे और अन्दर अनाचीर्ण सेवन करे सो अभ्यन्तर मायावतिया, और (२) खोटे-तोले-मापे रक्खे सो वाह्यमायायावति याकिरिया.

९मिथ्या दंशणवत्तिया क्रिया"—खोटी श्रद्धा से लगे, इसके,३ भेदः–(१-३) जिनाज्ञासे, कमी ज्यादा, विपरीत श्रद्धे परूपे स्पर्शे. तथा(१-३)कुदेव-कुगुरू–कुधमका सत्य श्रद्धान करे.

१० 'अपच्चखाणीया क्रिया'–अविरति पने से लगे इसके दो भेद;–(१) सजीव वस्तु भोगवने के पच्चखाण न होणे से उसकी अविरति आवे सो सचित्त अपचखाणीया. और (२) अचित-निर्जीव वस्तु भोगवनेके पच्चखाण नहोनेसे अविरत आवे सो अचित अपच्चखाणीया किरिया.

११ 'दीठीया क्रिया'–देखने से लगे, इस के दो भेद-(१) गज वृषभ अश्वादि सजीव वस्तू को देख हर्ष विषवाद उत्पन्न होवे सो जीव दीठीया. और (२) भवण भूषणादि अजीव वस्तु के देखने से हर्ष विषवाद होवेसो अजीव दीठीया क्रिया.

१२ "पुठियाक्रिया" स्पर्शने से लगे-इस के दो भेदः-(१) स्त्री पुरुष धान्य आदि सजीव वस्तु का स्पर्श करने से लगे सो जीव पुठिया. और (२) वस्त्र आभरण आदि स्पर्शने से लगे सो अजीव पुठिया.

१३ "पाडोचिया क्रिया"-बुरा चिन्तवने से लगे, इसके दो भेद- (१) भयंकर र सिंह आदि सजीव वस्तु का बुरा चिन्तवे सोजीव पाडोचिया; और (२] अशुची मलादि निर्जीव का बुरा चिन्तवे सो अजीव पाडो चिया क्रिया.

१४ सामन्तवणिया क्रिया-नजीक की वस्तु से लगे, इसके दो भेद-(१] स्वकिय मनुष्य पशु पक्षी मकान भूषणादि की पर संस्या सूणकर प्रमोद पावे सो जीव सामन्तवणीया, और (२) दूध तेल आदि प्रवाही [पतले] पदार्थ उघाडे रखनेसे लगे सो पर सामन्तवणिया.

१५ निसथीया क्रिया-निक्षेप करने से-डालने से लगे, इसके दो भेद-[१] पृथ्वी पाणी आदि सजीव वस्तु अयत्ना से डालने से लगे सो सजीव निसथीया. और [२] तीर गोळा आदि फेंकने से-डालने से लगे सो अजीव निसथीया.

१६ "सहत्थिाया क्रिया" अपने हाथ से लगे, इसके दो भेद-(२) सिंहसर्प स्वान मंजार गौ अश्वादि का तथा अपने शरीर का वध बन्धनादि करने से लगे सोजीव सहत्थिया. और (२] सोनार लोहकार कुंभकार आदि कूटन पीटन करेसो अजीव सहत्थिया.

१७ आणवणीया-आज्ञादे काम कराने से लगे, इसके दो भेद-[१.] दास आदि को आज्ञादे काम करावे सो जीव आणवणीया. और (२] यंत्रादि की सहाय से कामलेवे सो अजीव आणवणीया.

१८ विदारणीया क्रिया-वस्तु के विदारने-फोड तोड करने से लगे, इसके दो भेदः-(१)मट्टी पुष्प फलादि सजीव वस्तु को विदारे सो जीव विदारणीया. और(२) धातु काष्ट वस्त्रादि का छेदन भेदन करेसो अजीव विदाराणिया. सिणगारिक रस, विभत्स रस, शुर रस, आदि कुरसों से पूरीत कथा रागादि कर विषय कषाय की प्रेरणा से दूसरे का हृदय विदारे सो भी विदारणीया क्रिया.

१९ अणा भोग क्रिया-विना भोगवेही क्रिया लगे. जिसके दो भेद-(१) शून्य चित्त-असावधान पणे किसी भी वस्तु को ग्रहण करे निक्षेप करेसो शून्य अनाभोगी. और (२) अन्य के काम भोग देख सुण उने आप भोगवणे की अभिलाषा करे, सो

वस्तु अणा भोगी.

२० "अणाव कंखवति क्रिया-नइच्छने लायक काम करने से लगे. इसके दो भेद-[१) दुर्व्यश्नादि सेवन करे सो लोकीक अणाव कंखी और (२) हिंसा धर्म स्थापे, तथा इस लोकार्थ धर्म करे सो लोकोत्तर अणाव कंखी.

२१. अनापयोगीक्रिया-निर्थक काम करने से लगे, इसके दो भेद-(२) मन व-चन काया के योगों को अयत्ना से वर्तावे सो योग अनापयोगी(२)और कारीगरों के पास हिंसक कृतव्य करावे सो पर योग अनापयोगी.

२२ समुदाणिया क्रिया-बहूतों के समागम से लगे-इसके दो भेद-(१)बहुत म-नुष्यों का समुदाय मिलकर शूली फासी नाटक तमाशा आदि देखे सो जीव सामुदा. नी. और (२) अजायव घर, वाग, दुकानादि, में बहुत वस्तुओंका संग्रह क्रिया सो देखे सो अजीव सामुदाणी.

२३ पेजवतिया क्रिया-राग भावसे लगे-इसके दो भेदः-(१)माया-दगल बाजी करे, सो पेजव्राति. और (४) अता-तृष्णा बाछां करे सो लोभ पेजवतीया.

२४ दोषवतिया क्रिया-द्वेष भाव से लगे. इसके दो भेदः-(१) क्रोध कषाय क र स्वात्म परात्म को प्रज्वालित करै सो क्रोध दोषवति, और (२) अभीमान अहंता क रने से लगे सो मान दोषवतिया.

यह २४ सम्परायिक अर्थात् कर्मों के बन्ध करने वाली क्रिया. जानना और-

२५ इर्यावही क्रिया-फक्त योगों की प्रवृत्ति से लगे इसके भी दो भेदः-(१) इ ग्यारवें; उपशान्त कषायी और बारवें क्षीण कषायीको योगोंके सकम्पपणेने लगे सो छद्मस्तीक इर्या वही, और (२) तेरवें गुणस्थानी केवली भगवन्त के शुभ योगों की प्र वर्ती से लगे सो केवल इर्यवही. यह इर्यावही क्रिया से साता वेदनीय कर्म प्रदेश से बन्ध तेहैं, सो कषाय के अभाव से स्थिति और अनुभाग को प्राप्त नही होते, उसही वक्त अर्थात् जिस समय बन्ध करे उसके दूसरे समय में वेदे (भोगवे) और वो तीसरे समय में-निर्ज्जरे-दूर करदेते हैं.

३५ द्वितीय कारण द्वारका अर्थ.

ऊपर कहे मुझब क्रिया तो कर्म-प्रकृत्ति दल का सञ्चय-संग्रह करतीहै, और उनका बन्ध कारण से होता है सो कर्म बन्ध के ५ कारण हैसो कहते हैं,

१ "मिथ्यात्व"-तत्वार्थ की अरूचि तथा विपरीत रुचिहोवे, कुपक्ष का कदाग्र-

इ-हट करे सो मिथ्यात्व.

२ 'अविरति,'-तृष्णाका अपरिमाण-इच्छाका अनिरुंधन-छूट्टा पणा, आरंभ और विषय में लोलुप्ता सो अविरति.

३ "प्रमाद"-सत्प्रवृत्ति में निरुद्यमी. कुप्रवृत्ति में सहाशिक, वाचाल, आळसी पणा सो प्रमाद.

४ "कषाय"-प्रकृत्ति-स्वभाव की वक्रता सो कषाय.

५ "योग"-मन वचन काया की मळीनता सो योग.

३६ तीसरे से सातवे-तक-हेतुद्वार का अर्थ.

ऊपर जो ५ कारण कर्म वन्ध के कहे सो सामान्य सूत्र, और आगे जो हेतु कहते हैं सो इनही ५ कारणों में से तीसरा प्रमाद कारण छोड कर + बाकी के ४ कारणों के विशेषार्थ रूप ५७ भेद होते हैं, उन्हे कर्मो के हेतु (कर्मो का कार्य साधने वाले सज्जन) कहते हैं:-

प्रथम मिथ्यात्व कारण से पांच हेतु हुवे:-१ अभिग्रही मिथ्यात्व-हटीला, २ अनाभि ग्रहीमिथ्यात्व-भोला, ३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व-कदाग्रही, ४ सांशायिक मिथ्यात्व-वैमी. और ५ अना भोग मिथ्यात्व-अजान.(इन पांचों मिथ्यात्व का कथन मिथ्यात्व गुणस्थान के लक्षण. लक्षण द्वार में विस्तारसे कियाहै.)

द्वितीय अविराति के कारण से-१२ हेतु हुवे:-१ मनकी २ श्रोत इन्द्रियकी, ३ चक्षुइन्द्रिय की, ४ घ्रणेन्द्रिय की, ५ रसेन्द्रिय की, ६स्पर्शेन्द्रिय की, ७ पृथ्वी कायकी, ८ अपकाया की, ९ तेउकायकी, १० वायुकायकी, ११ वनस्पति कायकी और १२ त्रसकायाकी अर्थात्-मन को पांचों इन्द्रियों के विषय में और छेकाय के आरंभमें प्रव्रत तेहुवेको रोके नहीं, परन्तु छुट्टा छोडदेवे-अमर्यादित रहेसो १२अविरतिहै

तृतीय कषाय के कारण से २५ हेतु हुवे:-१-४ अनन्तानवंधी चौक- जिसका अनन्त नहीं आवे ऐसे क्रोध मान माया लोभः ५-८ अप्रत्या ख्याना वरणी चौक-जो व्रत प्रत्याख्यानके निर्ज्जरा रूप फलको न होनेदे ऐसे-क्रोध, मान, माया, लोभ;९१२

+पांच प्रमादों मेंसे-मद कषायका समावेश कषायमे हूवा. और विषयका समावेश अविरति मे हुवा. वी कथाका समावेश वचन जोग में हुवा. इसलिये प्रमाद को छोड बाकीके४ कारणोंके ही ५७ हेतु किये गये हैं.

प्रत्याख्या नावरणीय चौक-जो सर्व विरति-संयम के फल को नष्ट करे ऐसे क्रोध मान माया लोभ. १३-१६ संज्वलन चौक-जो थोडासा प्रज्वलितहो शान्त पडजावे ऐसे क्रोध मान माया लोभ.(१६ कषाय हुइ) १७ हास्य, १८रति, १९ अरति, २० भय, २१ शोक, २२ दुर्गंच्छा, २३ स्त्रीवेद, २४ पुरूषवेद, और २५ नपुंसक वेद, यह२५ ही सर्व कर्मो का बन्ध करने कष=रस+आय-आवे. अर्थात् रस प्रगमा कर उस बन्ध को मजबूत-पक्का करे सो कषाय कहीजाती है.

चतुर्थ योग कारण से १५ हेतु हुवे-१ सत्यमन योग-सत्य विचार, २ असत्य मन योग-झूठा-कूकर्मो का विचार, ३ "मिश्रवचन योग',-सत्य असत्य दोनों तरहका विचार. ४ विवहार मन योग-सच्चा भी नहीं तैसे झूठा भी नहीं ऐसा विचार, (यह ४ मन के) ऐसेही-५ सत्य वचन योग, ६ असत्य वचन योग, ७ मिश्रमन योग, ८ विवहार बचन योग. (यह ४ बचन के) ९ औदारिक योग - हड्डी चरम आदि का मनुष्य तिर्यंच का शरीर, १० औदारिक मिश्रयोग-औदारिक शरीर उत्पन्नहोते पुरा नहोवे वहां तक. यालब्धिप्रसय औदारिक शरीरि जब वैक्रिय करता है और वो वैक्रिय पूर्ण नहीं निपजता है तब तक मिश्र गिना जाता है. ऐसेही ११ वैक्रिय योग-शुभ पुद्गलों सें समुत्पन्न हुवे देवो का शरीर और अशुभ पूद्गलों सेबना नरक का शरीर, १२ वैक्रिय मिश्रयोग सो वैक्रिय उत्पन्न होते वा उत्तर वैक्रिय बनाते पूर्ण नहोवे वहां तक मिश्रता पावे सो. १३ आहारक योग-चउदह पूर्व पाठी मुनिवरों संशय से निवृत्ति पाने, व समवसरण की विभूति का अवलोकन करने लब्धिके प्रभाव से स्वशरीर में से हाथ भरका पूतला निकालेंसो. १४ आहारक मिश्रयोग सो आहारक शरीर बनाते और समाते मिश्रता पावेहैसो. और १५ कारमण योग सो फक्त बलाउ रुप पर भव गमन मे साथ रहै सो. (यह ५७ हेतु हुवे.)
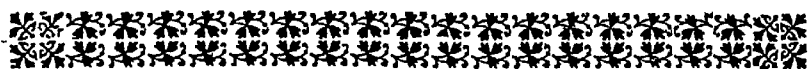
" कर्म बन्ध प्रकारण का अर्थ "

❀ ४१ प्रथम चार बन्ध द्वार का अर्थ ❀

(१) प्रकृति–बन्ध.

मूल ८ कर्म वान्धने के कारण-"१-२ तत्प्रदोष निन्हव मात्सर्यान्तराया सद्-नोप घाता-ज्ञान-दर्शना-वरणयोः-" अर्थात-ज्ञानी के और दर्शनी-सम्यक्त्वी के-दोषों का अवलोकन करे, उनके सद्गुणों को छिपावे, उनसे मत्सर-ईर्षाकरे,; शास्त्राभ्यासव धर्म कार्यमें अन्तरायदे, ज्ञानी व सम्यक्त्वीकी अशातना करे, घात चिन्तवे, दोषण लगावे. यह ६ कार्म ज्ञानी के साथ करे तो ज्ञानावरणी कर्म का बन्ध होवे, और यह ६ कार्म सम्यक्त्वी के साथ करेतो दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होवे.; ३ "दुःख शोक तापा क्रन्दन वध परिदेवना न्यात्म परोभय स्थान्य सद्वेद्यस्य" अर्थात्-दूसरे को-दुःखदेवे, शोग-चिन्ता उपजावे, परिताप उपजावे. वन्धन में वान्धे यामारे, इतनें कर्मो दूसरे की आत्मा के साथ करे, या अपनी आत्माके साथ करे, या दोनों की आत्माके साथ करे तो असातावेदनिय कर्म का वन्ध होता है. और- "भूत व्रत्यानुकम्पादान सराग संयमा दियोगः क्षान्तिः शौच मिति सद्वेद्यस्य-" अर्थात्-सर्व जीवोंको व साधू श्रावक आदि व्रत धारीयों को दुःखी देख अनुकम्पा भाव लावे, उनको यथा उचित अन्न वस्त्रादि देकर साता उपजावे, और आप स्वतः श्रावकपना या मुनिपना धारन करै, त्रि योग विशुद्ध आराधे-पाले, क्षमा निर्लोभता इत्यादि शुभ कृत्यों करने संसाता वेदनीय कर्म का वन्ध होता है. ४ "केवली श्रुत सङ्घ धर्म्म देवावर्णवादो दर्शन मोहस्य" अर्थात्-श्रीसर्वज्ञका और सर्वज्ञ प्रणित वचनों (शास्त्रों) का, संघ साधु साध्वी श्रावक श्राविका) का, दया धर्म का, और देवों का तथा पूज्य पुरुषों का इनों का अवर्ण वाद बोले - निन्दा करेतो सम्यक्त्व मोहनीयका वन्ध होताहै. और "कषायो दया

तीव्र परिणाम श्चारित्र मोह." अर्थात्-जब कषाय का उदय होवे-क्रोधादि प्रणति में परिण में उस वक्त अपना स्वभाव (भान) भूल कर तीव्र कषायी बन जावे, दीर्घकाल तक कषायमें राच रहै, तो चारित्र मोहनीयका बंध होवे,४ "बह्वारम्भ परिग्रहत्व. नार कस्यायुषः " अर्थात्-महा आरंभ, महा परिग्रह, पचेन्द्रिय का वध, और मांस मदिरा का भोग करने से नरक गाति के आयुष्य का बन्ध होता है. । "माया तैर्यग्यो न स्य"अर्थात्-दगलबाजी, करे झूट बोले तोले मापे खोटे रक्खे, और मत्सर भाव सेतिर्यं च गातिके आयुष्य का बन्ध होता है.! "अल्पारंभ परिग्रहत्वं स्वभाव मार्दवच मानुष्य स्य" अर्थात्-अल्प-आरंभ परिग्रह, शरल-निष्कपटता, दयालुता और विनय करनेसे मनुष्यगाति के आयुष्यका बन्ध होतोहै. और "सराग संयमा संयमा संयमऽ काम नि-र्ज्जरा वाल तपांसि देवस्य" अर्थात्-शिष्य शरीर आदि पर ममत्व रखने वाले साधु, श्रावक, विना मन कष्ट सहने वाले, अज्ञान तप करने वाले, देवगति का आयुबन्ध क रते हैं, ओर "सम्यक्त्वं च" अर्थात् सम्यक्त्वी के देवायु काही बन्ध होता है. ६ यो ग वक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्न "अर्थात्-मन वचन काया के योगों की कुटिल ता रखे, दूसरे के साथ झूठे झगडे करे तो अशुभ नाम कर्म काबन्ध होता है. और "तद्विपरीतं शुभस्य" अर्थात्-मनादि त्रियोगों की शरलता शुद्धता रखे, धर्म चर्चा क-र धर्मोन्नाति करने से शुभनाम कर्म का बन्ध होता है. ७ "परात्मनिन्दा प्रशंसे सद सद्गुणों च्छाद नोद्भावने च नीचै र्गोत्रस्य" अर्थात् दूसरे की निन्दा करे, अपनी प्रशं सा करे, दूसरे के गुणोंके ढांके-छिपावे, अपने गुण प्रसिद्ध करे, दूसरे के दोष प्रसि द्ध करे, अपने दोष ढाके तो नीच गौत्रका बन्ध होताहै और "तद्विपर्य्ययो नीचैर्वृत्त्यनु त्सेकौ चोत्तरस्य,, अर्थात्-गुणवातों के गुणानुवाद करे, अपणी निन्दाकरे, गुणीजनो के गुणों प्रसिद्ध करे, अपने गुण ढांके; दूसरे के दोषों छिपावे, अपने दोष प्रसिद्ध क रेतो ऊंच गोत्रका बन्ध होता है, और ८ "विघ्नकरण मन्तरायस्य" अर्थात्-किसीको दान देने में, भोगोप भोग भोगने में, लाभोपर्जन करनेमें, और धर्म उद्यम करने में अ न्तराय देनेसे-विघन करने से अन्तराय कर्म काबन्ध होता है.

उत्तर प्रकृत्ति बन्ध के कारण.

पहिले वन्ध के चार कारण- (मिथ्या अव्रत कषाय योग) कहै, उने १२० ब-न्ध की प्रकृत्तियों पर उतार तैहैं:-३ नरक त्रिक, ४ पहिली चार जाति, स्थावर ना-म, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्ता नाम, साधारण नाम, हुंड संस्थान, आताप नाम, नपुंसकवेद छेवटा संघयण, और मिथ्यात्व मोहनीय, यह १८ प्रकृत्तियों एक मिथ्यात्वो दय कर

बन्धातीहै. । ४ अनन्तान बन्धि चौक, ४ बीच के चार संस्थान, ५ पहिले पांच संघयण, १अशुभ विहाय गति, १दौर्भाग्य नाम,२ तिर्यंच त्रिक, ३ मनुष्य त्रिक, २ औदारिक द्विक, १ स्त्रीवेद, १ नीच गोत्र, ३थीणद्धी त्रिक, १ उद्योत नाम, ४अप्रत्याख्याना वरणीय चौक. यह ३३ प्रकृत्ति का मिथ्यात्व गुणस्थान में होवे तो मिथ्यात्व प्रत्यय बन्ध होवे, और मिथ्यात्वके आगे अव्रत करके भी इन प्रकृत्तियोंका बंध होता है. तथा मिथ्यात्व और अव्रत दोनोंके कारण से भी इनका बन्ध होता है, परन्तु बाकी रहे तीनों कारणों कर इनका बन्ध नहीं होताहै ज्ञानवरणीय ५, दर्शनावरणीय-६, असातावेदनीय? मोहनीय १५ (जिन नाम, और आहारक द्विक छोड कर) नाम कर्म की ३२, ऊंचगोत्र १, और अन्तराय की ५, इन+६५ प्रकृत्ति का मिथ्यात्व अविरति और कषाय इन तीनों में के एक कारण के सेवन से या दोनों तीनों कारणोंके सेवन से वन्ध पडताहै, परन्तु फक्त इकेले योग करकेही बन्ध नहीं पडताहै। एक साता वेदनीय का वन्ध चारोंही कारण कर होता हैं, क्यों कि इसका वन्ध तेरवे गुणस्थान तक होताहै. । अहारक द्विकका वन्ध निवर्द्य योग सराग संयम कर होताहै । और "दर्शन विशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील व्रतेष्वनती चारों,ऽ भीक्षण ज्ञानो पयोग, संवेगौ, शक्ति तस्त्याग, तपसी साधू समाधि वैयावृत्य करण, महर्दाचार्य बहुश्रुत प्रवचन भक्ति रावश्यका परिहाणि, मार्ग प्रभावना, प्रमचन वत्सलत्व, मिति तीर्थंकरत्वस्य. अर्थात्-निर्मळ सम्यक्त्व पालने से, विनय-नम्र भाव रक्खने से, शील आदि सर्व व्रतों अतिचार दोष रहित पालने से, वारम्वार ज्ञान में उपयोगका रमण करणे से, वैराग्य भाव रक्खने से, स्वशक्त्यानुसार उलट भाव दान देनेसे, दुक्कर तपश्चर्या करनेसे, साधु के चितको समाधी शान्ती प्राप्त होवे ऐसी तरह वैयावृत्य भक्ति करने से, अर्हत आचार्य बहुसुत्री शास्त्र इनो की भक्ति करने से, दोनों वक्त के प्रतिक्रमण में हानी नहीं डालने से अर्थात् दोनों वक्त प्रत्तिक्रमण करने से जैन मार्ग की प्रभावना महिमा की वृद्धि और जिन वचनों कीवत्सलता करनेसे तीर्थं कर गौत्र का उपार्जन होताहै. और आहारक शरीरका वन्ध अप्रमत साधुकेही होताहै(यह१२० .उत्तर प्रकृत्ति वंधकेकारण.)

+ आगे देश विरति गुस्थानमें६७प्रकृतिका वन्ध कहा जायगा. उसमें से यहां जिन नाम और साता वेदनीय यह प्रकृत्ति ग्रहण नहीं करीहै.

प्रकृति बन्धके चार प्रकार.

१ पहिले थोडी प्रकृत्तिका बन्ध कर फिर बहुत प्रकृत्तिका बन्ध करे उसे– "भूयस्कार बन्ध"-कहते हैं. २ जो पहिले बहूत प्रकृति का बन्ध कर फिर थोडी प्रकृत्ति बंध स्थानको जावे उसे-"अल्पतर बन्ध" कहते हैं. ३ जो बन्ध एकही संख्याके स्थान में रहे, अर्थात् जितनी प्रकृत्ति पहिले बान्धि उतनीही प्रकृत्ति का निरन्त्र आगे बन्ध करे सो-"अवस्थित बन्ध." ४ और जो साफ अबन्ध होकर फिर एकादि प्रकृत्ति बन्ध सो-अव्यक्त बन्ध" इन चारों का खुलासा कहते हैं.

आठों कर्मोंपर ४ ही प्रकार के बोध.

१. "भूयस्कार बन्ध"-(१) प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म से लगाकर जो आठवे अन्तराय कर्म तक आठों कर्मो जिस वक्त बन्ध करे सो आठों का बन्ध स्थान-यह फक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त रहता है. क्योंकि-आयुष्य का बन्ध एक भव में एकही वक्त अन्तर मूहूर्त पर्यन्त होता है; यह बन्ध पहिले गुणस्थान से (बीचका तीसरा गुणस्थान छोड कर) सातवे गुणस्थान तक होता है. (२) आयुष्य विना सात कर्मोंके बन्ध का स्थानक प्रथम गुणस्थान से नववे गुणस्थान तक पाता है, इसकी स्थिति-जघन्य अन्तर मूहूर्त, उत्कृष्ट-पूर्व क्रोडीका तीसरा भाग अधिक छे महीने कम ३३ सागरोपम पर्यन्त जानना. क्योंकि-पूर्व क्रोडी वर्षके तीसरें भाग में देवायु का बन्ध करे, वो सर्वार्थ सिद्ध में ३३ सागरोपम के आयुष्य पणे देवता होवे, वहां सहस ६ महिना आयुष्य बाकी रहे तब आगेका दुसरे आयुष्य का बन्ध करे, इसलिये. (३) आयुष्य और मोहनीय यह दो कर्म छोड बाकी के छे कर्मोका बन्ध दशवे गुणस्थान में होता है. सो फक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त रहता है. (४) आगे उपशान्त मोहनीय आदि गुणस्थान में. एक वेदनीय कर्मका बन्ध होता है. इसकी स्थिति जगन्य अन्तर मुहूर्तकी उत्कृष्ट देश ऊणी (कुछ कमी) पूर्व कोडी वर्ष की. केवली के अपेक्षा कर. इन के बन्ध स्थान तीन प्रकार के होते हैं.–(१) एक वेदनीय का बन्ध किये बाद छे कर्मोका बन्ध करे सो प्रथम समय प्रथम भूयस्कार. यह बंध इग्यारवे गुणस्थान (उपशम श्रेणि) से पडते होता है. और दशवे गुणस्थानमें ६ कर्मका बन्ध कर नववे गुणस्थान में ७ कर्म का बंध करे, सो-दुसरा भूयस्कार. (३) और येही जीव सातवे गुणस्थान में आयुष्य सहित आठों कर्मो का बंध करे सो प्रथम समय तीसरा भूयस्कारहै.

२ अल्पतर बन्ध-आयुष्यका वन्ध किये वाद पहिले समय ७ कर्म का वन्ध करे सो प्रथम समय प्रथम अल्पतर वन्ध. और नवबे गुणस्थान के प्रान्त में सात कर्मो का वन्ध कर दशवे गुणस्थान के प्रथम समय मोहनीय हीन कर छे कर्मोका वन्ध करे सो दूसरा अल्पतर वन्ध. और छे कर्मों के आगे उपशान्त मोह क्षीण मोहमें एक वेदनीय कर्म का का वन्ध करते तीसरा अल्पतर वन्ध.

३ "अवस्थित वन्ध;"-आठ कर्मो का वन्ध किये वाद सात कर्मों का वन्ध करे तव प्रथम समय अल्पतर वन्ध, और फिर उसस्थान में जीव जितने काल रहे तांहलग पहिला अवथित वन्ध. इन सात के पीछे छे कर्म का वन्ध करे तव प्रथम समय अल्पतर वन्ध. और फिर दुसरा अवस्थि वन्ध. और ६ कर्मों वान्धे वाद एक का वन्ध करे तव प्रथम समय अल्पतर वन्ध, और फिर तीसरी अवस्थित वन्ध. और सात कर्मों का वन्ध किये वाद आठ कर्मो का वन्ध करते प्रमथ समय भूयस्कार, वन्ध और फिर चौथा अवस्थित वन्ध.

४ "अव्यक्त वन्ध"-मूल प्रकृत्तियोंका सर्वथा अवन्धक पणातो चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान में होता है, और फिर वहां से कोइभी जीव कदापि पडताहीं नही है. इसलिये चौथा जो अव्यक्त वन्ध है सो कहीं भी पाता नहीं है.

❀ उत्तर प्रकृत्तियों पर चारों प्रकार के बन्ध. ❀

१.ज्ञानावरणीय, २ वेदनीय, ३ आयुप्य, ४ गोत्र, और ५अन्तराय, इन पांचों कर्मोका एकही वन्ध स्थान है. क्यों कि ज्ञानवरणीय और अन्तराय यह दोनों कर्मो तो ध्रुव वन्धि हैं, इस लिये दशवे गुणस्थान तक इन दोनों कर्मोकी पांच २ प्रकृत्ति का साथही वन्ध होता है. यहां भूयस्कार और अल्पतर वन्ध नहीं होता है. और वेदनी, आयुष्य, गोत्र इन तीनों कर्मोकी प्रकृतियों वन्ध विरोधनी है, इसलिये एक समय में एकही का वन्ध होता है, और इसहि लिये इन तीनों कर्मो का वन्ध स्थानभी एकही होताहैः भूयरकार अल्पतर वन्ध नही होता है, और वेदनीय तो तेरवे गुणस्थान तक वन्ध तीहै. इसलिये इस विना वाकी रहे चारों कर्मो की प्रकृत्तियों का फक्त अव्यक्त वन्ध एक होता है क्योंकि—इग्यारवे गुणस्थान में अवन्धहो फिर वन्ध करते प्रथम समय में अव्यक्त वन्ध जानना, और फिर अवस्थित वन्ध जाणना.

अब वाकी रहे दर्शनावरणीय, मोहनीय, और नाम इनों तीनों कर्मो की उत्तर प्रकृत्तियों पर चारों प्रकार के स्थान वन्ध उतारते हैः—

दर्शनावरणीय कर्म के-९ का, ६ का, और ४ का, यह ३ बन्ध स्थान हैं (१) इस में दर्शनावरणीय की सब नवोही प्रकृत्तिका बन्ध पहिले और दूसरे गुणस्थान में होता है, जिसकी जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की और उत्क्रष्ट स्थिति अभव्य की अपेक्षा से अनादि अनन्त, भव्य की अपेक्षा से अनादि सन्त, और पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त होती है. (२) नवप्रकृत्तियों में से थीणद्धी त्रिक का बन्धका व्यच्छेद करनेसे मिश्रादि गुणस्थानमें ६प्रकृत्तिका बन्धहोताहै, सो जघन्य तो अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम पूर्वक्रोडी प्रथक्त्व झाजेरा जाणना. । (३) छे में से निद्रा द्विक अपूर्व कराण के पहिले भाग में बन्ध का व्यच्छेद होने से आठवे गुणस्थान के बाकी रहे भागोंमें और नववे दशवे गुणस्थान में चारों प्रकृत्तियों का बन्ध जानना, सो जघन्य एक समय, श्रेणीमें मृत्यु होवे उसकी अपेक्षासे; और उत्त्कृष्ट अन्तर मुहूर्त प्रमाण जाणना. । इन बन्धों में भूयस्कार बन्धदो, अल्पतर बन्ध दो, अवस्थित बन्ध तीन, और अव्यक्त बन्ध दो होतेहैं, सो कहते हैं:-(१) उपशम श्रेणी से पडते हुवे-आठवे गुणस्थान के दूसरे भागमें आते हुवे-दर्शना वरणीय की चारों प्रकृतियों का बन्ध करते हुवे पहिले निद्रा द्वीक का व्यच्छेद कियाथा उसे पुनः बन्धे, तब ६ का बन्ध होवे; उस समय प्रथम भूयस्कार बन्ध जानना. फिर नवका बन्ध करते दूसरा भुयस्कार. (यह दो भूयकार बन्ध) ऐसेही (२) प्रथम ९ का बन्ध कर फिर ६ का बन्ध करे उस समय प्रथम अल्पतर बन्ध अपुर्व करण गुणस्थान के प्रथम समय छे प्रकृत्तिका बन्ध कर फिर निद्राद्विक का बंध व्यच्छेद होने से चार का बंध करे, उस समय दूसरा अल्पतर बंध. (यह दो अपल्तर बंध) (३) और इन तीनों बन्ध स्थान में दूसरे समय से लगाकर उनस्थान के अन्तिम समय तक तीनों अवस्थित बंध जानना. और (४) इग्यारवे गुणस्थान में दर्शनावरणीय का अबंधक हो वहां से पडते दशवे गुणस्थान में चार प्रकृत्तिका बन्ध करे उसे समय पहिला अव्यक्त बंध. और जो जीवो इग्यारवे गुणस्थानमें आयुक्षय होनेसे मरकर अनुत्तर विमान में देवता होवे वहां ६ प्रकृत्तिका बन्ध करे उस समय दूसरा अव्यक्त बन्ध. यों दर्शनावरणीय कर्म के उपर ४ प्रकारके बंध कहेजाते हैं.

मोहनीय कर्म के—१० बन्ध स्थानः—मोहनीय कर्म की २८ प्रकृत्ति है, जिसमें से सम्यक्त्व मोहनी और मिश्रमोहनीय इन दोनों प्रकृत्तिका बन्ध होता नहीं है. इसलिये यह दोनों छोडकर बाकी २६ प्रकृत्ति बन्ध के योग्य होती हैं; इसमें भी एकही

समय में-तीनों वेदों में से एकही वेद का बंध होता है. तथा (१) हॉस्य और रति, (२) शोक और अराति, इन दोनों युगल में से एक वक्त एकही युगल का बंध होता है, क्योंकि यह प्रकृत्तियें बंध विरोध की है. इस लिये १ मिथ्यात्व गुणस्थान में २२ का बंध होता है, जिसकी स्थिति अभव्य आश्रिय अनादि अनन्त, भव्य आश्रिय अनादि संत, पडवाइ आश्रिय सादि संत जाननी. २ फिर सास्वादन गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय का बंध नहोनेसे २१ प्रकृत्तिका बंध होता है, इसकी स्थिति जघन्य १ समय उत्कृष्ट ६ आंवलीका ३ फिर मिश्र और अविराति गुणस्थान में अनंतान वंधि चौक का बंध नहीं होने से १७ प्रकृत्तिका बंध होता है, इस की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्ट तेंतीस सागर पृथक × पूर्व कोडी वर्ष अधिक; क्योंकि अनुत्तर विमान वासीदेव चवकर जहां लग विरति पणा आङ्गि कार नहीं करे जहां तक यह बंध स्थान रहता है. । ४ फिर देशविरति गुणस्थान में अप्रत्याख्यानी चौक का बंध नहीं होने से तेरे प्रकृत्तिका बंधस्थान होता है, इसकी स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्ट पुर्व क्रोडी वर्ष । ५ फिर प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में प्रत्याख्यानी चौक का वध नहीं होने से ९ प्रकृत्तिका बंध होता है. इसकी स्थिति जघन्य एकही समय कीं क्योंकि कोइ जीव फक्त एक समय मात्र परिणाम से सर्व विराति पणे में रह कर दूसरे समय में मर जाताहै, इस अपेक्षासे और नहीं तो जघन्य अन्तर मूहूर्त उत्कृष्ट देशऊणा पूर्व क्रोडि वर्ष की. । ६ फिर नववे गुणस्थान में हॉस्य, रति, भय, और दुगछा, इन चारों प्रकृत्तियोंका बन्ध नहीं होनेसे ५ प्रकृत्तिका बन्धस्थान, । ७ इस में से पुरुष वेदका बंधन व्यच्छेद होते ४ प्रकृत्तिका बंधं स्थान ॥ ८ इसमें से संज्वल के क्रोधका बंध व्यच्छेद होते ३ प्रकृति का बंध स्थान, । ९ इस में से संज्वल का मान का बंध व्यच्छेद होते २ प्रकृति का बंध स्थान. । और १० इसमें से भी संज्वल की माया का बंध व्यच्छेद होते एक प्रकृति का बंध स्थान. । छट्टे से लगा दशवे स्थान तक की जघन्य स्थिति एक समय

× इस शब्द परसे विचार होता है कि जैसे सो वर्ष की वय होवे उसवक्त ९ वर्ष में विज्ञान अवस्था प्राप्त हुइ गिनी जातीहै. तैसेही क्रोड पूर्वकी उम्भर की वक्तभी ९ पूर्व उंम्मर हुवे वाद विज्ञानही अवस्था प्राप्त होती होगी.

की, और उत्कृष्ट स्थिति अंतर मुहुर्त की जानना. क्योंकि-कोइक जीव श्रेणि में बंध स्थान एक ही वक्त स्पर्श कर मरण पावे, इस अपेक्षा से. ॥ इन १० स्थानों मे -९ भूयस्कार, ८ अल्पतर, १० अवस्थित, और २ अव्यक्त बंध होते हैः—सो कहते हैं जीवों औपशम श्रेणि चडकर इग्यारवे गुणस्थान में अंतर मुहूर्त रहकर, पडकर दशवे गुणस्थान में आवे वहां भी मोहनीय का अबंध रहे, वहां से पडता नववा गुणस्थान के पांचवे भाग में एक संज्वल के लोभका बंध करती वक्त प्रथम समय पाहिला अव्यक्त बंध, और आयुक्षय होने से-इग्यारवे गुणस्थान में मरण कर अनुत्तर विमान में देवता होवे सो प्रथम १७ प्रकृति का बंध करे, उस के पहिले दुसरा अव्यक्त बंध. (यह दो अव्यक्त बंध) नववे गुणस्थान के पाच भाग से पडते चौथे भाव में संज्वलकी माया के साथ दो प्रकृति का बंध करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, तीसरे भाग में संज्वल के मान के साथ तीन प्रकृति का बंध करते प्रथम समय दुसरा भूयस्कार, दुसरे भाग में संज्वल के क्रोध के साथ चार प्रकृत्ति का बंध करते.तीसरा भूयस्कार, प्रथम भाग में पूरुष वेद सहित पांच प्रकृतिका बंध करते चौथा भूयस्कार. वहांसे आठवे गुणस्थान के अंतिम भाग में हास्य, रति, भय, दुर्गच्छा सहित नव प्रकृति का बंध करते पांचवा भूयस्कार. वहांसे देश विरति गुणस्थान में प्रत्याख्यानवरणीय की चार प्रकृत्ति सहित तेरा प्रकृत्तिका बंध करते छठा भूयस्कार, वहां से चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणीय चार कषाय सहित सत्तरे प्रकृत्ति का बंध करते सातवा भूयस्कार, अनंतान वन्धिकीचार कषाय सहित २१ प्रकृत्ति का बंध करते आठवा भूयस्कार. मिथ्यात्व मोहनीय सहित बावीस प्रकृत्तिका बंध करते नववा भूयस्कार,(यह९भूयस्कार बंध) मिथ्यात्व गुणस्थानमें बावीसका बंधकर चौथे गुणस्थानमें सत्तरेका बंध करते प्रथम अलपतर, फिर सतरे से तेरे प्रकृत्ति का बंध करते दुसरा अलपतर, यों उपर भूयस्कार बंध सब उलट कहने. इस में विशेष इतना हैकि-इक्कीस प्रकृत्ति का अलपतर बंध नहीं होता है, क्यों कि-मिथ्यात्व गुणस्थान से सास्वादन में कोइ भी जीव नहीं आता है. सा स्वादन गुणस्थान तो नियमासे सम्यक्त्व का पडवाइ ही स्पर्शता है. इसलिये २२ के बंध से २१ के बंध में आनेका अलपतर बंध नहीं होता है, बाकी के ८ होते हैं. (यह ८ अलपतर बंध) । और उपर जो मोहनीय बंध के दशास्थान कहे उसमेसे प्रथमका छोड कर बाकीके अंतिम समय पर्यंत रहे सोही दश अवस्थित बंध जानना.

नाम कर्म के ८ वन्ध स्थानः-(१) मिथ्यात्वी जीव मनुष्य तिर्यंच अपर्याप्ताए-केन्द्रिय, प्रायोग्य-१, वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्श, ५ तेजस, ६ कार्माण, ७ अगुरुलघु, ८ निर्माण, ९ उपघात, १० तिर्यंच गति, ११ तिर्यंचानु पूर्व्वी, १२ एकेन्द्रिय जाति, १३ औदारिक शरीर, १४ हुंड संस्थान, १५ स्थानवर नाम, १६ बादर, नाम, अथवा ÷ सूक्ष्म नाम, १७ अपर्याप्ता नाम, १८ प्रत्येक नाम, अथवा-साधारण नाम, १९ अस्थिर नाम, २० अशुभ नाम, २१ दौर्भाग्य नाम, २२ अनादेय नाम, और २३ अयशःकीर्ति नाम, इन २३ प्रकृतिका प्रथम वन्ध स्थान. (२) इन २३ में पराघात नाम और उश्वश नाम यह दोनों प्रकृत्ति मिलाने से और अपर्याप्ता के स्थान पर्याप्ता कहने से यह २५ प्रकृत्ति पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी देव मनुष्य तथा तिर्यंच बान्ध तेहैं; (३) इन २५ प्रकृत्ति मे आताप नाम, अथवा उद्योत नाम इन दोनों में से एक नाम मिलाने से २६ प्रकृत्तिका वन्ध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य तीनों गतिके मिथ्यात्वी जीवों बान्ध तेहैं. (४) २ देव द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, (४) वैक्रिय शरीर, ५ वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, ६ सम चतुरस्र संस्थान, ७ पराघात नाम, ८ उछ्वास नाम, ९ शुभख गति, १० त्रस, नाम ११ बादर नाम, १२ शुभ पर्याप्ता नाम, १३ प्रत्येक नाम, १४ स्थिर अथवा अस्थिर नाम, १५ शुभ अथवा अशुभ नाम, १६ यःकीर्ति अथवा अयशःकीर्ति नाम, १७ सुभग नाम, १८ सुस्वर नाम १९ आदेय नाम, २३ वर्णचतुष्क, २४ तेजस शरीर, २५ कार्मण शरीर, २६ अगरुलघु नाम २७ निर्माण नाम. और २८ उपघात नाम. यह २८ प्रक्रात्ति देवगति प्रायोग्य मिथ्यात्वी तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच बान्ध तेहैं. और ऐसेही नरक गति प्रयोग्य भी २८ काही वन्ध होता है, जिसमें विशेष इतना है कि-देव द्विक के स्थान नरक द्विक कहना, समचतुरस्र संस्थान के स्थान हुंड स्थान कहना, और अपरावर्त मान प्रकृत्तियों अशुभ गृहण करनी. यह २८ प्रकृत्तियों का चौथा स्थान हुवा. (५) सम्यग्दृष्टि जिन नाम सहित देव प्रायोग्य २८ का वन्ध करते २९ का वन्ध स्थान होता है. अथवा २ मनुष्य द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक, ६ छे-संघयण में का एक संघयण, ७ छेस्थान में का एक सस्थान; ८ त्रस, ९ बादर, १० पर्याप्ता, ११ प्रत्येक, १२ स्थिर अथवा अस्थिर. १३ शुभ अथवा, अशुभ, १४ सौभाग्य अ-

÷जहां दोदो प्रकृत्तिके साथ नाम अथवा प्रत्यय लगाकर लिखेहे वहां कौनसी भीकेए लना.

थवा दौर्भाग्य. १९ सुस्वर अथवा दुस्वर, १६ आदेय अथवा अनादेय १७ यशःकीर्ति अथवा अयशःकीर्ती १८ शुभस्व गति अथवा अशुभ खगति, १९ पराघात, २० उच्छ्वास, २४ वर्णचतुष्क, २५ तेजस शरीर, २६ कार्मण शरीर, २७ अगरू लघु, २८ निर्माण, और२९उपघात, यह२९प्रकृत्तिका मनुष्य प्रायोग्य बंधस्थान होता है.६ देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृत्तिके साथ आहारक द्विक सहित ३० प्रकृत्ति का बंध अप्रमत साधु के होता है और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृत्ति का जिन नाम सहित ३० प्रकृत्तिका बंध सम्यगदृष्टि देवता के होता है. (७) जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३० प्रकृत्ति बांधते ३१ प्रकृत्तिका बंध अप्रमत व अपूर्व करण गुणस्थानी मुनिके होता है (८) और आठवे गुणस्थान के छट्टे भाग में नाम कर्म की ३० प्रकृत्ति का बंध विच्छेद कर फक्त एक यशःकीर्ति काही बंध करे. । इन ८ बंध स्थान में भूयस्कार बंध ६, अल्पतर बंध ७, अवस्थित बंध ८, और अव्यक्त बंध ३, होते है सो कहते हैः— (१) प्रथम २३ का बंध कर तथा विधि शुद्धि कर २५ प्रकृत्तिका बंध करे सो प्रथम भूयस्कार बंध मिथ्यात्वी के होता है. (२) इन २५ प्रकृत्ति को आताप अथवा उद्योत दोनों में की एक प्रकृत्ति सहित २६ प्रकृत्ति बांधे सो दूसरा भूयस्कार. (३) विशुद्धया संक्लेष परिणामों से देव प्रायोग्य अथवा नरक प्रायोग्य २८ प्रकृत्ति का बंध करते तीसरा भूयस्कार. (४) देव प्रायोग्य २८ प्रकृत्तिका जिननाम सहित २९ का बंध करे सो चौथा भूयस्कार. (५) ३० प्रकृत्ति मनुष्य प्रायोग्य अथवा देव प्रायोग्य बांधे सो पांचवा भूयस्कार. (६)देव प्रायोग्य ३० प्रकृत्ति को जिन नाम सहित ३१ का बंध करे सो छट्टा भुयस्कार (यह ६ भूयाकार) और (१) अपूर्व करण गुनस्थान में देव गति योग्य—२८—२९—३०—और ३१ का बंध कर श्रेणि चडते हुवे इस बंध का व्यच्छेदकर एक यशःकीर्ति काही बंधन करे सो प्रथम अल्पतर बंध.(२) कोइ आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ प्रकृत्तिका बंध करते मरकर देवलोक में जावै वो वहां प्रथम समय मनुष्य प्रायोग्य ३० प्रकृत्ति का बंध करे तव दूसरा अल्पतर. [३] देवलोक से चवकर मनुष्यपणें उत्पन्नहो जिन नाम सहित देवगति प्रायोग्य २९ का बंध कर उसके प्रथम समय तीसरा अल्पतर बंध [४] कोइ मनुष्य देवगति प्रायोग्य २९ प्रकृत्ति का बंध करता विशुद्ध परिणामों कर देवगति प्रायोग्य २८ का बंध करे उसके प्रथम समय चौथा अल्पतर बंध. (५) इनही २८ का बंध करते संक्लेश परिणाम कर एकेन्द्रिय प्रयोग्य २६ का बंध करे सो पांचवा अल्पतर बंध. ६ यही २६

वाला २९ बांधे सो छट्टा अल्पतर. (७) और २९ वाला २३ का बंध करे सो सातवा अल्पतर बंध. (यह ७ अल्पतर बंध) और ऊपरोक्त आठों बंध के स्थानक में दूसरे समय से लगा कर अन्तिम समय तक आठोंही अवस्थित बंध जाणना. (यह ८ अवस्थित बंध) और [१] श्रेणिसे पडते हुवे. नाम कर्म का सर्वथा अबन्ध होकर. फिर यशःकीर्ति नाम का बन्ध करे उसके पहिले समय पहिला अव्यक्त वन्ध. [२] उपशान्तमोह गुणस्थान में आयुष्य पूर्ण कर अनुत्तर विमान में देवता होवे वहां प्रथम समय मनुष्य से मनुष्य प्रयोग्य २९ का बन्ध करे सो दूसरा अव्यक्त बन्ध, और (३) वाहांही जिन नाम सहित ३० प्रकृत्तिका बन्ध करे सो तीसरा अव्यक्त बन्ध. [यह ३ अव्यक्त बंध] ॥ इति प्रकृति बंध. ॥

स्थिति-बन्ध.

स्थिति बंध के ४ भाङ्गे;-ऊपरोक्त प्रकृत्ति बंधमें मूल प्रकृत्तिका तो जघन्य एक का वन्ध है, उत्कृष्ट ८ का वन्ध है. और उत्तर प्रकृत्ति का जघन्य एक का बन्ध है, उत्कृष्ट ७४ का वन्ध है इसमें:-१ अनादि, २ सादि, ३ अनन्त, और ४ सान्त; यह ४ भॉगे कहते हैं:-मूल प्रकृत्ति वन्ध का ओघसे (समुचय) एक सादि सान्त भांगा पाता है, क्योंकि-भवो भवमें एकही वक्त आयुष्य का बन्ध होता है, यह (८) का वन्ध कहा. और वाकीके कालमें सात प्रकृत्तिका वन्ध होताहै. और उत्तर प्रकृत्तिमें ज्ञानावरणीय और दर्शना वरणीय का ऐके का बन्ब स्थान, वेदनीय का-एक का बन्ध. मोहनीय का २२का बन्ध, गौत्रका एक कबन्ध, और अन्तरायका पांच कावन्ध. इन वन्धों में-१ अभव्यकी अपेक्षा अनादि अनन्त भांगा, २ भव्यकी अपेक्षा अनादि सन्त भांगा, और ३ पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त भांगा. यों तीन भांगे मिलते हैं, और वाकी रहे सर्व प्रकृत्तियों के स्थान में फक्त एक सादि सान्त भांगा पाता है.

अठों कर्मोकी स्थितिः-(१-२) ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की दशवे गुणस्थान के प्रान्त में होती है, और उत्कृष्ट तीस कोडा कोडी सागरोपम की उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी मिथ्यात्वी के होती है. (३) वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की सो इग्यारवा, वारवा और तेरवा इन तीनों गुणस्थानों को छोड वाकी के सरागी गुणस्थानो में पाती है. क्योंकि-इन तीनों गुणस्थानों में कषाययोदय नहोने से स्थिति बन्ध और रस बन्ध नहीं होता है, फक्त योग प्रत्यय प्रदेश बन्ध तथा प्रकृत्ति बन्ध पाता है. सो भी

प्रथम समय में बन्धे, द्वितीय समय में वेदे (भोगवे) और तीसरे समय में वीनाशही पाजाताहै. और उत्कृष्ट स्थिति तीस क्रोडा क्रोडी सागरो पमकी (४) मोहनीय कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की बादर सम्पराय नववे गुणस्थान के प्रान्त में होती है और उत्कृष्ट स्थिति ७० क्रोडा क्रोडी सागरोपम की, महा संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यत्वी के होती है. [५] आयुष्य कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की पाहिले दुसरे गुणस्थान में होवे, और उत्कृष्ट ३३सागरोपम की मिथ्यात्वी अत्यन्त संक्लेश परिणाम से नरकायु बान्धता है, और प्रमत अप्रमत मुनि विशुद्ध परिणामों कर देवायु बन्धते हैं (६-७] नाम कर्म और गौत्र कर्म की जघन्य स्थिति ८ मुहूर्त की सो सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के प्रान्त में बन्धे, और उत्कृष्ट २० क्रोडा क्रोडी सागरोपम की.

आठोंही कर्मो की १४८ प्रकृत्ति की अलग २ स्थिति कहते हैं:-

१ ज्ञानावरणीय कर्म की-पांचों प्रकृति की जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त की सूक्ष्म समपराय गुणस्थात के प्रांत में परिणामों की विशुद्धता से होती है, और उत्कृष्ट तीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम की मिथ्यात्वी के होती है,

२ दर्शनावरणीय कर्म की - चक्षु दर्शनावरणीय आदि चारों प्रकृत्ति की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त की सो सूक्ष्म सम्पराय के प्रांत में. पाचों निद्रा की एक सागर के सात भाग करीये जिस में के दो भाग उस में पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम जाननी, एकेन्द्रिय की अपेक्षा से, उत्कृष्ट ९ ही प्रकृति की ३० क्रोडाक्रोड सागर

३ वेदनीय कर्म की-साता वेदनीय की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की, असाता वेदनीय की एक सागर के सात भाग करीये उस में के दो भाग जिस में पल्योपम का असंख्यातवा भाग कम. और उत्कृष्ट. साता वेदनीय की १५ क्रोडा क्रोडी सागरोपम, असात वेदनी की तीस क्रोडा कोडी सागरोपम की.

४ मोहनीय कर्म की–मिथ्यात्व मोहनीय की-जघन्य स्थिति-एक क्रोड सागरोपम में पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम की. अनंतानबंधी, अप्रत्याख्यानि, प्रत्याख्यानि इन तीनों चौक के १२ कषाय की एक सागर के सातीये चार भाग की. संज्वल के क्रोध की नववे गुणस्थान के दुसरे भाग में चरम बंध दो महिना का संज्वल के मान का नववें गुणस्थान के तीसर भाग में चरम बंध एक महीने का, संज्वलकी माया का नववे गुणस्थान के चौथे भाग में चरम बंध १५ दिनका, संज्वल के लोभ का नववे गुणस्थान के पंचवे भाग में चरम बंध अंतर मुहूर्त का, पुरूष वेदका नववे

गुणस्थानके प्रथम भागमें चरम बंध ८ वर्ष का, स्त्रीवेदका एक सागर के चौदवे-तीन भाग का, नपुंसक वेदका एक सागर के चौदवे दोभाग का, हांस्य और रतिका एक सागर के सातीया-एक भाग का, अरति भय शोग दुर्गच्छा का एक सागर के साती ये दोभाग का, [यह २६ प्रकृत्तिका वन्ध हुवा. सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय का वन्ध पडता नहीं है, इसलिये गिना नहीं है] और उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व मोहनीय की ७० क्रोडा क्रोडी सागरोपम, चारोंही चौकडी की १६ कषाय की ४० क्रोडा क्रोड सागरोपम, पुरुष वेदकी १० क्रोडा क्रोड सागर. स्त्रीवेदकी १५ पन्दर क्रोड क्रोड सागर, नपुंसक वेदकी २० क्रोडा क्रोड सागर. हॉस्य और रतिकी १० क्रोडा क्रोड सागर. अरति भय शोक दुर्गच्छा की २० क्रोडा क्रोड सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति जानना.

५आयुष्य कर्मकी--नरकायु देवायु की जघन्य स्थिति दशहजारवर्ष, उत्कृष्ट३३ सागारोपम. मनुष्य तिर्यच की जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम (जुगलीये आश्रिय.)

६ नाम कर्म की-जघन्य स्थिति जिन नाम की अन्तर मुहूर्त की, २ + आहारक शरीर, ३ आहारक अङ्गो पाङ्ग, ४ आहारक संघातन, आहारक वन्धन, ६ आहारक तेजस बधन, ७ आहारक कार्मण बंधन, ८ आहारक तेजस कार्मण वन्धन, इस आहारक सप्तककी उत्कृष्ट स्थितिसे असंख्यात गुण हीनी, तोभी अन्तर मुहूर्तकी. ९य शःकीर्ति की ८ मुहूर्त की. १३ त्रस चतुष्क, १९ अस्थिषटक, २१ औदारिक द्विक, २३ तिर्यच द्विक, २४ एकेन्द्रिय जाति, २५ कुखगाति, २६ निर्माण, २७ आताप, २८ उद्योत, २९ स्थावर, ३० तैजस, ३१ कार्मण, ३२ अगुरुलघु, ३३ उपघात, ३४ उच्छ्वास, ३५ हुंडसंस्थान, ३६ छेवटा संघयण, ३७ कृष्णवर्ण, ३८ तीक्षणरस, ४२ अशुभ स्पर्श्य चतुष्क, ४३ दुर्गंध, और ४४पराघात नाम इन४४ प्रकृत्ति की जघन्य स्थिति एक सागर के सातीये दोभाग की, ४५ सूक्ष्म त्रिक, ५० विकेन्द्रिय त्रिक, इन ६ की एसागर के पेंत्रीसी (३५) ये ६ भाग की. ५१ स्थिर, ५२ शुभ, ५३ सुभग, ५४ सुस्वर, ५५ आदेय, ५६ अयशःकीर्ति. ५७ शुभख गाति. ५८

+तीर्थंकर नाम कर्मके दालिये भेले किये औरवोजो कभी अन्तर मुहुर्त वाद उदय भाव को प्राप्त होजावे तो वो दालिये क्षय न होवे वहातक उस जीव की यश कीर्ती बहूत विस्तरे वचन आदेय आदि शुभगूणों वढे

प्रथम संघयण, ५९ प्रथम संस्थान, ६० शुक्लवर्ण, ६१ मिष्टरस, ६५ शुभ स्पर्शचतुष्क इन १५ प्रकृत्तिकी-एक सागर के अठावीसीये ५ भागकी. इन सिवाय और जिस नाम कर्म की स्थिति २० क्रोडा क्रोड सागर की है, उनकी जघन्य स्थिति सागरोपम के सातीये दो भागकी जाननी. जिनकी स्थिति दश क्रोडा क्रोड सागरोपमकी है उनकी सागरापम के सातीये एक भाग की. जिनकी पन्दरह क्रोड क्रोड सागरो पमकी है उनकी जघन्य सागरोपम के चौदवे १ भाग की, जिनकी उत्कृष्ट १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम की है उनकी जघन्य सागरोपम के पेंत्रीसये ९ भागकी की जानना. परन्तु सर्व स्थान पल्योपम का असंख्यातवा भाग हीन (कमी) लेना.' एसी तरह नाम कर्म की, जघन्य स्थितिका प्रमाण करना। अब उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं:-१. सूक्ष्म, २ साधारण, ३ अपर्याप्ता, ६ विकेन्द्रियत्रिक, इन ६ प्रकृत्तिकी १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम की ७ वज्रऋषभ नाराच संघयण, समचतुरस्र संस्थान इनदोनों की दश क्रोडा क्रोड सागरोपम की, ९ न्यग्रोध संस्थान, १० ऋषभ नाराच संघयण इन दोनों की १२ क्रोडा क्रोड सागर. ११ नाराच संघयण, १२ सादि संस्थान इनदोनों की १४ क्रोडा क्रोड सागर. १३ अर्धनाराच संघयण, १४ वामन संस्थान, इन दोनों की १६ क्रोडा क्रोड सागर. १५ किलिका संघयण, १६ कुब्ज संस्थान, इन दोनों की १८ क्रोडा क्रोड सागर. १७ छेवटा संघयण, १८ हुंड स्थान इन दोनों की २० क्रोडा क्रोड सागर १९ मृदुस्पर्श. २० लघुस्पर्श, २१ स्निग्धस्पर्श, २२ उष्णस्पर्श, २३ सुर्भिगन्ध, २४ श्वेतवर्ण, २५ मधुर रस, इन ७ प्रकृत्तिकी १० क्रोडा क्रोड सागर. २६ हरावर्ण, २७ अम्लान रस, की साडी बारा क्रोडा क्रोडी सागर. २८ रक्तवर्ण, २९ कषायलारसकी १५ क्रोडा क्रोडी सागर. ३० पितवर्ण, ३१ कटुरस की साडी सतरे कोडा कोड सागर. ३२ श्यामवर्ण, ३३ तीक्षण रसकी २० कोडा कोडा सागर. ३४ शुभ विहाय गति, ३५ देवगति, ३६ देवानुपूर्वी, ३७ स्थिर; ३८ शुभ, ३९ सौभाग्य, ४० सुस्वर, ४१ आदेय, ४२ यशःकीर्ति, इन ९ प्रकृत्ति की—१० कोडा कोड सागर. ४३ मनुष्य गति, ४४मनुष्यानु पूर्वी की १५ कोडा कोड सागर,४५ वैक्रिय शरीर,४६ वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, ४७ वैक्रिय संघातन, ४८ वैक्रिय वैक्रिय बन्धन, ४९ वैक्रय तेजस बन्धन, ५० वैक्रय कार्मण बन्धन, ५१ वैक्रिय तेजस कार्मण बन्धन. ५२ तिर्यंचगति, ५३ तिर्यंचानु पूर्वी, ५४ औदारिक शरीर, ५५ औदारिक अङ्गो पाङ्ग, ५६ औदारिक संघातन ५७ औदारिक औदारिक बंधन, ५८ औदारिक तेजस बंधन,

५९ औदारिक कार्मण बंधन, ६० औदारिक तेजस कार्मण बंधन, ६१ नरक गति ६२ नरकानु पूर्व्वी, ६३ तेजस शरीर, ६४ कार्मण शरीर, ६५ अगरुलघु ६६ निर्माण, ६७ उघात, ६८ तेजस संघातन, ६९ कार्मण संघातन, ७० तेजस तेजस बंधन, ७१ कार्मण कार्मण बंधन, ७२ तेजस कार्मण बंधन, ७३ अस्थिर, ७४ अशुभ ७५ दौर्भाग्य, ७६ दुस्वर, ७७ अनादेय, ७८अयशःकीति, ७९ त्रस, ८० बादर, ८१ पर्याप्ता, ८२ प्रत्येक, ८३ स्थावर, ८४ एकेंद्रिय जाति, ८५ पचेंन्द्रियजाति, ८६ अशुभ विहायो गति, ८७ उच्छ्वास ८८ आताप, ८९ पराघात ९१ गुरु स्पर्श, ९२ कठोर स्पर्श, ९३ रुक्षस्पर्श्य, ९४ शीत स्पर्श, और ९५ दुर्गन्ध, इन ५० प्रकृत्ति की २० क्रोडा क्रोड सागर. ९६ तीर्थ कर नाम. ९७ आहारक शरीर, ९८ आहारक अङ्गोपाङ्ग, ९९ आहाराक संघातन १०० आहारक आहारक बंधन, १०१ आहारक तेजस बंधन, १०२ आहारक कार्मण बंधन, १०३ आहारक तेजस कार्मण बंधन. इन ८ प्रकृत्तिकी-एक क्रोडा क्रोड सागर की स्थिति.

७ गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति ८ मुहूर्त की, उत्कृष्ट ऊंच गोत्र की १० क्रोडा कोड़ सागर की और नीच गोत्र की २० क्रोडा क्रोड सागर की.

८अंतराय कर्म की पांचों अंतराय की-जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त की, उत्कृष्ट—तीस कोडा कोड सागर की.

यह १४८ प्रकृत्ति जघन्य उत्कृष्ट स्थिति जाननी.

उत्कृष्ट स्थिति बंधके श्वामी-पहिले नरकयुका बंध किया हुवा मनुष्य क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थंकर नाम कर्म की उपार्जना करे, और फिर पूर्व बंधानुसार नरक में गमन करते सम्यक्त्व का वमन करता अंतिम समय में तीर्थंकर नाम की उत्कृष्ट स्थिति का बंध करते हैं. और आहारक द्विक का उत्कृष्ट स्थिति बंध अप्रमत गुणस्थान चरम बंध मुनि के होता है. क्योंकि-इस बंध में येही अति संक्लिष्टहैं. और देवायु तो प्रमत गुणस्थान में आयु बंध का आरंभ कर अप्रमत गुणस्थान में चडते हुवे साधु के होता है, क्योंकि-शुभ आयु बंध के स्थानक में येही अति विशुद्ध स्थानक. है इन चारों प्रकृत्ति सिवाय वाकी की प्रकृत्तियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध सज्ञी पर्याप्ता मिथ्यात्व दृष्टिके होता है. क्योंकि मनुषायु और तिर्यंचायु विना बाकी की सब प्रकृत्तियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम से होता है, और मिथ्यात्वी से अधिक कोइ संक्लेश परिणामी होता नहीं है, इसलिये. इस में भी असं-

ख्यात अध्य वसाय के स्थानक होते हैं परन्तु जिस आयुबन्ध में जैसे अध्यवसाय की जरुर होवे वैसेही वहां समझना.

अनुभाग (रस) बन्ध.

यथादृष्टांत—जैसे लींब आदि किसी कटुक पदार्थ का एक शेरभर रस सो-'एक ठाणीथाकटु,' उसे अग्निपर उकालने से तीन पाव रहने से कटुकता अधिक वढीसो "दो ठाणीया कटुतम रस और उसेभी विशेष उकालते आधा शेर रहे सो-त्रिठाणीया कटुतमरस और उसे भी विशेष उकालते पावभर रहे तव विशेष कडुवा होजाय सो-"चौठाणीया तीव्र कटुरस" जाणना. ऐसेही ८२ पाप प्रकृत्ती बन्ध के रस में- संज्वल की कषाय से एक ठाणीया कटुरस प्रगमता है, प्रत्याख्यानीया कषाय से दोठाणीया कटुतर रस प्रगमता है, अप्रत्याख्यानी कषाय से तीठाणीया कटुतर रस प्रमता है. और अनन्तान बन्धि कषाय से चौठाणीया तीव्रकटु रस प्रगम ताहै. ऐसे-कषाय बृद्धिसे अशुभ रस में गुणबृद्धि होती है.

और उस पावभर रहे तीव्रकटु रसमें पावभर पाणी मिलाणेसे कटुतामें मंदता होतीहै, अधेशेर पाणी मिलानेसे विशेष मंदता ताहोतीहै, तीनपाव पाणी मिलाणेसे विशेष मंदतमता होतीहै और शेरपाणी मिलानेसे अत्यंतमंद कटुता होतीहै, तैसेही८२पाप प्रकृत्तियोंका अनंतानबांधिकर संचित दलियों में-अप्रत्याख्यनी कर मंदता, प्रत्याख्यानीकर मंदतरता, और संज्वल कर अत्यंत मंदता होजाती है.

ऐसेही शेलडी-इक्षु आदि मिष्ट पदार्थका-शेरभर रस अग्निपर उकालनेसे तीनपाव रहे.वत मिष्टता अधिक होतीहै आधशेर रहे तव अमिष्टतम विशेषाधिक होवे, और पावभररहे तव तीव्र मिष्टता होजातीहै, तैसेही वयालीस पुण्य प्रकृत्ति के बंधमें अनंतानवंधी कर÷दोठाणीया, अप्रत्याख्यानी ख्यानी कर तीठाणीया, प्रत्याख्यानी या संज्वल कर चौठाणीया-तीव्र मिष्ट रस प्रगमता है. कषाय की मंदता से आधिक सुख दाता होता है,

और पाव भर इक्षुरस मे पावभर पाणी मिलाणे से मिष्टता मंदहो तीहै, अधशेर पाणी मिलाणे से आधिक मंदतर होती है. तीन पाव मिलाणे से विशेष मंद तम हो

÷ ४२ पुण्य प्रकृत्तिका एकठाणिया रस बंध कदापि नहीं होता है. इसलिये दो ठाणियाहीं रस कहा है. परन्तू अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामों कर दो ठाणीये रस को एक ठाणीया कर-उदेरते-वेदते है.

तीहै. और शेरभर पाणी मिलाणीसे बिलकूलही फिंकास आजाति है. तैसेही संज्वलकी कषाय कर सञ्चित की ४२ पुण्य प्रकृत्तियोमें प्रत्याख्यानी कर मन्दता, अप्रत्याख्यानी कर विशेष मन्दता, और अनन्तान बन्धी कर तो नष्टता जैसीही होजाती है.

☞ पाठक गणों! यह ऊपरोक्त कथन बहूत दीर्घ दृष्टिसे मनन पूर्वक उपादेय-गृहण करने योग्य है.

कर्म प्रकृत्तियों में रसका खुलासा-पांचों अन्तराय और केवल द्विक छोड कर-बाकी की ४ ज्ञानावरणीय, ३ दर्शनावरणीय, ४ संज्व लनक+चौक, १ पुरुषवेद, यों १२ प्रकृत्ति का रस एक दो तीन जावत् चौठाणीया यों चारोंही तरह का रस प्रगमताहै, एक ठाणीयां रसतो नवत्रे गुणस्थान के संख्याते भाग गयेबाद प्रगमताहै—बन्ध ताहै. और उससे नीचे के गुणस्थान में दोठाणीया तीठाणीया चौठाणीया रसका बंध होता है. और इन १२ प्रकृत्तिको छोड बाकी की बन्धकी ९१ प्रकृत्ति रही उनका दोठाणीया आदिक रसबन्ध होताहै, परन्तु एकठाणीया रसबन्ध नहीं होताहै, क्योंकि-उनमेंजो अशुभ ६९ पाप प्रकृत्ति है उनका बन्ध नववे गुणस्थान में हो ताही नहीं है, और जो ४२ पुण्य प्रकृत्तिहै उनका रसबन्ध एक ठाणीयां होता नहीं है, क्यों कि-असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण संक्लेश के स्थान है. और उससे कुछ अधिक विशुद्ध के स्थान है, यह दोनों यद्यपि तुल्य बराबर है तथापि विशुद्धि के स्थान तो कुछ अधिकही होतेहैं. जैसे उपशम श्रेणिमें जितने विशुद्धिके स्थानकसे चडते हैं, तैसेही पडती वक्त उतनेही स्थान से पडते हैं, यथादृष्टान्त आवास के जितने चडनेके पंक्तिये होते हैं, उतनेही उतरने के होतेहैं, परन्तु क्षपकश्रेणि कर जो विशुद्धिके स्थान को से चडता है, वो पीछा उतरता नहीं है, इस कारण से इतनेही संक्लेशके स्थानक से विशुद्धिके स्थान ज्यादा हैं. तब आत्म फते पाता है.

रागादि के वशीभूत होकर जीव सिद्ध भगवन्त के अनन्त में भाग कम और अभव्य जीवों से अनन्त गुण अधिक इतने परमाणु से निष्पन्न कर्म स्कन्ध के दलिक अलग २ समय २ ग्रहण करता है. उनदलियों के प्रत्येक परमाणु में कषाय विशेषकर सर्व जीवों से अनन्त गुण अधिक अनुभाग अर्थात्-रस विभाग पलीच्छेद होते

÷ ऊपर जो संज्वल का एक ठाणीया रस कहा सो स्थूल नय से कहा, परन्तु विशेष दो ठाणीया आदि होताहै.

हैं. जिसकी यह संक्षेप व्याख्या है.

जगन्य रस वन्ध के स्वामी कहते हैं:-३ थीण त्रिक, ४ अनन्तान वन्धि चौक, और १ मिथ्यात्वमोह. इन आठों प्रकृत्तिका मन्द रस वन्ध (अत्यन्त जघन्य रस वन्ध) के अधिकारी चारित्र के सन्मुख हुवे (आगे सम्यक्त्व युक्त चारित्र की प्राप्ति करेंगे ऐसे) अनिवृत्ति करण के चरम समय में वर्तते मिथ्यात्वी मनुष्य जानना, क्यों कि-इन आठों प्रकृत्तियों के बन्ध केलिये इतनी विशुद्धता दूसरे स्थान में नहीं मिलती है, जो कदापि मिथ्यात्वी से सास्वादनी के परिणाम विशुद्ध हैं, तथापि सास्वादनी तो पडवाइही होता है. इसलिये संक्लिष्टही कहा जाताहै. और यह ८ आठोंही पाप प्रकृत्तिहै, इनका मन्द रस वन्ध विशुद्धि मेंही होता है. और वो विशुद्धावस्थाय ग्रन्थी भेद करते होता है, उसमें भी सम्यक्त्व सहित चारित्र गृहण करने वालेकी विशुद्धिं किंमधिक्तही होती है. इसलिये इन्हे गृहण कियाहै. और सम्यक्त्व गृहण किये वाद तो इन ८ प्रकृत्ति का अवन्ध है. या चारित्र गृहण करने के अधिकारी मनुष्य ही होते हैं, इसलिये यहां मनुष्यही कहे हैं परन्तु देवतादिक नाही कहा. । अप्रत्याख्याना वरण चौक के जघन्य रस वन्ध के अधिकारी जो आगे को संयम अङ्गीकार करेंगें ऐसे आविराति सम्यग् दृष्टि जानना. क्योंकि इसके वन्ध में इस से अधिक विशुद्ध और दूसरा स्थान नहीं है + । प्रत्याख्याना वरणीय के मन्द रस करने वाले संयम सन्मुख हुवे देशाविराति (श्रावक) जानना. अविरति से देशाविरति की विशुद्धि अनन्त गुण अधिक है. । अराति और शोक मोहनीय के जघन्य रस वन्धने वाले प्रमत गुणस्थान वर्ती साधु जो आगे को अप्रमत होवेंगे सो जानना. अप्रमत में इन दोनों का वन्ध नहीं है. । आहारद्विक के वन्धाधिकारी अप्रमादि साधु अप्रमत गुणस्थान को प्राप्त होने वाले संक्लेश परिणामी जानना, क्योंकि-यह दोनों पुण्य प्रकृत्ति है, इनका मन्द रस वन्ध संक्लेश परिणामों सेही होता है. अप्रमादि जीवों इससे विशुद्ध होने के सवव से गृहण नहीं किये. । निद्रा, प्रचला, निद्रा निद्रा. अशुभ वर्ण चतुष्क, हांस्य, रति, दुगंच्छा, भय, और उपघात. इन १२ प्रकृत्ति में से १० प्रकृत्ति

+ यहां कितनेक देशाविरति संयम के सन्मुख हुवे को वताते हैं, परन्तु देशाविरति के सन्मुख होनेसे सर्व विरति के सन्मुख होनेकी विशुद्ध अधिक होनेके सवव से यहां ग्रहण किया है. तत्व केवली गम्य.

का जघन्य रसवन्ध तो आठवे गुणस्थान के सात भाग में से छट्टे भाग के प्रान्त समय में जानना. और निद्रा तथा प्रचलाका जघन्य रस वन्ध आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग में अपणे बन्ध के प्रवन्ध व्यावछेद से प्रथम समय होता है, यहां उपशम श्रेणि प्रवर्तक गृहण करना. यद्यपि उपशम श्रेणिसे क्षपक श्रेणी की विशुद्धता अधिक है, परन्तु जघन्य रस वन्ध सादि सान्त होता है. और क्षपक श्रेणी प्रवर्तक सादि अनन्त होतेहैं (क्योंकि पडते नहींहैं) इसलिये गृहण नहीं किये पुरुष वेद और संज्वलका चौक इन पांचोका जघन्य रसवन्ध नववे गुणस्थान के पांचों भाग में अलग २ होता है, अर्थात्–पहिले भाग में पुरुषवेद का, दुसरे में संज्वलके क्रोधका, तीसरे में संज्वल के मानका, चौथें में संज्वल की माया का और पांचवे में संज्वलके लोभ का, यों अलग २ वंध विच्छेद करने के अंतिम समय अपने २ वंध के अंतिम वंध में जघन्य रस वंध होता है. । ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, ५ अंतराय इन १४ का जघन्य रसवन्ध दशवे गुणस्थान वर्ती क्षपक श्रेणि प्रतिपन्न अपने वन्ध के अन्तिम समय करता है. सूक्ष्म, अपर्याप्ता. साधारण, तीनों विल्केन्द्रिय, चारोंगतिका आयुष्य, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगो पांग, देवगति, देवानु पूर्व्वी, नरगति, नरकानु पूर्व्वी, इन १६ प्रकृत्ति का मन्द रसवन्ध मनुष्य और तिर्यंच तत्प्रायोग्य विशुद्ध संक्लेश में वर्तते होता है. इन १६ में से ७ तो पुण्य प्रकृत्ति हैं, उनका मंद रस मलीन परिणामों से होता है, और ९ पाप प्रकृत्ति हैं जिनका मन्दरस बहूत विशुद्ध अध्यायसाय, से होता है. इन १६ प्रकृत्ति में से मनुष्यायू, तिर्यंचायू छोडकर १४ प्रकृत्तिका वंध तो देवता तिर्यच के भव प्रत्यय नाही. और मनुष्य तिर्यंचायुका जघन्य स्थिति वंध करते मंद रस होता है सो भी क्षुलक भव देवता नरक के नही होता है. इसलिये इन १६ प्रकृत्तिके मंदरस वंध स्वामी मनुष्य तिर्यंचही है. उद्योत नाम, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गो पाङ्ग, इन तीनों प्रकृत्तिका रसवंध मिथ्यात्वी देवता और नारकी तिर्यच प्रयोग्य वन्धते संक्लेश परिणामों कर करते हैं. मनुष्य और तिर्यंचपचेन्द्रिय ऐसे प्रायोग्य कर नरक प्रयोग्य का वंध करे परन्तु नरक मे यह प्रकृत्तियों नही है, इसलिये नहीं कही. । तिर्यंच गति, तिर्यचानु पूर्व्वी, और नीच गोत्र, इन प्रकृत्तिका जघन्य रस वन्ध सातवी नरक के नेरीये सम्यक्त्व सन्मुख हुवे मिथ्यत्व के चरम समय में वर्तते होता है. क्योंकि-ऐसे प्रायोग्यमें वर्तते देवता या दूसरी नरक होवे तो वो मनुष्य प्रयोग्य बान्धते हैं. और सातवी नरक वालों के तो भवप्रत्यय मनु-

ष्य और ऊंचगोत्र का बन्ध नहीही होता है. । तीर्थिकर नाम कर्म का जघन्य रस व ध अविरति सम्यक् दृष्टि मनुष्य नरकायु बंध किये बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्तक र कथंचित् फिर भी नरक में जावे तब सम्यक्त्व का वमन करते अन्तिम समय करते हैं. । एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नाम का जघन्य रसबंध नरक गति विना वाकी तीनों गति के जीवों मिथ्यात्वी मध्यम परिणाम में प्रवृतते त्रसका बंध कर स्थावरका बंध करते, पचेन्द्रिय जाति का बंध कर एकेन्द्रिय जाति का बन्ध करते यों घोल के परिणामों में प्रवृतते हुवे करते हैं. क्योंकि अवस्थित परिणाम में वैसी विशुद्धि नहीं होती है. और नारकी के भवप्रत्यय एकेन्द्रिय का बंध न होनेसे उने छोड दियेहैं। आताप नाम कर्म का जघन्य रस बध भवन पतिसे लगा इशान देवलोक तक के देवता देवी मिथ्यात्वी अतिसंकिलिष्ट परिणामी एकेन्द्रिय प्रायोग्य बांधते हुवे करतेहैं.। साता असाता वेदनीय, स्थिर,अस्थिर शुभ अशुभ, यश अपयश, इन आठों प्रकृत्तिका मन्द रस बंध मिथ्यात्वी गुणस्थानसे लगाकर प्रमत गुणस्थान तक प्रवृत्तते हुवे अन्तर मुहूर्त साता अन्तर मुहूर्त असाता. यों घोलके परिणामों में प्रवृतते अध्यवस्याय स्थानक में अवस्थित पणें रहते एक साथाही बन्ध करते हैं.। त्रस, वादर, पर्याप्ता, प्रत्येक. शुभवर्ण चतुष्क, तैजस, कार्मण. अगुरुलघु, निर्माण, मनुष्य द्विक, खगति द्विक, पचेन्द्रिय जाति, उश्वाश, परावात, ऊंचगोत्र, छेसंघयण, छेसंस्थान, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, सुभग, दुभग. सुस्वर दुस्वर, आदेय, अनादेय, इन ४० प्रकृत्ति का मन्द रस बंध चारों गति के मिथ्यात्वी जीवों बान्धते हैं.-इसमें, त्रस वादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, शुभवर्ण चतुष्क, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निमार्ण, पचेन्द्रिय जाति, पराघात, और उश्वाश, यह १५प्रकृत्ति तिर्यच मनुष्य मिथ्यात्वी तत्प्रोयाग्य संक्लेश परिणाम नरक प्रायोग्य नामकी २८ प्रकृत्तिका बंध करते मंदरस बन्धते हैं. यह पुण्य प्रकृत्तिका है इसलिये इनका संक्लेश से रस बन्ध होता है. और नारकी तथा सांत कुमार से सहस्रारांत आठवे स्वर्ग पर्यन्त के मिथ्यात्वी देवता संक्लेशसे तिर्यंच गति प्रायोग्य नाम कर्म की २९ प्रकृत्ति का बंध करते भी इन १५ प्रकृत्ति का मंद रस बंध करते हैं. और इन १५ में से-पचेन्द्रिय जाति और त्रस नाम बिना वाकी की १३ प्रकृत्ति के मंद रस बंध भवनपति देवसे इशान देवलोक तक के देवता देवीयों मिथ्यात्वी एकन्द्रिय प्रायोग्य बंध करतेवक्त बांधतेहैं. और त्रस नाम तथा पचेन्द्रिय जाति यह दोनों प्रकृत्तियोंकुछक उससे भी अधिक विशुद्ध अध्यवसाय से पचेन्द्रिय प्रायोग्य बान्धते हुवे मन्द रस से बा-

न्धते है, यों १९ प्रकृत्ति के मन्द रसके श्वामी चारों गति के मिथ्यात्वी होतेहैं, और स्त्री वेद तथा नपुंसकवेद का मन्द रस चारों गति के मिथ्यात्वी जीवों सम्यक्त्वसन्मुख हुवे विशुद्धि से करते, हैं क्योंकि यह पाप प्रकृत्ति है। मनुष्य गति, मनुष्यानु पूर्व्वी, शुभख गति, छे संघयण. छे संस्थान, शुभग, दुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय अनादेय, और उँच गोत्र, इन २३ प्रकृत्ति का मन्द रस वन्ध-मिथ्यात्वी जीव घोल के परिणामी परावर्त इस के विरोध की प्रकृत्ति का वन्ध करते ऐसे चारों गति के जीवों जानने; क्योंकि सम्यक्त्व दृष्टि देवता और नारकी तो मनुष्य प्रायोग्य वान्धते तिर्यचादि विरोधी प्रकृत्ति का वन्ध नही करते हैं, और ऋषभनाराचादि संघयन भी नही वान्धते हैं. और सम्यक् दृष्टि मनुष्य तिर्यच देवता प्रयोग्य वान्धते समचतुरस्र संस्थानका वन्ध करे वाकी के पांचों संस्थानो का वंध नही करे, इसलिये सम्यक्त्व की विरोधकी प्रकृत्ति के साथ प्रावर्तते वंध नही होताहै, और इसही लिये वों मन्द रस वंध के अधिकारी नहीं हैं. और मिथ्यत्वी भी अति संक्लिष्ट पारिणामसे वीस क्रोड क्रोड सागरोपम प्रमाण स्थितिवंध अध्यवसाय स्थानक वर्तते तिर्यच द्रिक, नरक द्रिक, हुंड संस्थान, छेवटा संघयण, अशुभख गति, और नपुंसक वेदादि प्रकृत्तिका निरन्त्र पणे उत्कृष्ट वंध करे, वहां से भी और १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम की स्थिति वंध अध्य वसाय स्थानक होवे तव कुब्ज संस्थान, किलिक संघयण, परावर्त हुंड संस्थान और छेवटा संघयण का वंध करै वह मन्द रस वन्ध. और १९ क्रोडा क्रोड सागरोपम की स्थिति वन्धाधवसाय स्थानक, से तिर्यच द्रिक का मनुष्य द्रिक साथ परावर्ति वन्ध करे, तैसेही नपुंसक वेदका स्त्रीवेद के साथ परावर्त कर वन्ध करे. और १० क्रोडा क्रोड सागर स्थिति वन्धाधवसाय स्थानक वाद दौर्भाग्य त्रिक, सोभाग्य त्रिक, के साथ परावर्त कर वध करे, वहां से क्रोडा क्रोड सागर कुछ कमी तक परावर्त कर वन्ध होवे, इसलिये हीन स्थिति वंधाधवसाय स्थानक में फक्त मनुष्याद्रिक, वज्रवृषभ नारच संघयण, समच तुरस्र संस्थान, शुभ विहायो गति, सोभाग्य त्रिक, पुपरुवेद इन प्रकृत्तियों का निरन्त्र वंध करे; परंतु वहां मंद रसमय वंध नहीं, होता है, क्योंकि विरोध की प्रकृत्तियों के साथ परावर्त कर वंध करते मंद रस होता है. (यह जघन्य रस वंध के स्वामी कह.)

अव उत्कृष्ट रस वन्ध के श्वामी कहते हैं:-एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, और आताप नाम इन तीनों प्रकृत्तियों का तीव्र (चौठाणींयां) रस वन्ध भवन पति,

व्यन्तर जोतिषी, सोधर्म और इशान इन पांच स्थानको के मिथ्यात्वी देवता ओंके हो. ता है; इस में जो आताप नाम पुण्य प्रकृत्ति है, उसका बन्ध भी मिथ्यात्वी के तत्प्रा योग्य विशुद्ध परिणाम से पडता है. और दोनों प्रकृत्ति का बन्ध अशुद्ध परिणाम से पडता है. क्योंकि ऐसा जो संक्लेश परिणाम मनुष्य तिर्यंच के होवेतो नरक प्रायोग्य बन्ध करे, और नरक के जीवों के यह तीनों प्रकृत्ति नहीं है. और सनत कुमार स्वा- र्ग के ऊपर के देवों भी तीनों प्रकृत्तिका बन्ध नही करते हैं, इसलिये ऊपरोक्त पांच स्थान को सिवाय तीनों प्रकृत्तिका उत्कृष्ट रस बन्ध नहीं होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्ता, साधरण, तीन विकेन्द्रिय, नरक त्रिक, तिर्यचायु, और मनुष्यायु, इन ११ प्रकृत्तिका उत्कृष्ट रस बन्ध सन्नी पर्याप्ता पचेन्द्रिय, मिथ्यादृष्टि, संख्यात वर्षायुवाला, तत्प्रायो- ग्यो संक्लेश वर्तते ऐसे मनुष्य तिर्यंच के होता है. क्योंकि इनमें की पहिली ९ प्रकृत्ति का बन्ध तो देवता नारकी के भव प्रत्यय तो नहीं होता है, और मनुष्य तिर्यंच का आयुष्य जो देवता नरकी बन्धते हैं, तोभी इसकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बन्धती वक्त उत्कृष्ट रस बन्ध होता है. ऐसा बन्ध देवता नारकी और जुगलीयों के नहीं होता है, इसलिये नहीं बान्धते हैं. और सास्वादन गुणस्थान में भी घोलके परि णाम होने से और उपर के गुणस्थानों में इन का बन्ध नही होने से इतनी स्थिति ब न्धती नही है, इसलिये मिथ्यात्वीही उत्कृष्ट रसबन्ध के अधिकारी होते हैं, । तिर्यच गति, तिर्यचानु पूर्वी, और छेवटा संघयण, इन तीनों प्रकृत्तिका उत्कृष्ट रसबन्ध अति संक्लिष्ट परिणामी सनन्त कुमार देवलोक से सहस्रान्त देवलोक तक के मिथ्यात्वी दे- वता के और नरक के होता है; क्योंकि संक्लिष्ट परिणामी मनुष्य तिर्यच तो नरक प्रायोग्यही बन्धते हैं, सम्यक दृष्टि के यह बन्ध नहीं होता है. और भवन पतिसे ल- गा इशान देवलोक तक के देवता मिथ्यात्व युक्त संक्लिष्ट परिणाम में परिणामते एके न्द्रिय प्रायोग्य नाम कर्म की प्रकृत्ति बान्धे हैं, परन्तु छेवटा संघयण का अनुकृष्ट रस बंध होताहै. इसालिये इने नालिये। वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, देवगति, देवा- नु पूर्वी, आहारक द्विक, शुभखगति, शूभवर्ण चतुष्क, तैजस, कार्मण, अगुरु लघु, निर्माण, तिर्थकर नाम, सातावेदनीय, समचतुररस्त्र संस्थान, पराघात, त्रसदशका, प- चेन्द्रिय जाति, श्वाशो छ्वास, और उंच गोत्र. यह३३ पुण्य प्रकृत्तिका उत्कृष्ट रसबंध क्षपके श्रीण में चडने वाले मनुष्य के होता है. इस में भी साता. वेदनीये, उंचगोत्र और यशः कीर्ती, इन प्रकृत्ति का उत्कृष्ट रस बंध सूक्ष्म सम्पराय के चरम भाग

वर्ती क्षपक के होता है; क्योंकि-इन प्रकृत्ति के बंध के लिये येही अत्यंत विशुद्ध स्थान है, और इन विना बाकी रही जो २९ प्रकृति उनका उत्कृष्ट रस बंध अपूर्व करण के सात भाग में के छट्ठे भाग में ३० प्रकृति का बंध विच्छेद होता है वहां-एक उपघात विना बाकी की २९ प्रकृति के चरम बंध में क्षपक के अत्यन्त विशुद्ध परिणाम परवर्तते चौठाणी रस बंध होता है, उपशम श्रेणि में भी यह गुणस्थान है, परंतु क्षपक जितनी विशुद्धि नहीं होने से उत्कृष्ट रस बंध के अधिकारी नहीं है, और देवता नरक तिर्यंच में तो यह गुणस्थान हेही नहीं. तो इन प्रकृति यों का उत्कृष्ट रस बंध होवे कहां से. । उद्योत नाम कर्म का उतकृष्ट रस बंध सातवीं नरक के जीवों अकाम निर्जरा कर कर्म क्षय करते विशुद्ध परिणाम कर सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये अनिवृत्ति करण कर मिथ्यात्व की स्थिति के दो भाग करे, उस अंतकरण की प्रथम स्थिति के चरम समय उद्योत नाम का उत्कृष्ट रस बंध करे, और दुसरे नरक के या देवता के जीवों तो ऐसे परिणाम में प्रवृत ते मनुष्य प्रायोग्य का बंध करते हैं, सो बंध इस सप्तम नरक मे नहीं है, फक्त तिर्यंचायु ही बांधते हैं, इसलिये तिर्यंचायु की सहकारी उद्योत नाम कर्म का उत्कृष्ट रस बंध यहां ही होताहै, मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक, वज्र ऋषभ नाराच संघयण, यह ५ प्रकृति मनुष्य गति प्रायोग्य अतिहि शुद्ध सम्यक दृष्टि देवता-जिनाख्यान श्रवण करते, जैन नोन्नति का कार्य करते, सम्यक्त्व उज्वल ते, चारों संघ की भक्ति करते उत्कृष्ट रस बंध करते हैं. मनुष्य जो ऐसी विशुद्धि में प्रवर्ते तो देवायु बंधे. और देवता में यह प्रकृत्तियों है नहीं. इसलिये यहां सम्यक्त्वी देवही लिये हैं. और नरक के सम्यक दृष्टि को इन बंध के कारणों का अभाव होने से उत्कृष्ट रस बंध नहीं कर सकते है. देवायु का उत्कृष्ट रस बंध ३३ सागरोपम का प्रमत गुण स्थान से अप्रमत गुणस्थानारूढ होते हुवे साधु अति विशुद्धि कर बंधते हैं. क्योंकि देवायु में अति विशुद्धि का स्थानक येह ही है. उपर कही प्रकृत्तियों मे से शेष बाकी रही सो-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, १६ कषाय, १ मिथ्यामोहनी, ९ नो कषाय, प्रथम संघमण विना ५ संघमण, प्रथम संस्थान विना पांच संस्थान, अशूभ वर्ण चतुष्क. आस्थिर षटक, उपघात, कु खगाति, नीच गौत्र और पांच अंतराय, यों ६८ प्रकृत्तिका उत्कृष्ट रस बंध चारों गति के पंचेन्द्रिय पर्याप्ता मिथ्यात्व दृष्टि जीवोंके होता है. इस में मध्य के संघयण और मध्य के चार संस्थान, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, इन १२ प्रकृति वि-

ना बाकी रही सो ५६ प्रकृति यों का उत्कृष्ट रस बंधाध्यवसाय स्थानक में जो अत्यंत मलीन संक्लिष्ट अध्यवसाय स्थानक होवे वहां ही उत्कृष्ट रस बंध होता है, और हाँस्य तथा रति का उत्कृष्ट रस बंध मध्य संक्लेश स्थानक में बंध ते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश तो नपुंसक वेद शोक और अरति का बंध करता है, और हुंड संस्थान तथा छेवटा संघयण का उत्कृष्ट रस बंध ते हैं. इसलिये इन १२ प्रकृति का उत्कृष्ट रस मध्यम संक्लेशी चतुर्गति के जीवों जानना.

रस बंध के चार प्रकार—१ जिससे हीन-कमी कोइ रस बंध न होवे सो 'जघन्य रस बंध.' २ और इस इस सिवाय दूसरे सब अजघन्य रस बंध. (इन दोनों भेदों में सब बंध का समावेश हो जाता है) तथा—१ जिस से अधिक दुसरा कोइ तीव्र रस बंध नहीं होवे सो 'उत्कृष्ट रस बंध.' २ और उस से एकादि रस विभाग हीन-कम ऐसे सर्व रस वन्ध सो —'अनुत्कृष्ट रस बंध.' (इन दोनों में भी सब का समावेश होता है) इन चारों को कर्म प्रकृत्तियों पर उतारते हैं.

तेजस कार्मण, अगुरु लघु, निर्माण, और शुभ वर्ण चतुष्क इन ८ उत्तर प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध अपूर्व करण नामक अष्टम गुणस्थान के छट्ठे भाग के प्रान्तमें अपने चरम बंधमें एक उत्कृष्ट रस स्थानक होताहै. और उस विना सब अनुत्कृष्ट रस बंध स्थानक जानने. और जिनको इस स्थानक की प्राप्ति नहीं हुइ, उन को सदा अनुत्कृष्ट रस बंध स्थानक जानना. सो अनादि जाणना. और जो जीव उपशम श्रेणे में उत्कृष्ट रस बंध कर फिर वहां से पडता हुवा हीन रस बंध करे, वहां अनुत्कृष्ट रस बंध की सादि जाणना, और अभव्य को यह स्थानक प्राप्त होता नहीं है. तथा उत्कृष्ट रस बंध करना नहींहै इससे उनके अनुत्कृष्ट रस बध अनंत जाणना. और भव्य जीव होवेगा वो श्रेणि प्रतिपन्न हो उत्कृष्ट रस बंध करेगा वहां अनुत्कृष्ट रस बंध का सांत पणा होता है. साता वेदनीय और यश कीर्ति इन दोनों शुभ प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध क्षपक के दशवे गुणस्थान के अंत समय में पाता है. इसलिये उस स्थानक को जो नहीं प्राप्त हुवे उन के अनुत्कृष्ट की अनादि, और जो इस स्थानक को प्राप्त होकर पीछे पडे, उन के फिर बंध होती वक्त सादि, अभव्य के अनंत, और भव्य को उत्कृष्ट रस बंध करेंगे इसलिये अनुत्कृष्ट रस बन्धका सांत पणा. और इन आठों प्रकृत्ति का उत्कृष्ट बंध क्षपक के अपूर्व करण में होवे, उस ने प्रथम बंध करना सुरु किया इसलिये सादि बंध एक समय होता है, परंतु आगे नहीं होता, इसलि

ये सांत दुसरा भांगा. तथा यह आठों शुभ प्रकृति है इसलिये इनका जघन्य रस सं-
र्वोत्कृष्ट संक्लेश में वर्तते मिथ्यात्वी जीव सज्ञी पर्याप्त बंध करता है, सो एक अथवा
दो समय पर्यन्त, फिर अजघन्य बंध बांधता है, फिर कालांतर में सर्वोत्कृष्ट संक्लेश
को प्राप्त हो जघन्य रस बंध करे, यों जघन्य अजघन्य में फिरता जीव को सादि
और सांत यह दो भॉगे पाते हैं. । उपर कहे तेजस चतुष्क विना बाकी रही जो-ज्ञा-
ना वरणीय ५, दर्शनावरणीय ९, कषाय १६, मिथ्यात्व मोहनीय १, अंतराय ५,
भय १, दुगच्छा, उपघात, और अशूभ वर्ण चतुष्क, यह ४३ प्रकृति ध्रुव बंध की
है. सो अशुभ है, इनका जघन्य रस बंध विशुद्धि कर के अपने चरम बंध में होता है,
और उस स्थानक को जो प्राप्त नहीं हुवे उन के अजघन्य रस बंध की अनादि,और
जो इस श्रेणि से पडकर फिर बन्ध करे उनके सादि, और अभव्य जघन्य रस बंध
नहीं बंधताहै. उससे उसके अजघन्य रसबंध अनन्त,और भव्य जीव सम्यक्त्वकी प्रा-
प्ति करेंगे तब उस स्थान को प्राप्त हो जघन्य रसबंध करेंगे वहां अजघन्य रसबंध का
सान्तपणा. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय यह चारों घातिक
कर्म है. इन में से मोहनीय का तो नव वे गुणस्थान के प्रांत में, और तीनों कर्मों का
दश वे गुणस्थान के प्रांत में जघन्य रस बंध होता है, बाकी रहे सर्व स्थानों में अ-
जघन्य रस बंध होता है, , इसके चार भॉगः—१ जिस के जघन्य रस बंध न हुवा
उस के अजघन्य रस बंध अनादि, २ जो जघन्य रस बंध कर फिर श्रेणि से पडते
अजघन्य रस बंध करे तहां सादि, ३ अभव्य के अजघन्य रस बंध अनंत, और४भ-
व्य के अजघन्य रस बंध सान्त. इन चारों कर्मों के अजघन्य रस विना बाकी के
तीनों बन्ध में सादि सान्त भॉगा पाता है. । गौत्र कर्म के अनुत्कृष्ट तथा अजन्य इन
दोनों रस बंध में चार भांगेः—१ नीच गौत्र का जघन्य रस बंध सातवी नरक में ग्रंथी
भेद कर मिथ्यात्व के अंतिम समय में बंध करे, उस स्थानक को जो प्राप्त नहीं हुवे
उनके अनादि का अजघन्य रस बंध होता है, २ जो एक समय में अजघन्य रस
बंध कर फिर अजघन्य रस बंध करे उनके सादि. ३ अभव्य जीव उस स्थानक को
कदापि नहीं स्पर्शे इसलिये उस के अनन्त, और४भव्य जीव जघन्य रस बन्ध करेंगे
और रस बंध का विच्छेद भी होगा इसलिये सांत. ऐसेही ऊंच गौत्र का विशुद्धता
से उत्कृष्ट रसबन्ध दशवे गुणस्थान के प्रान्त में होता है, उस विना और सब अनुत्कृ
ष्ट रस बंध जानना, वहां जिस ने श्रेणि नहीं करी उस ने उत्कृष्ट रस बंध नहीं किया

उसके अनुत्कृष्ट रस बंध अनादि; और श्रेणिसे पड ते उत्कृष्ट रस बंध कर फिर अनुत्कृष्ट रस बंध करे तहां सादि, अभव्य के अनुत्कृष्ट रस बंध अनंत, और भव्य को अनुत्कृष्ट रस का सांत, इन ध्रुव बंध की ४७ प्रकृति सिवाय बाकी रही सो— औदारिक, वैक्रिय, आहारक-यह तीन शरीर, और इन तीनों के अङ्गोपाङ्ग तीन, छे संघयण, छे संस्थान, ४ गति, ५ जाति, खगति द्विक, अनुपूर्व्वी चतुष्क, जिननाम उद्योत, आताप, पराघात, त्रस दशका, स्थावर दशका,(यह५८नाम कर्मकी प्रकृति वेद-नी द्विक, गौत्र द्विक, तीन वेद, हांस्यादि युगल द्विक, और ४ आयुष्य, यह ७३ अध्रुव वन्ध कीं प्रकृति के-उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, यह चारों बंध-सादि और सांत यह दो भागे पाते हैं. क्योंकि-इन प्रकृतियों का बंध कभी होता है, कभी नहीं भी होता है. जब होय तब सादि, और न होय तब सान्त जानना. (इति अनु-भाग वन्ध.)

प्रदेश—बन्ध

जैसे किसी "कुची कर्ण" नामक गाथापति के गौशाळ में बहूत गाइयों होनेसे उनकी सुख से गिनती लगाने जो वर्णादि गुणकर मिलती हुइ गाइयों के अलग २ टोले बंधे. तैसेही ज्ञानी महाज्ञ पुरुषोंने अनन्त पुद्गल स्कन्धो को अलग २ देख उनके भेदान्तर सुख से जाननें में आवे इसकेलिये प्रमाणुओं की संख्या के सरीखे २ स्क-धों के टोले बंधे उनका नाम "वर्गणा" ऐसा स्थापन किया. जैसे १ जगत् में छुट्क२ एकेक प्रमाणुओं हैं, उनका टोळा सो प्रथम वर्गणा. तैसेही दोप्रमाणुओं एकत्र मिलने से जो स्कन्ध हुवा उसे द्रणुक कहना. उसका टोला सो दूसरी वर्गणा. तैसेही तीन प्र माणुओं से निष्पन्न स्कंध सो 'त्रणुक' उसका टोला सो तीसरी वर्गणा. यों एकेक प्र-माणुओं अधिक होते स्कंध के बरोवरी के टोळे उसकी वर्गणा. अधिक २ होती जाती है. २ यों अधिक होती २ अभव्यजीवों से अनन्त गुण अधिक और सिद्धके जीवों के अनंतवें भाग प्रमाणें प्रमाणुओंसे निष्पन्न जो स्कंध सो औदारिक शरीर निपजाने ला-यक होवे. इसलिये वो स्कंध औदारिक शरीर को गृहण करने योग्य होवें. इसलियो वो. औदारिक के गृहण करने योग्य जघन्य वर्गणा होती है. इससे एक प्रमाणु कम स्कंध वर्गणा पर्यंत सब अगृहण योग्य वर्गणा. कहना. क्योंकि–वैसे स्कधंसे शरीर की निष्प-ति नही होती है,। अब वो जघन्य औदारिक शरीर आरंभक स्कधं वर्गणा उससे ए-

केक प्रमाणु अधिक स्कंध की ऐसी दूसरी-तीसरी-चौथी-पांचवी यों वढते २ अनन्त वर्गणा. औदारिक शरीर गृहण योग्य पणे होवे, उस औदारिक शरीर गृहण योग्य जघन्य वर्गणा. से अनतवे भाग अधिक औदारिक शरीर गृहण योग्य उत्कृष्टि वर्गणा होवे, वो अनन्त वा भाग भी अनंत प्रमाणु रूप जाणना. इसलिये औदारिक के ग्रहण करने योग्य भी अनन्त वर्गणा. होती है. ३ औदारिक शरीर की उत्कृष्ट वर्गणासे एकेक प्रमाणु अधिक स्कन्ध की वर्गणा. सो औदारिक की अपेक्षा से वहुत प्रदेशोपाचित तथा सूक्ष्म परिणाम परिणात, उससे औदारिक के अग्रहण योग्य और वैक्रिय शरीर आरंभक स्कन्ध की अपेक्षा से अल्पप्रदेशोपाचित तथा वादर परिणात, इसलिये वैक्रिय शरीरके भी अगृहण योग्य, यों एकेक प्रदेश अधिक होते स्कन्ध अनंत की अभव्यसे अनन्त गुण और सिद्धके अनन्तवे भाग प्रमणा इतनी वर्गणासो वैक्रिय शरीर के अगृहण योग्य जाणना. ४ उससे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो वैक्रिय शरीर आरंभ करते जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा जाणना. योंही और एकेक प्रदेश वढते स्कन्ध की अनन्ती वर्गणा वैक्रिय शरीर निष्पादक होती है, वोभी जघन्य वैक्रिय गृहण योग्य वर्गणा से अपने अनन्तवे प्रमाण अधिक वैक्रिय शरीर के गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है. इसलिये यह भी अनन्त वर्गणा जाणना. ५ उस वैक्रिय गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो वैक्रियदल की अपेक्षा से वहुत प्रदेश निष्पन्न तथा सूक्ष्म परिणात होती हैं, और आहारक शरीर प्रायोग्य दल की अपेक्षा अल्प प्रदेशी तथा वादर परिणात होतीहै. इसलिये वैक्रिय तथा आहारक इन दोनों शरीर के काम में नहीं आवे, इसलिये वो अगृहण योग्य वर्गणा जाणना. वो भी एकेक प्रदेश अधिक होते २ स्कन्ध की अभव्य से अनन्त गुण और सिद्धों के अनन्तवे भाग प्रमाण अनन्त वर्गणा जाणना. (यह अनान्ति अगृहण योग्य प्रदेश की वर्गणा होती है) ६ फिर उससे भी एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा उस करके वो आहारक शरीर की निष्पति होवे. इसलिये वो आहारक प्रायोग्य जघन्य वर्गणा होती है. वोभी एकादि प्रदेश अधिक होते अनन्त स्कन्ध की अनन्ती वर्गणा होती है, वो जघन्य वर्गणा के अनन्त वे भाग प्रमाण प्रदेश से बढती ऐसी उत्कृष्टि आहारक शरीर के गृहण करने योग्य वर्गणा अनन्ती होती है. ७ उस आहारक गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो आहारक की अपेक्षा वहुत प्रदेशिक तथा सूक्ष्म और तेजस की अपेक्षा अल्प प्रदेशि

क बादर परिणत इसलिये दोनों शरीर के गृहण करने योग्य नहीं ऐसी जघन्य वर्गणा उससे एकाधिक प्रदेश बढती यावत् अभव्यसे अनन्त गुणं वर्गणा इन दोनों शरीर के अगृहण करने योग्य होवे, इसलिये अगृहण वर्गणा कहीं. ८ उस उत्कृष्ट अगृहण योग्य वर्गणा दलसे एक प्रदेश आधिक स्कन्ध की वर्गणा सो तैजस शरीर प्रोयोग्य जघन्य वर्गणा जाणना. फिर उससे एकेक प्रदेश वृद्धिहोते स्कन्ध की यावत् जघन्य तैजस शरीर वर्गणाके अनन्तवे भाग जो अनन्त प्रमाणुं उससे अधिक ऐसी उत्कृष्ट तैजस शरीर के गृहण करने योग्य वर्गणा अनन्त जाणनी. ९ उस तैजस शरीर के गृहण करने योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धसे एक प्रदेश आधिक स्कन्ध सो तैजस की अपेक्षा से बहुत प्रदेशिक सूक्ष्म और भाषा दलकी अपेक्षा से अल्प प्रदेशिक बादर होतीहै इसलिये वो दोनों शरीर के काम में नहीं आने से गृहण करने को अयोग्य ऐसी जघन्य वर्गणा जाणना. यों एकेक प्रदेश आधिक होते स्कन्ध की अभव्य से अनन्त गुणी और सिद्ध के अनन्तवे भाग प्रमाण इतनी वर्गणा अगृहण योग्य होती है. १० उस उत्कृष्ट गृहण करने योग्य वर्गणा से एक प्रदेश आधिक स्कन्ध सो भाषा के दल के काम आवे इसलिये वो जघन्य भाषा गृहण योग्य वर्गणा होती है. उससे भी और एकाधिक प्रदेश आधिक होती यावत् जघन्य भाषा वर्गणा के अनन्तवे भाग जो अनन्त प्रमाणूओं, तहां बढते स्कन्धकी ऐसी अनन्त वर्गणा भाषा के गृहण योग्य होती हैं. ११ उस भाषा के गृहण करने योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एकादिक प्रदेश बृद्धि होते यावत् अभव्य से अनंत गुण प्रदेश पर्यन्त बृद्धि होते अनन्त वर्गणा सो सर्व भाषा शरीर की अपेक्षा से बहुत प्रदेशीक सूक्ष्म और, श्वाशोछ्वास की अपेक्षा से बादर अल्प प्रदेशिक स्कन्ध, इसलिये वो वर्गणा दोनों के शरीर के गृहण योग्य ऐसी अनती जाणनी. १२ और उससे एक प्रदेशाधिक स्कन्धकी वर्गणा उससे श्वाशोछ्वास निपजे इसलिये ऐसे स्कन्ध समुदाय सो श्वासोछ्वास ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा जाणना. इस से एकादिक प्रदेश बृद्धिपति यावत् जघन्य वर्गणा के असंख्यातवे भागमें जितने प्रदेश तत्प्रमाण उतने प्रदेश बृद्धि जो वर्गणा सो श्वाशोछ्वास की गृहण करने योग्य उत्कृष्टि वर्गणा जाणनी, १३उससे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की अगृहण योग्य वर्गणा. पूर्वकी तरह श्वाशोछ्वास की तथा मन को भी अगृहण योग्य तैसी एकादि प्रदेश बृद्धि पाति यावत् अभव्य से अनन्त गुणी वर्गणा अगृहण योग्य जाणनी. १४ ऐसीही तरह और भी उस वर्गणा से एकादि प्रदेश आधि-

क स्कन्ध उस करके द्रव्य मन उत्पन्न होवे. इसलिये वो जघस्य मनो द्रव्य गृहण योग्य वर्गणा जाणना. उससे एकादि प्रदेश अधिक२स्कन्ध सो यावत् निज जघन्य वर्गणा स्कन्धके अनन्त वे भाग जो प्रदेश होवे उतने प्रदेश वृद्धपाति उत्कृष्टि मनो गृहण योग्य वर्गणा होवे. १५ उससे एक प्रदेश आधिक पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा सो मनो द्रव्य की अपेक्षा से बहुत प्रदेशी सूक्ष्म जाणना. और कर्म दलकी अपेक्षा से अल्प प्रदेशिक बादर जाणना. इसलिये दोनो शरीर के गृहण करने योग्य नहीं ऐसी अभव्य से अनत गुणी वर्गणा जाणना.१६ और भी उससे एक प्रदेश वृद्धि होते पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा सो कर्म दल ग्रहण योग्य होती है. इसलिये सो कर्म प्रायोग्य जघन्य वर्गणा जाणना. उससे भी एकादि प्रदेश वृद्धि पति यावत् अपनी जघन्य वर्गणा के अनन्तवे भाग प्रदेश प्रमाण प्रदेश से वढती उत्कृष्टी कर्म ग्रहण योग्य पुद्गल की वर्गणा जाणनी. उस करके कर्म दलमें कर्म प्रकृत्ति का वन्ध होता है! एक कर्म की जघन्य और उत्कृष्टी के वीच में मध्यम अनन्त वर्गणा होती है. तैसे दल कर कर्म प्रकृत्ति का वन्ध पडता है. इसलिये इसे कर्म गृहण योग्य वर्गणा कही जाती है.

उपरोक्त वर्गणा सो जीव को गृहण करने योग्य पुद्गल हैं, जीवके आश्रित रहते हैं इसलिये उपचार से इसको सचित्त वर्गणा कहना. और इससे एकादि प्रदेश अधिक पुद्गलों का स्कन्ध जिसे जीवों गृहण करे सकै नहीं इसलिये उसे अचित्त वर्गणा कहना. वो अचित्त वर्गणा भी सव जीवोंसे अनन्त गुण अधिक है. इन वर्गणा का स्वरूप सहज में समझाने के लिये कल्पित दृष्टान्त कहते हैंः-जैसे एक से लगाकर दशपर्यन्त प्रमाणु निष्पन्न अगृहण योग्य वर्गणा जाणना. उससे ११-१२-१३ प्रमाणु निष्पन सो औदारिक गृहण योग्य वर्गणा जाणना. उससे १४-१५-१६-१७-१८-१९-और २० पर्यन्त अग्रहण योग्य वर्गणा जाणना. फिर २१-२२-२३ पर्यन्त वैक्रियशरीरके गृहण करने योग्य वर्गणा जाणना. यों आठों वर्गणा गृहण योग्य, और बीच२ की आठों वर्गणा अगृहण जोग, यों १६ वर्गणा सचित्त होती है.

१ यह उपरोक्त उत्कृष्ट कर्म वर्गणा से एकादि प्रदेश अधिक स्कन्ध की सर्व जीव से अनन्त वर्गणा. सो निरन्त्र-हमेशा मिलती है, परन्तु वैसे स्कन्ध की वर्गणा, जीवों के गृहण करने योग्य नहीं होती है, इसलिये उसे ध्रुवाचित्त जघन्य वर्गणा कहना. उस जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा के प्रदेश अनन्त गुणें होते हैं, उसे उत्कृष्ट ध्रुवाचित्त वर्गणा कहना. २ उससे और भी एकादि प्रदेश अधिक स्कन्धकी वर्ग

णा अनंति, सब जीवोंसे अनन्त गुणी, ऐसे पुद्गल स्कन्ध कभी निरन्त्र भी होवे हैं, और कभी सांतर पणे भी होती है, इसलिये अध्रुवाचित्त वर्गणा कहना. ३ उससे एकादि प्रदेश अधिक पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा नहीं मिलती है, परन्तु आगेकी वर्गणा स्कंध का महत्व पणा बताने कही है, ऐसे भी अनंती शून्य वर्गणा होतीहै, उससे जघन्य वर्गणाके प्रदेश क्षेत्र पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाणा प्रदेशकी राशीसे गुणाकार करना तब उत्कृष्ट वर्गणा होती है. ४उससे एक प्रदेशाधिक स्कन्धवो साधारण तो नहीं परन्तु प्रत्येक जीवके औदारिकादि पांचो शरीर के प्रदेश, उसमेंके एक प्रदेश सर्व जीवोंसे अनन्त गुणा विश्रसा परिणात सूक्ष्म पुद्गल स्कंध का नाम प्रत्येक वर्गणा कहना. वो भी जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवे भाग रुप असंख्याता प्रदेश गुणाकार करने से वो भी अनंती वर्गणा जाणना. ५ उससे अनंत शून्य वर्गणा प्रदेशोत्तर कल्पिए. वोभी जघन्य वर्गणा से लगाकर उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त अनन्त वर्गणा जाणना. ६ उससे भी एकादि प्रदेश अधिक पुद्गल की वर्गणा सो बादर निगोदिये जीव के तीनो शरीर प्रदेशों के आश्रित अनन्ता पुद्गल स्कन्ध विश्रसा होते हैं, उसकी भी एकादि प्रदेश वृद्धि पाती अनन्त वर्गणा जाणनी, वोभी जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा प्रदेश संख्यात असंख्यात गुणा होता है. ७ उससे भी और असत्कल्पना से अनन्ति शून्य वर्गणा पहिले की तरह जाणना. ८ उससे भी प्रदेशाधिक स्कन्ध वर्गणा सो सूक्ष्म निगोद शरीर प्रदेशाश्रित अनन्त पुद्गल स्कन्ध विश्रसा परिणत उसकी वर्गणा अनंती वर्गणा जाणना. वो भी जघन्य वर्गणा से आवली के असंख्यात वे भाग प्रमाण समय की राशिसे जघन्य वर्गणा को गुणा करते उत्कृष्ट वर्गणा होती है. ९ उससे भी और एकादि प्रदेशाधिक ऐसी असत्कल्पना से अनन्ती वर्गणा होती है. १० उससे भी और प्रदेशाधिक मिश्र स्कन्ध जिसका सूक्ष्म पणा से बादर पणा प्राप्त करने आभिमुख सो मिश्रस्कन्ध की वर्गणा अनन्ति जाणना. ११ उससे अचित्त महास्कन्ध जो पर्वत कूटादिक को विश्रसा परिणामें आश्रित अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गल स्कन्ध जो विश्रसा परिण में (१) दंड, (२) कपाट, (३) मंथन, (४) अन्तर पूर्णादि करता केवल समुत्घात की तरह आठ समय का अजीव समुत्घात होता है, वहां चौथे समय सर्व लोका प्रमाण स्कन्ध होता है: अजितादि जिनश्वर के बारे में त्रस जीवो की उत्पति अधिक होती है, उस वक्त वो स्कन्ध थोडे होते हैं, और जिस वक्त त्रस जीव थोडे होते हैं उस वक्त वो स्कन्ध बहूत होते

हैं, यह लोकस्थिति की वर्गणा भी अनन्ती जाणना. १२ इस से भी अधिक प्रदेश स्कन्ध पन्नवणाजी सूत्र में फरमाये हैं.

और एकाणुकादिक द्वणुकादिक अर्थात्—एक प्रमाणु की दोप्रमाणु की वर्गणा, आदि शब्दसे तीन चार पांच जावत् संख्यात असंख्यात और अभव्य से अनन्त गुणी अधिक और सिद्धके जीवोंके अनन्त वे भाग प्रमाणु की वर्गणा सो औदारिक शरीर के गृहण करने योग्य होती है, ऐसी अनन्त वर्गणा जाणना. इससे भी एकादि प्रमाणु अधिक वढती ऐसीही अनन्त सो औदारिक शरीर के अगृहण करने योग्य जाणनी. ऐसेही दूसरी वैक्रिय शरीर के गृहण करने योग्य. तीसरी आहारक शरीरके ग्रहण कर ने योग्य, चौथी तेजस के ग्रहण करने योग्य, पांचवी भाषा के ग्रहणे योग्य, छट्टी श्वाशोश्वास के ग्रहणे योग्य, सातवी मन के ग्रहणे योग्य, और आठवी कार्मण के गृहणे योग्य. इन आठों वर्गणा का अनुक्रम से अवकाश क्षेत्र एकेक से एकेक का सूक्ष्म होता है. अर्थात्—औदारिक गृहण योग्य वर्गणा का अवगाहना क्षेत्र से औदारिक अगृहण योग्य वर्गणा का अव गाहना क्षेत्र सूक्ष्म, उस से वैक्रिय गृहण योग्य वर्गणा का अवगहना क्षेत्र सूक्ष्म. यों अनुक्रमसे आठों का जानना, यद्यपि इन आठों वर्गणा का क्षेत्र अंगुल के असंख्यातवे भाग है, तद्यपि एकेक से एकेक की अवगाहना छोटी होती है. क्योंकि ज्यों विशेष पुद्गलों के प्रमाणुओं समुदाय मिलता है त्यों विशेष सुक्ष्म परिणाम होता है. जैसे कपास (रुइ) के थोडे प्रदेश भी विशेप क्षेत्र को रोकते हैं. और पार के वहुत पुद्गल थोडा क्षेत्र रोकते हैं.

प्रश्न-अमूर्ती आत्मा को मूर्तीमंत कर्मों से उपघात कैसे होता है?

उत्तर-जैसे मूर्तीमन्त मदीरापान करनेसे अरूपी ज्ञानका उपघाता होता हुवा-बावलापना प्राप्त होता हुवा. और सारस्वत चूर्ण का सेवन करने से ज्ञान बृद्धि होती हुइ प्रत्यक्ष दृष्टि आती है, तैसे ही अगुरु लघु पुद्गल द्रव्य कर्म दल का अगुरू लघु आत्म द्रव्य के साथ सम्बंध होता है. उस से ज्ञानादि गुणों का उपघात होता है, और जिन नामादि शुभ कर्म कर एश्वर्य पूजादि अनुग्रह भी होता है.

उपरोक्त आठ वर्गण में से-१ औदारिक वर्गणा, २ वैक्रिय वर्गणा, ३ आहारक वर्गणा, और ४ तेजस वर्गणा, यह ४ वर्गणा में—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्श यह २० गुण पाते हैं. इसलिये गुरू लघु द्रव्य कहे जाते हैं, और-१ भाषा वर्गणा, २ श्वाशोश्वास वर्गणा, ३ मन वर्गणा, और ४ कर्म वर्गणा. इन ४ वर्गणा में,

५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ४ स्पर्श यों १६ गुण पाते हैं. इसलिये इने अगुरू लघु द्रव्य कहे जाते हैं. क्योंकि-शीत, उष्ण, रुक्ष, और स्निग्ध, यह ४ स्पर्श अगुरू लघु द्रव्य हैं. एक प्रमाणु में तो-१ वर्ण, १ गंध, १ रस और २ स्पर्श यह ५ गुण पाते हैं, क्योंकि रुक्ष और स्निग्ध प्रमाणु के परस्पर बंध होता है, इसलिये छुट्टे सर्व प्रयाणुओं में तो इन दोनों में का एकही स्पर्श जरूर पाता है, + तैसे ही शीत और उष्ण में का भी-एक स्पर्श पाता है. और अनन्त प्रदेशी यह सूक्ष्म परिणत स्कंध में कोइ प्रमाणु स्निग्ध शीत, कोइ स्निग्ध उष्ण, कोइ रुक्ष शीत और कोइ रुक्ष उष्ण, यों चार जाति के प्रमाणुओं मिलते हैं. तत्र भाषा, श्वाशोश्वास, मन, और कर्म, इन चारों के दल में चार स्पर्श मिलते हैं.

सर्व जघन्य रस से युक्त जो पुद्गल उसका रस × केवल ज्ञानी की प्रज्ञा कर छेद्यमान सर्व जीवों से अनंत गुण रस विभाग को देता है, वो विभाग अति सूक्ष्मता के योग्य से दुसरे भाव के अभाव से निरंश अंश अणुकहे जाते हैं. ÷ उस रसाणू के प्रति स्कन्ध सर्व प्रमाणुओं में सर्व जीवों से अनंत गुण वर्त ते हैं. ऐसे रासाणु युक्त पारिणत कर्म स्कंध दलिक को जीव ग्रहण करता है. वो जैसे गौ घांस को खाती हुइ दुग्धादि मिष्ट रस उत्पन्न करती है, और सर्प दुग्ध पान करता गरल (विष) उत्पन्न करता है, तैसे ही कर्म दल के अनंत प्रदेशी स्कंध के प्रदेश २ प्रते अलग २ अनन्त रसाणु (अनुभाग) युक्त कर्म पणे जीव ग्रहण करता है, वो स्कंध भी अभव्य से अनन्तगुण सिद्ध के अनंत भाग वर्ती हैं.

जिन आकाश प्रदेशों को आत्म प्रदेश ने अवगाहे उन ही आकाश प्रदेशों को कर्मों के पुद्गलों ने अवगा हे हैं. जब जीव रागादि परिणति में परिणमता है तब वो कर्म पुद्गल दल आत्म प्रदेश से लिप्त होते हैं, परंतु अनंतर परंपर प्रदेशस्थ

+ पाठान्तर चारों वर्गणा स्कन्ध में मृदु लघु स्पर्शतो जरूर होता है. और रुक्ष स्निग्धमेंका एक तथा शीत उष्ण में का एक, यों ४ स्पर्श पाते हैं. ऐसी भी किसा आचर्य का मतहै.

× यहा रसाणु का अर्थ जीवके कषायी का अध्यवसाय जानित आनन्द विषाद हेतु शुभाशुभ कर्मों का विपाक इष्टानिष्टपणे कर मिष्ट और कडुवारस जाणना. परन्तु पाचों रस में के किसी भी रसकी विवक्षा नहीं करनी. यहां तो भाव रसही कहना चाहिये.

÷ रसाणु-रसविभाग-रसपलिछेद-भाव प्रमाणु यह सब इसके पर्याय वाचिक नाम हैं.

कर्म पुद्गल द्रव्य के ग्रहण करते नहीं हैं. जैसे तीव्र अग्नि के ताप में तपता हुवा-उकल ता हुवा पाणी ऊपरका नीचे, नीचेका उपर आताहै. तैसे रागादि प्रणति केयोग्य कर आत्मा के असंख्यात प्रदेश + (आठ रूचक प्रदेश विना) आवृत लेते हैं. वो आत्म प्रदेश कषायिक अध्यवसाय रूप चीकणता कर कर्म रूप रज सहित क्षेत्र में आर्वत करते हुवे-जैसे तेल लगा हुवा शरीर कचरे में लोटने से कचरे कर लेपाता-धंवाता है, तैसे कर्म रज कर असंख्यात प्रदेश लेपाते-बांधते हैं, परन्तू ऐसा नहीं है कि-एक दोही प्रदेश लेपावें. क्योंकि-जीव के असंख्यात प्रदेशों का शृंखलावय की तरह परस्पर सम्बंध है, इसलिये जब एक प्रदेश कर्म दल ग्रहण करने प्रवर्तें तब सब प्रदेश प्रवृतते हैं. जैसे हास्त (हाथ) कर किसी वजनदार वस्तु को उठाते सब शरीर की शक्ति का उपर आकर्षण होता है, इतना विशेष पंज्जे पर जोर ज्यास्त लगता है, उस, से भुजपर कम उससे खम्बे पर कम, उससे अन्य शरीर पर कम. तैसेही कर्म ग्रहणके सम्बन्ध में नजिकके प्रदेश के विशेष कर्म लगते हैं और दूरके प्रदेशोंके थोंडे कर्म लगते हैं. परन्तु लगते सब प्रदेशों के हैं.

अब जिस वक्त जीव आयु कर्म का बन्ध करता है उस वक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त समय २ जो कर्म दल ग्रहण करे उसके आठ विभाग कर आठों कर्मो को बॉट देताहै. और जिस वक्त आयु कर्म विना सात कर्मोंका बन्ध करे तब सात कर्मोंको बॉटदेताहै. दशवे गुणस्थानमें आयुष्य और मोहनीय विना छे कर्मोका बन्ध करेतब छे को बॉटदे. और जब एक वेदनीय का बन्धकरे तब उसका हिस्सा भी एकही रहताहै इसमें सब से थोडे अंश आयुका जाणना. क्योंकि—दूसरे कर्मोंकि अपेक्षा से आयुष्य कर्म की स्थिति थोडी है, इसलिये थोडे काल में भोगवकर पूराकरे. उससे नाम और गोत्र का भाग परस्पर तुल्य आयुष्य से अधिक, क्योंकि इनकी स्थिति वीस कोडा कोड सागरोपम की है. आयु कर्म से संख्यात गुण अधिक है. इसलिये. + इस से

÷ जो भगवती जी सूत्र में—"सव्वेण सव्व बंधगा" एसा पाठ है सो आठ रुच प्रदेश अक्रिय नहीं हैं. इनको छोड बाकी के असख्यात प्रदेशों पर कर्म लेप लगताहै. जो रुचक प्रदेशों कर्म कर लेपावे तो फिर जडमें और चैतन्य में कुछ भी फरक नहीं रहता.

× आयुष्य कर्म के भाग का अंश सब से थोडा होता है, क्योंकि-दूसरे कर्मोंकी अपेक्षासे आयु कम की की स्थिति कर्म है, इसलिये उसका दल भी थोडे हैं, सो थोडे ही काल में भोगव करक्षय कर देता है.

ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मोंका हिस्सा आपसमें तु-ल्य, और नाम गौत्र से विशेषाधिक, क्योंकि इन तीनों की स्थिति तीस क्रोडा क्रोड सागरोपमकी है. इससे मोहनीय कर्म का हिस्सा विशेषाधिक क्योंकि-दर्शन मोहनी-य की स्थिति सीत्तर क्रोडा क्रोडी सागरोपम की है, और चारित्र मोहनीय की स्थि-ति चालीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम की है.

जैसे लूखा आहार (रोटे-राब प्रमुख) अधिक होवे तोही क्षुधा का उपशम होता है, और चिक्कणा आहार (शीरा-मावा प्रमुख) थोडा भोगवने से क्षुधाका उपशम होजाता है. तथा पाषाणादि बहुत द्रव्यसे मृत्यु प्राप्त होताहै. और विष (हला हल) थोडासा ही मृत्यु प्राप्त करता है, तैसेही वेदनीय कर्मका अधिक भाग होने सेही अनुभव गौचर होता है, क्योंकि-इस कर्मका दल मंदरस वाला अघातिक है, इसलिये इसके मंदरस होते है. और मोहनीय कर्म कादल तीव्ररस वाला हैसो थोडा होवेतो भी आत्म गुण का घातिक होता है. इस में स्थिति की विशेषता नही लेनी. बाकी वर्लस्थान ६ ही कर्मो में स्थिति की विशेष जाणना. अर्थात्-जिसकी स्थिति ज्यादा उसका भाग भी ज्यादा और जिस की स्थिति कम उस का भाग भी कम होता है.

और उत्तर प्रकृत्ति आश्रियः-प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म का मूल भाग प्राप्त हुवा उसमें से स्निग्ध सरस दल थोडा होवे ऐसे अनन्त वे भाग दलतो केवल ज्ञानावरणीय पणे परिण में, और बाकी दल रहासो मति ज्ञानावरणी आदि चारों प्रकृत्ति देश घातिकहै उस पणे परिण में. । दर्शना वरणीय का जो मूल भाग प्राप्त हुवा उसका अनन्तवा भाग असन्त सरस दल तो पांचों निद्रा और केवल दर्शना वरणीय यह ६ प्रकृत्ति सर्व घातिक है इस पणे परिण में और बाकी रहा जो निरस भाग सो चक्षुदर्शनावरणीयादि तीनों देशघातिक है उस पणे परिणमें. । साता और असाता यह दोनों प्रकृत्ति बन्ध विरोधकी है इसलिये एक समय में एकही का बन्ध होता है, और इसहीलिये इसका भागभी नहीं पडताहै.।मोहनीयका मूल भागजो प्राप्त होवे उसके अतन्त वे भाग सरस दलके दो विभाग होतेहैं-(१)दर्शन मोहनीयका और (२) चारित्र मोहनीयका. चारित्र मोहनीयके विभागके फिर१२भाग करना वो अनन्तान बन्धि चौक को चार, अप्रत्याख्याना वरणीय चौकको चार, और प्रत्याख्यानीवरणी चौकको चार यों१२भाग बाँटदेना. और बाकी रहै जो देशघातिक रस वन्त दल उसके दो विभाग

कर(१) कषाय और (२) नो कषाय को बॉट देना. उसमेंसेभी कषाय का भागतो संज्वल के चौक की चारों प्रकृत्ति को देना. और नोकषाय का एकवेद, एक युगल (भय और दुगंछा) इन पांचों प्रकृत्ति को बॉट देना. । आयुष्य कर्म की भी चारों प्रकृत्तियों वन्ध विरोधनी है-क्योंकि एक वक्त में एकही गति के आयुष्य का वन्ध होता है इसलिये इनका भाग-हिस्सा भी नहीं होता है. । नाम कर्म का मूल भाग प्राप्त होवे उसको २९ हिस्से में बॉट देना:-१ गति, २ जाति, ३ शरीर, ४ उपाङ्ग, ५ बन्धन, ६ संघयण. ७ संस्थान, ८ अनुपूर्व्वी, १२ वर्ण चतुष्क, १३ अगुरुलघु, १४ उपघात, १५ उश्वाश, १६ निर्म्माण, १७ जिन नाम, १८ आताप, १९ शुभा शुभ विहायो गति, २९ त्रस दशाका. अथवा + स्थावर दशका, इन २९ में से जितनी का वन्ध पडना हो उतनेही भाग में बॉटदेना. और इसमें भी जो शरीर नाम की प्रकृत्ति है उसके तीन या चार भाग करना. उसमें वैक्रिय, आहारक, तेजस, और कार्मण, इन चारों का बंध होवे तब चार भाग करना. तथा औदारिक तेजस कार्मण, या वैक्रिय तेजस कार्मण, इनका बंध होवे तब तीन ३ भाग करना. और बंधन नाम के ७ तथा ११ भाग करना. उसमें मनुष्य और तिर्यंच प्रायोग्य बंधते औदारिक के बंधन चार, और तेजस कार्मणके बंधन तीन, सो सात भागसे बंध होवे तब सात भाग में बॉट देना. और देव प्रायोग्य नाम कर्म की ३१ प्रकृत्ति का बंध करते वैक्रिय के बंधन चार, तथा आहारक का बंधन चार, और तेजस कार्मण के बंधन तीन, यों ११ भाग से बंध करे तब इग्यारे हिस्से में बॉट देना. और वर्णनाम के ५ भाग, गंधनाम के २ भाग, रस नामके ५ भाग, स्पर्श नाम के ८ भाग, यों २० भाग होते हैं. और बाकी रही प्रकृत्तियों उनका भाग, होता नहीं है, क्योंकि वो सब प्रकृत्तियों बंध विरोध की है-एक बंध होते दूसरी का बंध नहीं होता है. जैसे एक गतिका बंध करते बाकी की तीनों गतिका बंध नहीं होता हैं, ऐसेही जाति संघयण संस्थान आदि. तथा त्रसादिक दशका बंध करते स्थावरादि विरोध की प्रकृत्तिका बंध नही पडे, ऐसे सबस्थान जानना. । ऐसेही गोत्र कर्म का भी भागीदार दूसरा नहीं होता है, क्योंकि-एक समय

+ त्रस दशके का भाग होवे तब स्थावर दशके का नहीं और स्थावर का होवे तब त्रस का नँहा क्योंकि यह वन्ध विरोधकी प्रकृत्तियों है.

ऊंच या नीच दोनोंमेंस एकही गोत्रका बंध होताहै.। और अंतराय कर्मका मूल भाग जो प्राप्त होवे उसे अन्तराय के पांचो भागो में बॉट देना.

जिस प्रकृत्तिका बंध होता हो वो अपने २ प्रदेश दलिक भाग को प्राप्त होती है, और बन्ध विच्छेद होते उसका भाग जो दूसरी सजाति प्रकृत्तिका बन्ध होता हो उसे प्राप्त होता है. और कभी सजाति का बन्ध नहोता हो तो वीजाति को भी हिस्सा मिल जाता है, जैसे थीणद्ध त्रिक का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग निद्रा और प्रच ला को मिले, और निद्रा प्रचाला का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग चक्षुदर्शना वर णीयादिक को मिले, और दर्शना वरण का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग विजाति प्रकृत्ति वेदनीय है उसका बन्ध उसही गुणस्थान में होवे, इसलिये उसे हिस्सा मिले. और मिथ्यात्व मोहनीय के बन्ध बिच्छेद से इसकी सजाति दर्शन मोहनीय प्रकृत्तिका भी वन्ध नही होता है इसलिये विजाति चारित्र मोहनीय की प्रकृत्तिको इसका भाग मिले. उसमें भी सरस दल सर्व घातिक प्रकृत्ति के योग्य होता है इसलिये सर्व घाति की बारेही कषायों को उसका हिस्सा मिलेता है.

कर्म प्रकृत्तियों के उत्कृष्ट पदसे प्रदेश (कर्म दलिक) की अल्पा बहुत्वः–१ ज्ञानावरणीयः–(१) सब से थोडे केवल वरणीय के उत्कृष्टपद से कर्म दल, (२) उस से मनः पर्यव ज्ञानावरणी के अनन्त गुणे. (३) उससे अवधि ज्ञानावरणीय के विशेषा हीये. (४) उससे श्रुतज्ञानावरणीय के विशेषाहीये. और (५) उससे मति ज्ञानावरणी-य के विशेषाधिक. । २ दर्शना. वरणीयः–(१) सर्व से थोडे प्रचला के. (२) उस से निद्राके विशेषके. (३) उससे प्रचला प्रचलाके विशषाहीये. (४) उससे निद्रा निद्रा के विशेषाहीये. (५) उससे थीणद्धी निद्रा के विशेषाधिक. (६) उससे केवल दर्शना वर-णीय के विशेषाधिक, (७) उससे अवधि दर्शना वरणी के अनन्त गुणे. (८) उस से अचक्षुदर्शना वरणी के विशषाइये. और उससे चक्षुदर्शना वरणीय के विशेषाहीये.।३ वेदनीय कर्म–(१) सर्वसे थोडा असाता वेदनीय का भाग. (२) उस से सातावेदनीय का विशेषाधिक. । ४ मोहनीय कर्म–(१) बस से थोडा अप्रत्याख्याना वरणीय मान (२) उस से अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध विशेषाधिक, (३) उस से अप्रत्याख्या नी माया विशेष, (४) उस से अप्रत्याख्यानी लोभ विशेष. (५–८) ऐसेही प्रत्या-ख्यानावरणीय चारों की और (९—१२) अनन्तान बंधि चारों की अल्पा बहुत जाणना. (१३) उस से-दुगंच्छाके अनंत गुणे. (१५) उससे भयके विशेष.(१६-१७)

उससे हांस्य और शोक के विशेष, और आपस मे तुल्य. (१८-१९) उससे रति और अरतिके विशेष. और आपस में तुल्य. (२०-२१) उससे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके विशेष और अपस में स्वस्थान तुल्य. (२२) उससे संज्वल के क्रोधके विशेषाधिक, (२३) उससे संज्वल के मान के विशेषाधिक, (२४) उससे पुरुषवेद के विशेषाधिक, (२५) उससे संज्वल की माया के विशेषाधिक और २६ उससेसंज्वल के लोभ के विशेषाधिक। ४ आयुष्य कर्म की चारों प्रकृत्तियों के दलिक अपने २ स्थान में तुल्य हैं. । ५ नाम कर्म (गति आश्रिय) (२) सब से थोडे देव गति और नरक गति के दल. आपस में तुल्य (३) उससे मनुष्य गति के विशेष. (४) उससे तिर्यच गति के विशपे. (जातिआश्रिय) (१-४) सब से थोडे बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रय और पचेन्द्रिय. आपस में स्वस्थान तुल्य. (५) उससे एकेन्द्रिय जाति के विशेष (शरीर आश्रिय)-(१) सब से थोडे आहारक के, (२) उससे वैक्रिय के विशेष. (३) उससे. औदारिक के विशपे. (४) उससे तेजस के विशेष. और (५) उससे कार्मण के विशेष (योंहीं पांचों संघातन की भी अल्पा बहुत जानना.)-(उपाङ्ग आश्रिय)-(१) सब से थोडे आहारक के, (२) उससे वैक्रिय के विशेष, और (३) उससे औदारिक के विशेष. (बन्धन आश्रिय) (१) सर्व से थोडे आहारक आहारक बन्धन, (२) उससे आहारक तैजस बन्धन के विशेष, (३) उससे आहारक कार्मण बन्ध के विशेष. (४) उससे आहारक तैजस कार्मण बन्ध के विशेष, (५) उससे वैक्रिय वैक्रिय बन्ध के विशेष, (६) उससे वैक्रिय तेजस बन्ध के विशेष. (७) उससे वैक्रिय कार्मण बन्ध के विशेष, (८) उससे वैक्रिय तेजस कार्मण बन्ध के विशेष. (९) उससे औदारिक औदारिक बन्ध के विशेष. (१०) उससे औदारिक तेजस बन्ध के विशेष. (११) उससे औदारिक कार्मण बन्ध के विशेष. (१२) उससे औदारिक तेजस कार्मण बन्ध के विशेष (१३) उससे तेजस तेजस बन्धके विशेष. (१४) उससे तेजस कार्मण बन्धके विशेष और (१५) उससे कार्मण कार्मण बन्ध के विशषाधिक. (संस्थान आश्रिय) (१-२) सब से थोडे निग्रोध, सादि. बावन. कुब्ज इन चार संस्थान के और आपस में तुल्य उससे (५) समचतुरस्र संस्थान के विशेष, और (६) उससे हुंडक संस्थान के विशेष. (संघयण आश्रिय (१-५) सब से थोडे वज्र वृषभ नारच, वृषभ नारच, नारच, अधनारच और किलिक संघयण के (६) उससे छेवटे संघयण के विशेष, (वर्ण आश्रिय) (१) सर्व से थोडे कृष्णवर्ण के (२) उससे हरेवरण के विशेष, (३) उससे रक्त

वर्णके विशेष, (४) उससे पित वर्ण के विशेष, और (५) उससे शुक्ल वर्णके विशेष, [गंध आश्रिय] [१] सब से थोडे सुर्भिगन्धके, (२) उससे दुर्भिगन्ध के विशेष. (रस आश्रिय) (१) सब से थोडे तिक्त रस के, (२) उससे कटुक रस के विशेष, (३) उससे कषायले रसके विशेष, (४) उससे आम्ल रसके विशेष, और (५) उससे मधुर रसके विशेष. (स्पर्श आश्रिय) (१-२) सब से थोडे करकश और गुरु स्पर्श के, आपस में तुल्य. [३-४] उससे मृदु और लघु स्पर्शके विशेष और आपस में तुल्य. (५-६) उससे रुक्ष और शीतके विशेष आपस में तुल्य. (७-८) और उससे स्निग्ध और उष्ण स्पर्श के विशेष आपस में तुल्य. (आनुपूर्व्वी-आश्रिय) (१-२) सब से थोडे देवानुपूर्वी नरकानुपूर्व्वी. आपस में तुल्य. (३) उससे मनुष्यानुपूर्वी विशेष. और (४) उससे तिर्यचानुपूर्व्वी विशेष.(खगति-आश्रिय)१सब से थोडी शुभ विहायगति(२) उससे अशुभ विहाय गतिके विशेष. (त्रस और स्थावर आश्रिय) सब से थोडे त्रस दशःके के (२) उससे स्थावर दशके के त्रिषाधिक. । सब से थोडे बादर उस से सूक्ष्म विशेष. । सब से थोडे पर्याप्त. उससे अपर्याप्त विशेष । एसे प्रत्येक साधारण दोनों । एसेही आताप उद्योत सम और परस्पर तुल्य । निर्माण, उश्वास, पराघात उपघात, अगुरु लघु, और जिननाम. इनकी अल्पा बहुत नहीं है. ॥ गोत्र कर्म-सर्व से थोडे नीच गोत्रके उससे ऊंचगोत्र विशेष ।८ अन्तराय कर्म (१) सब से थोडे दानान्तराय के(२) उससे लाभान्तराय के विशेष(३)उससे भोगान्तरायके विशष(४) उससे उपभोग अन्तरायके विशेष. (५) और उससे वीर्यान्तराय के दलिक विशेष. ॥इति॥

कर्म प्रकृतियोंके जघन्य पदसे अल्पा बहुत॥१.ज्ञानावरणीय(१)सब से थोडे केवल ज्ञानावरणीय के(२)उससे मनः पर्यव ज्ञानावरणीयके अनंत गुणे(३)उससे अवधि ज्ञानावरणीके विशेष.(४)उससे श्रुत ज्ञानावरणीय के विशेष ५और उससे मति ज्ञानावरणीय केविशेष॥२ दर्शनावरणीय(१)सब से थोडे निद्राके(२)उससे प्रचलाका भाग विशेष(३) उससे निद्र निद्रा का भाग विशेष(४) उससे प्रचला प्रचला का भाग विशेष, (५) उससे थीणद्री का भाग विशेष, (६) उससे केवल दर्शनावरणीका भाग विशेष, (७) उससे अवधी दर्शनावरणयिका अनंत गुणे, (८) उससे अचक्षु दर्शनावराणि का विशेव, (९) उससे चक्षु दर्शनावराणिय विशेष ३ वेदनीय कर्म-(१) सब से थोडे असाता वेदनीय के, २) उससे साता वेदनीय के विशेस. । ४ मोहनीय कर्मः-(१) सबसे थोडा अप्रत्याख्यानावरणिय मानं. (२) उससे अप्रत्याख्याना वरणीय क्रोधके

विशेष. (३) उससे अप्रत्याख्याता वरणीय माया के विशेष. [४] उससे अप्रत्याख्याना वरणीय लोभ के विशेष [५-८] ऐसेही प्रत्याख्याना वरणीय चौक और (९-१२) ऐसेही अनन्तान वन्धि चौक. (१३) उससे मिथ्यात्व का जघन्य भाग विशेष. (१४) उससे दुगंछाका अनन्त गुणा. [१५] उससे भयके विशेष. [१६] उससे हंस्य के और शोक के विशेष, परस्पर तुल्य. (१९) उससे रति और अरतिका विशेष, परस्पर तुल्य. (२२) उससे तीनों वेदो का भाग विशेष. [२६] उससे संज्वलका चौक विशेष ॥ ५ आयुष्य कर्म [१-२] सव से थोडा तिर्यचायु नरायु, (३४) उससे देवायु नरकायु असंखेज गुणा. ॥ ६ नाम कर्म [गति आश्रिय] (१) सव से थोडा तिर्यंच गति का. (२) उससे मनुष्य गतिका विशेष. (३) उससे देवागति का संख्यात गुणा (४) उससे नरक गति का संख्यात गुणा (जाति विषय) (१-४) सव से थोडे वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रिय पचन्द्रिय और आपसमें तुल्यः (५) उससे एकेन्द्रिय विशेष. । (शरीर आश्रिय) (१) सव से थोडे औदारिक शरीर के, (२) उससे वैक्रिय के विशेष. (३)उससे कार्मण शरीर के विशेष(४)उससे तेजसके संख्यातगुण (५) उससे आहारक शरीर के संख्यात गुणे ऐसेही ५ संघातन का और १५ वन्धनका उत्कृष्ट पदके जैसा कहदेना. । (अङ्गो पाङ्ग आश्रिय) (१) सव से थोडा औदारिक अङ्गो पाङ्ग (२) उससे वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग के असंख्यात गुणे, (३) उससे आहारक के संख्यात गुणा (अनुपूर्व्वी आश्रिय) (२) सर्व से थोडा नरकानुपूर्व्वी देवानुर्व्वी, परस्पर तुल्य (३) उससे मनुष्यानु पूर्व्वी विशेष(४)उससे तिर्यचानु पूर्व्वी विशेष(त्रस विसंति विषय)(१) सव से थोडा त्रस दशका (२) उससे स्थावर दशका विशेष । यों वादर सूक्ष्म । योंही पर्याप्ता अपर्याप्ता । योंही प्रत्येक साधारण । और वाकी का ४२ प्रकृत्ति की जघन्य पदकी अल्पा वहुत्व उत्कृष्ट पदकी तरहही कहदेना ॥ ७ गोत्र कर्म (१) सर्व से थोडा नीच गोत्र. (२) उससे ऊंच गोत्र के विशेष. ॥८ अन्तराय कर्म (१) सर्व से थोडा दानान्तराय के, (२) उससे लाभान्तराय के विशेष, (३) उससे भोगान्तराय के विशेष. (४) उससे उपभोग अनन्तराय के विशेष. और [५] उससे वीर्यन्तराय के विशेष.

☞ प्रकृत्यादि चारों वन्धों के कथन के गहन ज्ञान रुप सिन्धु में दीर्घ दृष्टि से गोता लगातें जीवकी शक्ति की अचिन्त्यता, और पुद्गलो के परिणामों की विचित्रता का अवलोकन करते आत्मा में जिनेश्वर के ज्ञान का अद्भुत चमत्कार. प्राप्त होता है!

४२–५० दूसरे से दशवेतक बन्ध द्वारों का अर्थ

जैसे—लोहका और धातु का, फूलका और अतर का, पत्थर का और अग्निका अनादि से स्वभावि कही बन्ध है. तैसेही कर्म वर्गणा के दलके अनादि से जीव का सम्बन्ध है. ऐसे सकर्मी जीवों जब मिथ्यात्वादि आश्रव का सेवन कर कर्मों कर पुनः बन्धातेहैं बत ऊपर जो आठों कर्मों की१४८प्रकृत्ति कही उसमें से१२० प्रकृत्ति का बन्ध आत्मा के साथ होता है. क्योंकि शरीर नाम कर्म में अपना २ बन्ध और संघात दोनों अविना भावी है अर्थात्–शरीर के विना यह दोनोंही होसकते नहीं है. इस कारण ५ बन्ध, और ५ संघात यह १० प्रकृत्तियों बन्ध तथा उदय रुप नहीं है, अर्थात् कर्म बन्ध के अवस्था में यह प्रकृत्तियों अलग नहीं गिनी जाती है. और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, इन चारके ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्शयों,२० भेद होते हैं. परन्तु इनकी अभेद विवक्षा से इन २० भेदों में से बन्ध स्थान १ वर्ण, १ गंध, १ रस और १ स्पर्शयों ४ ही प्रकृत्ति लेना. बाकी की १६ प्रकृत्ति नहीं लेना. यों–१०+१६=२६ प्रकृत्तियों अभेद विवक्षा से बन्ध अवस्था में नहीं है. फक्त नामकी ६७ प्रकृत्ति बंध रुपहोती है. और मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृत्ति में से सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनिय इन दोनों प्रकृत्तियों का भी बन्ध नहीं पडता. इसलिये दो यह घटी,यों २८ हुइ. सब कर्मोंकी १४८ प्रकृत्ति में से इन २८ को कमी करने से १२० प्रकृत्तिही बन्ध रुप गिनी जाती है.

५१–५२ ध्रुव बन्ध कर्म प्रकृत्ति द्वारोंका अर्थ

जिस कर्म बन्ध का मूल हेतु मिलने से उस कर्म का अवश्य बन्ध पडे, परन्तु उसके स्थान दूसरी प्रकृत्तिका बन्ध नहीं पडनेदे, उसे ध्रुव बन्ध की प्रकृत्ति कहते हैं. सो–१ ज्ञानावरणीय की ५,२ दर्शना वरणीय की ९, ३ मोहनीय की १९, ४ नामकी ९, और५ अन्तराय की ५ यों ५ कर्मों की ४७ प्रकृत्तियों ध्रुव बन्ध की कही जाती है; जिसका सबबः–ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृत्ति और दर्शना वरणीय की ९ प्रकृत्ति, इन १४ प्रकृत्ति का आवरण–ढक्कन सब जीवों के अपना २ बन्ध विच्छेद स्थान पर्यन्त अवश्य बन्ध होता है, इसलिये ध्रुव बन्ध की जानना. ÷ और भय मोहनीय तथा दुगंच्छा मोहनीय यह दोनों बन्ध विरोध की प्रकृत्ति नहोने से ध्रुव बन्धीही कहना. और मिथ्यात्व मोहनीय का भी निज हेतु मिथ्यात्वो दय के सद्भाव

से अवस्य बन्ध पडता है. और अनन्तान बन्धि कषाय के उदय में अनन्तान बन्धि -क्रोध-मान-माया-और लोभ इन चारों का अवस्य बन्ध होता है. तैसेही अप्रत्या ख्यानी के उदय में अप्रत्याख्यानी क्रोधादि चारों का, प्रत्याख्यानी के उदय में प्र- त्याख्यानी क्रोधादि चारों का, और संज्वल के उदय में संज्वल की क्रोधादि चारों कषायों का यों १६ ही कषायों और तीनों मोहनीय मिल १९ ध्रुव बन्ध की प्रकृ- त्ति हुइ. और १ वर्ण, १ गंध, १ रस, १ स्पर्श, १ तेजस शरीर, १ कार्मण शरीर, १ अगरु लघु नाम, और १ निर्माण नाम. यह ९ प्रकृत्ति नाम कर्म की. चारों गति- के सब जीवोंके अवश्य पाती है, क्यों कि-यह ९ प्रकृति शरीरिक बंध की है. और ऐसे ही अंतराय कर्म की भी ५ प्रकृति दशवे गुणस्थान तक सब जीवोंके अवश्य होती है. यों सब ४७ प्रकृति ध्रुव बंधी जानना. (वेदनीय और गोत्र कर्म मूल प्रकृ- ति की अपेक्षासे तो ध्रुव बंध में लेने में कुछ हरकत नहीं, परंतु उत्तर प्रकृतियों ध्रुव बंधी न होने से यहां नहीं गिनी-

५३-२४ अध्रुव बंध कर्म प्रकृति द्वारोंका अर्थ.

जो प्रकृति अपना बंध हेतु का संबंध मिलने पर भी-कभी बंध करे और कभी बंध नहीं भी करे, तथा उस के स्थान उसके बंध विरोधनी प्रकृति का बंध पड जावे सो अध्रुव बंध की प्रकृति कहना. सो:—१.वेदनीय की २ २ मोहनीय की ७ ३ आ यूष्य की ४, ४ नामकी ५८, और ५ गोत्रकी २, यों ५ कर्मों की ७३ प्रकृति अ- ध्रुव बंध की होती है. जिसका सबब:-साता और असाता दोनों वेदनीय का बंध ए- कही साथ नहीं होता है. इसलिये अधृव बंधकी जानना. और हॉस्य और रति का। बंध होतीवक्त शोक और अरतिका बंध नहीं होताहै तथा शोक और अरतिका बंध होती वक्त हॉस्य और रति का बंध नहीं होताहै इसलिये यहभी अध्रुव बंध की प्रकृति ,छठे गुणस्थान तक होतीहै और इसके आगे 'निरत्र बंध होनेसे अध्रुव बंध की कही जाती है स्त्री पुरुष ओर नपुंसक-इन तीनों वेदों मेंसे एक वक्तमें एकही प्रकृति (वेद)का बंध होता है, इस में नपुंसक वेद तो मिथ्यात्व तक, स्त्रीवेद सास्वदन तक, इस के आगे निरंतर पुरुष वेदका ही बंध होता है, इसलिये यह ७ प्रकृति मोहनीय कर्म की भी अध्रुव बंधी जानना. नरकायु, तिर्यंचायू, नरायू, और देवायु इन चारो आयुष्य में से एक भवमें तो एक ही, आयुष्य का बंध होता है. इसलिये आयु कर्म की चारों प्रकृ-

ति अधुव बंध की जानना. । औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर. इन तीनों के अङ्गोपाङ्ग, यह ६ मनुष्य तिर्यंच के तो औदारिक होती है, नारकी देवता के वैक्रिय होतीहै और फक्त साधुजी के आहारक होतीहै इसलिये अधुव बंधी कहना. और ६ संघयनों में का एक ही संघयन एक वक्तमें पाता है, सोभी मनुष्य तिर्यंच गतिका बंध करते ही पाता है, परंतु देव नरक के बंध में नहीं पाता है. और६संस्थानोंमें का एकही संस्थान एकवक्त मिलता है और एकेन्द्रिय बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय इन पांचो जाति मे से एकही वक्त में एकही जाति का बंध पड़ता है. ऐसे ही चारों गति में से एक वक्त में एक ही गति का बंध होता है, तैसे ही शुभ विहायो गति और अशुभ विहायो गति, इन दोनों गति में से एक वक्त में एक ही गति का बंध होता है, तैसेही चारों गति की चारों अनुपूर्व्वी में से एक वक्त में एकही अनुपूर्व्वी का बंध होता है. जिन नाम का बंध फक्त सम्यक्त्वी के ही होता है सो भी कोइक बान्धते हैं, बाकी बहुत से नहीं बांधते हैं. उश्वाश नाम भी पर्याप्ता प्रायोग्य बांध ते वक्त बंधता है. अन्य वक्त नहीं. उद्योत नाम भी तिर्यंचायु बांध ते कोइक बांधता है. आताप नाम भी पृथ्वी काय प्रायोग्य बंध ते कोइक बांधता है, पराघात नाम भी पर्याप्ता प्रायोग्य कोइक बंधता है, त्रस दशका और स्थावर दशका यह २० प्रकुतियों भी बंध विरोधकी है, यों ५८ प्रकृति नाम कर्म की, और नीच गौत्र का बंध होवे तब ऊंच गौत्र काबंध नहीं होवे और ऊंच गौत्र का होवे तब नीच गौत्र का बंध न होवे यह दोनों बंध विरोधकी प्रकृत्ति है. यों सब ५ कर्मों की ७३ प्रति अधुव बंध की होती है.

इन दोनों बंधों पर चार भॉगे:-१ आठों ही कर्मों की प्रकृतियों पाहिले नहीं थी, नवांही बंध हुवा ऐसा कदापि नहीं होता है, इसलिये प्रथम अनादि भङ्ग, २ जिस प्रकृति का अनुबंधक पना हुवे वाद पहिले बान्धे सो सादि भङ्ग, ३ जिस प्रकृति का बंध विच्छेद न होवे वहां तक अनंत, और ४ जब बंध का अंत करे तब सान्त इन चारों भाङ्गमे से-अनादि अनंत, और अनादि सांत यह दोनों भांगे एक मिथ्यात्व मोहनीय विना बाकी की २६ धुवोदयी प्रकृति आश्रिय मिलते हैं. क्योंकि अभव्य के निर्माणादि २६ की आदि नहीं है, तैसे आगे गुणस्थान चढने के अभाव से उदय विच्छेद भी नहीं है, इसलिये अनंत जानना. और भव्य जीवों की, अपेक्षा से इन २६ प्रकृतियों की आदि तो नहीं है, परंतु-१२ वे, १३ वे, १४ वे, गुणस्थान

में अंत होवेगा ॥ और ध्रुव बंध की ४७ प्रकृति बंधकी अपेक्षासे ३ भाँगे होते हैः—
१. जो अभव्य जीवों अनादि काल से इन ध्रुव बन्ध की प्रकृत्तिका बन्ध करते हैं, इसलिये अनादि, और आगे गुणस्थाना रोहण के अभाव से बन्ध व्यच्छेद कदापि नहोने का इसलिये अनन्त. २ भव्य जीवों अनादि से मिथ्यात्वी हैं. और आगे गुण स्थाना रोहण कर प्रकृत्तियों का घात करेगें सो अनादि सान्त, ३ और भव्य जीवों इग्यारवे गुणस्थान मे इन प्रकृत्तियों का अबन्धक हो पीछे पडते हुवे बन्ध करे सो सादि सान्त. । मिथ्यत्व मोहके बन्ध में और उदय में भी तीन २ भाङ्गेः—१ अभव्य आश्रिय अनादि अनन्त, २ भव्य आश्रिय अनादि सान्त, ३ पडवाइ आश्रिय सादि सान्त, चौथा अनादि अनन्तका भांगा शून्य जानना

५५६०, घातिक अघातिकर्म प्रकृत्तिके द्वारों का अर्थ.

जो प्रकृत्तिं आत्मा के गुणों को आवरे—अच्छादे—ढके उसे घातिक प्रकृत्ति कहते हैं. जिसमें सर्व घातिक प्रकृत्ति के रस स्पर्द्धक तो ताम्र पत्र के जैसे छिद्र रहित और स्फटिक की तरह निर्मळ. द्राक्षकी तरह सूक्ष्म, सार प्रदेशों पर वहुल रस वाले होते है. इसलिये सर्व घातिक प्रकृत्तिके प्रदेश थोडे होते हैं, तोभी वीर्य अधिक होता है. जिनके नामः—१. केवल ज्ञानावरणीय और २ केवल दर्शना वरणीय यह दोनों प्रकृत्ति जैसे सूर्य महामेघ के पडलों कर आवरता—ढकाता है, तैसे चैतन्य के, ज्ञान दर्शन गुणों कों सर्वांश से आवरता है, तथापि महामेघ में दवा हुवा सूर्यका मण्डल दिन रात्री के विभाग को दर्शाता है. जिससे जाना जाता है कि—कुछ अंश अना छादित है. तैसेही जीवके ज्ञानादि गुणों सर्व घातिक प्रकृत्तियोंने ढके हैं. तोभी जड और चैतन्य का विभाग जानेन में आता है, इतना अंश उघाडा है. और पांचें निद्राभी सर्व घातिक गिनी है. क्योंकि—केवल दर्शना वरणीय से उघाडा रहा दर्शनांश को भी सर्वांश से अच्छादित करती है. पांचों इन्द्रिय के वोधेको रोकती है, इसलिये सर्व घातिक कहीहै यहां भी ऊपरोक्त सूर्य मेघ पट्टल के दृष्टान्त मुजब निद्रा में भी कुछ प्रदेशांश खुला रहाता है. जिस सेही जीवों शब्द स्पर्श आदि से जागृत होते हैं. और अनन्तानु वान्धि चौक सो सर्वतः सम्यक्त्व गुणों का अच्छादन करता है अप्रत्याख्यानी चौक—देश विरति गुणों का सर्वतः अच्छादन करता है. और प्रत्याख्यानी चौक—सर्वतः सर्व विरति गुणों का आच्छादन करताहै. यहां भी सूर्य मेघ प

इसके दृष्टान्त मुजब-कितनेक मिथ्यात्वी अनेक प्रकारके तप करतेहैं आविराति भी मांस आहार आदि का त्याग करते हैं देश विरति सर्व विरति होने की इच्छा करते हैं तो भी इन १२ प्रकृत्तियों को सर्व घातिकही गिनी है. और मिथ्यात्व मोहनीय भी तत्व र्थ श्रद्धान गुणों का सर्वतः घात करेहै. इसलिये यह भी सर्व घातिक है. यों १ ज्ञानावरणीय६दर्शना वरणीय,१३मोहनीय की सर्वमिल२० प्रकृत्तियों सर्व घातिक होतीहै

देशघातिक प्रकृत्तियोः—देश घातिक प्रकृत्ति के रस स्पर्श स्थूल—सछिद्र—टट्टे की तरह, मध्यम छिद्र—कम्बल की तरह, और सूक्ष्म छिद्र—वस्त्र की तरह गिने जाते हैं. स्थूल प्रदेश निरस असार बहुत प्रदेशी अल्पवीर्य वन्त होते हैं. जिनके नामः—१ मति ज्ञानावरणीय, २ श्रुतिज्ञानावरणीय, ३ अवधि ज्ञानावरणीय, ४ मनः पर्यव ज्ञानावरणी, (यह ४ ज्ञानावरणीय की) ५ चक्षुदर्शना वरणीय ६ अचक्षुदर्शना वरणीय, ७ अवधि दर्शना वरणीय, (यह ३ दर्शना वरणीय की,) यों ७ प्रकृत्तियों देश घातिक है, केवल ज्ञानावरणीय केवल दर्शना वरणीय, के अच्छादन होने पर भी अनन्तवा देसांश भाग ज्ञान दर्शन का खुल्ला रहाथा जिसका आवरण इन सातों प्रकृत्तियों ने किया है, इसलिये इने देशघाति कही है. और संज्वल का चौक भी सर्व विरति गुणों का देश से घात करते है. अर्थात्—देश से आतिचार लगाते हैं. इसलिये देश घातिक कहा है, और हाँस्यषटक तथा तीनों वेद यह नो कषाय भी देश घातिक है. क्योंकि-यह भी चारित्र में अतिचार उपजाती है, परन्तु अनाचार करता नहोने से देश घातिक गिनी हैं. और अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृत्ति भी देशघातिक होती है, क्योंकि पुद्गल द्रव्य का अनन्तवा भाग-दान लाभ भोगादि में होता है. अर्थात ग्रहण करने जोग जो पुद्गल हैं वो पुद्गल द्रव्य के अनंत वे भाग में हैं. उस में भी सवका दान लाभ उपभोगादि कर नहीं सकता है अकर्म नो कर्मादि तथा आहार आदि दान लाभ भोग आदि सब जीवके होता है, सब जीवों को इसका क्षयोपशम जरूरही होता है. यद्यपि जो वीर्य अन्तराय का सर्व घातिक रस होवेतो जीवका सर्व वीर्य का अच्छा दान होनेसे जीवों सूके काष्ट की तरह निचेष्ठित होजावे, फिर आहार आदि ग्रहण करना और परगमाना भी नवने इसलिये इसे भी देश घतिक जानना. यह २५ प्रकृत्तियों देश घातिक होती है. और जो उदय की अपेक्षा से गिनी तो मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय यह दोनों प्रकृत्ति भी देश घातिक होती होती है. यों २७ प्रकृत्ति देश घातिक की हुइ.

२० सर्व घातिक और २७ देश घातिक यों दोंनो मिलकर ४७ प्रकृत्ति घातिक कर्मों की होती है.

अघातिक कर्म प्रकृत्ति-ऊपर कहीसो ४७ घातिक प्रकृति, बाकी रही १०१ प्रकृत्ति सो सब अघातिक जानना. क्योंकि यह १०१ ही प्रकृत्तियों से आत्मा के ज्ञानादि गुणों का कुछ घात नहीं होता है, फक्त जैसे चोरों की सगती से साहूकार भी चोर गिना जाता है. तैसेही यह १०१ प्रकृत्तियों भी घातिक प्रकृत्तियों की साथही वेदने में आती हैं. इसलिये घातिक कही जाति है.

६१-६४ पुण्य पापकर्म प्रकृत्ति द्वारों का अर्थ.

पुण्य प्रकृत्तिका वन्ध-शुद्ध परिणाम से होता है, संक्लेश परिणमों से मन्द रस वन्ध पडताहै. और विशुद्ध परिणामों से तीव्र रस वन्ध पडता है, उसका उदयमीठे-मधुरे-मनोज्ञ रस में होता है, उसे वेदता जीव सुख मानता है. उसे पुण्य प्रकृत्ति कहते हैं, सो ४२ हैं:—१ साता वेदनीय (यह १ वेदनीय कर्म की) २ देवायु, ३ मनुष्यायु, ४ तिर्यंचायु + (यह ३ आयु कर्म की प्रकृत्तिका वन्ध भी पुण्योदय से होता है, जिस से आगे इन ३ गति में सुखकी विशेषता है.) ५ मनुष्य गति, ६ मनुष्यानु पूर्वी, ७ देवगति, ८ देवानु पूर्वी, ९ पचेन्द्रिय की जाति. १०-१४ पांच शरीर १५-१७ तीनों शरीर के अङ्गो पाङ्ग, १८ वज्र ऋषभ नाराच संघयण, १९ समचतुरस्र संस्थान, २० शुभवर्ण (श्वेत, पित) २१ शुभ गन्ध (शुर्भी गन्ध) २२ शुभरस (मिष्ट, अम्ल, कषायला) २३ शुभ स्पर्श (लहु, कोमल, चिक्कणा, उष्ण) २४ अगुरु लघु नाम, २५ पराघात नाम, २६ उश्वाश नाम, २७ आताप नाम, २८ उद्योत नाम, २९ शुभ चलनेकी गति, ३० निर्माण नाम, ३१ त्रस नाम, ३२ वादर नाम, ३३ पर्याप्ता नाम, ३४ प्रत्येक नाम, ३५ स्थिर नाम, ३६ शुभ नाम, ३७ सोभाग्य नाम, ३८सुस्वर नाम, ३९आदेय नाम, ४०यशो कीर्ति नाम, ४१ तीर्थं करनाम, (यह ३७ नाम कर्म की) और ४२ ऊंच गोत्र. यह ४ कर्मकी सब ४२ प्रकृत्ति जीवों को सुख दायक होने से पुण्य प्रकृत्ति गिनी जाती हैं.

पाप प्रकृत्ति वन्ध-अशुभ परिणामों से होता है. संक्लेश परिणामों से तीव्र रस

+ तिर्यंचायु जुगलीये तिर्यंचोकी अपेक्षासे पुण्य प्रकृत्ती में गृहण किया है.

बन्ध होता है, जिसका उदय कडवे रस मय दुःख दायक होता है, उसे पाप प्रकृत्ति कहते हैं. सो ८२ हैं:—५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शना वरणीय, १ असाता वेदनीय, १ मिथ्यात्व मोहनीय, और २५ कषाय (यह मोहनीय की २६) १ नरकायु (अयुष्य की १) १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, १ साधारण, १ अस्थिर, १ अशुभ, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, १ अयशः कीर्ति. १ नरक गति, १ नरकानु पूर्वी १ तिर्यंच गति, १ तिर्यंचानु पूर्व्वी, ४ पहिली चार जाति, १ अशुभ बिहाय गति, १ उपघात नाम, १ अशुभ वर्ण (कृष्ण हरित) १ दुर्भिगन्ध, १ अशुभ रस (तीखा, कडुवा) १ अशुभ स्पर्श (गुरु, क्षरखर, लुक्ष, शीत) ५ पीछेके पांच संघयण, ५ पीछे के पांच संस्थान, (यह ३४ नाम, कर्म की) १ नीच गोत्र और ५ अन्तराय की, यों आठों कर्मो की८२प्रकृत्तियों दुःख दायक होनेसे पापप्रकृत्ति गिनी जाती है.

☞ बन्धकी प्रकृत्तितो सब १२०है, और यह पुण्यकी ४२ पापकी ८२ मिल कर १२४ हुइ सो ४ प्रकृत्ति बडने का सबब यह है. कि-वर्णादि ४ चारों प्रकृत्ति को शुभ अशुभ दो भेद कर दोनों में (पुण्य पाप में) गिन ने से ४ प्रकृत्ति बढ गइहै.

६५-६८ परावर्त मान अपरावर्त मान कर्म प्रकृत्ति द्वारो का अर्थ.

जिन कर्मो की प्रकृत्ति अपने विरोधी प्रकृत्तियों के बन्ध को और उदय को रोक कर—दूरकर अपनाही बन्ध और उदय प्रत्यक्षमें देखातीहै, और जिन प्रकृत्तियों का उदय अलग २ वक्त में होता हैं. अर्थात—एक के उदय में दूसरी का उदय और बन्ध नहीं होवे, उनको "परावर्त मान" प्रकृत्ति कही जाती हैसो ९१प्रकृत्तियों हैं:-१ निद्रा,२निद्रा निद्र, ३प्रचला,४प्रचला प्रचला, और ५थीणद्धी निद्रा, यह पांचों दर्शना वरणीय की प्रकृत्ति उदय और बन्ध का विरोध धरानेवाली है, अर्थात्—एक निद्राका बन्ध और उदय होता है. उस वक्त दूसरी निद्रा का बन्ध और उदय नहीं होता है, तैसेही—६ साता वेदनीय और ७ असाता वेदनीय इन दोनों वेदनीय कर्म की प्रकृत्तियों का बन्ध और उदय भी अलग २ वक्त में ही होता है. अर्थात्—जब साता वेदनीय का बन्ध पडता है. और उदय होता है. तब असाता का नही. और जब असाता का बंध और उदय होता है तब साता का नहीं. तैसेही - अनंतानबंधी आदि चारों चौक की क्रोधादि १६ ही कषाय का उदय और बंध भी विरोधी है.

अर्थात्–जब एक जीवके एक समय में-एक क्रोध का उदय होता है तब-मान माया लोभ इन तीनों कषाय का उदय नहीं होता है, और जब मानका उदय होता है तब क्रोध माया लोभ इन तीनों कषाय का उदय नहीं, ऐसे ही सोलेही कषायों का जानना. तैसे ही २४ हॉस्य, और २५ रति, तथा २६ शोक और २७ अरति, यह चारों प्रकृति भी बंध विरोधनी है, क्योंकि–हांस्य के वक्त शोक नहीं, और शोक के वक्त हॉस्य नही, तैसे ही-रति के वक्त अरति नहीं और अरति के वक्त रति नहीं. । तैसे ही ३० तीनो वेदों भी उदय और बंध विरोधी हैं, एक जीवके एक वक्त में एकही वेद का बंध और उदय होता है. [यह मोहनीय कर्म की २३ प्रकृति) तैसे ही-३१ नरकायु, ३२ तिर्यचायु, ३३ नरायु, और ३४ देवायु, यह आयु कर्म को चारों प्रकृति भी उदय और बंध विरोधी है. क्योंकि-एक ही वक्त में एक जीव एक ही आयु बन्धता है और भोगवता है. तैसे ही-३८ चारों गति, ४३ पांचो जाति, ४६ पहिलेके तीनों शरीर, ४९ तीनों शरीर के अङ्गोपाङ्ग, ५५ छेही संघयण, ६१ छे संस्थान, ६३ दोनोंगति, ६७ चारों अनुपुर्व्वी, ७७ त्रस दशका, ८७ स्थावर दशका- + ८८ उद्योत नाम, और ८९ आताप नाम, यों नाम कर्म की ५५ प्रकृति यों भी उदय और बंध विरोधनी है. और तैसे ही-९० ऊंच गौत्र और ९१ नीचे गौत्र, यह दोनों गोत्र कर्म की प्रकृति भी बन्ध विरोधनी है. यों सब ९१ प्रकृतिका उदय और बंध का विरोध होनसे परावर्तमान की कही जाती है.

और अपरा वर्तमान प्रकृति सो इस से उलट स्वभाव वालीजानना अर्थात्-जिस का बंध तथा उदय दुसरी प्रकृतियोंसे विरोध नहीं रखते दूसरी प्रकृतियोंका बंध और उदयको विना रोके ही अपना बंध दीपावे अर्थात्—अन्य प्रकृतियों का बंध पडती वक्त उनका बंध पडे और अन्य प्रकृतियों के उदय में उनका उदय पावे-प्रत्यक्ष देखने में आवें ऐसी प्रकृतियों २९ हैं—सो ज्ञानावरणिय की ५, दर्शनावरणीय की ४, यों दोनों कर्मों की ९ प्रकृतियों ध्रुव बन्ध की है, इनका बंध करते कोइ शुभ परिणाम विशेप दुसरी प्रकृति का बन्ध नही भी डाले तो भी रस बंध में भवों की मन्दता करती है. तैसे ही-१० भय, ११ दुगंच्छा, और१२ मिथ्यात्व मोहनीय, यह ३

÷ क्योंकि त्रस की वक्त स्थावरका और स्थावरकी वक्त त्रस का बन्ध और उदय नहीं होता है.

मोहनीय कर्म की, और १३ वर्ण, १४ गन्ध, १५ रस, १६ स्पर्श, १७ तेजस श-रीर, १८ कार्मण शरीर, १९ पराघात नाम, २० निर्माणा नाम, २१ उपघात नाम, २२ अगुरु लघु नाम, २३ उश्वास नाम, और २४ तीर्थंकर नाम, (यह १२ नाम कर्म की) और २९ पांचों अंतराय. यह२९प्रकृति यो ध्रुव बंधकी है, अर्थात् इनका उदय प्रायः सब जीवों को सर्वदा पाता है. और एकेक बंध में दूसरीका बंध पडता हैं. तथा एकेक उदय में दुसरी का उदय भी कायम रह जाता हे. जैसे कृष्ण वर्ण का पदार्थ सुगन्धी मीठा और हलका है. यह चारो प्रकृति की एकही वक्तमें एक स्थान में पाजाती है तैसे, ही सब जानना, इसलिये इन में अविरोधी पना होने से 'अपरावर्त मान' की प्रकृति इने कही जाती है.

परावर्तमान की ९१ और अपरावर्त मान की २९ मिलकर सब१२० प्रकृतियों बन्ध की होती है.

६९-७८ भूयस्कारादि चारों बन्धपर कर्म प्रकृति द्वारोंका अर्थ.

१ ज्ञानावरणीय कर्म का-एक ही बन्धस्थान होने के सबब से भूयस्कारादि किसी भी बन्ध का संभव नहीं है.

२ दर्शनावरणीय कर्म के-९ का, ६ का और ४ का, यह तीन बन्ध स्थान होते हैं; इस में दर्शनावरणीय की सब ९ ही प्रकृतियों का बंध पहिले और दुसरे गु-णस्थान में होता है-जिसकी-जघन स्थिति अन्तर मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति तो अभव्य की अपेक्षा से अनादि अनन्त, और भव्य की अपेक्षासे अनादि सान्त होती है, तथा पडवाइ की अपेक्षा से सादि सान्त भी होती है. २ ऊपरोक्त ९ प्रकृतियों में से-(१) थीणद्वी निद्रा, (२) निद्रा निद्रा, और (३) प्रचला प्रचला,' इन तीनों का बंध विच्छेद होनेसे मिश्रादि गुणस्थान में ६ प्रकृतिका बंध रहता है, जिसकी स्थिति जघन्य अंतर मूहुर्तकी, और उत्कृष्ट१३२सागरोपम ऊपर पूर्व कोटी पृथक्त्व झाझेरी. ३ इन ६मेंसे निद्रा और प्रचला इन दोनों प्रकृतियोंका बंध विच्छेद आठवे अपूर्व करण गुणस्थानके पहिले भागमें होनेसे, अपूर्व करणका बाकी रहे सर्व भागोमें और नववे दशवे गुणस्थानमें४ प्रकृतिका बंध रहताहै, जिसकी स्थिति-जघन्य एक समयकी श्रेणिमें मृत्यु पावे जिसकी अपेक्षा से और उत्कृष्ट अंतर मुहूर्त की जाणना. । इन बंधों में भूय-स्कार और अल्पतर बंध तो दो दो होतेहैं. अवस्थित बंध तीन होते हैं. और अव्य क्त बंध भी दो होते हैं सो कहते हैं.-१ उपशम श्रेणि से पडते हुवे आठवे गुणस्था-

न के दुसरे भाग में आते हुवे दर्शनावरणीय चार प्रकृति का वन्ध करता हुवा-वंध से विच्छेद की हुइ निद्रा और प्रचला का फिर वंध करे तब ६ प्रकृति का वंध होवे,सो प्रथम समय प्रथम भूयस्कार. २ और फिर नवका वंध करे सो दुसरा भूयस्कार वंध, (यह २ भूयस्कार) और नवके वंध में से ३ का वंध विच्छेद कर ६ का वंध करते प्रथम समय पहिला अल्पतर वंध. और फिर अपूर्व करण गुणस्थान के प्रथम ६ प्रकृति का वंध कर फिर निद्रा और प्रचला का विच्छेद कर चार का वंध करे सो प्रथम समय दूसरा अल्पतर वंध. (यह २ अल्पतर वंध) और इन चारों के मध्या मे तीनों वंध स्थान मे दुसरे समय से लगाकर उन ३ वंध के स्थानों में अन्तिम समय पर्यन्त तीनों अवस्थित वध जाणना. और इग्यांरवे गुणस्थान में दर्शनावरणीय का अवंधकहो वहां से पडते दशमे गुणस्थान में चार प्रकृति का वंध करे नेके पहिले समय पाहिला अव्यक्त वंध, तथा उपशांतमोह गुणस्थान में आयूक्षय होने से मरकर अनुत्तर विमान में देव हो छे प्रकृतिका वंध करे उस के पाहिले समय दुसरा अव्यक्त वंध.

३ मोहनीय कर्म के १० वन्ध स्थानः—मोहनीय की वन्ध की २६ प्रकृत्ति है, इसमें भी एक समय में तीनों वेदों में का १ वेद, हांस्य और रति, शोक और अरति इन दोनों युगल में का एक युगल काही वन्ध होता है, क्योंकि यह प्रकृत्तियों वन्ध विरोध की है. इसालिये—१ मिथ्यात्व गुणस्थान में २२ का वन्धहोता है, जिसकी स्थिति—अभव्य आश्रिय अनादि अनन्त, भव्य आश्रिय अनादिं सान्त, और पडवाइ आश्रिय सादि सान्त. २ फिर सास्वादन गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय का वन्ध नहीं होने से २१ प्रकृत्ति का वन्ध होता है, जिसकी स्थिति जघन्य एक समय की उत्कृष्ट ६ आंवालिका की. ३ फिर मिश्र और अविराति सम्यक् दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानु वन्धि चौक का वंध नहीं होने से १७ प्रकृत्ति का बंध होता है, जिसकी स्थिति—जघन्य अंतर मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३३सागरोमप पृथक्त्व पूर्वकोडी अधिककी, क्यों कि—अनुत्तर विमानवासी देवताओं चवकर जहां तक विराति पणा धारन नहीं करें तहां लग यह गुणस्थान रहता है. । ४ फिर देश विरति गुणस्थान में अप्रत्याख्यानी चौक का वंध नहीं होने से १३ प्रकृत्तिका वंघ होता है, जिसकी स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त की, उत्कृष्टि पूर्व कोडी वर्षकी । ५ फिर प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में प्रत्याख्यानी चौक का वंध नहीं होने से ९ प्रकृत्ति का वंध होता है, जिसकी स्थि-

ति जघन्य एक समय की क्योंकि—कोइ जीव एक समय मात्र सर्व विर तिरहकर दूसर समय मरण प्राप्त हो जाता है. ऐसे परिणामों की अपेक्षा से जाणना. नहीं तो जघन्य अन्तर मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशऊणा पूर्वकोडी वर्षकी. ।६ फिर अनिवृति बादर गुण-स्थान के पहिले भाग में हांस्य रति भय और दुगंछा का बन्ध विच्छेद होने से ९ प्रकृति का बन्ध होवे, ।७ दुसरे भाग में पुरूष वेद का बन्ध विच्छेद होने से-चार प्रकृत्तिका बन्ध होवे, ।८ तीसरे भाग में संज्वल के क्रोध का बन्ध विच्छेद होने से तीन प्रकृत्तिक बन्ध होवे. ।९ चौथे भाग में संज्वल के मान का बन्ध विच्छेद होनेसे दो प्रकृत्ति का बन्ध होवे. । १० फिर पांचवे भाग में संज्वल की माया का बन्ध विच्छेद होने से एक प्रकृत्ति का बन्ध होवे. इन ६ से लगा कर १० वे स्थान तक की जघन्य स्थिति एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की, ऊपरोक्त मोह के १० बन्ध स्थानों में—९ भुयस्कार, ८ अल्पतर १० अवस्थित, और २ अव्यक्त बन्ध होते हैं सो कहते हैं:—१ जो जीव उपशम श्रेणिसे चडकर इग्यार वे गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त रह कर पडे, दशवे गुणस्थान में आवे वहां भी मोहनीय का अबन्ध रहै, वहां से पड नववे गुणस्थान के पांचवे भाग में आकर १ संज्वल के लोभ का बन्ध करे उसके प्रथम समय पहिला अव्यक्त बन्ध होवे. और इग्यारवे गुणस्थान मेंही आयुक्षय होने से मरण कर अनुत्तर वीमान में देव हो १७ प्रकृत्ति का बन्ध करे, उस समय दूसरा अव्यक्त बन्ध, (यह २ अव्यक्त बन्ध) और नवने गुणस्थान के पांचवे भाग से पडकर चौथे भाग में आकर संज्वल की माया के साथ दो प्रकृत्ति का बन्ध करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, तीसरे भागमें संज्वलकी मायाके साथ तीन प्रकृत्ति का बन्ध करे उस समय दूसरा भ्रयस्कार, ३ दूसरे भाग में संज्वल के क्रोध के साथ चार प्रकृत्ति का बंध करे सो तीसरा भूयस्कार, ४ प्रथम भाग में पुरुषवेद सहित पांच प्रकृत्ति का बंध करे सो चौथा भूयस्कार बंध. ५ वहां से आठवे गुणस्थानके अन्तमें हांस्य रति भय दुगछा इन प्रकृत्ति सहित ९ प्रकृत्तिका बंध करे सो पांचवा भूयस्कार. ६ वहां से देश विरति गुणस्थान में प्रत्याख्याना वरणीय चौक सहित १३ प्रकृत्ति का बंध करे सो छट्ठा भूयस्कार. ७ वहां से चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्याना वरणीय चौक सहित १७ प्रकृत्ति का बंध करे सो सातवा भूयस्कार. ८ वहां से दूसरे गुणस्थान में अनन्तानु बंधा चौक सहित २१ प्रकृत्ति का बंध करे सो आठवा भूयस्कार. और वहां से प्रथम गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय सहित २२ प्रकृत्ति का बंध करे सो नववा भूयस्कार. (यह ९ भूयस्कार बंध) और १ मिथ्यात्व

गुणस्थान में २२ प्रकृत्तिका बंध कर चौथे गुणस्थान में १७ प्रकृति का बंध करे सो प्रथम अल्पतर बंध. २ फिर १३ प्रकृति का बंध रहै सो दूसरा अल्पतर बंध. यों ऊपरोक्त भूयस्कार बंध सब उलट कहना. इसमें विशेष इतनाही है. कि-२१ प्रकृति का अल्पतर बन्ध नहीं होता है. क्यों कि-मिथ्यात्व गुणस्थान से सास्वादन गुणस्थान में कोइभी आता नहीं है. बाकी के ८ अल्पतर बन्ध होतेहैं। और ऊपर मोह बन्ध के दशस्थान कहे सो दूसरे समय से लगा कर अन्तिम समय पर्यन्त दशोंही अवस्थित बन्ध जानना.॥

४ नाम कर्मके ८बन्धस्थान-१. मिथ्यात्वी जीव मनुष्य तिर्यंच अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य-१ वर्ण, २ गन्ध, ३ रस, ४स्पर्श, ५ तैजस, ६ कार्मण, ७ अगुरुलघु ८ निर्माण, ९ उपघात, १० तिर्यंच गति, ११ तिर्यचानु पूर्व्वी, १२ एकेन्द्रिय जाति, १३ औदारिक शरीर, १४ हुंड संस्थान, १५ स्थावर नाम, १६ बादर नाम अथवा सूक्ष्म नाम, १७ अपर्याप्ता नाम, १८ प्रत्येक नाम अथवा साधारण नाम, १९ अस्थिर नाम, २० अशुभ नाम, २१दौर्भाग्य नाम, २२ अनादेय नाम, और २३ अयशः नाम, इन २३ प्रकृतियों का प्रथम बंध स्थान.। २ इन २३ में-१ पराघात और २ उछ्वास यह दोनों प्रकृतियों मिलाने से, और अपर्याप्ता के स्थान पर्याप्ता कहने से २५ प्रकृति का बंध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी देवता और मनुष्य के होता है.। ३ इन २५ प्रकृतिमें आताप अथवा उद्योत दोनों मेसे एक प्रकृति मिलाने से २६ प्रकृति का बन्ध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य तीनों गतिके मिथ्यात्वी जीवोंके होता है.। ४ फिर—२ देव द्विक, ३पचेन्द्रिय जाति, ४ वैक्रिय शरीर, ५ वैक्रिय अङ्गोपाङ्ग, ६ समुचतुरस्र संस्थान, ७ पराघात नाम, ८ उश्वाश नाम, ९ शुभ खगति, १० त्रस नाम, ११ बादर नाम १२ पर्याप्ता नाम, १३ प्रत्येक नाम, १४ स्थिर अथवा अस्थिर, १५ शुभ अथवा अशुभ, १६ यशः अथवा अयशः १७ सुभग, १८ सुस्वर, १९ आदेय, २३ वर्ण चतुष्क, २४ तैजस, २५ कार्मण, २६ अगुरु लघु, २७ निर्माण, और २८ उपघात. यह २८ प्रकृति देवगति प्रायोग्य मिथ्यात्वी तथा सम्यक्त्वी मनुष्य और तिर्यंच बंधते हैं. ऐसे ही नरक गति प्रायोग्य भी २८ काही बन्ध होता है, वहां इतना विशेष कि-देव द्विक के स्थान नरक द्विक कहना. और समुंचतुरस्र संस्थान के स्थान हुंड संस्थान कहना. और अपरावर्तमान प्रकृतियों अशुभ गृहण करनी. यह २८ प्रकृति का चौथा बन्ध स्थान हुवा. ॥ ५ सम्यग

दृष्टि जिन नाम सहित देव प्रायोग्य २८ का बन्ध करते २९ का बंध स्थान होवे. अथवा २मनुष्य द्विक, ३पचेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक,६छे संघयणोंमें का-एक संघयण, ७ छे संस्थानों में का-एक संस्थान, ८ त्रस, ९ बादर, १० पर्याप्ता, ११ प्रत्येक, १२ स्थिर अथवा आस्थिर, १३ शुभ कथवा अशुभ, १४ सोभाग्य अथवा दौर्भाग्य, १५ सुस्वर अथवा दुस्वर. १६ आदेय अथवा अनादेय, १७ यशः अथवा अयशः १८ शुभ खगति अथवा अशुभ खगति, १९ पराघात, २० उश्वाश, २४ वर्ण चतुष्क, ५ तेजस, २६ कार्मण, २७ अगुरु लघु, २८ निर्माण, और २९ उपघात. यह २९ का मनुष्य प्रायोग्य बंध स्थान होता है. । ६ देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृति के साथ आहारक द्विक सहित बन्ध करते ३० प्रकृति का बन्ध अप्रमत साधु के होता है, और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति को जिन नाम सहित ३० प्रकृति का बन्ध सम्यग् दृष्टि देवता के होता है. । जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३० प्रकृति का बन्ध करने ३१ प्रकृति का बन्ध अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान वर्ती साधु के होता है. । ८ आठवे गुणस्थान के छठे भाग में नाम कर्म की ३० प्रकृति का बन्ध विच्छेद कर एक-यशः कीर्ती का बन्ध करे.

इन ८ बन्ध स्थानों में—भूयस्कार बंध ६, अल्पतर बंध ७, अवस्थित बंध ८, और अव्यक्त बंध ३ होते हैं सो कहते हैं:—१ प्रथम २३ का बंध कर, तथाविधि विशुद्धि कर फिर २५ का बंध करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, मिथ्यात्वी के होता है. । इन २५ को आताप अथवा उद्योत सहित २६ का बंध करते दूसरा भूयस्कार. । विशुद्धया संक्लेश परिणामों से देव प्रायोग्य या नरक प्रायोग्य, २८ का बन्ध करते तीसरा भूयस्कार, । देव प्रयोग्य २८ इने जिन नाम सहित २९ का बन्ध करते चौथा भूयस्कार । येही ३० प्रकृत्ति मनुष्य प्रायोग्य अथवा देव प्रायोग्य बान्धते पांचवा भूयस्कार । देव प्रायोग्य ३० और जिन नाम सहित ३१ का बन्ध करते छट्टा भूयस्कार. (यह ६ भूयस्कार बन्ध) और अपूर्व करण में देवगति प्रायोग्य—२८—का,—२९—का, ३० का, और ३१ का बन्ध कर श्रेणि चडते हुवे सब बन्ध का विच्छेद कर एक यशः कीर्ती काही बन्ध करे सो प्रथम अल्पतर । कोइ आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ का बन्ध करता मृत्यु पाकर देव लोक में जावे वहां प्रथम समय मनुष्य प्रयोग्य ३० प्रकृत्ति का बंध करे सो दूसरा अल्पतर । देवलोक से चव मनूष्य पणे उत्पन्नहो जिन नाम

सहित देवगति प्रायोग्य २९ का बंध करे उस वक्त तीसरा अल्पतर. । कोइ मनुष्य देवगति प्रायोग्य २९ का बंध करते परिणामों की विशुद्धि कर देवगति प्रायोग्य २८ का बंध करे उस समय चौथा अल्पतर. । इनही २८ का बंध करते संक्लिष्ट परिणामों से एकेन्द्रिय प्रायोग्य २६ का बंध करे सो पांचवा अल्पतर. । वोही २६ वाला २५ का बंध करे सो छट्ठा अल्पतर. और २५ वाला २३ का बंध करें सो सातवा अल्पतर. (यह ७ अल्पतर बंध हुवे) और ऊपर कहे सो आठों बंध के स्थान कों में दूसरे समय से लगाकर आन्तिम समय पर्यन्त आठों अवस्थित बंध होते हैं (यह ८ अवस्थित बंध) और-१ श्रेणिसे पडते हुवे नाम कर्म का सवर्था अबंध होकर फिर यशः कीर्ती नाम का बंध करे उसके पहिले समय पहिला अव्यक्त बंध. और २ उपशान्त मोहगुणस्थान में मर कर अनुत्तर विमान में देवता होवे, वहां प्रथम समय मनुष्य मे मनुष्य प्रायोग्य २९ का बंध करे सो दूसरा अव्यक्त, और वहां ही जिन नाम सहित ३० का बंध करे सो तीसरा अव्यक्त बंध (यह ३ अव्यक्त बंध.)

ऊपरोक्त इन तीनों कर्मो सिवाय बाकी रहे सो-१ ज्ञानावरणीय, २ वेदनीय, ३ आयुष्य, ४ गोत्र, और ५ अन्तराय, इन पांचों कर्मो का एकही बंध स्थान है. क्योंकि—ज्ञानावरणिय और अन्तराय यह दोनों कर्म तो ध्रुव बंधी हैं इसलिये दशवे गुणस्थान तक इन दोनों की पांच पांच प्रकृत्ति का साथही बंध होता है जिस से इनका भूयस्कार और अल्पतर बंध नहीं होता है. फक्त एक अवास्थित बंधही सदा बना रहता है. और वेदनीय आयुष्य गोत्र इन तीनों कर्मों की प्रकृत्तियों बंध विरोध की है, इसलिये एक समय में एकही का बंध होता हैं. और बंध स्थान भी एकही होता है, जिससे इन का भी भूयस्कार और अल्पतर बंध नही होता है. और वेदनीय का बंधतो तेरवे गुणस्थान तक होता है, इसलिये इस विना बाकी के चारों कर्मो का व्यक्त बंध एकही होता है, क्योंकि—इग्यारवे गुणस्थान में अबंधक हो फिर बंध करते प्रथम समय व्यक्त बंध होता है, फिर अवस्थित बंध जाणना.

ऊपरोक्त बंध में मूल प्रकृत्ति का जघन्य एक का बंध है, और उत्कृष्ट ८ का बंध है, । और उत्तर प्रकृत्ति का जघन्य एक का उत्कृष्ट ७४ का बंध होता है. इस ने—१ अनादि, २ सादि ३ अनन्त, और ४ सान्त इन चारों भांगों को विचारते हैं मूल प्रकृत्ति के बंध स्थान में औघ से १ सादि सान्त भांगा पाता है. क्योंकि–भवों भव में एकही वक्त आयु का बंध होता है, यह आठ का बंध. और बाकी के काले

में मात का बंध होता है. । और उत्तर प्रकृत्ति में ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का एकेक बंध स्थान, वेदनीय का एक बंध. मोहनीय का २२ का बंध, गोत्र का एकका बंध, और अन्तरा का पांच का बंध. इन बंधोंमें १ अभव्यकी अपेक्षा से अनादि अनन्त भांगा. २ भव्य की अपेक्षा से अनादि सान्त भांगा, और ३ पडवाइ की अपेक्षा से सादि सान्त भांगा यों तीन भांगे मिलते हैं. और बाकी २ बंध स्थानोंमें फक्त एक सादि सान्त ही भांगा पाता है. सो स्थिति मान जानना.

७७–१११ उदय द्वारोंका अर्थ.

जैसे मादिरा पान किये बाद कालान्तर से नशा का प्रभाव प्रत्यक्ष होता हैं.-आत्माको बिबहाल बना देता है; तैसे ही बन्धे हुवे कर्मों का अबाधा काल परी पक होने से वो कर्म तीव्र, मन्द, घातीया, अघातीया, कटु, मिश्र इत्यादि विपाक रूप उनका प्रभाव प्रत्यक्ष आत्मा पे होवे उनको आत्मा से वेदें--अनुभवे--भोगवो उसे उदय कहते हैं. इसकी १२२ प्रकृतियों है; सो १२० तो बंध में कही सोही जानना, और यहां १सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय यह २ प्रकृति अधिक ग्रहण करना, क्योंकि इन दोनोंका उदय मिथ्यात्व मोहनीय से कुछ अन्यही रूपमें देखताहै.

उय के ३४ द्वारों में से ८ विपाकोदय के द्वारों और ध्रुवो दय अध्रुवोदय छोडकर बाकीके द्वारोंका खुलासा तो बन्धके द्वारोंमें कहे मुजबही जानना. और वीपाकोदय का खुलासा यहां करते हैं.

चार विपाक द्वारोंका अर्थ.

यद्यपि सर्व प्रकृतियों अपना २ विपाक जीव कोही देखाती है, तो भी कितनीक १ क्षेत्र को मुख्यता कर देखाती है, सो क्षेत्र विपाक की कही जाती है. २ जो भव की मुख्यता कर विपाक देखातीहै सो भव विपाक की, ३जो बाह्य शरीर पर विपाक देखातीहै सो पुद्गल विपाक की. और ४ जो इन तनोंकी अपेक्षा विना आत्मा मेंही साक्षात विपाक बतावे सो जीव विपाक कि प्रकृति जानना. इसका स्वरूप यहां कहते हैं.

१ जीव विपाकः—जैसे सूय की प्रभाव का अच्छादन बद्दल करते हैं. तैसेही आत्मा के ज्ञान, दर्शन-श्रद्धान, चारित्र, और दानादि लब्धि इन गुणोंका अच्छा-

दन करने वाली जो - ज्ञानावरणीय की ५. दर्शनावरणीय की ९, मोहनीयकी २८ औ अन्तराय की ५, ऐसे चारों घन घातिक कर्मों की ४७ प्रकृतियें शरीर पुद्गलकी अपेक्षा विना अपना विपाक जीव कोंही देखाती है, तैसे ही ४८-४९ साता और असाता वेदनीय, तथा-५०-५१. नीच और ऊंच गोत्र, यह चारों प्रकृतियों सुखी दःखी व ऊंच नीच जीव कोही वनाती है. और ५२ तीर्थंकर गोत्र के उदय से परम एश्वर्य पुजातिशय वचनातीशय और अपयागमतीशय यह चारों अतिशय जीवके ही होतेहैं जिससे जीवही तीर्थंकर परमात्मा कहलाते हैं. ऐसे ही-५३ त्रस. ५४ स्थावर, ५५ सूक्ष्म, ५६ वादर, ५७ पर्याप्ता, ५८ अपर्याप्ता, ५९ सौभाग्य, ६० दौर्भाग्य, ६१ सुस्वर, ६२ दुस्वर, ६३ आदेय, ६४ अनादेय, ६५ यशःकीर्ति, ६६ अयशःकीर्ति. यह सव प्रकृतियों जीवके ही प्राप्त होतीहै, जिस प्रकृतिके नाम मुजब ही (त्रस स्थावरादि नामसे) जीवको वोलाया जाता है. ६७ श्वाशोछ्वास, यद्यपि पुद्गल रूप है, परन्तु यह लब्धि जीवको ही होती है, ६८-७२ एकेन्द्रिययादि पांचों जाति, ७३-७६ नरकादि चारों गति, ७७-७८ दोनों खगति, यह भी जीव परही प्रवर्तती है. इसलिये सव ७८ प्रकृति जीव विपाक की गिनी जाती है.

२ भव विपाककी-प्रकृति फक्त एक आयुष्य कर्म की ही चारों गिनी जातीहै क्योंकि-देवतादिक का भव प्राप्त हुवे वाद भवके प्रथम समय से लगाकर आन्तिम समय तक निरन्तर अपनी शक्ति वताती है, आत्मा का खोडे की तरह निरुंधन करती है, परभवमें जाने नहींदेती है, और जव उन प्रकृतियों का क्षय करते हैं तब पर भव का आयुका उदय होनेसे परभव में जीव जाता है, इसलिये भव की मुख्यता कर के १. नरकायु, २ तिर्यंचायु, ३नरायु, और ४सुरआयु, इन चारों प्रकृतिको भव विपाक की जानना. और दुसरा कारण यह भी हैकि-चरम शरीरी जीव वाकी रहे तीनों गति के दलिये को मनुष्य गति के एक आयुष्य में संक्रमा कर-उदयावली में लाकर वेदकर क्षयकरे. क्योंकि प्रदेश से कर्म वेदे विना छूटका नहीं होता है. और आयूका संक्रम किये विना मोक्ष भी नहीं होती है. इस लिये आयूका संक्रम किये वाद फिर उस के किसी भी प्रकार का परभव का आयुष्य का उदय नहीं होनेसे स्वभावकाही उदय रहा है, इसलिये आयुष्यकी चारों प्रकृति भव विपाक की जानना.

३ पुद्गल विपाककी प्रकृति-जो अपनी शक्ति शरीरादि पुद्गलों में देखावे उन, प्रकृतियों से हुवाहुवा गुण दुर्गुण अनुग्रह उपघात शरीरादि नो कर्म पुद्गलों में होवे

ऐसे द्रपुल विपाक की फक्त १ नाम कर्म की ३८ प्रकृतियों हैं:—१ निर्माण, २ स्थिर, ३ आस्थिर ४ शुभ, ५ अशुभ, ६ तैजस, ७ कार्मण, ८वर्ण, ९ गंध, १० रस, ११ स्पर्श, १२अगुरुलघु, इन १२ के अङ्गोपाङ्ग नो कर्म पुद्गल के जिसस्थान चाहिये वहांही जो देना, हाड दांत आदि कर्म पुद्गलों का स्थिर बन्धन, लोही लाल आदि कर्म पुद्गलों का अस्थिर बन्धन, तैसे ही मस्तकादि शुभ, पग प्रमुख अशुभ, शरीर के वर्ण गंध रस स्पर्शादि पुद्गल के होते है. ऐसेही १३-१५ तीन शरीर, १६-१८ तीनों शरीरके अङ्गोपाङ्ग, १९-२४ छे संघयण, २५-३० छे संस्थान, यह प्रकृतिभी शरीरके पुद्गल पणे परगमी है. ३१ उपघात नाम अंगुली प्रमुख अधिक होवे, सो भी पुद्गल विपाक की है. ३२ साधारण नाम भी शरीर पर्याप्ति पूरी किये बाद उदय होनेसे एक शरीर में अनेक जीव रहते हैं. ३३ ऐसेही प्रत्येक नामभी शरीराश्रित ही है. ३४ उद्योत नाम, ३५ आताप नाम, ३६ पराघात नाम यह भी शरीरके ही होते हैं. यों सब ३८ प्रकृति पुद्गल विपाक की होती है,

४ क्षेत्र विपाक—जो आकाश के प्रदेशों में जिसका मुख्यता कर उदय होवे अर्थात्-जब जीवों परभव को जाते दो समय या तीन समय की वक्र गति रूप श्रेणि करे उस जीवको जो जैसे बेल को नाथ (रस्सी) खेंचकर रस्ते पर लाती है त्यों जीव को जिस गति में जाना होवे उस गति के रस्ते लगावे उन्हे क्षेत्र विपाक की प्रकृति कही जाती है, सो फक्त १ नाम कर्म की चार प्रकृति है:—१ नरकानु पूर्व्वी २ तिर्यंचानुपूर्व्वी, ३ मनुश्यानु पूर्व्वी और ४ देवानु पूर्व्वी. यह चारों अनुपूर्व्वी नामक प्रकृति रस्ते भूल जीवों को खेंचकर अपने नाम जैसी गति में-क्षेत्र मे ले जाती है इसलिये क्षेत्र विपाक की प्रकृति कहीजाती है.

ध्रुवोदय अध्रुवोदय कर्म प्रकृत्तियों का अर्थ.

ध्रुवोदय प्रकृत्ति—५ पांच ज्ञानावरणीय, ४ दर्शना वरणीय, और ५ अन्तराय, इन१४ प्रकृति का उदय बारवे गुणस्थान तक रहताहै. १५ मिथ्यामोहनी का उदय अभव्य के सदा रहता है. और १६ निर्माण, १७ स्थिर, १८ अस्थिर १९ अगुरु लघु, २० शुभ, २१ अशुभ, २२ तेजस २३ कार्मण, और २४ वर्ण चतुष्क, यह नाम कर्म की १२ प्रकृति का उदय भी तेरवे गुणस्थान तक है, इसलिये चारों ग-

ति के जीवों के सदा पाता है. इसमें जो-स्थिर अस्थिर तथा शुभ अशुभ यह चारों प्रकृत्ति आपसमें विरोध की है. सो बन्ध आश्रिय जानना. परन्तु उदय आश्रिय नहीं अर्थात् इन चारोंका एकही वक्त वन्ध नही, पडता है. परन्तु उदय रहता है जैसे रक्त मूत्र आदिका अस्थिर वन्ध अस्थिर कर्मोदय से होता है, और हाड दांत आदिका स्थिर वन्ध स्थिर कर्मोदय कर होता है, तैसे मस्तकादि शुभ अंग की प्राप्ति शुभ कर्मोदय कर होती है, और पादादिक अशुभ अंगका उदय अशुभोदय से होता है. और चारोंही वस्तु एक शरीर में सदा देखने में आतीहै जिससे ध्रुवोदय की कही जातीहै.

अध्रुवोदय की प्रकृत्तिः—दर्शना वरणीय कर्म की पांचों निद्रा का उदय किसी वक्त होवे किसी वक्त नहोवे, ऐसेही दोनों वेदनीय × मिथ्यात्व मोहनी विना २ प्रकृत्ति ÷ मोहनी की, चारों आयुष्यकी, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संघयण, ६ संस्थान, दोनों खगति, चारों अनुपूर्वी, जिन नाम, उद्योत, आताप, अपघात पराघात, त्रस दशका स्थावर दशका और उपघात नाम, यों नाम कर्म की ५५ और गोत्र की २, यों सब ९५ प्रकृत्ति उदय विरोध की होने के सबब से अध्रुव उदय की गिनी जातीहै.

११३-१२४, उदीरणा द्वारों का अर्थ.

जो कर्मो अभितक अवाधा काल परिपक्व नहोने से उदय अवस्था को-फल देने को समर्थ नहीं हुवे हैं, ऐसे कर्मो को अपना करण वीर्य की विशेषता कर-उन्हें आकर्ष कर-खेंचकर उदया वली में लाकर अप्राप्त काल में भोगवे-जैसे वृक्षके अपरिपक्व फल को अग्निके व घांस (पराल) के जोग से पाका कर भोगवते हैं. उसे उ-

---

× सम्यक्त्व मोहका उदय वेदक सम्यक्त्वी के होता है और मिश्र मोह दोनों के मध्यमे होता है. इसलिये यह दोनों प्रकृति अध्रुव गिनि जाती है

÷ सोलेह कषाय. १७ भय, १८ दुगछा, यह १८ मोहनीय कर्मकी प्रकृत्ति अध्रुवोदयमें गिनी है. क्योंकि—क्रोध के उदय में मानादिक का उदय नहीं होता है, यों सब प्रकृत्तियों उदय विरोधी होने के कारण से अध्रुवोदय में गिनी हैं. परन्तु बन्ध विरोधकी नहीं है. और भय तथा दुगछा का उदय भी सान्तर है. अर्थात् कभी होवे और भी नहीं भी होवे, जिससे अध्रुवोदय की गिनी है.

दीरणा करी कही जाती है इसकी भी उदय की माफक १२२ ही प्रकृत्तिये हैं इसके १२ द्वारों का खुलासावार अर्थ बन्ध के द्वारों के माफक ही जानना.

१२५-१४६ सत्ता के द्वारों का अर्थ.

जीवका और कर्मों का सुवर्ण मट्टी की तरह अनादि सम्बन्ध है, इसलिये वो कर्मदल आत्मा के प्रदेशों पर बना रहै-दूरन होवे अथवा दूसरी प्रकृत्ति में संक्रमें नहीं निधान की तरह रहे वहां तक उसकी सत्ता गिनी जाती है. वो कर्म कैसे हैं? तो कि-उनके बन्ध से तथा संक्रमण से प्राप्त हुवा है आत्म लाभ मतिज्ञानावरणीय आदि आत्म स्वभाव जिससे ऐसे कर्म अर्थात-सजातीय उत्तर प्रकृत्ति में निज स्थिति रस दल का परिक्रमावना, जैसे देव गति मनुष्य गति में संक्रमा कर सत्ता में रहना ऐसी सत्ता की प्रकृतियों सब १४८ ही हैं इसके २२ द्वारों में से ध्रुवा ध्रुव सत्ता के ४ द्वारों छोड कर बाकी के द्वारों के अर्थ का खुलासा तो बंध के द्वारों मुझबही जानना. ध्रुवा ध्रुव सत्ता का खुलाशा यहां करते हैं.

ध्रुवा ध्रुव कर्म प्रकृत्ति सत्ताका अर्थ.

ज्ञानावरणीय की ५, दर्शना वरणीय की ९, इन का बन्ध ध्रुव है. तो सत्ता तो जरुर ही होय. वेदनी की-२ दोनों प्रकृत्ति का परस्पर सक्रान्तदलकी अपेक्षा से ध्रुव है. मोहनीय कि-१६ कषाय. १ भय, १ दुंगछा, १ मिथ्यात्व. यह ध्रुव बंधी होनेसे तब सत्ता वली जरुर होती है ३ तीनों वेदाका उदयतो अध्रुव है परन्तु एक वेद के उदय में तीनों वेदों की सत्ता पाती है. और हांस्य और रति, तथा शोक और अरति इन दोनों जुगलों की सत्ता भी क्षपक श्रेणि में नववे गुणस्थान तक सब जीवों के रहती है, (यह मोहकी २६) नाम की १० त्रस दशका, या १० स्थावर दशका, और वर्णादि २० सब शरीर धारीकेही होते है ! तेजस शरीर, कार्मण शरीर, तेजस संघातन, कार्मण संघातन, तेजस बंधन कार्मण बन्धन. (यह दोनों शरीर सर्व स्थान पाने से ६ प्रकृत्ति सदा पाती है, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गो पाङ्ग, औदारिक संघातन, औदारिक बन्धन, इनकी सत्ता भी सर्वादा पाति है, क्योंकि-मनुष्य तिर्यंच के तो इनका उदय है. और नारकी देवता के सत्ता है-(मर कर इसी में आने वाले हैं) तिर्यंच गति और तिर्यंचानु पूर्वी इन दोनों की सत्ता प्राथम सर्व जीवों के सदा होती है. क्योंकि---वहुत काल इसी में गमाया है. तथा दूसरी गति में भी इस का बंध पाता है. निर्माण, उपघात, अगुरुलघु, उश्वास उद्योत, आताप, पराघात, ५

जाति, ६ संघयण, ६ संस्थान, और २ खगाति [यह नाम कर्म की ७८] १ नीच गोत्र की अध्रु सत्ता तिर्यंच में गति नियमा से होवे, और ५ अन्तराय की सत्ता सब जीवों के सर्वदा पाती है. यों ७ कर्मों की १२६ प्रकृत्ति ध्रुव सत्ता वाली जानना.

अध्रुव सत्ताकी प्रकृत्ति उसे कहते हैं. कि—जिसका उदय कभी होवे कभी न होवे ऐसी२२प्रकृत्ति है–१ सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय इन दोनों की सत्ता अनादि मिथ्यात्व की होती है यों सम्यक्त्व का वमन कर जो मिथ्यात्व गुणस्थान में आया हो उसके होता है. अन्य के नहोने से अध्रुव गिनी जाती हैं. और चारों गति के आयुष्य की सत्तामें से किसी जीवके एक गति के आयुष्य की सत्ता होती है किसी के दो गतिके आयु की सत्ता होतीहै परन्तु सवों के एकसी सत्ता न होने से आयुष्य की प्रकृत्ति अध्रुव गिनी है. मनुष्यगति और मनुष्यानु पूर्व्वी इन दोनों प्रकृत्ति की तेउ और वायु में बहुत काल रहने वाला उवेलना करता है इसलिये उनकी सत्ता में नहीं पाने से अध्रुव गिनी जाती है. वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, वैक्रिय संघात, वैक्रिय वन्धन, देवगति, देवानु पूर्व्वी, नरक गति, नरकानु पूर्व्वी, इन ११ प्रकृत्ति की सत्ता अनादि निगोदीये जीवों के वन्ध के अभाव से नहीं होती है, तथा उवेलते भी नही हैं, इसलिये अधुव है. जिन नाम की सत्ता भी जो सम्यक्त्व प्रत्यय वन्धन कर फिर मिथ्यात्व में जावे जिसके अन्तर मुहूर्त लग होती है दूसरे के नहोतीहै इसलिये अध्रुव गिनीहै. आहारक शरीर अहारक अङ्गो पाङ्ग आहारक संघातन आहारक वन्धन, इन का अप्रमत गुणस्थानी विशुद्धा चारी मुनि बन्धन कर फिर संक्लेश परिणामो से मिथ्यात्व में जावे उनके सत्ता में होतीहै दूसरे के नहोने से अध्रुव गिनी है, और ऊंच गोत्र की सत्ता भी अध्रुव है, क्योंकि—ते३ और वायु में रहे हुवे जीव ऊंच गोत्र की उवेलना करते हैं, उस वक्त उसके ऊंच गोत्र की सत्ता नहीं, रहे तीहै इसलिये अध्रुव. ऐसे मिथ्यात्व गुणस्थान में वर्तते भी जिन प्रकृत्तियों की सत्ता किसी के होवे किसी के नहोवे ऐसी यह २८ प्रकृत्ति अध्रुव सत्ता की जाणना.

१४७–१५५ कर्मों के भङ्ग द्वारों का अर्थ.

वन्ध उदय, और सत्ता इन तीनों की प्रकृत्तियों के स्थान वताते हैं:—मूल आठ प्रकृत्ति वन्ध की अपेक्षा से–८ का, ७ का, ६ का, और १ का, यह ४ स्थान होते हैं, और उदय की अपेक्षा से–८ का, ७ का, और ४ का, यह तीनो स्थान हो

ते हैं; और सत्ता की अपेक्षा से-८ का, ७ का और ४ का, यहि तीनो स्थान होते है. सोही कहते हैं:-

जिस वक्त जीव सब कर्मो का बन्ध करता है तब आठ प्रकृत्ति के बन्ध का स्थान होता है, सो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्तही रहता है. । जब आयुष्य का बन्ध नहीं होता है तब सात प्रकृत्ति का बन्ध स्थान होता है यह जघन्य अन्तर मुहूर्त, * और उत्कृष्ट ३३ सागर में ६ महीने कम और अन्तर मुहूर्त कम पूर्व कोटी वर्ष का तीसरा भाग अधिक इतना होता है. + । और जब आयुष्य मोहनीय विना छे कर्म का बन्ध दशवे गुणस्थान में होता है वो जघन्य १ समय ÷ उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त ! क्योंकि-इसकी स्थिति इतनी है । और १ वेदनीय कर्म का बन्ध इग्यारवे और

* कोइ अन्तर मुहुर्त आयुष्य वाला जीव अपने आयुष्य का तीसरा भाग बाकी रहे तब परभव के आयुष्य का बन्ध करे, तब आठों कर्म का बध कर फिर सात प्रकृति के बंध स्थान में आवे. वहां फिर कुछ कम अन्तर मुहूर्त के तीसरे भाग पर्यन्त सात प्रकृति के बन्ध कर्ता सात प्रकृति के बन्ध स्थान में रहकर फिर मृत्यु पाकर अन्तर मुहुर्त के आयुष्य के स्थान मे अवतरे वहां भी उस आयुष्य के दो भाग पर्यन्त सात प्रकृति का बन्ध करे, फिर तीसरे भाग कें धुर में आयू बन्ध करे तब आठोंक बन्धे स्थान को प्राप्त होवे इसलिये अन्तर मुहुर्त का जघन्य काल कहाहे.

+ कोइ पूर्व कोटी बर्ष के आयुष्य वाला अपना आयुर्ष्यक तीसरा भाग रहे तब अन्तर मुहुर्त पर्यन्त ३३ सागर का देवताका आयूका बन्ध करे वहां ८ प्रकृति का स्थान मे रहकर फिर पूर्व कोटी बर्ष का तीसरा भाग मे अन्तर मूहूर्त कम रहे वहां तक सात प्रकृति के बंध स्थान में रहे, फिर वहां से चव कर देवता होवे वहां भी तेंतीस सागर ६ महीने कम पर्यन्त तो ७ प्रकृति काही बन्ध करे. फिर छे महीना बाकी आयुष्य रहे तब परभव का आयुष्य बन्धे, तब आठ प्रकृति के बंध स्थान मे आवे. इस अपेक्षा से उत्कृष्ट इतने कालका संभव है.

÷ कोइ जीव पमश श्रेणिकर दशवा गुणस्थान एक समय लग स्पर्शे वहां भव क्षय से मरण पाकर अनुत्तर विमान में देवता होवे वांह फिर अव्राति सम्यक दृष्टि पने सात प्रकृतिका बन्ध करे इस अपेक्षासे जघन्य एक समय जानना-

× दशवे गुणस्थानकी स्थिति अतर मुहुर्त कीहीहे वहाभी छे प्रकृतिका बन्ध होता है.

तेरवे गुणस्थान में होता है, जिसकी स्थिति–जघन्य १ समय की, + उत्कृष्ट देश ऊणा क्रोड पूर्व की * । यह चार वन्ध के स्थानक ॥ आयुष्य कर्म का वन्ध करते एक आठ कर्मोका वन्ध करने का स्थानक होता है, मोहनीय कर्म का वन्ध करते–एक आठ का और दूसरा सात का यों दो वन्ध स्थान होते हैं. वेदनीय कर्म का बन्ध करते–आठ का, सात का छेका और एक का यों चार वन्ध के स्थानक होते हैं. बाकी रहे–ज्ञानवरणीय, दर्शना वरणीय, नाम गोत्र और अन्तराय इन पांचों कर्मोंका बन्ध करते आठ का, सातका और छेका यह तीन कर्मोंके वन्ध के स्थान होते हैं॥

२ उदय के तीन स्थानक कहते हैं:—सब आठों कर्मोंका उदय का पहला स्थानक, यह अभव्यकी अपेक्षा अनादि अनन्त, भव्यकी अपेक्षा अनादि सान्त, और पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त, इसकी स्थिति–जघन्य अन्तर मुहूर्त की, ÷ उत्कृष्ट देशऊणी आधा पुद्गल परावर्तन की × । मोहनीय विना सात कर्मो का दूसरा उदय स्थानक इग्यारवे बारवे गुणस्थान में होताहै, जिसकी स्थिति जघन्य एक समय की, ÷ और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की (!) । और चारों घातिये कर्मों का क्षय कियेबाद, वेदनीय आयुष्य, नाम और गोत्र यह चारों भवोप ग्राही कर्मों का उदय तेरवे चउदवे गुणस्थान में होता हैं जिसकी स्थिति–जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट देश ऊणी क्रोडपूर्व ॥ इसमें मोहनीय कर्म का उदय एकही आठ प्रकृत्ति के उदय स्थानमें

+ इग्यारवा गुणस्थान को १ समय मात्र स्पर्श कर फिर भव क्षय हुवे मरण करे.

* कोइ क्रोड पूर्व के आयुष्य वाला सात महीने गर्भ में रहकर जन्मे, जन्मे बाद आठ वर्ष के अन्ते में चारित्र ग्रहण करे, उसी वक्त क्षपक श्रेणि चडकर केवल ज्ञान प्राप्त करे इस अपेक्षा से जानना.

× क्योंकि-कोइ जीव अन्तर मुहुर्त के नन्तर फिर भी श्रेणि प्रतिपन्न होजाता हैं

÷ क्योंकि उपशम श्रेणि दूसरी वक्त स्पर्श ने का उत्कृष्ट अन्तर इतनाही होताहै. कारण की सम्यक्त्व प्राप्त हूवे बाद संसार में रहनेका उत्कृष्ट काल इतनाही है. इतने कालतक आठों कर्मोका उदय रहता है.

(!) कोइ जीव इग्यारवा गुणस्थान स्पर्श कर तुर्त मृत्यु पावे इस अपेक्षासे जानना.

× इग्यारवा और बारवा गुणस्थान का काल इतनाही है, और ७का उदयस्थान भी यही है.

होता है; ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्मो का उदय आठ के और सात के दोनों स्थानों में होता है, बाकी के चारों कर्मोका उदय दशवे गुणस्थान तक आठों के उदय होता है, इग्यारवे बारवे गुणस्थान में सात के उदय स्थान में होता है, तेरवे चउदवे गुणस्थान में चारों के उदय स्थान में होता है.

३ तीन सत्ता के स्थानकः—आठों कर्मो का सत्ता का स्थानक तो इग्यारवे गुणस्थान तक पाता है, सो अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त, और भव्यकी अपेक्षा अनादि सान्तः। मोहनीय कर्म का क्षय कियेबाद सात कर्मो का सत्ता स्थानक-बारवे गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त पर्यन्त पाता है. । और चारों घातिये कर्म क्षय कियेबाद, चारों अघातिये कर्मो का सत्ता स्थान तेरवे चउदवे गुणस्थान में जघन्य अन्तर मुहूर्त × उत्कृष्ट देशउणा क्रोड पूर्व लग पाताहै. ॥इसमें-एक मोहनीय की सत्ता में आठों कर्मो का सत्ता स्थानक, मोहनीय विना तीनो घातिये कर्मो की सत्ता में-आठका और सातका यह दो स्थानक पाते हैं. और चारों अघातिक कर्मो की सत्ता में आठका सातका और चारका यह तीन सत्ता के स्थानक पाते हैं.

अठों कर्मो का बन्ध उदय और सत्ता का सम्बंध कहते हैः—अष्टविधि बन्धक सप्तविधि बन्धक और षडाविधि बन्धक, इन तीनों बन्ध में अलग १ आठ कर्मो का उदय और सत्ता होती है, जिसके तीन भांङ्गे हैः—१ आठों का बन्ध आठों का उदय, और आठों की सत्ता; यह प्रथम भङ्ग, आयुबन्ध के वक्त अन्तर मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा प्रमत संयाति गुणस्थान तक पाता है. १ सात का बन्ध आठ का उदय और आठ की सत्ताः यह दूसरा भङ्ग आयुबंध के अभाव से जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट छे मनहीनें कम तेंतीस सागर पूर्व कोडीका तीसरा भाग अधिक, मिथ्यात्व से लगा कर अनिवृत्ति बादर गुणस्थान तक पाता है, ३ छेः का बन्ध, आठ का उदय, और आठ की सत्ता; यह तीसरा भङ्ग, सूक्ष्म, सम्पराय गुणस्थान में जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त प्रमाण जाणना. क्योंकि—यहां मोहनीय का बन्ध नहीं है, ॥ एक वेदनीय के बंध के तीन भाङ्गे होते हैः—२ एक का बंध सातका उदय और आठ की सत्ता, यह प्रथम भङ्ग—उपशान्त मोहके स्थान जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त लग मिलता है, क्योंकि—यहां मोहका उदय तो

÷ यह अन्तगड केवली की अपेक्षासे जानना.

नहीं है, परन्तु सत्ता है, २ एक का बंध, सात्त का उदय और सात की सत्ता यह दूसरा भङ्ग क्षीणमोह गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त लग पाता है. एक का वन्ध, चारका उदय, और चारकी सत्ता यह तीसरा भङ्ग संयोग केवली गुणस्थान में जघन्य अन्त र मुहुर्त, उत्कृत्त देशऊणा क्रोड पूर्व वर्ष पर्यन्त पाता है, । २ और वन्ध के अभाव से चार का उदय और चार की सत्ता यह एकही भङ्ग अयोगी केवली गुणस्थान में पाता है. जिसकी स्थिति पांच लघु अक्षर की । यों सव आठ मूल प्रकृत्तिके ७ भांगे होते है.

कर्मों की उत्तर प्रकृत्तियों पर वन्ध उदय और सत्ता का संवेध. ज्ञानावरणीय और अन्तराय इन दोनों कर्मों की पांच २ प्रकृत्ति होने से वन्ध उदय और सत्ता का संवेध एकसा है, इसलिये यहां दोनोंहीं साथही कहते है:—दोनो कर्मो पांच २ प्रकृत्तियो ध्रुव वन्धकी है, इसलिये पांचों का वन्ध भी ध्रुव उदय भी ध्रुव, और सत्ता भी ध्रुव जाणना. । अव इन दोनों का सम्वेध कहते हैं:—१ ज्ञानावरणीय और अन्तराय के वन्ध की वक्त पांचो प्रकृत्तिका वन्ध, पांचों का उदय और पांचों की सत्ता यह प्रथम भङ्ग दशवे गुणस्थान तक पाता है, इन दोनो कर्मों के वन्ध के अभाव से; पांचों का उदय और पांचों की सत्ता यह दूसरा भङ्ग–११ वे, १२ वे, गुणस्थान में पाता है.

दर्शना वरणीय का सम्वेध भङ्गादि

दर्शना वरणीय वन्ध के तीन स्थान:-२ नवों प्रकृत्ति वन्धका स्थान पहिले और दूसरे गुणस्थान में पाता है, सो–अभव्यकी अपेक्षा से अनादि अनन्त, भव्य की अपेक्षा से अनादि सान्त, और पडवाइ की अपेक्षा से सादिसान्त होता है. । २ छेः प्रकृत्ति का स्थान मिश्र गुणस्थान से अपूर्व करण गुणस्थान के प्रथम भाग तक पाता है. सो जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट १३२ सागर झाजेरा × । ३ निद्र प्रचला विना चार प्रकृत्ति वन्ध का स्थान अपूर्व करण गुणस्थान के दूसरे भागसे लगाकर दशवे

× प्रथम सम्यक्त्व मे ६६ सागर रहकर फिर मिश्र गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त रहे. फिर सम्यक्त्व में ६६ सागर रहे, फिर कोइ जीव कषायोदय से मिथ्यात्व में जाकर ९ प्रकृति का वंध करे. और क्षपक श्रेणि करे तो ४ प्रकृतिका वंध करे, इस अपेक्षासे १३२सागरकी उत्कृष्ट स्थिति जाणना.

गुणस्थान तक पाता है सो जघन्य एक समय ÷ और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्तः ॥ दर्शना वरणीय के सत्ता के तीन स्थानः-१ नवका सत्ता का स्थानक-अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त, और भव्यकी अपेक्षा अनादि सान्त होता है; यह स्थान उपशम श्रेणिकि अपेक्षा से तो मिथ्यत्व गुणस्थान से लगाकर उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाता है, और क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा से मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा अनिवृत्ति बादर गुणस्थान के पहिले भाग तक पाता है. यहां थीणाद्धि त्रिक का क्षय होने से-। २ छः प्रकृत्ति का सत्ता स्थान अनिवृत्ति बादर गुणस्थान के दूसरे भाग से लगा कर बारवे गुणस्थान के द्विचरम समय लग पाता है, इसकी स्थिति अन्तर मुहूर्त की । ३ और बारवे गुणस्थान के अन्तिम समय-निद्रा और प्रचला का क्षय होने से चारों प्रकृत्तिका सत्ता स्थानक एक समय तक रहे. ॥ दर्शना वरणीय के उदय के दो स्थानकः-१ चक्षुदर्शना वरणीय, अचक्षुदर्शना वरणीय अवधि दर्शना वरणीय और केवल दर्शना वरणीय इन चारों प्रकृत्तिका ध्रुवोदय मिथ्यात्व से लगा क्षीणमोह गुणस्थान तक होता है. । २ और इन चारों के साथ जब निद्रा का उदय होवे तब पांच के उदय का दुसरा स्थान जानना. +

अब दर्शनावरणीय कर्म प्रकृत्ति का बन्धादि का सम्बंध कहते हैं:-दर्शनावरणीय में-नवका बंधस्थान मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थान में होता है, इस में-१ चक्षुदर्शनावरणी आदि चारों के उदय स्थान होवे, और २ पांचो निद्रा में की एक वक्त में एक हीनिद्रा का उदय होनेके पांचका उदय स्थान होवे इन दोनों भांगेमें सत्ता का स्थान तो ९ प्रकृत्तिका ही होता है. अर्थात्-१ नवका बंध चारका उदय और ९ की सत्ता यह प्रथम भङ्ग, २ नवका बंध पांच का उदय, और नवकी सत्ता यह दु-

× कोइ जीव आठवे गुणस्थान में मरकर देवता होवे वहां ६ प्रकृति का बंध करे इस अपेक्षासे.

÷ पांचों निद्रा अध्रुवोदय की प्रकृति है, इसलिये उदय विरोधी है, अर्थात-पांचों मेंसे एकही वक्त में एकही निद्रा का उदय होता है. दुसरीका नहीं होता है. और जब निद्राका उदय नहीं होवे तब चक्षू दर्शनावरणी आदि चारों का उदय रहता है. इसलिये निद्रिस्थ अवस्था में पांच के उदय का भांगा पाता है नही तो चारका भागा पाता है. यों दो भागे होते हैं.

सरा भङ्ग, + ऐसे ही निश्चय से छेकें बंध मे और चारक बंध में बी दोदो भोंगे होते है सो कहते हैं:-१ छ का बंध, चारका उदय, और नवकी सत्ता; २छे का बंध पांचका उदय, और नवकी सत्ता. यह दोनों भाङ्गे तीसरे गुणस्थान से लगाकर आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग तक पाते हैं. क्योंकि-तीसरे गुणस्थान से थीणद्री त्रिक की नास्ति होती है. और उदय तो चारका ध्रुव होता है और जिस वक्त निद्राका उदय होवे उसवक्त पांचों प्रकृति का उदय पहिले कहे मुजब जानना और सत्तातो नवकी ही होती है. और क्षपक साधु के आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग में-छे का बंध, चार का उदय, और छे की सता यह एकही भांगा पाता है. परिणामों की अत्यंत विशुद्धता से निद्रा का उदय होता नहीं है. + ऐसे ही चार के बंध में भी तीन भांगे जाणना:-१. पांचों निद्रा विना-चार का बंध, चारका उदय, और नवकी सत्ता जब निद्रा और प्रचला दोनों में से एक का उदय होवे तब चार का बन्ध, पांचका उदय और नवकी सत्ता, यह दोनों भाङ्गे आठवे गुणस्थान के दुसरे भाग से लगाकर इग्यारवे गुणस्थान तक तो उपशम श्रेणी में पाते है. और क्षप के तो निद्राके अभाव से पहिले कहे मुजब एकही भाङ्गा पाता है. ॥ और चार के बन्ध में नववे गुणस्थान के दुसरे भाग से थीणद्री त्रिक नववेके प्रथम भाग में प्रक्षेपे उस वक्त छ की सत्ता होती है उसवक्त चार का उदय औरछे की सत्ता पाती है यह भाङ्ग दशवे गुणस्थानके अन्तिम समय तक क्षपकमे पाता है॥ फिर बंधसे निवृते वाद इग्यारवे गुणस्थान में चार का उदय और नवकी सत्ता. १ तथा पांच का उदय और नव की सत्ता. यह दो भाङ्गे पातेहैं * और वारवे गुणस्थान के अन्तिम समय के पहिले समयतक-चार का उदय और छेकी सत्ता, और अन्तिम समय में चार का उदय

× दूसरे भॉगे में ऐकक वक्त पाचों निद्रामे से एकेक निद्रा उदय होवे उसका नाम ले अलग २ भांगे कहने से दूसरे भागे के पांच उत्तर भागे होजाते है.

× कितनेक आचार्य बारवे गुणस्थान तक निद्रा का उदय मान कर क्षपक को भी निद्रा का उदय फरमाते है. परन्तू यह वात मिलती कम है.

+ क्योंकि-उपशान्त मोह वालों के निद्राका उदय का भी सगव है, इसलिये पांचका उदयभी मिल शत्तका है, और सत्ता तो नव कीही है.

और चार की सत्ता + ॥ यह सब मिल कर (११) भाङ्गे दर्शनावरणीय कर्म के होते हैं. = ॥

वेदनीय कर्म के भंगादि

वेदनीय कर्म की-साता वेदनीय और असाता वेदनीय यों दोनों प्रकृति बन्ध विरोधकी है. अर्थात्-एक समय में दोनों में से एक काही बन्ध पडता है. तैसे ही उदय विरोध की भी है:-अर्थात एक समय में उदय भी एक काही होता है. साता का तब असाता का नहीं और असाता कातबसाताका नहीं इसलिये बन्ध का और उदयका एक एकही स्थान होता है और सत्ता स्थान तो दो काभी होता है और एक का भी होता है. । वेदनीय कर्म के ८ भाङ्गे:-१ असाता बन्ध, असाता का उदय और साता असत्ता दोनों की सत्ता. २ असाता का बन्ध साताका उदय और साता असाता दोनों की सता. (यह दोनों भाङ्गे मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा कर प्रमत गुणस्थान तक पाते हैं, फिरे आगे असाता का बन्ध च्छिेद होता है फक्त एक साताही का बन्ध रहै तब) ३ साता का बन्ध असाता का उदय और दोनों की सत्ता ४ साता का बंध साताका उदय और दोनों की सत्ता. (यह दोनों भाङ्गे मिथ्यात्व से लगाकर संयोगी केवली गुणस्थान तक पाते हैं. । फिर आगे बन्ध के अभाव से) ५ साता का उदय और दोनों की सत्ता, ६ असाता का उदय और दोंनो की सत्ता (यह दोनों भांगे अयोगी गुणस्थान के द्विचरम समय तक पाते हैं। फिर (७२ प्रकृत्ति में जिनों ने असाता क्षयका किया उन के) ७ साता का उदय और साता की सत्ता यह भाङ्गा अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय में पाता है । और (जिनोंने साता का क्षय कि-

---

÷ द्विचरम समय में निद्रा का और प्रचला का क्षय होता है, इसलिये चारही की सत्ता रहती है.

= और जो क्षपक श्रेणि में निद्रा का उदय मानत्ते है उनके मत से-१ चार का बन्ध, पांच का उदय छेकी सत्ता. यह भाङ्गा नववे दशवे गुरणथान वृत्ति क्षपक में पाताहै और बन्ध के अभाव से पांच का उदय छकी सत्ता यह भांगा गीण मोहके द्विचरम समय तक पाता है. यों यह दोनो भांगे बढने से दर्शना वरणीय के १३ भांग भी होजाते है. और भी जहां जितनी निद्रा का उदय होवे वहां उतनी निद्रा को अलग २ कहने से २९ भांगे होजाते हैं

या उनके) ८ असाता का उदय और असाता की सत्ता (यह भाङ्गा भी अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय पाता है) यह वेदनीय कर्म के ८ भाङ्गे

मोहनीय कर्म के भङ्गादि.

मोहनीय के २२ का, २१ का १७ का, १३ का, ९ का, ५ का, ४ का, ३ का, २ का, और १ का यह २० वन्ध स्थान हैं:---१ प्रथम २२ प्रकृत्ति का वन्ध स्थान सो मोहनीय की सब २८ प्रकृति में से १ मिश्रमोह और २ सम्यक्त्व मोहका तो वंध पड़ताही नहीं है, और तीनों वेदो में से एक वक्त में एकही वेदका वंध पडता हैं तथा हांस्य और रतिशोक और अरति इन दोनों युगलों मेंसे एक वक्त में एकही का वंध पड्ता है यों २ दोमोहनीय, २ वेद और २ एकयुगल की मिल ६ प्रकृति कमी होने से एक वक्त में २२ ही प्रकृति का वंध पडता है, यह वंध मिथ्यात्व गुणस्थान में पाता है, सो—अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त. भव्य की अपेक्षा अनादि सान्त और पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त. । इन २२ में से जब मिथ्यात्व मोहनीय का वन्ध नहीं होवे तब २१ प्रकृत्ति का दूसरा बन्ध स्थान सेस्त्रादन गुणस्थान में पाता है. सो जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६ आवलि का × । पूर्वोक्त २२ प्रकृत्ति में से—अनन्तान वन्धि चौक और मिथ्यात्व मोहनीय का वन्ध नहोवे. तब मिश्र गुणस्थान में, १ का अविरति गुणस्थान में तीसरा १७ प्रकृत्ति का वन्ध स्थान जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट ३३ सागार झाजेरा काल तक पाता है. ÷ । इन १७ प्रकृत्ति में से–जिसवक्त अप्रत्याख्याना वरणींय चौक का वन्ध नही होता है तब १३ प्रकृत्ति का चौथा वन्ध स्थान देशविरति गुणस्थान में जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट देशऊणा क्रोडपूर्व पर्यन्त पाता है । इन १३ में से जब प्रत्याख्याना वरणीय चौक का वन्ध नही होता है तब प्रमत अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान तक ९ प्रकृत्ति का पांचवा वन्ध चौथे वन्ध जितने काल

× यहां नपुंसक वेदका वन्ध नहीं है तो भी. स्त्रिवेद पुरुषवेदका तो है.

÷ क्योंके-अनुत्तर विवमान के देवता चवकर जहातक विरति पना न पावे वहांतक इसी वन्ध स्थान में रहते है.

तक रहता है. + । इन ९ में से दोनों जुगल की चारों प्रकृति का बन्ध अपूर्व करण गुणस्थान के अन्तिम भागमें विच्छेद होने से फिर अनिवृति करण गुणस्थान के पहिले भाग में ५ का बन्ध, दुसरे भाग में पुरुष वेद का क्षय होने से ४ का बन्ध, तीसरा भाग में संज्वल का क्रोध विच्छेद होने से ३ का बन्ध, चौथे भाग में संज्वल का मान विच्छेद होने से २ का बन्ध. पांचवे भाग संज्वल की माया का विच्छेद होने से फक्त १ संज्वल के लोभ का बन्ध ही रहता है यों एक नवमेंही गुणस्थानके में मोहनीय के ५ बन्ध स्थानक पाते है. सो जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर मूहुर्त पर्यन्त रहते है. यह मोहनीय के-१० बन्ध स्थान हुवे. ॥ मोहनीय के ९ उदयस्थानः—१ का, २ का, ३ का, ४ का, ५ का, ६ का, ७ का. ८ का, ९ का औ १० का इन नवोंही स्थानोंका स्वरूप बताते है:—१ संज्वलकी चौकडी में से किसी एक कषाय का उदय सो प्रथम स्थान. २ एक पुरुषवेद और संज्वल की चौकडी में की कोइ भी एक कषाय यों दो प्रकृतिका उदय सो दुसरा स्थान ३ पुरुषवेद, संज्वलकी १ कषाय और दोनों जुगल में का १ जुगल यों४का उदय होवेसो तीसरास्थान४इन चारोंमे भय अधिक करनेसे पांचका चौथे स्थान ५ इन पांचमें दुगंछा अधिक करने ६ का पांचवा स्थान. । ६ इन ६ में प्रत्याख्यानी चौक की एक कषाय मिलानेसे सातका स्थान छठा. । ७ इन ७ में अप्रत्याख्यानी चौक की एक कषाय मिलाने से आठका उदय स्थान सातवा. । ८ इन आठ मे-अन्नतान बन्धी चौक की एक कषाय मिलाने से ९ का उदय स्थान आटवा. । ९ और ९ में मिथ्यात्व मोहनीय मिलासेने १० का उदयस्थान. नववा ॥ मोहनीय के १५ सत्ता स्थानः—२८ का, २७ का, २६का, २४ का, २३ का, २२ का, २१ का, १३ का, १२ का, ११ का, ५ का, ४ का, ३ का, २ का, और १ का. यों १५ स्थानों का पश्चानू पुर्व्वी से स्वरूप बताते हैं:- १ सर्व मोहनीय की २८ प्रकृति का सत्ता स्थान तो जो सम्यक्त्वका वमन कर पडे होवें उन में पावे. २ इस में से सम्यक्त्व मोहनीय घटाने से २७ का सत्ता स्थान ३ इस में से मिश्र मोहनीय घटाने से २६ का सत्ता स्थान (यह दोनों अनादि मिथ्यात्वी में पाते हैं) ४ उपरोक्त २८ में से अनन्तान बंधि चौक खपावे तब २४ का सत्ता स्थान. ५ इस में से मिथ्यात्व खपावे तब २३ का सत्तास्थान, ६ इस में मिश्र मोह खपावे तब २२ का सत्तास्थान. ७ इसमें से-सम्यक्त्व मोह खपावे, तब २१ सत्ता-

+ सातवे और आठवे गुणस्थान में शोक और अरतिका बंध नही है तोभी हांस्य और रतिका तो बन्ध है. इसलिये ९ ही प्रकृतिका बन्ध कहा है.

स्थान इन २१ की सत्ता क्षायिक सम्यक्त्वी के होती है। आगे के सत्ता स्थान खपक होते हैं सो कहते हैं:--) ८ इक्कीस में से अप्रत्याख्यानी चौक और प्रत्याख्यानी चौक खपावे तब अनिवृत्ति करण गुणस्थान के तीसरे भाग में १३ का सत्ता स्थान, ९ इसमें से नपुंसक वेद खपावे तब चोथे भागमें १२ का स्थान, १० इसमेंसे स्त्रीवेद गपावे तब पांचवे भागमें ११ का सत्ता स्थान ११ इसमेंसे हांस्य षटके ६ खपावे तब छटे भाग में ५ का सत्ता स्थान. १२ इसमे से पुरुष वेद का क्षय करे तब सातवे भाग में ४ का सत्ता स्थान १३ इसमें से संज्वलके क्रोधका क्षय करे तब आठवे भागमे तीन ३ का सत्ता स्थान, १४ इसमें से संज्वलके मानका क्षय करे तब नववे भागमें २ का सत्ता स्थान, और १५ इसमें संज्वलकी मायाका क्षय करे तब सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें एक संज्वलके लोभका सत्ता स्थान। यह १५ सत्तान स्थानहुवे।

मोहनीय कर्म के बन्ध स्थान के भाङ्गे:--२२ प्रकृत्ति के बन्ध स्थान में ६ भाङ्गे:--१ पुरुष वेदी हांस्य और रतिका बन्ध करता २२ का बन्ध करे, २ पुरुष वेदी --शोक और अरतिका बन्ध करता २२ का बन्ध करे. ३ स्त्री वेदी--हांस्या ओर अरतिका बन्ध करतो २२ का बन्ध करे. ४ स्त्री वेदी--शोक और अरति का बन्ध करता २२ का बन्ध करे. ५ नपुंसक वेदी--हांस्य और रतिका बन्ध करता २२ का बंध करे, ६ नपुंसक वेदी--शोक और अराति का बंध करता २२ का बंध करे। २१ के बंध के ४ भाङ्गे:--१. एक मिथ्यात्व का अबंध होने से सास्वादनी २१ प्रकृत्ति का बंध करे उनके मिथ्यात्व के अभावसे नपुंसक वेदका बंध नहोने से ऊपर कहे ६ भांगे में से २ भांगे नपुंसक के कम हुवे. बाकीके के दोनों वेद के ४ भांङ्गे रहे। १७ और १३ प्रकृत्ति के दोदो भाङ्गे:--ऊपरोक्त २१ प्रकृत्ति में से अनंतान बंधी चौक कमी करने से १७ का बंध मिश्र और अविराति गुणस्थान में होता है, और इन १७ में से अप्रत्याख्याना वरणीय चौक का विच्छेद होने से देशाविराति गुणस्थान में १३ का बंध होता है. इन दोनों के अनतान बंधी के अभाव से स्त्री वेद का बंध न होने से फक्त पुरुष वेदके दोनों भाङ्गे पाते हैं. (दोनों बंधके मिलकर ४ भाङ्ग हुवे) ९ के बंध में दो भाङ्गे:--१. हांस्य और रतिसे संज्वल का चौक, भय शोक, दुगंच्छा और पूरुष वेद. २ शोक और अराति से संज्वल का चौक, भय, शोक दुगंच्छा और पुरुष वेद। इसके आगे अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान में शोक और अरति का बन्ध विच्छेद होने से प्रकृत्ति का एकही बन्ध स्थान मे एकही भाङ्गा। और इ-

सके ऊपर नवबे गुणस्थान के पांचो स्थान में एकेक भाङ्गा होता है. । यों सब मोह के १० स्थान के २१ भाङ्गे हुवे ॥

मोहके ६-७ स्थान में-उदय स्थानः-२२ के बन्ध में ४ उदय पाते हैं:-७क ८ का, ९ का, और १० का. । इसमें से-१ सात का उदय स्थान सो (१) मिथ्यात्व, (२) हांस्य, (३) रति, (अथवा शोक अरति) (४) तीनोंवेदों में का एक वेद, (५) अप्रत्याख्यानी चौक में की एक कषाय और (७) संज्वलके चौक में की-एक कषाय + इन सातों प्रकृत्ति का उदय २२ के बंधक मिथ्यात्वी के निश्चय से होताहै. इसके भाङ्गे २४ होते हैं:—१ क्रोध, २ मान, ३ माया, और ४ लोभ इन चारों कषाय को-१ स्त्री, २ पूरुष और ३ नर्पुसक इन तीनों वेदों से तीनगुने करने से-४ = ३—१२ भाङ्गे हुवे. और इन १२ को हांस्य रतिसे या शोक अरति से दुगूने करने से २४ भाङ्गे होते हैं (इसे भाङ्गे की चौबीसी कहते हैं.) २ ऊपरोक्त ७ प्रकृत्ति के उदय में१भय, २ दुगंच्छा, और अनन्तान बंधि चौक में की एक कषाय, इन तीनों प्रकृत्ति में से एकेक प्रकृत्ति का क्षेप करने से ८ प्रकृत्ति का उदय होता है.य

+ क्रोध मान माया और लोभ यह चारों उदय विरोधी होते है इसलिये क्रोधादिक उदय में मानादिक का उदय नहीं पाता है, परन्तु क्रोध के उदय में उस के नीचे के सब प्रकार के क्रोधोंका उदय होता है जैसे-जहा अनन्तानू बन्धि क्रोधका उदय होता है वहा अप्रत्याख्यानावरणिय, प्रत्याख्यानावरणीय, और संज्वल इन तीनों क्रोधोंका उदय जरूरही होता है. ऐसी तरह अनन्तानु बन्धि क्रोधके उदय में चारों क्रोधों का उदय गिना जाता है. और प्रत्याख्यानी क्रोध के उदय में नीचे के दोनों क्रोधों का उदय होने से तीनों क्रोधों का उदय गिना जाता है. प्रत्याख्यानी क्रोध के उदय में दोनों क्रोधका उदय गिना जाता है. और संज्वल के क्रोध के उदय में फक्त एक संज्वलकाही उदय गिना जाता है. इसलिये यहां प्रत्याख्यानावरणिय क्रोध के उदय में तीनों क्रोध का उदय गिना है. ऐसेही मान आश्रिय भी चार तीन दो और एक का उदय जानना. और ऐसेही माया तथा लोभ आश्रिय भी चार तीन दो और एकका उदय जानना, और इसलिये क्रोध मान माय और लोभ इन चारों के चार भांगे होते है.

× आगे जहां २ भागों की चौबीसी करने का कथन आवे वहां२ ऐसीही तरह करना.

हां भाङ्गे की तीन चौवीसी होती है. अर्थात्—सातों मे भय मिलानेसे ८हुवे, इने तीनों वेदों से तीगुने करने से २४ हुवे. योंही दुगंच्छा के मिलाने से. और अनन्ता वंधी कषाय मिलाके ३ वेदसे चौवीसी करना. । ३ ऊपरोक्त ७ प्रकृत्ति के उदय में भय और दुगंछा का उदय वढाने से—नवका उदय होता है, यहां भी पाहिले की माफिक भाङ्गे की चौवीसी होती है । ८ पूर्वोक्त सात प्रकृत्ति में भय और अनन्तान बंधि चौक में की एक कषाय का उदय वढाने से भी नवका उदय होता है, यहां भी भाङ्गे की चौवीसी जानना. एसेही सात प्रकृत्ति में—दुगंच्छा और अनन्तान बंधि की एक कषाय वढाने से भी नवका उदय गिना जाता है, यहां भी भाङ्गे की चौवीसी जानना. यों सव मिलकर नवके उदय में भाङ्गे की तीन चौवीसी होती है. । ४ मिथ्यात्व, भय, दुगंच्छा, हांस्य, रति, (तथा शोक अराति) तीनो वेदों में का एक वेद, और अनन्तानु वंधिकी चारो कषाय. यों दशका उदय स्थान जव होवे तव भी भाङ्ग की चौवीसी होती है. ॥ २१ प्रकृत्ति के वंध में तीन उदय स्थानः—१ हांस्य, २ रति, (तथा १ शोक २ अराति) ३ तीनो वेदो में का—एक वेद. चारों कषायों में से क्रोधादि एकही कषाय के चारों भेद यों सात प्रकृत्ति के उदय में भाङ्गे की १ चौवीसी होती है. । २ इन सात के उदय में भय का उदय मिलाने से—८ का उदय होवे वहां भी भाङ्गे की एक चौवीसी पावे. तथा दुगछां मिलाकर ८ का उदय होवे तहां भी भाङ्गे की—१ चौवीसी. । और भय और दुगंच्छा दोनों मिलाने से नवके उदय में भी भाङ्गें की एक चौवीसी. यों २१ प्रकृत्ति का वन्ध सेस्वादन गुणस्थान में तीन उदय होकर भांगे की चौवीसी चार होती है. × ॥ १७ प्रकृत्ति के बन्ध में चा

÷ यहां सेस्वादन के दो भेद होते हैं:—१ उपशम श्रेणिगत और २ अश्रेणिगत इस में से अश्रेणिगत में तो यह तीनो उदय स्थान पाते हैं. और श्रेणिगत में आचार्यके मत दो तरह के हैं.—जो अनन्तान वन्धिको उपशमा कर श्रेणि करता है. और पडवाइहो सेस्वादन गुणस्थान स्पर्शे उन के मतसे पहिले कहे सो तीनों स्थान उदय के जानना. और २ जो आचार्य अनन्तान वान्धि चौकको वीसंयोजना से श्रेणिका प्रारंभ मानते है. उन के मत से पडवाइ के अनन्तान बान्धि की सत्ता के अभाव से अनन्तानू बन्धि के उदय रहित सेस्वादन पनका संभव नहीं है. और जो सम्यक्त्व से पडा वो मिथ्यात्व में नहीं पहो-

२ उदय स्थान होते हैं:-जिसमें से तीसरे गुणस्थान में-१७ के बन्ध में-७ का, ८का और ९ का यों तीन उदय स्थान होवें:-१ मिश्र मोहनीय, २ रुय, ३ रति, (तथा-२ शोक, ३ अराति,) ४ एक वेद, और अनन्तानु बन्धि विना बाकी के तीनो चौक में की एकेक कषाय. यों ७ प्रकृत्तिका उदयमें एक चौबीसी. । २ हांइन सातोंमें भय को मिलाने से ८ का उदय होवे उसमें भी भाङ्गे की एक चौबीसी. तथा दुगंछा मिलाने से भी ८ के उदय में भाङ्गे की एक चौबीसी. १३ और भय और दुगंच्छा दोनों मिलाने से-नवके उदय में भी भाङ्गे की एक चौबीसी. यों मिश्र गुणस्थान में १७ के बन्ध में तीनो उदय की मिलकर चार चौबीसी होती है. ॥ चौथे गुणस्थान में-१७ के बन्ध में-६ का, ७ का, ८ का, और ९का यों चार उदय स्थान क्षायिक सम्यक्त्वी के होते हैं. ऊपर मिश्र मोहनी युक्त ७ उदय कहा उसमें से मिश्र मोहनीय कमी करने से-६ का उदय यहां गिनते भाङ्गेकी १ चौबीसी होवे. इनछमें-भय, दुगंछा, और सम्यक्त्व मोहनीय इनमे से एकेक का अलग २ उदय मिलाने से-एकेक भेदमें एकेक भाङ्गे की चौबीसी होने से, सात के उदय में तीन चौबीसी भाङ्गे की होती है. । और छेके उदय में-भय और दुगंछा, तथा भय और वेदक सम्यक्त्व मोहनीय, अथवा-दुगंछा और वेदक सम्यक्त्व मोहनीय, यों दो दो प्रकृत्ति एकेक साथ मिलाने से-तीन प्रकार से आठका उदय का स्थान होवै, वहां भी प्रत्येक भाङ्गे की एकेक चौबीसी गिनने से तीन चौबीसी होती है. + । और छेके उदय में -भय, दुगंछा और वेदक सम्यक्त्व मोहनीय, इन तीनों का उदय साथही मिलानेसे -नव प्रकृत्ति का उदय होवे वहां भी भाङ्गे की एक चौबीसी होती है. यों सब मि-

---

चे वहांतक अनन्तानु बन्धिके उदय विना भी सेस्वादन गुणस्थान मिलता है. यो कहतो वहां ६ प्रकृतिका ही उदय मानना चाहिये. तब २१ प्रकृति के बन्ध मे-६ का, ७ का,८ का और ९ का यो चार बन्ध स्थान पाने चाहिये. और भांगे की चौबीसी भी आटमाननी चाहिये. परन्तु यहां मानी नही है. इसलिये इनके मत से श्रेणि से पडवाइ को सेस्वादन गुणस्थान नहोना ऐसा होता है

×यह सम्यक्त्व मोहनीयके जो भांगे हेंसो वेदके सम्यक दृष्टिके जानना और क्षायिक तथ उपशम सम्यक दृष्टिके सम्यक्त्व मोहनीय का उदय नहीं है इसलिये उनके नहीं.

लकर चौथे गुणस्थान में आठ चौवीसी भाङ्गे की होती है. जिसमें से चारतो क्षायिक तथा उपशम सम्यक्त्वी की और चार क्षयोपशमिक सम्यक्त्वी की मिश्रकी तरह जानना. इन आठ चौवीसी के साथ मिश्र गुणस्थानीकी चारो चौवीसी मिलाने से-१७ के बन्ध स्थान में १२ चौवीसी भाङ्गे की होती है. यद्यपि तीसरे चौथे गुणस्थन का उदय स्थान तो वोही है परन्तु वहां प्रकृत्तियों अलग २ है. इसलिये दो वक्त कहा है. ॥ तेरे प्रकृत्ति के बन्ध स्थान में-५ का, ६का, ७का, और ८का, यह चार उदय स्थान होते हैं सो कहतेहैं:-प्रत्याख्यानी क्रोध, संज्वल का क्रोध पुरुषवेद, एक युगल, यों ५ प्रकृत्ति का उदय होवे, यहां क्रोध के स्थान मान-माया-लोभका पलटा करने से चार भाङ्गे पुरुष वेद के साथ होवे, चार भाङ्गे स्त्री वेद से होवे चारभाङ्गे नपुंसक वेद से होवे. यों १२ भाङ्गे होवे. इन १२ को-हांस्य और रतिसे, तथा, शोक और आरति यों, दोनों जुगल से दुगुने करने से २४ भाङ्गे हुवे. यों भाङ्गे की १ चौवीसी पांच के उदय मे पाती है. । इसमें पांच प्रकृत्ति भय दुगंछा और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन में की एकेक प्रकृत्ति मिलाने से-छे के उदय स्थान के तीन भेद होवे. इसके एकेक स्थान में एकेक चौवीसी गिनते छे के उदय में तीन चौवीसी होवे । ऊपरोक्त पांच प्रकृत्ति में-भय और दुगुंछा, तथा-भय और सम्यक्त्व मोहनीय, तथा-दुगंच्छा और सम्यक्त्व मोहनीय; यों दो दो प्रकृत्ति का उदय एक साथ मिलाने से सात प्रकृत्ति के उदय स्थान तीन होवै. यहां भी भाङ्गे की चौवीसी तीन होती है. । और ऊपरोक्त पांच के उदय में-भय, दुगंछा और सम्यक्त्व मोहनी यह तीनों का उदय साथही मिलाने से-आठ प्रकृत्ति के उदय स्थान में भी भाङ्गे की चौवीसी एक होती है. । यों १३ के बन्धके चारो उदय स्थानी देशविरति गुणस्थानी में सब मिलकर भाङ्गे की चौवीसीयों ८ होती है. इसमें क्षायिक और उपशम सम्यक्त्वी की चार, और वेदक सम्यक्त्वी की चार जानना.॥ प्रमत्त अप्रमत और अपूर्व करण इन तीनों गुणस्थान में-नवप्रकृत्ति के बन्ध के स्थान में-चारके उदय से लगाकर उत्कृष्ट सात का उदय स्थान तक पाता है, तहां-१ संज्वल के चौक में की एक कषाय, तीनों वेदों में का एकवेद, दोनों युगल में का एक जुगलयों, चार का-उदय क्षायिक तथा उपशम सम्यक्त्वी के ध्रुव होता है. इसलिये भाङ्गे की चौवीसी एक होती है. इन चार में-१ भय, दुगंछा और सम्यक्त्व मोहनी इन तीनों प्रकृत्ति मे से एकेक प्रकृत्ति मिलाने से-तीन प्रकार से पांच का उदय होता है. तहां भङ्गे

की चौवीसी भी तीन होती है. । ऊपरोक्त चारोंमेंसे भय और दुगंछा, तथा भय और सम्यक्त्व मोहनीय, तथा दुगंछा और सम्यक्त्व मोहनीय-यों दो दो प्रकृत्ति को मिलाने से-तीन प्रकार से छे का उदय होता है. वहां भी भाङ्गे की चौवीसी तीन होता है. । औरे ऊपरोक्त चारों में-भय, दुगंछा, और सम्यक्त्व मोहनीय यह तीनों प्रकृत्ति साथ मिलाने से-सात प्रकृत्ति का उदय होवे वहां भी भाङ्गे की चौवीसी १ होती है. यों नवके बन्ध के चारों उदय स्थानों की भाङ्गे की चौवीसी ८ हुइसो, चार तो क्षायिक और उपशम समाकिति की और चार वेदक समकिति की. ॥ पांच प्रकृत्ति के बन्ध में-दों प्रकृत्ति का एकही उदय स्थान होता हैं; संज्वलके चौक में की १ कषाय, १ वेद, इने दोनों प्रकृत्ति का उदय स्थान होवे. यहां भांङ्गे १२ होते हैं. क्योंकि-यहां हांस्यादिक का उदय नही है, इसलिये भाङ्गे की चौबीसी नही होशक्ति है. फक्त चारों कषायों की तीनों वेदों के साथ गिनने से १२ भाङ्गे होते हैं, यह १२ भाङ्गे नववे गुणस्थान के पांच भागों में के पाहिले भाग में पाते हैं. ॥ ऊपर कहा पांच का बन्ध स्थान उसके आगे चारका बन्ध, तीनका बन्ध, दोका बन्ध, औरएकका बन्ध. इन चारों बन्ध स्थानों में-एकेक प्रकृत्तिका उदय स्थान सर्वस्थान पाताहै, सो कहते हैं÷-यहां पुरुष वेदका बन्ध विच्छेद हुवे बाद-संज्वल कै चौक काही बन्ध रहा और पुरुषवेद के बन्ध के साथ में उदय भी टला, इसलिये चारों बन्ध में एकही भांगा पाताहै. क्योंकि-संज्वल की चारों कषायों में से-किसी को फक्त क्रोधका उदय, किसी को फक्त मान का उदय किसी को फक्त मायका और किसीको फक्त लोभ का उदय होने सेही चार भाङ्गे उदय के अनिवृत्ति करण गुणस्थान के दुसरे भाग में पाते हैं. * । उसके बाद संज्वल के क्रोध का विच्छेद होने से अनिवृत्ति करण

÷ यहां कितनेक आचार्य-चतुर्विध बन्ध के संक्रमण काल में तीनों वेदों में के एक वेद का उदय भी मान ते है. इसालिये उन के मतसे चतुर्विध बन्ध के संक्रमण कालमें संज्वल का चौक और तीनों वेदों के साथ गिननेसे-१२ भाङ्गे द्विकोदय के यहां भी होते है. और पांच विध बंध में भी द्विकोदय के बारे भांगे होते हैं. यों दोनों द्विकोदय के २४ भांगे प्रथम काल में होते हैं. उसके बाद चतुर्विध बन्ध के-एकोदय के चार भांगे होते है.

के तीसरे भाग में–त्रिविध बन्ध होता है, तहां एक का उदय होवे, जिसके भाङ्गे तीन बनते है. । फिर चौथे भाग में–दोके बन्ध से संज्वल की माय तथा लोभ इन दोनों में से एक उदय में दो भाङ्गे होते हैं. । और एक संज्वल के लोभ के बन्धस्थान में–एक संज्वल लोभ का उदय होवे. उदयका एक भांगा नववे गुणस्थान के पांचवे भाग में होता है. ॥ फिर बन्ध विना फक्त उदय का एक भाङ्गा होवे. सो कहते हैः- मोहनीय कर्म बन्धक अभाव सेभी–सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-एक संज्वलके लोभका उदय स्थान होवे. वहां एकही भाङ्गा जानना. यों चारके बन्ध स्थानमें भाङ्गा चार तीनके बन्ध स्थानमें भांगे तीन, दोके बंध स्थानमें भाङ्गे दो एकके बंध स्थानमें भांगा एक और बंध के शुन्य स्थान में भाङ्गा एक, सब मिल भाङ्गे ११ एकेक के उदय में होते हैं. । यद्यपि यहां संज्वल के क्रोधादिक के उदय में विशेष नहीं है, तथापि बन्ध स्थान के विशेषत्व कर विशेप जानना. ॥ फिर उदय के अभावसे भी उपशान्त मोह गुणस्थान में–कपाय उपशम किया परन्तु सत्ता है इसलिये प्रसङ्गानु पेत यह भी एक भाङ्गा ग्रहण करना. परन्तु यहां बन्ध और उदय के संबंध में सत्ता का भाङ्गा कहना सो निष्कारण है. और क्षीणमोह में तो सत्ता भी नही हैं.

सब भाङ्गो की संख्या कहते हैं:—१ दशके उदय की–१ चौवीसी, २ नवके उदय की ६ चौवीसी. ३ आठ के उदय की ११ चौवीसी. ४ सात के उदय में दशचौवीसी. ५ छे के उदय में ७ चौवीसी. ६पांचके उदयमें-चार चौवीसी. और७,चारके उदय में एक चौवीसी–यों सब मिल भाङ्गे की ४० चौवीसी यों हुइ. और दे के उदय के १२ भाङ्गे एक के उदय के ११ भाङ्गे सब मिल चालिस चौवीसी के तो ४०+२४ =९६० और ११+१२=२३ यों ९८३ भाङ्गे होते है.+ इन सब उदयों के भाङ्गे में का एक भाङ्गा जघन्य एक समय रहे और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त पर्यन्त × रहता है.

+ और मतान्तर में दोके उदय में २४ भांगे कहे है उन के मत मे ४१ चौवीसी के ९८४ भाग होते हैं.

× बन्ध स्थान फिरने का स्वरुप उदयान्तर करने की अपेक्षा से, गुणस्थान के भेद से अनस्थान जाता है.

= वेदोदय और हॉस जुगल में एक अन्तर मुहुर्त में पलटा होता है.

≈ पद वृन्द कहते हैं.–दशके उदय में भांगे की १ चौवीसी इसको १० गुना कर

अब सत्ता स्थानक का सम्बंध कहते हैं:—२२ प्रकृति का बन्ध मिथ्यात्वीके होता है, वहां- ७ का, ८ का, ९ का और १० का यह चार उदय स्थान पाते हैं, (१) सात के उदय में एकही अठावीस का सत्ता स्थान होता है. क्योंकि सातका वन्ध अन्नतान बान्धिये के अभाव से होता है. वोभी सम्यक्त्व युक्त अनंतान बांधी-की उदीरणा की हो, वो जिसवक्त मिथ्यात्वमें जावे उस वक्त फिर मिथ्यत्व प्रत्ययी अनन्तानुबन्धि चौक बन्धना सुरु करे. उस मिथ्यात्वीके बन्ध आवालिका तथा संक्रमावलिका लग अनन्तान बान्धिये के उदय रहित सत्ता उदय होता है, वहां निश्चय से उसके २८ की सत्ता होती है. (२) आठ प्रकृति के उदय स्थान में २८ का, २७ का, और २६ का यह तीन सत्ता स्थान होते हैं:—जिसके अनन्तान बान्धिये रहित ८ का उदय होता है. वहां पूर्वोक्त युक्ती से एक २८ का स्थान होता है, और अनन्तान बान्धिये साहित जो ८ का उदय होवेतो-उस में तीन सत्ता स्थान होते हैं:— १ जहांलग सम्यक्त्व मोहनीय की ऊदीरणा नहीं करे तहांलग २८ का सत्ता स्थान २ सम्यक्त्व मोहनीय ऊदेरे बाद २७ का सत्ता स्थान. ३ मिश्र मोह ऊदेरे बाद२६ सत्ता स्थान अनादि मिथ्यात्वी में पाता है. योंही नवके उदय में भी तीन सत्त स्थान पाते हैं. । और दशका उदय तो अनन्तान बान्धि साहित होता है इसलिये वहां भी येही तीनों सत्ता स्थान जानना. ॥ २१ के बन्ध में-७ का, ८ का और ९ का यह तीनों उदय स्थान में भी एक अठाइस का सत्ता स्थान होता है. । १७ के बन्ध में-२८ का, २७ का, २४ का, २३ का, २२ का, और २१. यों ६ सत्ता स्थान होते हैं. १७ प्रकृति का बन्ध तीसरे चौथे गुणस्थान में होता है. वहां ६ का, ७ का ८ का और ९ का. यह ४ उदय स्थान सम्यक दृष्टि के होते हैं. जिस में ६का उदय

नेसे १० चौबीसी होवे ऐसेही ९ के उदय में ६ चौबीसी की-९×६ ५४ होवे. आठके के उदय ११ चौवीसी की ८×११=८८ होवे. सात के ऊदय १० चौबीसी के ७×१० =७० होवे. छेके उदय ७ चौबीसी के ६×७-४२ होवे पाचके उदय ४ चौबीसीके५×४ =२० होवे. चारके उदय चौबीसी ४ होवे, दो के उदय एक चौबीसी के २ होवे, यों १० -५४-८८-७०-४३-२०-४-२=२९०. सब मिल्के चौबीसी हुइ. इनको २४से गुना कर ने से २९०×२४=६९६० इतनें भागे होते है. इस में एकोदय के ११ भागे मिलानेसे ६९७१ इतने पद बृन्द मोहके होते है! इतने बिकल्पो कर संसारी जीव मूर्छित होरहे हैं!

स्थान तो क्षायिक सम्यक दृष्टि के और क्षयोपशम सम्यक दृष्टि के होता है. और क्षायिक सम्यक्त्वी के २१ का सत्ता स्थान होता है.÷ और उपशम सम्यक्त्वी के प्रथम ग्रन्थीभेद करते ओपशम सम्यक्त्वी प्राप्त होते तथा उपशम श्रेणिमें जिनोंने अनन्तान वन्धि का उपशम किया हो उनके २८ का सत्ता स्थान होता है, और जिनोंने अनन्तान वन्धि की विसंयोजना कर श्रेणिका आरंभ किया हो उनके २४ प्रकृत्ति का सत्ता स्थान होता है. यों दो सत्ता स्थान उपशम सम्यक्त्वी के पाते हैं. यह १७ के बन्ध के और ६ के उदय के सब मिल—२८ का २४ का, और २१ का, यह तीनों सत्ता स्थान हुवे. । मिश्र दृष्टिके—७ का ८ का, और ९ का, यह तीन उदय २८ का, २७ का, और २४ का, यह तीन सत्ता स्थान होते हैं. इसमें जो २८ की सत्ता वाला मिश्र गुणस्थान में प्रवृत्ते उसके २८ की सत्ता होती है. और जिसने मिथ्यात्व होते सम्यक्त्व की ऊदीरणा की हो और मिश्रपणा ऊदीरणा सूरु किया नहीं होवे वो सम्यक्त्व उदेर मिथ्यात्व से निवृत फिर परिणामों कर मिश्रमें आवे उसके २४ की सत्ता होती है. । चौथे गुणस्थान में १७ के बन्ध में—सत्ता के उदय में—२८ का-२४ का, २३ का, २२ का और २१ का, यह ५ सत्ता स्थानक पाते हैं. इसमें से—२८ का, तो उपशमिक और वेदक सम्यकदृष्टि के होता है. और अनन्तात वन्धि की विसंयोजना किये बाद २४ का×स्थान भी इनदोनों केही हाते है । मिथ्यात्व के क्षय से—२३ का सत्ता स्थान. । मिथ्यात्व और मिश्र दोनों के क्षय से २२ का सत्ता स्था

÷ सेस्वादन पणा ओपशामिक सम्यकत्व का वमन करते होता है. उस वक्त उपशम सम्यक्त्व मिथ्यत्वके दलीयोंका-१ सम्यक्त्व मोह, २ मिश्र मोह, ३ और मिथ्यात्व मोह यह तीन पुंज किये इसालिये तीनों दर्शन मोहनीय की सत्ता सेस्वादन में मिलने से २८का सत्ता स्थानक पाता है.

* अनन्तान वान्धि चौक और ३ मोह इन ७के क्षयसे ही क्षायिक सम्यक्त्व होतीहै.

× यह २४ की सत्ता चारों गतिके जीवों में पाती है. क्योंकि-चारों गति के सम्यकदृष्टि अनंतान वन्धियेकी वीसंयोजना करते हैं. चारों गति के पर्याय जीवों-सम्यक दृष्टि, देश विरति और सर्व विरति. यह तीनों अनन्तान वंधि की विसयोजना करते हैं. वो फिर परिणामो के वश्य से मिश्र दृष्टि में आतहै इसलिये यह भागा चारों गतिके जीवोंमें पाता है.

न (यह दोनों वेदक सम्यक दृष्टिके होते हैं. ×) और २१ की सत्ता तो क्षायिक सम्यक्त्वी के होती है. ॥ ८ के उदय में मिश्र गुणस्थानी की सत्ता के उदय की तरह—२८ का, २७ का, और २४ का. यह तीन सत्ता स्थानक होते हैं. और अविरति सम्यक दृष्टिके जो—७ के उदय में पांच सत्ता स्थान कहै, वैसेही तरह ५ सत्ता स्थानक आठके उदय में भी कहना. ॥ तैसेही ९ का उदय भी अविरति वेदक सम्यक दृष्टिके होता है—सो क्षयोपशम समकिति केलिये—२१ और २७ इन दोनों सत्ता स्थानक विना बाकी का २८ का २४ का २३ का और २२ का यहचार सत्ता स्थानक होते हैं, सो पहिले की तरह कहना. और १३ के बन्ध में तथा ९ के बन्धे में अलग २—२८ का, २७ का, २४ का, २३ का, २२ का, और २१ का, यह पांच २ सत्ता के स्थानक होते हैं. इसमें से—१३ का, बन्ध देश विरति के होवे उसके दोभेद :—(१) तिर्यंचाश्रिय और २ मनुष्याश्रिय. इसमें तिर्यंचके—५ का, ६ का, ७ का, और ८ का, इन चारों उदय स्थानों में—२८ का, और २४ का, यह दो सत्ता स्थान होते हैं—यहां ५ के. ६ के, और ७ के, उदय में ओपशमिक सम्यक दृष्टिके २८ की सत्ता होती है इसमें कोइक ग्रन्थी भेद कर सम्यक्त्व युक्त देश विरति पना आदरे जिसकी अपेक्षा से लेना और क्षयोपमशिक सम्यक दृष्टि तिर्यंच के—६ का ७ का और ८ का, यह तीनों उदय २४ की सत्ता में होता है—सो अनन्तानुबन्धि चारों की विसंयोजना. पहिले चारों गति में करी है उस अपेक्षा से, और दूसरे—२३ का, २२ का और २१ का यह ३ सत्ता स्थानक देश विरतितिर्यंच के नहीं होते हैं ÷ और दे

× क्योंकि-अनन्तान बन्धि चौक और मिथ्यात्व तथा मिश्र मोह इन ६ प्रकृति को क्षय कर सम्यक्त्व मोहनीय क्षपाता उसके अन्तिम समय-ग्रास में वृतता कोइ पूर्व बन्धायु जीव वह ही आयुष्य पूर्ण कर चारों गति में की किसी एक गति में जावे इसलिये २२ की सत्ता चारों गति मे पाती है.

÷ क्योंकि-२२ और २३ यह दोनो सत्ता स्थान क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होती वक्त पातेहैं और तिर्यंचके क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती नहीं. किसी क्षायिक सम्यक्त्वीने पहिले तिर्यंचायु बन्धा होवो तिर्यंच होवे तो भी असंख्यात आयु वाले (युगलिये)में उपजे, उसके देश विरति पण होताही नहीं है. तथा असंख्यात वर्ष का आयु बन्ध किये बाद क्षायि-

शविरति मनुष्य के ५ के उदय में २१ का, २४ का, और २८ का यह तीन सत्ता स्थानक पाते हैं. तथा ६ के और ७ के उदय में ५ सत्ता स्थानक होते हैं. और ८ के उदय में-२१ के सत्ता स्थानक विना, बाकी के चारों सत्ता स्थान पाते हैं. क्यों कि ८ का उदय सम्यक्त्व मोहनीय के साथ होता है. वहां २१ का, सत्ता स्थान नहीं होता है. बाकी के ४ होते हैं. सो भी वेदक सम्यक दृष्टि मनुष्य के देश विरती गुणस्थान में चार के उदय में-२८ का, २४ का, और २१ का, यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं. और ५ के उदय में, तथा ६ के उदय मे जो देश विरति में कहे वेही ५ सत्ता स्थान होते हैं, और ७ के उदय २१ की सत्ता विना बाकी के ४ सत्ता स्थानक होते हैं सो भी पहिले की तरह सेही कहना. ॥ ५ के बन्ध में और ६ के बन्ध में अलग २ छेछे सत्ता स्थानक होते है, उसमें के-२८ और २४का यह दो सत्ता स्थानक तो उपशम श्रेणि में उपशमिक सम्यक दृष्टि के होते हैं. यहां जिसने नववे गुणस्थान के प्रथम भाग में अनन्तानु वन्धि चौक की विसंयोजना करी उसके २४का सत्ता स्थान. और २१ का सत्ता स्थान तो-क्षायिक सम्यक्त्वी के उपशम श्रेणि में तथा खपक श्रेणि में जहां तक-अप्रत्याख्यानी चौक और प्रत्याख्यानी चौक इन ८ कषाय का क्षय नहीं होवे तहां तक २१ का सत्ता स्थान होता है. और ८ कषाय खपाये बाद उसी बन्ध में-१३ का सत्ता स्थान रहता है. उसमें से नपुंसकवेद खपाये बाद १२ की सत्ता रहे. स्त्रीवेद खपाये बाद ११ की सत्ता रहे: पुरुष वेदका बन्ध करते हांस्यादि ६ प्रकृत्ति का क्षय नही होता है. इसलिये वहां पांचादि का सत्ता स्थान नहीं होता है. ॥ ४ के बन्ध में-२८ का, २४ का, और २१ का, यह तीन सत्ता स्थान तो उपशम श्रेणि में पहिले की तरहही जानना. बाकि के-३ सत्ता स्थान क्षपक श्रेणिमें होते हैं, सो कहते हैं—कोइ जीव नपुंसक वदोदयमें प्रवर्तता क्षपक श्रेणि प्रारंभ करी वो स्त्री और नपुंसक दोनों वेदों को साथही खपावे. उस वक्त ही पुरुष वेदके बन्ध का विच्छेद होवे. फिर पुरुष वेद और ६ हांस्यादि यह ७ प्रकृत्ति साथही खपावे. और जिनोंने स्त्री वेदो दयमें श्रेणि प्रारंभ करी-वो पहिले नपुंस

क सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है. इसलिये देश विरति तिर्यच के-१३ के बन्ध में-२१ का सत्तास्थान नहीं होता है.

क वेदका क्षयकरे, फिर अन्तर मुहूर्त बाद स्त्रीवेद का क्षयकरे, उसके साथही पुरुष वेदका बन्ध वीच्छेद होवे, और पुरुष वेदका बन्ध छेदकिये बाद, पुरुषवेद और ६ हांस्यदि इनका साथही क्षय करे, यह जहां लग क्षय नहोवे वहां तक इन दोनों स्थान में—चार के बन्ध में वेदोदय रहित एकोदय वर्तते को ११ प्रकृत्ति का सत्ता स्थान होता है और पुरुष वेद ६ हांस्यादि इनका साथही क्षय हुवे बाद चार प्रकृत्तिका सत्ता स्थान होवे. यों ५ सत्ता स्त्रीवेद में और नपुंसक वेदमें श्रेणि प्रारंभे उनके होवे. और जो पुरुषवेद में खपक श्रेणि प्रारंभे—उनके हांसादि ६ के क्षयके साथ पुरुष वेद का बन्ध टले—इसलिये उनके चतुर्विध बन्ध वक्त ११ का सता स्थान होवे. पुरुषवेद विना हांस्यादि ६ वर्जे उसवक्त ५का सता स्थान होवे, वो दो समय कमदो आंवलिका तक रहे, फिर पुरुष वेद का क्षय हुवे बाद चार का सता स्थान रहे. वो भी अन्तर मूहूर्त रहे. इसलिये इनके भी ११ का सता स्थान छोड बाकी के ५ सता स्थान होवे, यों ४ के बन्ध मै ६ सता स्थान पाते है ॥ बाकी रहै ३ का, २का, और १ का इन तीनों बन्ध स्थानों में, अलग २ पांच २ सता स्थान होते हैं. वहां—३ के बन्ध में २८ का २४ का २१,४ का, और ३ का यह ५ सता स्थानक पावे. इसमें के पाहिले तीन सता स्थान तो उपशम श्रेणि में होते हैं. बाकी के—४ का और ३का यह दो सता स्थान क्षपक श्रेणि में होते हैं:—संज्वल के क्रोध की अन्तः करण प्रथम स्थिति—एक आवलिका मात्र बाकी रहे. उसका बन्ध उदय और उदीरणा एकही वक्त बिच्छेद होवे उस वक्त मानादि तीनों का बन्ध होवे. उसवक्त संज्वल के क्रोधका प्रथम स्थिति गत आवलिका मात्र और दो समय कम दो आंवलिका बन्ध सता छोडकर और सब क्षय हुवा और उस क्रोधकी सता भी दो समय कम दो आंवलिक काल में क्षयहोगी वो जहां लग न जावे तहां लग त्रिविधि बन्ध चार प्रकृतिके सता में होवे. और उस संज्वल के क्रोधका क्षय हुवे बाद तीन प्रकृति का सता स्थान होवे. सो अन्तर मुहूर्त लग जाणना. । द्विविधि बन्ध में २८ का, २४ का २१ काऔर २ का, यह पांच सत्ता स्थानहोते हैं. इसमें के तीन तो पाहिले की तरह उपशम श्रेणि में कहना और दोक्षपकश्रेणिमें कहना सो पूर्वोक्त क्रोधकी तरेही मान को भी आवलिका मात्र प्रथम स्थिति गत करे तब संज्वल के मान की भी बन्ध उदय उदीरणा का साथही विच्छेद होवे. तब द्विविधि बंध होवे. वहां दो समय कम दो आवलिका तक संज्वल की सत्ता रहे तब तीन प्रकृत्ति का सत्ता स्थानक जाणना. और फिर मान के क्षय से अ-

न्तर मूहूर्त पर्यंत दो प्रकृत्ति का सत्ता स्थान जाणना. । और एक के बंध स्थान में, भी पांच सत्ता स्थान जानना. उसमें से तीन तो पाहिले की ही तरह उपशम श्रेणि में कहना. और क्षपक श्रेणिमें कहने. सो कहते हैः—जिसवक्त संज्वल के माया की प्रथम स्थिति आवलिका मात्र रहे उस वक्त संज्वसल की माया का वन्ध उदय और उदीरणा का साथही विच्छेद होवे. तव–एक का वंध स्थान रहता है, और दो समय कम दो आवलिका तक माया की सत्ता रहती है. इसलिये दो की सत्ता होवे । उस के वाद अन्तर मुहूर्त पर्यात एक लोभ की सता होवे यह व्याक्तव्य सव नववे गुणस्थान वर्ती की जाणना. ॥ अव वंध का विच्छेद होने से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानन में–२८ का, २४ का, २१ का, और १ का, यह ४ सता स्थान होते हैं, उसमें से तीन तो पहिले की तरेही उपशम श्रेणिके कहना. और एक संज्वल के लोभ की सत्ता का स्थान क्षपक श्रेणि में पाता हैं और वंध तथा उदय के अभाव से उपशान्त मोह नामक ११ वे गुगस्थान में–२८ का, २४ का, और २१ का, यह तीन सत्ता के स्थानक होवे, यह भी पहिले की तरही कहदेना यों उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि का सम्वेधन जानना ॥ यह सव १० वंध के, ९ उदय के, १५ सता के स्थान इनके अलग २ भाङ्गे और वंधोदय सताका सम्वेध युक्त प्रकृति स्थान मोहकर्मकेकहे.

आयुष्य कर्म के भाङ्गे

आयुष्य कर्म का सामान्य प्रकार से एकही वंध स्थान होता है, क्योंकि चारों गतिके आयु का वंध विरोधी है–इसलिये एकही वक्त में दो आयु का वंध तथा उदय होता नहीं है और सता स्थान तो कभी एक का और कभी दो का भी पाजाता हैः–जैसे जहां लग आगे के भवका आयुका वन्ध पडा न होवे वहां तक एकही आयु वर्तता है, उसकी सत्ता जाणना. और परभव के आयुके वन्ध के कालमें तथा वान्धे वादमरे वहांतकदो आयुकीसत्ताहोतीहै आयुका संवधः-आयुकी तीन अवस्था होतीहै१परभव का आयु वन्धे के पहले की अवन्ध अवस्था. २परभव का आयु वान्धे उसवक्त की सवन्ध अवस्था. और ३ आयु वन्ध किये वाद की परा अवस्था इन तीन अवस्था के अनुसार से भाङ्गा करते हैं:—नरक गति आश्रिय ५ भाङ्गेः—१. नरकायुका उदय और नरकायुकी सत्ता. यह प्रथम भाङ्गा परभव के आयु वन्ध पहिले वन्ध के अभाव से प्रथम के चार गुणस्थान में पाता है. २ जो वर्तमान में तो

नारकी है परन्तु मरकर तिर्यच होगा उसके परभाव आयु बन्ध के वक्त में-तिर्यचायू का बन्ध, नरकायूका उदय, और नरकायु तिर्यचायु दोनों की सत्ता. यह दूसरा भाङ्गा मिथ्यात्वसे स्वादन गुणस्थान में पाता है ३ जो नारकी मरकर मनुष्य होगा उसके आयु बन्ध वक्त में मनुष्यायु का बन्ध, नारकायुका उदय और नरकायु मनुष्यायु दोनी की सत्ता. यह तीसरी भाङ्गा प्रथम दूसरे और चौथे गुणस्थान में पाता है. ÷ (परभ का आयु बन्धे बाद उत्तर अवस्था में शुन्य होने से दो भाङ्गे पाते हैं: -) ४ नरकायु का उदय और नरकायु तिर्यचायु की सत्ता ५ नरकायु का उदय और नरकायु मनुष्यायु की सता यह दोनों भाङ्गे प्रथम के चारों गुणस्थान में पाते हैं॥ जैसे यह नरक गतिके ५ भाङ्गे किये ऐसीही तरह देवगति के भी पांच भाङ्गे करना विशेष इतनाही की नरकायु के स्थान देवायु का नाम लेना. यों दोनों गति के १० भाङ्गे हुवे॥तिर्यच गति के९भाङ्गे:-१जिस तिर्यचने पूर्वगतिके आयुका बन्धनही किया हो उसके-तिर्यचायु काउदय और तिर्यचायुकि सत्ता यह भाङ्गा परवम गुणस्थान पर्यन्त पाता है (परभव का आयुष्य बन्धती वक्त) ३ जो तिर्यच मरकर तिर्यच होने वाला होवेतो उसके-तिर्यचायुका बन्ध तिर्यचायुका उदय और दो तिर्यचायुकी सत्ता यह भाङ्गा पाहिले के दो गुणस्थान में पावे. क्योंकि-आगे के गुणस्थानों में तिर्यचायु का बन्ध नहीं है. ३ जो तिर्यच मरकर मनुष्य होवे उसके-मनुष्यायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय. दोनों की सत्ता. यह भाङ्गा भी पाहिले दोनों गुणस्थान में मिलता है. ४ जो तिर्यच मरकर देवता होवे उसके देवायुका बन्ध तिर्यचायु का उदय और दोनों की सत्ता यह भाङ्गा पाहिले दुसरे चौथे और पांचवे गुणस्थान में पावे ५ जो तिर्यच मार कर नरक में जावे उसके नरकायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय दोनों की सत्ता यह भाङ्गा मिथ्यात्व में पावै. (आयु बन्ध किये बाद परा अवस्था में:)-६ एक तिर्यचायु का उदय, दो तिर्यचायु की सत्ता. ७ तिर्यचायु का उदय, और तिर्यचायु तथा मनुष्यायु दोनों की सत्ता, ८ तिर्यचायु का उदय और तिर्यचायु देवआयु दोनों

÷ नरक के जीवों-मनुष्य तिर्यच दोनों गतिका ही आयू बंध करते हैं. नेरीया मरकर नरक में भी नहीं उपजे और देवता भी नहीं होवे. इसलिये फक्त तिर्यच मनुष्य दोनों गति के भांगे करे हैं.

की सत्ता, ९ तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु नरकायु दोनों की सत्ता. ॥ मनुष्यायु गति आश्रिय ९ भाङ्गे:—१ मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता—यह प्रथम भाङ्गा १४ ही गुणस्थानों में पाता है. २ जो मनुष्यायु का बन्ध करे उसके मनुष्यायु का बन्ध मनुष्यायु का उदय और दो मनुष्यायु की सत्ता ३ जो मनूष्य तिर्यचायु का बन्ध करे उसके—तियचायु का बन्ध, मनुष्यायु का, उदय और तिर्यचायु मनुष्यायु दोनों की सत्ता. (यह दोनों भाङ्गे मिथ्यात्व सेस्व दन दोनों गुणस्थान में पाते है ÷ ४ जो मनुष्य देवायुका बंध करे उसके देवायुका बंध, मनुष्याय का उदय. और देवायु मनुष्यायु दोनों की सता यह भाङ्गा—तीसरा मिश्रगुणस्थान छोडकर बाकी पहिले से सातवे गुणस्थान तक पाता है. ५ जिस मनुष्याने नरकायु का बंध कियाहो उसके नरकायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और दोनों की सता. यह भाङ्गा मिथ्यात्व गुणस्थान में पावे (अब परा अवस्था में: बन्ध के अभाव से) ६ मनुष्यायु का उदय, दो मनुष्यायु की सात ७मनुष्यायु का उदय. मनुष्य और नरकायु दोनों की सता. ८ मनुष्यायु का उदय, मनुष्य और तिर्यंच दोनों आयु की सता. (यह तीनों भाङ्गे मिथ्यात्व से लगा अप्रमत गुणस्थान तक पाते है.) और ९ मनुष्यायु का उदय मनुष्यायु तथा देवायु दोनों की सता. यह भाङ्ग पहिले गुणस्थान से इग्यरवे गुणस्थान तक पाता है. ÷। यों चारों गतिके मिलकर आयुष्य कर्म के ५×५×९×९=२८ भाङ्गे होते हैं.

नाम कर्म के भाङ्गे

नाम कर्म के बन्ध स्थान ८ हैं;—२३ का, २५ का, २६ का, २८, का २९ का, ३० का, ३१ का और १ का, यह आठों बन्ध स्थानों तिर्यंच और मनुष्य गति के प्रायोग्य कर अनेक प्रकार के होते हैं सो कहते हैं:—तिर्यंच गति प्रायोग्य बन्ध ले वाले को सामान्य पने—२३ का, २५ का, २६ का, २९ का और ३०का

+ क्योंकि—सम्यक्त्वी मनुष्य तिर्यंच देवता काहो आयुष्य बांधता है, दूसरा नहीं बांधता है इसलिये चौथे गुणस्थान में यह भाङ्गा नहीं पाता है.

÷ क्योंकि— देवायू बंधे बाद भी श्रेणिका प्रारभ कर शक्त है परन्तु अन्य तीनो गतिका आयु बंधहुवे बाद श्रेणिका प्रारंभ नहीं होता है. इसलिये बीच के तीनो भाङ्गे अप्रमत गूणस्थान तक कहे हैं.

यह पांच बन्ध स्थान होते हैं. इस में एकान्द्रिय तिर्यंच गति प्रायोग्य में, २३ का, २५ का और २६ का यह तीन बन्ध स्थान होते हैंः—जैसे-१ तिर्यंच गति, २ तिर्यंचानुपूर्व्वी, ३ एकेन्द्रिय जाति, ४ औदारिक शरीर, ५ तेजस शरीर, ६ कार्मण शरीर, ७ हूण्ड संस्थान, ८ वर्ण, ९ गंध, १० रस, ११ स्पर्श, १२ अगुरुलघु, १३ उपघात, १४ स्थावर, १५ सूक्ष्म-अथवा बादर, १६ पर्याप्ता, १७ प्रत्येक अथवा साधारण, १८ आस्थिर, १९ अशुभ, २० दौर्भाग्य, २१ अनादेय, २२ अपयशः कीर्ति, और २३ निर्माण. इन २३ प्रकृति का प्रथम बन्ध, यह अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य बन्ध ते तिर्यंच तथा मनुष्य मिथ्यात्व दृष्टि के जानना. यहां भांगे ४-४ होते हैंः—१ सूक्ष्म पणे साधारण सहित २३ का बन्ध करे. २ सूक्ष्म पणे प्रत्येक सहित २३ का बन्ध करे, ३ बादर पणे साधारण सहित २३ का बन्ध करे. और ४ बादर पणे प्रत्येक सहित २३ का बन्ध करे. (यह ४ भांगे हुवे) ॥ और इन २३ प्रकृति में- १ पराघात और उश्वास यह प्रकृति मिलाने से २५ का दुसरा बन्ध स्थान-पर्याप्ता एकेन्द्रिय में जाने वाले होवे वो बन्ध ते हैं. यहां अपर्याप्ता के स्थान पर्याप्ता कहना. और स्थिर अस्थिर में से—एक, तथा शुभ अशुभ में से—एक तथा यशः अपयश मेंः सेएक, यों बन्ध करे. यहां भाङ्गेः—२० होते हैंः—बादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, और स्थिरके साथ २५ का बन्ध करे सो—प्रथम भङ्गः आस्थिर के साथ २५ का बन्ध करे सो दुसरा बन्ध, इनको शुभा शुभ से गिनने से ४ होवे, चार को यशः अपयशः से गिनने से-८ होवे ऐसेही फिर—बादर पर्याप्ता साधराण पणा बन्धने से—स्थिर और अस्थिर से दो भांङ्गे होवे. शुभा और अशुभ से चार भाङ्गे होवे. = योंही सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक, के चार भाङ्गे होते हैं. और भी सूक्ष्म पर्याप्ता साधरण साथ भी चार भाङ्गे होते हैं. यों सब मिलकर २५ के बन्ध में २० भाङ्ग उपजते हैं, ये २० में के एकेन्द्रिय प्रयोग्य देवता जिसवक्त बन्ध करे उस वक्त बादर पर्याप्ता और प्रत्येक के ८ भाङ्गे उपजेत हैं. ॥ २५ में आताप नाम अथवा उद्योत नाम इन दोनों में का एक मीलाने से २६ प्रकृत्ति का बन्ध स्थान होता हैं. वहां बादर अथवा सूक्ष्म के स्थान में बादरही लेना, और साधारण के स्थान प्रत्येकही लेना यह बन्ध स्थान पर्याप्ता बाद

= यहां साधारण के साथ यशः कीर्ती का बन्ध नहीं होता है, क्योंकि—यहां अपयशःका ही बन्ध है.

२ प्रत्येक एकेन्द्रिय प्रायोग्य-मिथ्यात्व दृष्टि तिर्यंच मनुष्य और देवता में पाता है. यहां-आताप उद्योत के साथ स्थिर और अस्थिर शुभ और अशुभ यशः और अपयश इन प्रकृत्तियों से प्रावर्तन करने से सोले भाङ्गे होते हैं. × सो कहते हैंः—१ आताप स्थिर शुभ और यशः, २ आताप स्थिर शुभ और अयशः, आताप ३ स्थिर अशुभ और यशः, ४ आताप, स्थिर, अशुभ, और अयशः, ५ आताप, अस्थिर शुभ, और यश;६ आताप आस्थिर, शुभ और यशः ७ आताप, आस्थिर, अशुभ, और यशः, और८आताप,अस्थिर, अशुभ,अयस इन भाङ्गेसे एकेन्द्रिय पर्याप्ता प्रायोग्य आताप, साथ २६ प्रकृत्ति का वन्ध करे, तैसेही उद्योत के साथ भी २६ प्रकृत्ति का बन्ध करे, यों १६ भाङ्गे होते हैं. यह एकेन्द्रिय प्रायोग्य तीनो वन्ध के ४०भाङ्गे हुवे. । बेन्द्रिय प्रायोग्य वन्ध करते-२५ का, २९ का, और ३० का, यह ३ वन्ध स्थान होते हैंः-२ तिर्यंच द्विक, ३ बेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक, ६ तेजस, ७ कार्मण,८ हुंडक संस्थान, ९ छेवटा संघयण' १० वर्ण, ११ गन्ध, १२ रस, १३स्पर्श, १४ अगुरु लघु, १५ उपघातु १६ त्रस १७ वादर,१८ पार्यप्ता, १९ प्रत्येक, २० अस्थिर-२१ अशुभ, २२ दो र्भाग्य,२३ अनादेय, २४ अयशः कीर्ति, और २५ निर्माण,यह २५ का वन्ध स्थान अपर्याप्ता वेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्व दृष्टि मनुष्य तिर्यंच वान्धते हैं. यहां अपर्याप्ता नाम के साथ शुभा शुभादिक परतर्व मान प्रकृत्ति में की अशूभ ही प्रकृत्ति का वन्ध होता है. परन्तु शुभ का नहीं होता है, इसलिये दूसरा भाङ्ग उत्पन्न नहीं होने से एकही पाता है. ॥ ऊपरोक्त २५ प्रकृत्ति में-१ पराघात, २ उश्वस, ३ अशुभ खगति, ४ पर्याप्ता, और ५ दुःस्वर. यह ५ प्रकृत्ति मिलाने से-३० प्रकृत्ति होती है. जिसमे से पहिले कहा अपर्याप्ता नाम निकालने से-२९ प्रकृत्ति रहती है इनका वन्ध बेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी जीवों के होता है. यहां स्थिर और अस्थिर, शुभ, और अशुभ, यशः यह प्रकृत्ति यों पर्याप्ता सहित है इसलिये इसके परांवर्त में-एक शुभ के साथ और एक अशुभ के साथ, यों दो भाङ्गे स्थिर के और दो भां

÷ यहा आताप उद्योत है सो सूक्ष्म साधाणर और अपर्याप्ता के साथ नहीं होता है. इसलिये इसके साथ भाङ्गे कहे नहीं तैसेही यशः कीर्ती भी-सुक्ष्म साधारण अपर्याप्ता के साथ नही बन्धती है.

ङ्ग आस्थिर के यों ४ हुवे. यह ४ यशः के और ४ अयश के गिनने से ८ भाङ्ग होते हैं। और इन २९ प्रकृत्ति में-उद्योत नाम मिलाने से-३० प्रकृत्ति का बन्ध स्थान भी पर्याप्ता वेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी के होता हैं. यहां भी ऊपरोक्त रीति से ८ भाङ्गे निपजते हैं.। यों सब मिल वेन्द्रिय प्रायोग्य तीन भङ्ग स्थान के-१७ भाङ्ग होते हैं॥ ऐसेही तेन्द्रिय प्रायोग्य में भी यही ३ बन्ध स्थान और १७ भाङ्गे कहना, विशेष में-बेन्द्रिय के स्थान तेन्द्रिय जाति कहना॥ और ऐसेही चौरिन्द्रिय प्रायोग्य भी तीन बन्ध स्थान के १७ भाङ्गे कहना. विशेष-तेन्द्रिय के स्थान चौरिन्द्रिय कहना.॥ यों त्रिकेन्द्रिय के ५१ भाङ्गे हुवे.॥ पचेन्द्रिय प्रायोग्य बन्ध करते-२५ का, २९ का और ३० का, यह ३ बन्ध स्थान होते हैं. इसमें से-२५ का बन्धतो अपर्याप्ता पचेन्द्रिय तिर्यंच प्रायोग्य मिथ्यात्वी-तिर्यंच और मनुष्य के बन्धता है. इन २५ प्रकृत्ति के नाम तो अपर्याप्ता बेन्द्रिय प्रायोग्य की तरह ही कहना. परन्तु विशेषत्व इतना की वेन्द्रिय के स्थान पचेन्द्रिय का नाम लेना. यही एकही भाङ्गा अशुभ का पहिले की तरह ही जानना. और २ तिर्यंच द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक ६ तैजस, ७ कार्मण, ८ छे संघयणो में का-१संघयण. ९ छे संस्थानों में का-१ संस्थान, १३ वर्ण चतुष्क, १४ अगुरु लघु, १५ उपघात, १६ पराघात १७ उश्वास, १८ दोनों में की एक खगति. १९ त्रस. २० बादर २१ पर्याप्ता २२ प्रत्येक २३ स्थिर अस्थिर में का एक, २४ शुभ अशुभमें का एक, २५ सौभाग्य दुर्भाग्यमेंका एक, २६ सुस्वर दुस्वर में का एक, २७ आदेय अनादेय में का एक, २८ यशः अयशः में का एक, और २९ निर्माण. इन २९ प्रकृत्ति का बन्ध पर्याप्ता तिर्यंच पचेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी और सस्वादनी चारों गति के जीवों के होता है. जिसमें इतना विशेष कि -जो सस्वादनी है उनके पांच २ में का कहना. क्योंकि-हुंड संस्थान तथा छेवटा संघयण का बन्ध से स्वादनी के नही होता है. इसलिये इसस्थान में भाङ्गे ४६०८ उपजते है सो अलग २ बताते हैं:—छे संघयणों में से-एक संघण के साथ २९ प्रकृति का बन्ध करने से-१ भांगा होता है, ऐसे ६ संघयण के६भांङ्गे इन को एकेक संस्थान से ६ गुण करने से-६×६-३६ हुवे, इन को शुभा शुभ दोनो खगति से दुगुने करने से-३६+२-७२ हुवे- इन को स्थिरा स्थिर से दुगुने करने से-७×२-१४ ४ हुवे. इनको शुभा शुभ से दुगुने से-१४४+२-२८८ हुवे. इनको सुस्वरदुःस्वर से दुगुने करने से-२८८×२-५७६ हुवे. इनको सौभाग्य दुर्भाग्य से दुगुने करने से—

९७६+२–११५२ हुवे. इने आदेय अनादेय से दुगुने करने से–११५२+२–३०४ हुवे. इने यश और अयशः से दुगुने करने से–४६०८ भाङ्ग हुवे. यह भाङ्ग सन्नि पचेन्द्रिय तिर्यंच गति प्रायोग्य–२९ प्रकृत्तिके बन्ध स्थान में होते हैं। इसमें विशेष-से, स्वादन आश्रिये बन्धते हुंडक संस्थान और छेवटे संघयण को बन्ध नहीं गिनते,फक्त पांचही से २५ होते हैं. जिनको ऊपरोक्त रीति से फलाने से (७ वक्त दुगुने करने से) सब ३२०० भाङ्गे होते है, परन्तु यह भाङ्गे ४६०८ के अन्दर के होने से अलगे नहीं गिने. । और २९ प्रकृत्ति में उद्योत नाम मिलाने से ३० प्रकृत्ति के बन्धस्थान के भाङ्ग भी ४६०८ होते हैं सो २९ के बन्ध की तरहही करना. यों पचेन्द्रिय के तीनों स्थान के मिलकर ९२१७ भाङ्गे होते हैं. ॥ मनुष्य गति प्रायोग्य बन्ध करते–२५ का,२९का और ३०का यह३बन्ध स्थान होते हैं-जिसके भाङ्गें कहते हैं:–२५ क बन्ध स्थान अपर्याप्ता मनुष्य प्रायोग्य बान्धे, वहां भाङ्गा एकही होता है. तिर्यंच के २५ के बन्ध स्थान की तरह कहना. विशेष इतनाहि की तिर्यंच के स्थान मनुष्य का नाम लेना. । २९ प्रकृत्ति का बन्ध स्थान सो प्रथम के चारों गुणस्थानों में होता है, इसमें मिथ्यात्वी और से स्वादनी तो चारों गतिके जीवो बन्ध तेहै. और मिश्र तथा अविरति सम्यक दृष्टि सो देवता तथा नरकके जीवों बन्धते हैं. इसमें भी जैसे-पचेंन्द्रिय तिर्यंच प्रायोग्य २९ प्रकृत्ति के बन्ध स्थान में–४६०८ भाङ्गे कहे तैसेही कहना. परन्तु इतना विशेष कि–सेस्वादनी के ३२०० भाङ्गे कहना. और मिश्र दृष्टि तथा सम्यक दृष्टि—नारकी और देवता के-९ नाम कर्म की ध्रुव प्रकृति १० मनुष्य गति. ११ मनुष्यानु पूर्वी, १२ पचेन्द्रिय की जाति, १४ औदारिक द्विक,१५ वज्र-ऋषभ नारच संघयण, १६ समचतुरस्र संस्थान, १७ पराघात १८ उश्वाश, १९ शुभ विहाय गति. २० त्रस. २१ वादर, २२ पर्याप्ता, २३ प्रत्येक, २४ स्थिर अस्थिर में का–एक, २५ शुभा शुभ में का–एक, २६ सुभग, २७ सुस्वर, २८ आदेय, और २९ यशः अपयशः में एक, इन २९ प्रकृत्ति के बन्ध में–भाङ्गे ८ उपजते हैं. क्योंकि –यहां प्रथम संघयण और प्रथम संथसन विना बाकी के पांच पांच नहीं है. और कुखगति, दौभाग्य, दुःस्वर, अनादेय का भी बन्ध नहीं है. इसलिये इनके विकल्प भाङ्ग उपजते नहीं हैं. और बाकी की–शुभ अशूभ के साथ एकेक, स्थिर अस्थिर के साथ दो दो, और यश अपयश के साथ चार २ यों आठ आठ भाङ्गे एकेक गुणस्थान में होते हैं, सोभी पहिले कहे ४६०८ भांगेमेंके ही हैं. पूर्वोक्त २६ प्रकृति में तीर्थंकर

नाम मिलाने से ३० प्रकृतिका बन्ध मनुष्य प्रायोग्य देवता तथा नारकी के सम्यक दृष्टि जीवों के होता है. यहां भी भांगे ८ होते हैं. क्योंकि तीर्थंकर नाम का बन्ध पहिलेके तीनों गुणस्थानों में नहीं होता है. इसलिये ३० के बन्ध में ज्यादा भांगे नहीं होते हैं. यों मनुष्य गति प्रायोग्य तीनों बन्ध के मिलकर ४६१७ सब भांगे हुवे. ॥ देवगति प्रायोग्य -२८ का, २९ का, ३० का और ३१ का यह ४ बन्ध स्थान होते हैं. सो पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य बान्धते हैं. इस में: —२ देवाद्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति. ४ वैक्रियद्विक, १४ नव प्रकृति ध्रुव बन्धकी, १५ समचतुरस्र संस्थान, १६ शुभ खगति, २० त्रस चतुष्क, २१ पराघात. २२ उश्वास, २३ स्थिर अथवा आस्थिर, २४ शुभ अथवा अशुभ २५ सुभग, २६ सुस्वर, २७ आदेय, २८ यशः कीर्ती अथवा अयशःकीर्ति, इन २८ प्रकृति का बन्ध स्थान मिथ्यात्वसे लगाकर देश विरति गुणस्थान तक मनुष्य तिर्यच के होता है. इसके आगे छठे गुणस्थान में फक्त मनुष्येकेही होंता हैं. यहां स्थिर और अस्थिर, शुभ और अशुभ, यशः और अयश इनके परावर्त से- ८ भांगे होते हैं. और अप्रमत तथा अपुर्व करण गुणस्थान में बंध होता है, स्थिर शुभ और यशः काही बन्ध होता है इसलिये भाङ्गा एकही पाता है वोभी आठ के अन्दरकाही है. इसलिये अलग नहीं गिना. । उपरोक्त २८ में जिन नाम मिलानेसे-२९ का बन्ध देव प्रायोग्य चौथे पांचवे और छठे गुणस्थान में होता है, वहांभी-स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, यशः और अयशः से परावर्त करते ८ भाङ्गे होते हैं. और इन २९ का बन्ध फक्त स्थिरादिक शुभ प्रकृति सहीत अप्रमत और अपुर्व करण गुणस्थान में होता है, यहां भी एकही भाङ्गा होता है सो इसके अन्तर भूत जानना. । ऊपरोक्त २८ में-आहारक द्विक मिलाने से ३० प्रकृति का बन्ध देव गति प्रायोग्य अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थानी कहते हैं. यहां भी स्थिर शुभ और का ही बन्ध करते हैं. इसलिये-एकही भाङ्गा पाता है. । इन ३० में जिन नाम मिलाने से-३१ प्रकृति का बन्ध-देवगति प्रायोग्य अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थानी बान्धते हैं. यहां भी शुभ प्रकृतियोंका ही बन्ध होनेके सबब से भाङ्गा एकही पाता है. सब मिल देवगति प्रायोग्य चारों बन्ध स्थानोंके-१८ भांगे हुवे. ॥ नरकगति प्रायोग्य बान्धने वाले जीवोंके एकही-२८ प्रकृति का बन्ध स्थान होता हैं—नरक द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ वैक्रिय द्विक, ६ हुंड संस्थान, ७ पराघात, ८ उश्वास ९ अशुभ विहायोगति, १० त्रस, ११ बादर, १२ पर्याप्ता, १३ प्रत्येक, १४अस्थिर,

१५ अशुभ, १६ दौर्भाग्य, १७ दुस्वर, १८ अयश कीर्ति, १९ अनादेय, और २८ नव प्रकृति का ध्रुव बन्ध की. इन २८ प्रकृति का बन्ध पचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य मिथ्यात्व गुणस्थान वालेके होता है. यहां सब परावर्तने की अशुभ प्रकृतियोका ही बंध होनेसे विकल्प न होते एकही भांगा पाता है, ॥ देवगति प्रायोग्य बंध विच्छेद होनेसे भी-अपूर्व करण के सातवे भाग से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान के अंत पर्यन्त-एक यशः कीर्ति नामका बंध मनुष्य करता है, वहांभी एकही भांगा लेना. ॥ अब बंध स्थानके भांगे की संख्या कहते हैं:—अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३ प्रकृति के बन्ध के ४ भांगे. २५प्रकृति बन्धके२० भांगे; बेन्द्रिय प्रायोग्य१, तेन्द्रि-प्रायोग्य १.चोरिन्द्रिय प्रायोग्य १, पचेन्द्रिय तिर्यंच प्रायोग्य१,मनुष्य प्रायोग्य१.यो २५केबंधमें २५ भांगे एकेंद्रिय प्रायोग्य २६ के बंध में-१६ भागे: देव प्रायोग्य २८के बंध के८ भांगे: नरक प्रायोग्य २८ के बंध का १ भांगा, यो २८ के बंध के ९ भांगे: बेंद्रिय प्रायोग्य ८, तेंद्रिय प्रायोग्य८चोरिन्द्रिय प्रायोग्य ८, पचेंद्रिय प्रायोग्य ४६०८, मनुष्य प्रायोग्य ४६०८ ओर देव प्रायोग्य ८, यों सब मिल २९ के बंध के ९२४८ भांगे. बेंद्रिय प्रायोग्य ८, तेंद्रिय प्रायोग्य ८, चौरिंद्रिय प्रायोग्य ८ पचेंद्रिय प्रायोग्य ४६२८, मनुष्य प्रायोग्य ८, और देव प्रायोग्य १, यों सब मिल ३० के बध के ४७४१ भांगे होते हैं. और ३१ का बंध स्थान में देव प्रायोग्य १, यो नाम कर्म के आठोंही बंध स्थानोंके सब मिळकर १३९४५ भांगे होते हैं.

नाम कर्म के १२ उदय स्थान:—२० का, २१ का २४, का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का और ८ का इन १२ही उदय स्थानोंको अलग २ बताते हैं: इनमें से-एकेन्द्रिय के-२१का, २४ का, २५का, २६ का और २७ का, यों ५ उदय स्थान होते हैं सो कहते हैं:-१ तैजस, २ कार्मण, अगुरुलघु, ४ स्थिर, ५ अस्थिर, ६ शुभ, ७ अशुभ, ८ वर्ण, ९ गंध, १० रस, ११ स्पर्श, और १२ निर्माण. (इन १२ प्रकृति का ध्रुवोदय होता है, क्योंकि यह १२ प्रकृति १३ वे गुणस्थान पर्यन्त उदय आश्रिय सब जीवों के होतो है. इसलिये इनको सर्व स्थान लेनी.) १३ तिर्यचाद्विक, १४ स्थावर, १५ एकेन्द्रिय जाति, १६ बादर अथवा सूक्ष्म, १७ पर्याप्ता, अथवा अपर्याप्ता, १८ दौर्भाग्य, १९ अनादेय, ओर २० यशः अथवा अयशः, इन २० प्रकृति का उदय एकेंद्रिय जीवोंके भवके

अन्तराल में वर्तते = पाता है. यहां भांगे ५ उपजते हैं:- १ सूक्ष्म पर्याप्त के साथ २१ उदय, सूक्ष्म पर्याप्ता के साथ २१ उदय, सूक्ष्म अपर्याप्ताके साथ २१ उदय, ३ बादर अपर्याप्ताके साथ २१ का उदय- अपर्याप्ता. यह तीन भाङ्गे तो फक्त अयशः के साथ होते हैं, क्योंकि-यहां यशःका उदय नहीं है. और ४ बादर पर्याप्ता के साथ यशः सहित-२१ का उदय, तथा अयशः साथ २१ उदय. । फिर उस शरीरस्थ के ऊपरोक्त २१ प्रकृति के उदय में-१ औदारिक शरीर, २ हुंड संस्थान, ३ उपघात, ४ प्रत्येक अथवा साधारण, इन चारों प्रकृति को मिलाना, और १ तिर्यंचानुपुर्वी कभी करना तब २४ प्रकृति को उदय रहता है. और प्रथमोक्त ५ भांग को प्रत्येक और साधारण के साथ दुगुणे करने से-१० भांगे होते हैं, इस में एक भांगा वैक्रय-का मिलाना ÷ क्योंकि-बादर प्रत्येक पर्याप्ता और यशः कीर्ति के साथ एकही भाङ्गा होता है. × यों २४ प्रकृति के उदय में सब ११ भाङ्गे हुवे । फिर उस शरीर पर्याप्ताके-२४ के उदय में पराघात मिलाने से २५ का उदय होता है. सो शरीर पर्याप्ती पूरी किये बाद पाता है. इसे बादर पर्याप्ता के साथ और प्रत्येक तथा साधारण के साथ गिनने से दो भाङ्गे होते हैं. इने यशः और अयशः से दुगुने करते ४ भाङ्गे होते है. इने बादर के स्थान सूक्ष्म के साथ प्रत्येक साधारण से विकल्प करने से, ६ भाङ्गे होते हैं, + । और बादर वायु काया के वैक्रिय करती वक्त शरीर पर्याप्ति

= पूर्व भवका शरीर छोडे बाद जहा तक दुसरा शरीर धारण नहीं करे उसे भवका अन्तराल कहते हैं.

* जिस के जितन पर्याय है उतनी सब पूरी करेगा उसे लब्धि पर्याप्ता कहा जाता है.

÷ क्योंकि बादर वायुकाय वैक्रिय शरीर करती है वहा भी २४ का उदय होता है, परन्तु इतना विशेष की औदारिक के स्थान वैक्रिय शरीर कहना.

× क्योकि- तेउकाय और वायुकाय के साधारण तथा यशः कीर्ति का उदय नहीं है. इसलिये १ भागा.

+ यह दोनो भांगे फक्त अयशः कीर्तिमेही मिलते है; परन्तु यश कीर्ति में न मिलने से भांगा न गिनना.

पूरी हुवे बाद पराघात का उदय मिलाने से भी २५ का उदय होता है वाहां भी प्र-थमोक्त रीति से-१ भाङ्गा पावे. यों सब २५ के उयद में ७ भाङ्गे होते हैं। श्वाशो श्वास पर्याप्ति पूरी किये बाद २५ के उदय में श्वासो श्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय स्थान होता है. यहां भी पहिले की तरह ६ भाङ्गा पाते हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के श्वाशो श्वाश के अनुदय से + बादर और उद्योत सहित २६ के उदय में-प्रत्येक के साथ एक भाङ्गा साधारण के साथ दूसरा भाङ्गा, यह दोनों यशः और अयशः से दुगुने करने ४ हुवे. । और उद्योत के साथ आताप का उदय मिला ने से भी २६ का उदय स्थान होता है, वहां प्रत्येक के यशः और अयशः से दोभां गे ×। और बादर वायु काम को वैक्रिय करते श्वाशो श्वाशः पर्याप्ती कर पर्याप्ता हु वे-२५ प्रकृत्ति में उश्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय होता है. यहां भी भा ङ्गा १ ही होता है. क्योंकि वायु काय के आताप उद्योत और यशः किर्ती का उद-य नही है. यों २६ के उदय में सब १३ भाङ्गे हुवे. । श्वासो श्वास पर्याप्ति कर पर्या प्ता श्वाशो श्वास सहित २६ के उदय में आताप तथा उद्योत इन दोनों में का एक मिलाने से-२७ का उदय होता है. यहां पुरोक्त रित से २६ भाङ्गे पाते हैं. । यों ए-केन्द्रिय के उदय स्थान में-२१ उदय ५, २४ के उदय ११, २५ के उदय ७, २६ के उदय १३, और २७ के उदय ६ यों ५ उदय के मिल ४२ भाङ्गे होते हैं. ॥ बे न्द्रिय में-२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, का, ३० का, और ३१ का यह ६ उदय स्थान हैं, इसके भाङ्गे कहते हैं:—इसमें-२ तिर्यंच द्विक, ३ बेन्द्रिय जाति, ४ त्रस, ५ बादर, ६ पर्याप्ता, ७ दौर्भाग्य, ८ अनादेय, ९ यशः कीर्ति अथवा अयशः कीर्ति, यह ९ और इसमें ध्रुवोदय की १२ प्रकृत्ति मिलाने से २१ प्रकृत्तिका उदयवि

+ क्योंकि-आताप पृथ्वी कायमें ही होता है. इसलिये २ प्रत्येक ही लिया है, और उद्योत पृथ्वी तथा वनस्पति दोनों में होता है. इसलिये यहा प्रत्येक और साधारन दोनो लिये. और आतापका तथा उद्योतका उदय बादर के ही होता है. परतू सूक्ष्म के नहीं इस लिये यहा सूक्ष्म का उदय नहीं लिया.

= जहांतक श्वासो श्वास पर्या पुरी न करे वहा तक-उश्वास के उदय विना उद्योतका उदय नहीं होता है.

ग्रह गति में प्रवृतते भवके अन्तराल गति में-बेन्द्रिय जीवों के होता है. यहां अपर्या प्ता के साथ अयशः कीर्ती मिलाने से भांगा-१ होता है. और पर्याप्ता के साथ अयः तथा यशः दोनों अलग २ मिलाने से भांगे दो होते हैं. यों सब ३ भांगे होते हैं.। फिर उस बेन्द्रिय को स्वस्थान में अवतरे बाद, ऊपरोक्त २२ के उदय में से तिर्यचा नु पूर्वी निकालने से और-२ औदारिक द्विक, ३ हुंड संस्थान, ४ छेवटा संघयण, ५ उपघात और ६ प्रत्येक, यह ६ प्रकृति मिलाने से २६ का उदय स्थान होताहै, यहां भी ऊपरोक्त राति से भाङ्गे ३ ही होते हैं। फिर पर्याप्ता पूरी हुवे. बाद-१परा घात, और २ कुखगति यह २ प्रकृत्ति मिलाने से-२८ प्रकृत्तिका उदय स्थान होता है. यहां यशः और अपयशः कर भाङ्गे दो होते हैं. = ।फिर श्वासो श्वास पर्या पूरि हुवे बाद, श्वाशो श्वास अधिक होने से २९ के उदमे भी ऊपरोक्त २ भांगे होते है. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ते को उस-२८ के उदय में श्वास के उदय बिना उद्योत का उदय मिलाने से-२९ का उदय स्थान होवे, यहां भी भांगे २ होते हैं. यों २९ के उदय के सब ४ भांगे होते हैं, । इन २९ के उदय में—सुस्वर दुस्वरमें का-एक मिलाने से ३० का उदय स्थान होवे, इसके यशः अपयशः से भाङ्गे दो, और सुस्वर दुस्वर से भांगे ४ होते हैं। और श्वाशोश्वास करके पर्याप्ताने जहांतक भाषा पर्याप्त पुरी नकरी होवे वहांतक-दोनों श्वरके उदय विना उद्योतका उदय मिलानेसे भी३०का उदय स्थान होता है. यहां यशः और अयशः कर दो भांगे होते हैं. यों सब मिल ३० के स्थान के ६ भांगे होते हैं। और स्वर सहित ३० के उदय में-उद्योत का उदय मिलाने से-३१ उदय स्थान भाषा पर्याप्ता कर पर्याप्त जीव के होता है, यहां यशः, अयशः सूस्वर और दुःस्वर कर ४ भांगे होते हैं. । यों २१ उदय के ३, २६ के उदय, ३, २८ के उदयु के २, २९ के उदय के ४, ३० के उदय के ६ और ३१ के उदय के ४, सब मिल बेंद्रीय के उदय के २२ भांगे होते हैं. । ऐसे ही ते-न्द्रिय के उदयके २२, । ऐसेही चौरिन्द्रिय के उदय के २२, यों तीनों विकेन्द्रिय के मिलकर सब ६६ भांगे होते हैं. । सामान्य से तिर्यच पचेन्द्रिय के-६ उदय स्थान होते हैं. ॥:—२१ का, २६ का, २८का, २९ का, ३० का और ३१ का. ॥ इस में-२

क्योंकि-अशुभ विहाय गति (कु खगति) मे अपर्याप्ता नामका उदय नहीं होता, इस-लिये पहिले कहे तीनों भांगे मे से यह १ भांगा कम हुवा. वाकी के-दो भागे पाते हैं.

तिर्यंच द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ त्रस, ५ बादर, ६ पर्याप्ता, ७ सौभग्य तथा दौर्भाग्य, ८ आदेय तथा अनादेय, ९ यशः तथा अयशः १, यह ९ और १२ ध्रुवोदय की मिल २१ का उदय स्थान-तिर्यंच पचेंन्द्रियके पहिले का शरीर छोडे बाद रस्तेमें विग्रह गति करता होवे तब पावे. यहां जो पर्याप्त नाम के उदय वर्तता होवे तो-सुभग दुभग के उदय में भांगे दो, आदेय अनादेय के विकल्प से भांगे चार, और यशः अयशः से भांगे ८ होते हैं. और जो अपर्याप्ता नाम के उदय वर्तेतो-सुभग आदेय, और यशः के आभाव से अन्य भाङ्गा न उपजते एकही भाङ्गा होता है, यों ९ भाङ्गे हुवे. ÷ वोही पचेन्द्रिय तिर्यंच शरीरस्थ अवतरे बाद-२१ के उदय में से तिर्यंचानु पूर्व्वी का उदय निकाले और-२ औदारिक द्विक, ३ छे संघयण, में का १ संघयण, ४ छे संस्थान में का एक संस्थान ५ उपघात और ६ प्रत्येक. इन ६ का उदय मिलाने से-२६ का उदय स्थान होता है. इसे पर्याप्ता के साथ ६ संघयण से गिनने से ६ भाङ्गे होवे. इने ६ संस्थान से ६ गुने करने से ६×६-३६ भाङ्गे होवे. इने सौभाग्य दौर्भाग्य से दुगुने करने से-३६×२=७२ भाङ्गे होवे. इने आदेय अनादेय सेदो गुने करने से-७२×२=१४४ होवे. इने यशः अयशः से दुगुने करने से-१४४+२-२८८ भाङ्गे होते हैं. । और अपर्याप्ता के-हुंडक संस्थान, छेवटा संघयण, दौर्भाग्य, अनादेय और अयशः इनही का उदय होने से एकही भाङ्गा होता है = यों २८९ भाङ्गे हुवे. । वो पर्याप्ता हुवे बाद-१ पराघात, २ दोनों में की एक खगति, इन दोनों को मिलाने से २८ का उदय होवे. इनके पहिले कहे २८८ भाङ्गे को शुभाशुभ विहायो गति से दुगुने करने से-५७२ भाङ्गे होते हैं ×। और ऊपरोक्त २८ में

÷ यहां कोइ आचार्य कहते हैंकि-शुभग का और आदेय का एकही वक्त उदय होता है, तैसे ही दुभग का और अनादेय का भी-उदय एकही बक्त होता है. इसलिये इन दोनों के साथ दो भागे इने यशः और अयशः से दुगुने करनेसे ४ भांगे तो पर्याप्ताके साथ होता हैं. और १ अपर्याप्ता का भागा, में ५ हुवे. यों सुभगु दुभग आदेय, अनादेय से आगे भी मतान्तर से फरक होता है सो बुद्धि से विचारना.

= अपर्याप्ताके अशुभ प्रकृति का ही उदय होता है, परन्तु शुभका उदय न होने से एकही भागा गिना है.

× यहां अपर्याप्ता न होने से उपरका एक भांगा गिना नही है.

श्वाशोश्वाश पर्याप्ति से पर्याप्ता के—उश्वाश नाम का उदय बढाने से—२९ का उदय होता है, यहां भी प्रथमोक्त रीति से भाङ्गे ५७६ होते हैं. अथवा-शरीर पर्याप्ति सेपर्याप्ता के श्वाशोश्वास विन एक उद्योत का उदय पाहिले की तरह २८ में मिलाने से २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी प्रथमोक्त रीति से भाङ्गे ५१६ होते हैं. यों २९ के उदय में सब भाङ्गे ११५२ होते हैं. । फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता हुवे बाद—२९ में सुस्वर या दुःस्वर में से एक प्रकृत्ति मिलाने से—३० प्रकृत्ति का उदय स्थान होता है. यहां पाहिले कहे हुवे श्वाशोश्वाश के—५७६ भाङ्गे को सुस्वर दुस्वर से दुगुने करने से—५७६—२—११५२ भाङ्गे होते हैं. अथवा—श्वाशो श्वास पर्याप्ति से पर्याप्त के स्वर के उदय विन उद्योत का उदय प्रथमोक्त २९ प्रकृत्ति में मिलाने से भी ३० प्रकृत्ति का उदय होते है. यहां भी प्रथमोक्त रीति से भाङ्गे ५७६ होते हैं. यों सब मिलकर ३० प्रकृत्ति के उदय स्थान के १७२८ भाङ्गे होते हैं. । और श्वर सहित ३० के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से—३१ का उदय स्थान होता है, यहां पाहिले स्वर सहित ३० उदय में—११५२ भाङ्गे कहेथे उतनेही जानना. यों तिर्यंच पचेन्द्रिय के ६ उयद स्थान के सब मिलकर ४९०६ भाङ्गे होते हैं. । और तिर्यंच पचेन्द्रिय के वैक्रिय करते—२५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का यहपांच उदय स्थान पाते हैं. इसमें—२ वैक्रिय द्विक, ३ समचतुरस्र संस्थान, ४ उपघात ५ तिर्यंच गति, ९ त्रस चतुष्क, १० पचेन्द्रिय जाति, ११ सौभाग्य अथवा दौर्भाग्य १२ आदेय अथवा अनादेय १३ यशः कीर्ति अथवा अयेशः कीर्ति, इन १३ प्रकृत्ति में ध्रुवोदय की १२ प्रकृत्ति मिलाने से—२५ प्रकात्त को उदय हेता है. जिसके—सौभाग्य दौर्भाग्य से २ भाङ्गे, इने आदेय अनादेय से दुगुने किये८ भाङ्गे होतेहैं, और इनको यशः अयुशः से दुगुने किये४, भाङ्गे और इसको आदेय अनादेय से दुगनेकिये ८ भाङ्गे होते हैं. = । फिर वैक्रिय शरीर की पर्याप्ति पूरी हुवे बाद १ पराघात २ शुभ विहायो गति यह दोनों मिलने से—२७ का उदय होता है यहां भी भांगे ८ जानना. फिर वैक्रिय शरीर की श्वाशोश्वास पर्याप्ति पुरी हुवे बाद उश्वाश का उद-

---

= यहां वैक्रिय शरीर होनेके सबब से संघयण तो होता नहीं है. और संस्थान फक्त एक समचतूरस्र पाता हैं. इसलिये इनके भांगे न होनेसे विशेष भांगे नहीं पाते हैं.

य मिलाने से २८ का उदय होता है. यहां भी वोही ८ भाङ्गे जानना. अथाव शरीर पर्याप्ति के के उश्वाश के अनुदय में उद्योत का उदय मिलाने से भी २८ का उदय होवे वहां भी येही ८ भाङ्गे जानना. यों २८ के उदय के सब मिल१६ भाङ्गे योते हैं. । वैक्रिय शरीरी के भाषा पयाप्ति पर्याप्ता के सुस्वर के उदय को पूर्वोक्त ऊश्वाश सहित २८ प्रकृत्ति में मिलाने से २९ का उदय होता है वहां भी भांङ्गे ८ होते हैं. यों २९ के उदय के भी सब १६ भाङ्गे होते हैं. । और सुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से ३० का उदय होता है. यहां भी भाङ्गे ८ होते है. यों सब मिल तिर्यंच पचेन्द्रिय के ४९६२ भाङ्गे होते हैं. और एकेन्द्रिय यादि सब तिर्यंच के भाङ्गे मिलाने से—५०७० भाङ्गे होते हैं. ॥ अब मनुष्य के सामान्या पने २२ का, २६ का, २८ का, २९ का, और ३० का यह ५ उदय स्थान होते हैं. इन पांचोंही उदय स्थान के भाङ्गे तिर्यच पचेन्द्रिय की तरह ही कहना, परन्तु इतना विशेष तिर्यच गति और तिर्यचानु पूर्व्वी के स्थान मनुष्य गति और मनुष्यानुपूर्व्वी कहना. तथा २९ प्रकृत्ति का उदय उद्योत सहित कहा है सो नहीं कहना. इसालिये २९ के उदय के ५७६ भाङ्गे होते हैं. और ३० के उदय के भी—११५२ भङ्गे होते हैं. परन्तु ज्यादा नही होते हैं क्योकि—वैक्रिय और आहारक शरीर करती वक्त फक्त साधु केही उद्योत का उदय होता है. इसलिये मनुष्य के सब २६०२ भङ्गे ही होते हैं. । और मनुष्य के वैक्रिय करती वक्त—२५ का २७ का, २८ का २९ का, और ३० का यह ५ उदय स्थान पाते है. इसमें—१ मनुष्य गति, २ उपघात नाम ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ वैक्रियाद्विक, ६ सवचाउरस्त्र संस्थान १० त्रस चतुष्क, ११ सौभाग्य. अथवा दौर्भाग्य, १२ आदेय अथाव अनादेय, १३ यशः अथवा अयशः और १२ प्रकृत्ति ध्रुवोदय की यों २५ का उदय होता है, यह भी तिर्यच में कहे माफिक ८ भाङ्गे पाते हैं । फिर वैक्रिय शरीर पर्याप्ता के पराघात और शुभ खगति के उदय २७ का उदय होता है. यहां भी ८ भाङ्गे जाणना फिर श्वाशो श्वाश पर्याप्ति पूरी किये बाद-२७ के उदय में उश्वाश का उदय मिलाने से२८के उदय मेंभी८ भाङ्गे जाणना. अथवा साधु के वैक्रिय करती वक्त शरीर पर्याप्ति पूरी किये बाद श्वाशोश्वश के उदय विना उद्योत का उदय मिलाने से २८ का उदय होता है. यहां एकही भाङ्गा होता है.=यों २८ के उदय में सब ९ भाङ्गे होते हैं । और सुस्वर सहित २९-

= क्योंकि साधुके दौर्भाग्य, अनादेय, और अयशः कीर्तिका उदय नहीं होता है.

के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से ३० का उदय स्थान होता है. यहां भी प- हिले के तरह साधु के एकही भाङ्गा जाणना. यों सब वैक्रिय के पांचों स्थानको के २५ भाङ्गे होते हैं. । और संयति के आहारक शरीर करती वक्त-बैक्रिय मनुष्य के कहे वोही ५ उदय स्थान पाते हैं. परन्तु इतना विशेष वैक्रिय द्विक, के स्थान आहा- रक द्विक कहना, और सब प्रसस्त प्रकृत्ति ही लेना इसलिये २५ के उदय में एक- ही भाङ्गा जाणना. । फिर शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के-पराघात और शुभ खगति मि- लाने से २७ का उदय होता है. यहां भी एकही भाङ्गे होता हैं फिर प्राणापान (श्वा शोश्वाश) पर्याप्ता के श्वाशोश्वाश का उदय मिलाने से-२८ के उदय में भी एक ही भाङ्गा होता हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के-उश्वास का अनुदय और उद्यो- त का उदय मिलाने से भी २८ प्रकृत्ति का उदय होता है. यहां भी एकही भाङ्गा यों २८ के उदय के दो भाङ्गे होते हैं. । फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के उश्वाश सहि त २८ के उदय में सुस्वर का उयद मिलाने से २९ का उदय स्थान होता है, यहां भी एक भाङ्गे अथवा श्वाशोश्वाश पर्याप्ति के सुस्वर के अनुदय और उद्योत के उद य में भी २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी एक भाङ्गा यों २९ के उदय में २ भाङ्गे । फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के सुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उद य मिलाने से ३० का उदय होता है. यहां भी एक भाङ्गा । यों आहारक शरीर के पांचों उदय स्थान के ७ भाङ्गे होते हैं. । अब केवल ज्ञानी मनुष्य के-२० का, २१ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का और ८ का, यह १० उदय स्थान होते हैं, इसमें-१ मनुष्य गति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ त्रस, ४ बादर ५ पर्याप्ता ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशः कीर्ति और १२ ध्रुवोदय की प्रकृत्ति मिलाने से २० का उदय होता है. सो केवल समुत्घात करती वक्त बीच के ३ समय पर्यन्त कार्मण जोग बर्तते के होता है. यहां भांङ्गा १ ही होता है. और तीर्थकर के- वल ज्ञानी के तीर्थंकर नाम युक्त-२१ का उदय होता है, यहां भी भाङ्गा एक होता है. । और ऊपरोक्त २० में-२ औदारिक द्विक, ३ छे संस्थान में का एक संस्थान, ४ प्रथम-संघयण, ५ उपघात, और २ प्रत्येक, यह २ प्रकृत्ति मिलाने से २२ का उ दय सामान्य केवली के समुद्र घात करते, दूसरे, छट्टे और सातवे इन ३ समय में औ दारिक मिश्र जोग वर्तते होता है. यहां ६ संस्थान से २ भाङ्गे होते हैं, परन्तु सामा- य मनुष्य आश्रिय होने से गिनती में नही लिये. । ऊपरोक्त २६ में-तीर्थ कर नाम

मिलाने २७ का उदय तीर्थंकर के समुद्घात होती वक्त दूसरे तीसरे और सातवे समय में होता है. यहां भांगा १ ही । ऊपरोक्त २२ में–१ पराघात, २ उश्वास, ३ शुभ अथवा अशुभ खतागे ४ सुस्व अथवा दूस्वर, यह ४ प्रकृत्ति मिलाने से–३० का उदय सामान्य केवली के–औदारिक काया जोग वर्तते होता है. यहां २ संस्थान से २ भांगे, इने दोनों विहाय गति से दुगुने करते १२ भांगे और इने सुस्वर दुस्वर से दुगुने करते २४ भांगे होते हैं. परन्तु सामान्य मनुष्या मिश्र होने से नहीं गिने । ऊपरोक्त ३० प्रकृत्ति में तीर्थंकर नाम मिलाने से ३१ का उदय स्थान तीर्थंकर के सयोगी केवली के औदारिक काया योग वर्तते होता है. यहां समचतुरस्र संस्थान शुभ विहाय गति, और सुस्वर का उदय होने से एकही भांगा होता । इन १३ में से औदारिक काय योगका निरुंधन करे तब वचन जोगका भी निरुंधन होवे जिससे स्वरका भी निरुंधन होवे, इसलिये स्वरके उदय विना ३० का उदय स्थान रहै. यहां भी एक भांगा तिर्थंकर के जानना. । फिर उश्वाश रुंधे तब २९ का उदय रहै. वहां भी एक भांगा तीर्थंकर के जानना. । और सामान्य केवली पूर्वोक्त ३० मे से वचन जोग का निरुंधन किये २९ का उदय रहै–यहां २ संस्थान और विहायो गति से–१२ भांगे होते हैं. परन्तु सामान्य सनुष्य के होने से गिने नही । इन २९ में से उश्वस का निरुंधन करने से २८ का उदय रहै यहां भी २ संस्थान और २ विहायो गति से १२ भांगे होते है. सामान्य मनुष्य के होने से नही गिने । और १ मनुष्य गति २ पचेन्द्रिय जाति ३ त्रस, ४, वादर ५ पर्याप्ता, ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशः कीर्ती और ९ तीर्थंकर नाम, इन ९ प्रकृत्ति का उदय तीर्थंकर अयोगी केवली के चरम समय वर्तते होता है. यहां भी १ भांग । इन ९ में से तीर्थंकर नाम निकालेन से ८का का उदय सामान्य अयोगी केवली के चरम समय होता है वहां भी १–भाया यों केवली के १० उदय स्थान के मिलके ६२ भांगे होते हैं. जिसमें–२० का, २१ का, २७ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, और ८ का, इन ८ स्थानों में तो एकेकही भांगा पाता है, जिसमें दो स्थान सामान्य केवली के और ६ स्थान तीर्थंकर है सोतो गिने है. और बाकी के ५४ भांग सामान्याश्रिय होने से उन भांगे के अन्तर भूत समाये जिससे अलग नहीं गिने यो मनुष्य समबन्धि सब मिलकर २६२५ भांगे होते है ॥ अब देवता के २२ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ६ उदय स्थान पाते हैं इसमें–२ देवद्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ त्रस

५ बादर, पर्याप्ता, ७ सुभग, दुर्भग में का एक, ८ आदेय अनादेय में का एक, ९ यशः अयशः में का एक और २२ ध्रुवोदय की प्रकृत्ति मिल २२ का उदय भवके अन्तराल गति में वर्तते देवता कहेता है. यहां सुभग, आदेय अनादेय, यशः और अयशः इनके साथ गिनने से ८ भांगे होते हैं. × । फिर वो शरीरस्थ हुवे बाद ऊपरोक्त २२ प्रकृत्ति में–२ वैक्रिय द्विक, ३ उपघात, ४ प्रत्येक, ५ समचतुरस्र संस्थान. यह ५ प्रकृत्ति मिलावे, और देवानु पूर्व्वी निकाले तब २५ प्रकृत्ति का उदय रहै, यहां भी पहिले की तरह ८ भांगे होते हैं. । फिर शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के–१ पराघात, और प्रसस्त विहायोगति यह दो प्रकृति विशेष होनेसे-२७ का उदय स्थान होवे यहां भी. ८ भांगे * फिर प्राणापान पर्याप्ता के उश्वास का उदय अधिक होनेसे-१८ का उदय स्थान होता है. यहां भी ८ भांगे, अथवा शरीर पर्याप्ताके उश्वास के अनूदय और उद्योत के उदय में भी १८ का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, यों २८ के उदय में सब १६ भांगे होते हैं. ॥ फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ताके सुस्वर का उदय अधिक होनेसे - २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी ८ भांगे होते हैं + अथवा श्वाशोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्ताके सुस्वर के अनुदय और उद्योत के उदय में २९ का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, ÷ ॥ यों २९ के उदय के सब १६ भांगे हुवे. फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के सुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उदय मिलने से ३० का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, यों देवता के ६ उदय स्थान के सब मिल ६४ भांगे होते हैं. ॥ अब नारकीके २१ का, २५ का, २७ का, २८ और २९ का, यों ५ उदय स्थान होते हैं. । इस में-२ नर्क द्विक, २ पचेन्द्रिय जाति, ४ त्रस, ५ बादर ६ पर्याप्ता, ७ दुर्भग, ८ अनादेय, ९ अयशः कीर्ति और १२ ध्रुवोदय की प्रकृति. यों २१ प्रकृति का उदय-विग्रह गति में वर्तते नर्क के जीवोंके होते हैं., यह भांगा एक ही होता है = ॥ फिर १८ में ८ वैक्रय द्विक, हुंडक

× दौर्भाग्य अनादेय, और अयशः का उदय पीशाचादि हीन जातके दवोंके होता है.

* देवताके अशुभ विहायो गतिका उदय नही होने से भांगे बढे नही.

+ क्योंकि–देवता दूस्वर का उदय नही होता है.

÷ उत्तर वैक्रिय करने देवता के उद्योत का उदय होता है. =नर्कके जिवोंके प्रावर्तमान प्रकृति मेंकी अशुभ प्रकृतिकाही उदय होनेसे विकल्प उठता नहीं है. जिससे भांगा बढता नहीं है.

संस्थान, ३ उपघात ५ प्रत्येक , इन ९ प्रकृति का उदय मिलाने से और पूर्वी का उदय कम करनेसे २५ का उदय स्थान नर्क में उत्पन्न हुवे बाद शरीरस्थ के पाता है. यहां भी भांग एकही होता है. फिर शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के पराघात और अशुभ खगति इन दोनों का उदय वढने से २७ का उदय होता है. यहां भी भांगा एकही। फेर प्राणा पाना पर्याप्ति पर्याप्ता के श्वासो श्वास का उदय वढने से २८ का उदय होता यहां भी भांगे १। फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के दुस्वर का उदय वढनेसे—२९ का उदय होता है, जिसका भांगा एकही होता है. यों नर्क के ५ स्थानोंके ५ भांगे होते हैं. और चारों गति के सर्व उदय स्थानोंके मिल सव १७९१ भांगे होते हैं सो कहते हैं.

उदय स्थानों के सब भाङ्गो की संख्याः—२० प्रकृति के उदय स्थान में-१ भांगा केवली के होता है, २१ प्रकृति की उदय स्थान में-एकेन्द्रिय के ५ विक्लेन्द्रिय के ९, पचेन्द्रिय तिर्यंच के ९ मनुष्य के ९ , केवली का १, देवता के ८, और नर्क का १, यों सब मिल ४२ होते हैं, २४ प्रकृतिक उदय स्थान में—एकेन्द्रिय के ११, भांगे होते है, २५ प्रकृति के उदय स्थान में-एकेन्द्रिय के ७ वैक्रिय तिर्यंचके ८, वैक्रिय मनुष्य के ८, आहका १, देवता के ८ और नर्क का १, यों सब ३३ भांगे होते हैं. २६ प्रकृति के उदय में एकेन्द्रिय के १३, विक्लेन्द्रिय के ९, पचेंन्द्रिय तिर्यंच के २८९, और सहज मनष्य के २८९, यों सब ६००० भांगे होते हैं, २७ प्रकृति के उदय में—एकेन्द्रिय के ६, वैक्रिय तिर्यंच के ८, वैक्रिय मनुष्य के ८, आहारक का १, केवली का १, देवता के ८, और नर्क का १, यों ३३ होते हैं. २८ के उदय में-विक्लेन्द्रिय के ६, पचेन्द्रिय तिर्यंच के ५७६, मनुष्य के ५७६, वैक्रिय तिर्यंच के १६ वैक्रिय मनुष्य के ९, आहारक के २, केवली का १ देवता के १६ और नर्क का १, यों सब १२०२ भांगे होते हैं. २९ प्रकृति के उदय में विक्लेन्द्रिय के १२ पचेंन्द्रिय तिर्यंच के ११५२, मनुष्य के ५७६, वैक्रिय तिर्यंच १६ वैक्रय मनुष्य के ९ आहारक के २, केवलीका २ देवता के १६ और नर्क का १ यों सब १७८५ भांगे होते हैं; ३० प्रकृति के उदय में विक्लेन्द्रिय के १८ तिर्यंच पचेन्द्रिय के १७२८, मनुष्य के ११५२, वैक्रिय तिर्यंच के ८. वैक्रिय मनुष्य के १, आहारक का १, केवली का १, देवता के ८, यों सब २९१७ भांगे होते हैं. और ३१ का प्रकृति के उदय में—बिक्लेन्द्रिय के १२, पचेन्द्रिय तिर्यच के ११५२, और बेकलीका

१, यों सब ११६९ भांगे होते हैं. यों ९ ही उदय के सब मिलकर १७९१ भांगे होते है.

अब नाम कर्म के सत्ता स्थानक कहते हैं:-१ नाम कर्म की सर्व प्रकाति के समुदाय की सत्ता होवे तब ९३ की सत्ता, २ इस में से जिन नाम की सत्ता नहीं होवे तब ९२ की सत्ता, ३-९३ वेमें से- (१) आहारक शरीर, (२) आहारक अङ्गोपाङ्ग, (३) आहारक बन्धन, और (४) आहारक संघातन, इन चारों की सत्ता नहीं होवे तब ८९ का सत्ता स्थान, ४ इस में से- जिन नाम की सत्ता न होवे तब ८८ का सत्ता स्थान, ५ इस में से-देव द्विक, या नर्क द्विक की प्रकृति कमी करे तब-८६ की सत्ता. ६ तथ्थ ८८ मेंसे-तेउ और वायु में वैक्रियाष्टक उवेलकर ८० की सत्ता वन्त हुवा पचेन्द्रिय पना पाकर देव गति योग्य बन्ध करे तो देव ,द्विक और वैक्रिय चतुष्क बन्ध में ८६ का सत्ता स्थान होवे. तथा एचेन्द्रिय योग नरक प्राथोग वान्धे तो नरक द्विक और वैक्रिय चतुष्क बन्ध में भी ८६ का सत्ता स्थान होवे, ७ फिर नरक द्विक और वैक्रिय चतुष्क का निकाल होनेसे ८० का सत्ता स्थान हो फिर मनुष्य द्विक उवेलनेसे ७९ का सत्ता स्थान होता है. यह सातों सत्ता स्थान क्षपक छोडकर दुसरे जीवों के होते हैं. इस में अभव्य के तथा पाहिले सम्यक्त्व प्राप्त न करी हो उन के-७८ का, ८० का, ८६ का, और ८८ का, यह चार सत्ता स्थान पाते हैं। अब क्षपक के-६ सत्ता स्थान कहते हैं:—९३ में से ८ नरक द्विक, ४ तिर्यंच द्विक, ८ प्रथम की चार जाति, ९ स्थावर, १ आताप, ११ उद्योत, १२ सूक्ष्म और १३ साधारण इन १३ प्रकाति का क्षय होनेसे-७९ की सत्ता पाती है. और ९ में से-१३ खपाने से ७६ की सत्ता, और ८८ में से-१३ क्षपाने से-७५ की सत्ता. और-८ मनुष्य गति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ त्रस, ४ बादर, ५ पर्याप्ता, ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशः और तीर्थंकर नाम इन ९ की स्वतः और इन ९ में से-तीर्थंकर नाम कमी करने से ८ की सत्ता, यह ८-९ के दोनों सत्ता स्थान अयोगी केवलीभे अन्तिम समय में होती है यह नाम कर्म के १२ सत्ता स्थान हुवे.

अब नाम कर्म के बन्ध उदय और सत्ता स्थान का सम्बन्ध कहते हैं; २३ का बन्ध अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्यही होता है, इसके बन्धने वाले-एकेन्द्रिय, विक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य होते है, इनके-२१ का, २४ का, २५ का, २६ का,

२७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का यह ९ उदय स्थान होतेहैं इसमें के हरेक उदय स्थानमें वर्तते एकेन्द्रिय प्रायोग्य-२३प्रकृत्तिका बन्ध स्थान करता है; वहां २१ उदय तो विग्रह गति में वर्तते-एकेंद्रिय बिक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यके होता है. वहां सत्तास्थान-९२ का,८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का यह ५ स्थान सब जीवों के पाते हैं, परन्तु मनुष्य के ७८की सत्ता नहींहोती है, क्यों कि-७८ की सत्ता मनुष्य द्विक उवेलने सेही होती हैं, इसलिये मनुष्य के चार सत्ता स्थान नहीं होते हैं. । और २४ का उदय एकेन्द्रिय पर्यासा अपर्यासा दोनों के होता है, वहां भी ऊपर कहे सो ५ सत्ता स्थान होते हैं. परन्तु इतना विशेष-जो वायु काय वैक्रिय करे तो-२४ के उदय में वर्तते को ८० का, और ७८ का यह दोनों सत्ता स्थान पाते हैं. क्योंकि उसके वैक्रिय षट्क और मनुष्य द्विक निश्चय से पाताहै, + इसलिये ८० का और ७८ का स्थानक छोड कर-९२ का, ८८ का और ८६ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं. । और २५ के उदय में वर्तते एकेन्द्रिय वैक्रिय तिर्यंच और वैक्रिय मनुष्य के होता है, तहां तेउ और अवैक्रिय वायु के जो पांच सत्ता स्थानक हैं वोही ५ सत्ता स्थानक कहना. क्योंकि-७८ की सत्ता उसीकेही है, अन्य के नही × । और दुसरे पर्यासा के ७८ की सत्ता विना बाकी के ४ सत्ता स्थानक वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य के बन्धते हैं. और २५ का उदय होता है. । और २६ का उदय पर्यासा एकेन्द्रिय तथा पर्यासा अपर्यासा बेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य के होती है. वहां भी पहिले की तरह ही ५ सत्ता स्थानक, उसमें से ७८ का स्थानक तो तेउ तथा वैक्रिय वायु की अपेक्षा से लेना. और बाकी रहे ४ सत्ता स्थानक दुसरेजी

+ वैक्रिय तो साक्षात अनुभव रहा है इसलिये उसे उवेलता नहीं है, और उसके उवेल विन नरक द्विक तथा देव द्विक नहीं होता है, समकाल ही वैक्रिय षटक उवेलता है, और वैक्रिय षटक उवेले बाद मनुष्य द्विक उवेलता है. परन्तु उसके पहिले नहीं उवेलता है

×क्योंकि-दूसरे सब पर्यासा जीवों मनुष्यद्विक का बन्ध करते है, और एकेन्द्रिय के विक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय जो तेउ वायु से आकर अवतरते हैं वो जहांतक मनुष्य द्विक का बन्ध नहीं करे वहातक अपर्यासा अवस्था में उनके ७८ की सत्ता होती है. इसलिये ५ सत्ता स्थान पाते है.

वों आश्रिय २३ के बन्ध में और २६ के उदय में लेना. । और २७ का उदय तेउ वायु छोड कर पर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय तथा वैक्रिय तिर्यच मनुष्य के होते है. वहां ७८ विना बाकी रहै ४ सत्ता स्थानक जाणना. = । और २८ का, २९ का, और३० का यह तीनो उदय स्थान पर्याप्ता बिकेन्द्रिय तथा तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य के होता है. । और ३८ उदय स्थान पर्याप्ता विक्लेन्द्रिय तथा तिर्यच पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी के होता है, यहां मनुष्य द्विक की सत्ता होती है. इसलिये एक ७८का सत्ता स्थान छोड बाकी के ४ सत्ता स्थान पाते हैं, यों २३ के बन्ध के योग्य ९ उदय स्थानक के सब मिलकर ४० सत्ता स्थान होते है. । और २९ के, २६ के बन्ध में भी योंही नव नव उदय स्थान में सत्ताका सम्वेध ४०-४० स्थान सामान्य आदेशसे जाणना. और विशेषा देशसे पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ का बन्ध करने वाले देवता के–२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, इन ६ उदय स्थान में–९२ का, और ८८ का यह दो सत्ता के स्थानक अलग २ होते हैं. और पर्याप्ता बिक्लेन्द्रिय तथा अपर्याप्ता तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति का देवताके बन्ध नहीं है क्योंकि–अपर्याप्ता देवता में उपजता नहीं हैं. इसलिये २३ का, २५ का, और २६ बन्ध स्थान में सब ९ उदय स्थान के मिलकर १२० सत्ता स्थान मिथ्यात्वीके ही होते हैं. । और २८ के बन्ध में–२१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का यह ८ उदय स्थान होते हैं, और ९२ का, ८८ का, ८६ का, तथा ८० का यह ४ सत्ता स्थान एकेक के उदय से होते हैं यह२८का बन्ध दो तरहसे होताहै:-१देवगति प्रायोग्य और २नर्कगति प्रायोग्य इसमें देवगति प्रायोग्य२८के बन्धमें८उदय स्थान अनेक जीवों आश्रिय होतेहैं. और नर्क गति प्रायोग्य २८ के बन्ध में-३० का और ३१ का यह दो उदय स्थान होते हैं, जिस में-देवगति के प्रायोग्य २८ के बन्ध में २९ का उदय क्षायिक सम्यक्त्वी अथवा क्षयोपशामिक सम्यक दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य की भवन्तराल गति में होवे

= तेउ और वायु के आताप का और उद्योत का उदय नहीं हैं, इसलिये उनके २७ का उदय स्थान भी नहीं है. और तेउ वायु विना ७८ की सत्ता दुसेर किसीभी स्थान मिलती नहीं है इसलिये, २३ के बन्ध में और २७ के उदय में ४ सत्ता स्थान पाते हैं.

तव पावे. परन्तु मिथ्यात्वी के नहीं पावे. क्योंकि-मिथ्यात्व दृष्टि देवगति प्रायोग्य २८ का वन्ध नहीं करता है, मिथ्यात्वी तो सव प्रर्याप्तिमें पर्याप्ताही देव गति प्रायोग्य २८ वान्धता है × इस देव गति प्रायोग्य २८ के वन्धक २१ के उदय में वर्तते को— ९२ का और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं. परन्तु यहां जिन नामकी सत्ता नहीं है. = और २५ का उदय आहारक साधु वैक्रय तिर्यंच और सम्यक दृष्टि मनुष्य इन तीनों के होता है. तथा मिथ्यात्व दृष्टि के भी होवे वहां सामान्यसे यह दो सत्ता स्थान होते हैं. परन्तु इतना विशेष जो आहारक के धारक हैं. उनके आहारक चतुष्क जरूर होता है, इस लिए उनके-एक-९२ काही सत्ता स्थानक होते है. वाकी के दुसरे जीवों के दो सत्ता स्थान होता है. यह २८के वन्ध के २५के उदय के दो सत्ता स्थान जानना.। और२६के उदय क्षायिक और क्षयोपशमसम्यक दृष्टि शरीरस्त पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य के २८ का वन्ध देव गति प्रायोग्य होता है, वहां ९२ और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं. । और २७ के उदय आहारक साधु तथा वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य सम्यक दृष्टि तथा मिथ्या दृष्टि के वोही दोनों सत्ता के स्थानक जाणना. तैसे ही—२८ के २९ के उदय में भी अनुक्रम से शरीर पर्याप्ति पर्याप्ताके-२८ का उदय होता है। और श्वाशोश्वास पर्याप्ति कर पर्याप्ताके-२९ का उदय होवे सो क्षयिक तथा वेदक सम्यक दृष्टि के; आहारक साधु, वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य के देवगति प्रायोग्य २८ का वन्ध होवे तहां भी ९२ और ८८ के दोनों सत्ता स्थान पावे. । और ३० का उदय पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य सम्यक दृष्टि के, मिथ्यात्व दृष्टि के, आहारक करते साधुके तथा वैक्रिय करते साधु के होता है, वहां सामान्यसे

× यह कहेगा कि-जो एसा कहोतो वैक्रिय करती वक्त तिर्यंच और मनुष्य—२५ के, २७ के, २८ के, और २९ के उदय में वर्तते मिथ्यात्वी देवगति प्रायोग्य २८ का वन्ध करता है सो कैसे सभवे? समाधान-उसही भव की आदि में पूरी पर्याप्ति करता है, फिर वैक्रिय शरीर करते औदारिक निवृति पर्याप्ता पणे उदय से निवृते तोभी उसे पर्याप्ता ही कहना. इसलिये पर्याप्ता अवस्था में तो मिथ्यात्वीके भी वन्ध विरोध नहीं है.

= जो कदापि जिननाम की सत्ता होवेतो उसका वन्ध भी होना चाहिये तो फिर २९का वन्ध होवे. इसलिये-यहां जिन नाम नहीं है.

९२ का, ८९ का, ८८ का, और ८६ का यह ४ सत्ता स्थान होते हैं: और विशेष से—पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य मिथ्यात्व दृष्टि के नर्कगति प्रायोग्य २८ का बन्ध करते ३० के उदय—९२ का, ८९ का, ८८ का, और ८६ का यह चार सत्ता स्थान होते हैं. इस में ९२ का और ८८ का तो प्रथमोक्त रीति से कहना. और ८९ की सत्ता सो—किसी जीवने नर्कायु बन्ध किये बाद सम्यक्त्व प्राप्त कर के तीर्थंकर नामका बन्ध किया, वो जीव नर्क जानेके सन्मुख हुवा. तब सम्यक्त्वका वमन कर मिथ्यात्व में गये बाद तीर्थंकर का बन्ध है इसलिये तीर्थंकर नाम की सत्ता होवे, परन्तु तीर्थंकर की सत्ता होते भी आहारक की सत्ता मिथ्यात्वी के नहीं होती है वहां, ८९ की सत्ता पाती है. अब ८६ की सत्ता का स्वरूप कहते हैं:—कोइ सर्व पर्याप्ति से पर्याप्ता ऐसा तिर्यंच पचेंद्रिय अथवा मनुष्य वो तीर्थंकर नाम, आहारक चतुष्क, वैक्रिय चतुष्क, देवद्विक, नरकद्विक, इन १३ प्रकृति विना ८० की सत्ता में वर्तता संक्लिष्ट परिणाम से नरक गति प्रायोग्य २८ का बन्ध करते वैक्रिय चतुष्क और देवद्विक का अवश्य बन्ध करता है, तब ८६ का सत्ता स्थान होता है. यों २८ के बन्ध में, ३० के उदय में, ४ सत्ता स्थान होते हैं ॥ और ३१ के उदय में-९२ का, ८८ का, ८६ का यह तीन सत्ता स्थान होते हैं, यहां ८९ की सत्ता नहीं होती हैं +। यों २८ के बन्ध में ८ उदय स्थान के मिल चार सत्ता स्थान के संबेध से १२ भाङ्गे पाते हैं. ॥ २९ के बन्ध में और ३० के बन्ध में अलग अलग:—२१ का २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ९ उदय स्थान होते हैं. और—९३, का, ९२ का, ८९ का, ८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का, यह ७ सत्ता स्थान होते हैं. । इस में पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य प्रायोग्य. २९ का बन्ध करते पर्याप्त अपर्याप्ता ऐसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय मनुष्य देवता और नर्क विग्रह गति में—२१ का उदय होता है उस में-९२ का, ८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का यह ५ सत्ता स्थान होते हैं. परन्तु

+ क्योंकि ३१का उदय तिर्यंच के होता है और उस तिर्यंचमें तीर्थंकर नामकी सत्ता नहीं होती है. और ८९ की सत्ता तो तीर्थंकर नाम सहित ही होतीतै. इसलिये ८९ छोडकर बाकी के तीनों सत्ता स्थान पाते है.

इतना विशेष कि-वायुकाय विना दूसरे पर्यांप्ता एकेन्द्रिय, विक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय मनुष्य देवता और नार की इन के ७८ विना वाकी के ४ सत्ता स्थान पाते हैं. (इ-सका कारण प्रथमोक्त) ऐसे ही-२४ के, २५ के और २६ के उदय में भी येही पांच २ सत्ता स्थान जानना. इसमें जो २३ के बन्ध में उदय सत्ता सम्वेध के भागे कहेसो ही यहां भी जानना, परन्तु इतना विशेष कि—यहां २५ के उदय में मिथ्या त्वी देवता और नार की के २९ का वन्ध होता है. । और २७के उदय पर्याप्ता ए-केन्द्रिय देवता, नारीकी, वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य मिथ्यात्वी की, विक्लेन्द्रिय के तिर्यंच मनुष्य के प्रायोग्य २९ का वन्ध वान्धता हुवे—९२ का, ८८ का, ८६ का और ८० का यह चार सत्ता स्थान पाते हैं- । और २८ का २९ का उदय विक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, चनुष्य, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य देवता, और नारकी २९ का वन्ध करते होता है. यहां भी वोही चारों सत्ता स्थानक पाते हैं. । और ३० का उदय-विक्लेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, और मनुष्य के; तथा उद्योत के उदय में देवता के होता है, । और ३१ का उयय-विक्लेन्द्रिय और तिर्यंच पचेंन्द्रिय के उद्योतके उ-दयमें होता है वहां मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का वन्ध करते चार सत्ता स्थानक-एके-न्द्रिय विक्लेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के होते हैं. । और तिर्यच गति मनुष्य गतिके प्रायोग्य २९ का वन्ध करते नको अपने २ उदय स्थान में-यथा योग्य पने वर्तते को भी ७८ का सत्ता स्थान होता है, क्योंकि-मनुष्य द्रिक होते ७८ सत्ता नही होतीहै इसलिये वोही चारों सत्ता स्थानक पाते हैं. और देवता नारकी पचेंन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य प्रायोग्य २९ का वन्ध करते अपने अपने उदय में वर्तते-९२ का, और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं. वहां मिथ्यात्वी नर्क को तिर्थकर नाम कर्म होते मनु-ष्य गति प्रायोग्य २९ का वन्ध अपने २ उदय में यथा योग्य पने वृर्तते को एक ८९ का सत्ता स्थान होता है. क्योंकि-मिथ्यात्वी के आहारक चतुष्क जिन नाम होते भी नहीं पाता है. । विक्लेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रिय के येही चारों सत्ता स्थान कहना. जैसे २३ के वन्धमें कहे वैसे सर्व स्थान जानना. परन्तु इतना विशेष जो मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का वन्ध करे उसके ७८ विना चार सत्ता स्थान होते हैं. । तिर्यंच गति प्रायोग्य२९ के वन्ध में पांचों सत्ता स्थान पाते हैं. । और देवगति प्रायोग्य२९ का, बन्ध करते अविराति सम्यक्त्व द्रष्टि के-२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ५ तथा आहारक और वैक्रिय करते साधु के-२५ का, २७ का, २८

का, और ३० का यह ५ उदय स्थान होते हैं. । और देश विराति मनुष्य के वैक्रिय करते उद्योत का उदय नहीं होवे इसालिये ३० के उदय विना अन्य चार उदय स्थान होते हैं. वहां देवगति प्रायोग्यु तीर्थंकर नाम सहित २९ का बन्ध करते–९३ का और ८९ का, यह दो सत्ता पांचों उदय स्थान मेंहोती है. । और आहारक साधु के देवतागि प्रायोग्य २९ का बन्ध करते एक ९३ का, सत्ता स्थान होता है. यों सामान्य पने २९ के बन्ध में ९३ के उदय कर सब९४ भांगे होते हैं. । और ३० के बन्ध स्थान में–जैसे तिर्यंच गति प्रायोग्य २९ का बन्धबन्धते––एकेन्द्रिय, बिकेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देवता, और नारकी के जैसे उदय स्थानक कहे तैसे उद्योत सहित तिर्यंच गति प्रायोग्य ३० के बन्ध में–एकेन्द्रिया दिक के भी उदय और सत्ता स्थान का सम्बेध कहना. ॥ और मनुष्य गति प्रायोग्य तीर्थंकर नाम सहित ३० प्रकृत्ति का बन्ध करते देवता नारकी के जो विशेष होता है. सो कहते हैं:–देवता के २१ के उदय में व्रह्तते–९३ का और ८९ का दो सत्ता स्थान होते हैं. और नारकी को २१ के उदय में प्रवृतते–मनुष्य गति प्रायोग्य ३० प्रकृत्ति का बन्ध करते–एक ८९ प्रकृत्ति का सत्ता स्थान होता है. परन्तु नारकी के ९३ की सत्ता नहीं होती है. ÷ । और २५ का, २७ का, २८ का, और २९ का इन चारों उदय स्थानों में भी देवता के ऊपरोक्त दो दो सत्ता स्थान होते हैं. जिस नारकी के ३० का उदय स्थान होता है उस नारकी के उद्योत का उदय नहीं होता है. यों सामान्य पने ३० के बन्ध में २१ के उदय में–२४ के उदय में ५ और २५ के उदय में ७, २६ के उदय ४, २७ के यदय ६, २८ के यदय ६, २९ के यदय ६, ३० के यदय ६, और ३१ के नदय ४, यों सब मिल ३० के बन्ध के

÷ क्योंकि–तीर्थंकर नाम तथा आहारक चतुष्क इन दोनों की सत्ता नारकी के भेली नहीं होती है.

× नाम कर्म की एकही यशः कीर्ती प्रकृत्ति का बन्ध अपूर्व करण के सातवे भागसे लगाकर दशवे गुणस्थान तक होता है. वो अति विशुद्ध है. इसलिये आहारक और वैक्रिय करते नहीं इसालिये यनके दूसेर २५ आदिक उदय स्थान वैक्रियदिक की पर्याप्तिके योग्य नही होते है. फक्त १ ही ३७ प्रकृत्ति का दउय स्थान होता है.

९ उदय के ५२ भांगे होते हैं. और ३१ के वन्ध में १ उदय स्थान और १ सत्ता स्थान होता है. क्योंकि—देवगति प्रायोग्य जिन नाम तथा आहार द्विक सहित ३१ का वन्ध स्थान अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान में होता है. वहां वैक्रिय और आहारक शरीर का कारण नहीं है. इसलिये इन विना—अन्य—२५ का, २६ का इत्यादिअल्प प्रकृत्ति का उदय नहीं होता है. और औदारिक शरीर की तो सव पर्याप्ता कर पर्याप्ता है. इसलिये उनके ३० काही उदय होता है. वहां एकही ९३का सत्ता स्थान पाता है. दूसरे सत्ता स्थान नहीं है. क्योंकि—३१ का वन्धतो आहारक चतुष्क जिन नाम सहित होता है. । और एक यशः कीर्तीके वन्ध में भी एक ३० प्रकृत्ति काही उदय स्थान होता है. और वहां ९३ का, ९२ का, ८९ का, ८८ का, ८० का ७९ का ७६ का, और ७५ का यह ८ सत्ता स्थान होते हैं. इसमें के—९३ का, ९२ का ८९ का, और ८८ का, य ४ तो उपशम श्रेणिकी अपेक्षा से होते हैं. और क्षपक श्रेणि में भी जहां तक—निवृत्ति वादर के प्रथम भाग में जाकर—१ स्थावर २ सूक्ष्म, ४ तिर्यंच द्विक, ६ नरक द्विक, १० जाति चतुष्क, ११ साधारण १२ आताप, और १३ उद्योत, इन १३ प्रकृत्तियों का क्षयकरे वहां तक अनेक जीवों की अपेक्षा से—८० का, ७९ का, ७६ का, और ७५ का, यह ४ स्थान खपक श्रेणि में होते हैं. । इसके ऊपर वचन के अभाव से—२० का, २१ का, २६ का, का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, और ८ का, यह १० उयद के स्थान और ९३ का, ९२ का, ८९ का, ८८ का, ८० का, ७९ का, ७६ का, ७५ का, ९ का, और ८ का, यह १० स्थान होते हैं. । इसमें केवली के—आठ समय का, समूद्घात करोते वीच के—तीसरे चौथे और पांचवे समय पर्यन्त कार्माण जोग वर्तते—१ पचेन्द्रिय जाति, ४ त्रस त्रिक, ५ सुभग, ६ आदेय, ७ यशः कीर्ती, ८ मनुष्य गति, और १२ प्रकृत्ति ध्रुवोदय की यों २० प्रकृत्ति का उदय होता है. वहां—सत्ता स्थान ७९ का, तथा आहारक चतूष्क विना ७५ होता है. । और तीर्थंकर के समुद्घात करते ऊपरक्त वीचके तीनों समय में तीर्थंकर नाम सहित २७ का, उदय स्थान होता है. और वो जिन नाम युक्त होने से—८० का, और ७६ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं ।और केवली समुद्घात करते औदारिक मिश्र योग वर्तते—२ औदारिक द्विक, ३ वज्रऋषभ नारच संघयण, ४ छे संस्थान में का १ संस्थान, ५ उपघात, और६ प्रत्येक यह ६ प्रकृत्ति उपरोक्त २० में मिलाने से २६ का उदय स्थान होता है. सो—दुसरे छ

है, और सातवे समय पर्यन्त ७९. का, और ७५ का, यह दो स्थान होते हैं. । और तिर्थंकर को इसी स्थान में जिन नाम सहित २७ के उदय में–८० का, और ७६ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं. ऊपरोक्त २६ में–१. पराघात, २ उश्वास, ३ दोनों में की १ खगति, यह ४ प्रक्राति मिलाने से ३० का, उदय औदारिक योग वर्तते केवली के अथवा इग्यारवे गुणस्थान में भी होता है. यहां–९३ का, ९२ का, ८९ का, ८८ का ८० का, ७९ का, ७६ का और ७५ का हय ८ सत्ता स्थानों मे से पहेले के ४ तो उपशम श्रेणि की अपेक्षा से और पीछेक ४ क्षीण कषाय के सयोगी केवली के, और तीर्थकर के होते हैं यहां आहारक चतुष्क की सत्ता सहित तीर्थकर के८०का, और अतीर्थकर के७९का आहारक चतुष्क छोडकर तीर्थकर के७६का और अतीर्थकरके७६ कायह दो सत्ता स्थान पाते हैं और३१ के यदय८०का और७६कायह दोसत्ता स्थान तीर्थकर केवलीके जानना क्योकि–सामान्य केवली केतो ३१ का उदय नही होता है. यन ३१. में से–तीर्थंकर के बचन जोग कारुंधन होने से २९ का यदय होवे वहां ८० का और ७६ का यह दो सत्ता स्थान होवे । और सामान्य केवली के औदारिक योग वर्तते ३७ का यदय और ७९ का, ७५ का, यह दो सत्ता स्थान । इन३० में से बचन जोगका निरुंधन करने से सामान्य केवली के २९ का उदय होता है, वह।–७९ और ७५ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं. और तीर्थंकर के बचन जोग का निरुंधन होने से ३० प्रकृति रहै, और ३० में से भी, श्वाशोश्वास का निरुंधन होनेसे २९ का उदय होता है. वहां–८० का और ७६ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं यों २९ के उदय में चार सत्ता स्थान पाते हैं. । और सामान्य केवली के बचन जोगका निरुंधन होनेसे २९ का उदय रहै, और उस में से श्वाशोश्वाश का उदय कमी कर ते २८ का उदय होता है उस में-७९ और ७५ का दो सत्ता स्थान पावे, और ९ के उदय में तिर्थंकर के अयोगी गुणस्थान में ८० का, ७६ का और अन्तिय समय में ९ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं, और सामान्य केवली के ८के उदय में-अयोगी केवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक, ७९ का और ७५ का अथाय अन्तिम समय ८ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं. ॥

यों नाम कर्म के सम्वेध के भाङ्गे ३० होते हैं.

चउदह गुणस्थान पर नाम कर्म के भांगे.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में—२३ का, २५ का, २६ का, २८ का, २९ का, ३० यह ६ वन्ध स्थान होते हैं. सो कहते हैं:-(१) अपर्यासा एकन्द्रिय प्रायोग्य २३ का वन्ध करते—बादर सूक्ष्म प्रत्येक और साधारण इन ४ पदसे ४ भाङ्गे होतेहैं. (२) पर्यासा एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ का वन्ध करते २० भांङ्गे होते हैं. (३) प-र्यासा एकन्द्रिय प्रायोग्य २६ का वन्ध करते १६ भाङ्गे, (४) देवगति प्रायोग्य २६ का, वन्ध करते ८ भाङ्गे, नरक गति प्रायोग्य २८ का वन्ध करते १ भाङ्गा यो ९ भाङ्गे २८ के वन्ध के होते हैं, । और पार्यासा वेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय प्रायोग्य २९ का वन्ध करते अलग २ आठ २ भाङ्गे होते हैं. पर्यासा तिर्यच पचेन्द्रिय प्रायोग्य २९ का वन्ध के ४६०८ भाङ्गे पर्यासा मनुष्य गति प्रायेग्य २९ का वन्ध करते ४६०८ भाङ्गे यों २९ के वन्ध के सब ९२४०भाङ्गे होते हैं. × । और पर्यासा तीनों विकेन्द्रिय प्रायोग्य ३० का वन्ध करते अलग २ आठ २ भाङ्गे, तिर्यच पचेन्द्रिय प्रा योग्य ३० का वंध करते ४६०८ भाङ्गे, यो ३० के वन्ध के सब ४६३२ भाङ्गे हो-ते हैं. और सब ६ ही वन्ध स्थान के मिलकर–१३९२६ हुवे ॥ मिथ्यात्व गुणस्था न में—२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७, का, २८ का, २९ का, ३० का और ३१ का, यों ९ उदय स्थान होते है. जिसके–सब ४१+११×३२×६०+३१×११९९+१७८१+२९१४×११७४=७७७३ भाङ्गे होते हैं. + ॥ मिथ्यात्व गुण-

---

× यह तीर्थंकर नाम सहित देवगति प्रायोग्य २९ प्रकृति के बन्ध के ८ भागे, और आहारक द्विक साहित ३० के वन्ध का १ भागा, तथा जिन नाम साहित मनुष्य गति प्रा-योग्य ३० के वन्ध के ८ भागे. यो सब १७ भागे का अभाव है. क्योंकि-यह बन्ध सम्य क्त्वी और साधु विन नहीं होता है.

+ पहिले सामान्य देश में-उदय स्थान के ११९१ भागे कहे, उस में से—केवली के ८, आहारक के ७, उद्योत सहित वैक्रिय मनुष्य के २९–३०–३१ यह ३, इनके उदय का एकेक भांगा, उद्योत साहित वैक्रिय साधु के तथा देवता के होता है. उस मे देवता के उत्तर वैक्रिय के भागे अलग २ नहीं गिने, और आहारक साधु छठे सातवे गुणस्थान मे होते है परन्तु मिथ्यात्व में नहीं होते है. इसलिये १८ उदय के भांहे छोडकर बाक़ीके– ७७७३ भागे सर्व जीवोंको अपेक्षा पाते हैं.

स्थान में—६ सत्ता स्थान होते हैं:-जिसमें से-९२ की सत्ता तो सबजीवों के होती है. और किसी वेदक सम्यक दृष्टि जीवने प्रथम नर्कायुका वन्ध किया हो वो आयुके अन्तमें सम्यक्त्व का वमन कर नर्क में जाता है. उसके अन्तर मुहुर्त पर्यन्त ८९ की सत्ता पाती है. फिर अन्तर मूहुर्त बाद वो सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है. * । ८८ का सत्ता स्थाना भी चारों गति के मिथ्यात्वी में पाता है. । ८६ का सत्ता स्थान-एकेन्द्रिय में देवगति प्रायोग्य तथा नर्कगति प्रायोग्य उवेलने से पाता है, ८० का सत्ता स्थान तो-९३ वे में से-१ तीर्थंकर नाम, ५ आहारक चतुष्क, ११ वैक्रिय षट्क, १३ नरक द्विक, इन १३ प्रकृत्तियों को उवेलने से-एकेन्द्रिय में पाता है. फिर एकेन्द्रिय में से निकल बिकेन्द्रिय तथा तिर्यंच पचेन्द्रिय मनुष्य में अवतर पर्याप्त भये बाद भी अन्तर मुहुर्त तक उसमें ८० का स्थान पाता है. अन्तर मुहूर्त बीते बाद अवश्य वैक्रियादि का बन्ध होता है. और उन ८० में से-मनुष्य गति और मनुष्यानुपूर्वी उवेले वाद तेउ वायु में ७८ की सत्ता पाती है, । और तेउ वायु में से आकर बिकेन्द्रिय होवे वहां ७८ की सत्ता अन्तर मुहूर्त पर्यन्त पाती है, वो पर्याप्त हुवे बाद अवश्य मनुष्य द्विक का, बन्ध करे तब ७८ की सत्ता नहीं पावे. । यों सामान्य प्रकारे १२ सत्ता स्थान मिथ्यात्व गुणस्थान में पाते हैं. ॥ अब इनका सम्बेध कहते हैं -मिथ्यात्वी के अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३ का वन्ध करते सब ९ उदय स्थान का संभव होता हैं, परन्तु उसमें २५ के उदय में देवता के भाङ्गे ८, नार्क का भाङ्गा १, यों ९, और २७ उदय देवता के ८, नर्कका १, और २८के उदय देवता के१६ नर्क का. १ इतनेही २९ के उदय में ३० के उदय देवता के ८, यों सब ६० भाङ्गे २३ के बन्ध में नहीं पाते हैं, क्योंकि-नर्क तो एकेन्द्रिय में जातेही नही है. अपर्याप्ता देवाता भी और एकेन्द्रिय में जाते नही है, इसलिये इनके ६० भाङ्गे छोडकर बाकी के ७७१३ उदय के भाङ्गे २३ के बन्ध में पाते है. यहां ९२ का ८८का, ८६ का, ८० का, और ७८ का, यह ५ सत्ता स्थान तो-२१ का, २४ का, और २६ का, यह ३ उदय स्थान प्रत्यय होते हैं. उसमे २५ के उदय में जो तेउ वायु उद-

* यहां आहारक चतुष्क और जिन नाम कर्म इन दोनों की एकही वक्त में नरकमें सत्ता नहीं होती है इसलिये ९३ का सत्ता स्थान नर्क में पाता नहीं हे

य सत्ता भाङ्गे है. तहां ७८ की सत्ता, परन्तु दूसरे भाङ्गे नही होते हैं. और दुसरे-२७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, इन ५ उदय में-७८ बिना बाकी के चार २ सत्ता स्थान होते है. यों सब २३ के बन्ध में ४० सत्ता स्थान होते है परन्तु इतना विशेष-जो पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ के बन्ध में अपने उदय में देवता के भी भाङ्गे पाते हैं, इसलिये ७७६८ भाङ्गे इन दोनों बन्ध स्थान में पाते हैं.फक्त नर्क के ५ उदय के भाङ्गे नही पाते हैं. और देवता जो एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ प्रकृत्ति का, बन्ध करे, क्योंकि-सूक्ष्म साधारण और अपर्याप्ता में देवता उपजते नही हैं. । और २८ के बन्ध में भी मिथ्यात्वी के ३० का और ३१ का यह दो उदय स्थान होते हैं, उसमें ३० का तो पचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य के होते हैं. और ३१ का बन्ध पचेन्द्रिय तिर्यच के होवे. ३० के उदय पचेन्द्रिय तिर्यच अथवा मनुष्य देवगति प्रायोग्य तथा नरक गति प्रायोग्य २८ का बन्ध होता है. बाकी विक्लेन्द्रिय के ३० भाङ्गे उदय के नही होते है. इन दोनों उदय के मिलकर ४०४८ भाङ्गे २८ के बन्ध में होते हैं. उसमें-३० के उदय में-९२ का, ८९ का, ८८ का, और ८६ का यह ४ सत्ता होती है. और ३१ के उदय ८९ की सत्ता नही होती है. तीर्थंकर नाम सहित ८९ की सत्ता होती है. सो तिर्यंच में नहीं पाती है. इसलिये ३ ही सत्ता होती है. और ३० उदय में भी जो वेदक सम्यक्त्व का वमन कर जिन नाम सहित मिथ्यात्व में गया उसके नर्क प्रायोग्य २८ का बन्ध करते भी ८९ की सत्ता होतीहै यों २८ के बन्ध में ७ सत्ता स्थान होते है. । देवगति प्रायोग्य विना दूसरी मनुष्य तिर्यंच गति प्रायोग्य २९ के बन्ध में २० का, ९ का, और ८ का, इन ३ उदय विना सब उदय स्थान पाते हैं. और ९२ का, ८९ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का, यह ६ सता स्थान होते है. यहां २१ के उदय ६ सता स्थान होते है. सो कहते है. जिन नाम का बन्ध कर फिर सम्यक्त्व का वमन कर जो नर्क में जावे उसके बीचमें २१ का उदय होता है. तहां ८९ की सता होती है. और ९२ का तथा ८८ का, यह दोनों सता स्थान चारों गति के जीवों के विग्रह गति में २१ के उदय में होते हैं. और ८६ तथा ८० यह दोनों सता देवता नर्क बिना दूसरे जीवों के होती हैं. और ७८ की सता देव नर्क और मनुष्य विना दूसरे जीवों के होती है, यों २१ के उदय में ६ सता स्थान पाते हैं. । और २४ के उदय में एक ८९ विना बाकीके ५ सत्ता स्थान एकेन्द्रिय के होते हैं. दूसरे जीवों के यह उदय नही हैं. और २५ के

उदय में ६ सत्ता होते है. २६ के के उदय में ८९ की सत्ता बिना बाकी के ५ सत्ता स्थान होते हैं. क्योंकि—८९ की नारकी के होती है. उनके २६ का उदय स्थान हेही नही. और २७ के उदय ७८ विना ५ सत्ता स्थान होते हैं, सो २१ के उदय की तरह कहना. क्योंकि—तेउ वायु में २७ का उदय नही है. बाकी के एकेन्द्रिय दिक के भी पर्याप्ता अवस्था में यह उदय होता है. वो मनुष्य द्विक, का बन्ध अवश्य करता है. इसलिये ७८ की सत्ता यहां उदय में नहीं होती है. और २८ के उदय में ५ सत्ता स्थान होते हैं. उसमें ८६ की सत्ता बिकेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय मनूष्य की अपेक्षा से लेना- और दूसरे तरह स्थान पाहिले की तरह ही कहना. और २९ के उदय में भी यही ५ सत्ता पहिले के तरह ही कहना. । और ३० के उदयमें ८९ विना बाकीके वोही चार सत्ता बिकेन्द्रियद तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य की अपेक्षासे होती है. ८९ की सत्ता तो जिन नाम का बन्ध कर सम्यक्त्व का वमन कर नर्कमें जावे ऐसे मिथ्यात्वी नारकी के होती है. वहां ३० का उदय स्थान नही होता है. और वोही ४ सता स्थान ३१ के उदय में भी मनुष्य विना ३१ के उदय में भी मनुष्य विना दूसरे जीवों के होती है. क्योंकि—३१ का उदय सामान्य मनुष्य के नही है केवली के होता है. यों सब २९ के बंध में ४९ सता स्थान होते हैं. ॥ देवगति प्रायोग्य ३० के बन्ध विना बिकेन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय प्रायोग्य ३० के बन्ध में सामान्य से—२० का, ८ का, और ९ का, यह ३ उदय स्थान विना बाकी के—९ उदय गुणस्थान होवे, वह ८९ विना ५ सत्ता स्थान होवे, क्योंकि—तिर्यच गति मे जिननाम की सता नही पाती है. तहां २१का, २४ का, २५का, और २६का, इन चारों उदय में पांच २ सता स्थान होते हैं. और दुसरे पांच उदय में ७८ विना चार २ सत्ता स्थान होते हैं. यों ९ उदय के मिल ४० सत्ता स्थान होते हैं. यहां ८९ का सत्ता स्थान तो देवगति प्रायोग्य, अहारक द्विक सहित ३० के बंध में और जिन नाम सहित मनुष्य प्रायोग्य ३० के बंध में होता है. यह दोनों मिथ्यात्वी बांध ते नहीं है, इसलिये मिथ्यात्व गुणस्थान में ६ बंध स्थान के नव उदय स्थान मिलकर २१२ सत्ता स्थान होते हैं.

२ सास्वादन गुणस्थान में—२८ का, २९ का और ३० का यह ३ बंधस्थान होते हैं सो कहते हैं;—देवगति प्रायोग्य २८ के ८ भाङ्गे सास्वदन में बंधते हैं. उस के बंधने वाले पचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मानुष्य होते हैं. और नर्क प्रायोग्य २८ का बंध

तो मिथ्यात्व प्रत्ययि है इसलिये सस्वादन में नहीं है. तिर्यंच पचेंद्रिय प्रायोग्य और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति बंध के भाङ्गे ६४०० का बंध-एकेंद्रिय, विक्लेंद्रिय, तिर्यंच पचेंद्रिय मनुष्य देवता नारकीके इनो के सास्वदन गुणस्थान मे होता है. यहां-हुंडक संस्थान और छेवटा संघयण का बंध नहीं होनेसे पांच संघयण और पांच संस्थान तथा सात युगलों के विकल्पों कर ३२०० भाङ्गे प्रत्येक मनुष्य तिर्यंचच गति प्रायोग्य २९ के बंध में होते हैं. दोनोंके ६४०० भाङ्गे होते हैं. और पहिला कह्या जो एकेंद्रियान्दिक के सास्वादन में उद्योत सहित ३० का बंध तिर्यंच पचेंद्रिय प्रायोग्यही करते हैं वहां भी ३२०० भाङ्गे होते है. इन का विस्तार सहित वरणन पहिले ही करदिया है, सो जानना. यों सब बंध के भाङ्गे ९६०८ होते हैं. ॥ सास्वादन गुणस्थान में २१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ७ उदय स्थान होते हैं. तहां नर्क विना तीनों गति के जीवोंकी अपेक्षासे-२१का उदय दो गति की के बीच में रस्ते चलते जीवोंके होता है. वहां उदय के भाङ्गे ३२ होते हैं, यद्यपि-२१ के उदय में सब ४२ भाङ्गे कहे थे, परंतु उस में १ अपर्याप्ता के, एक सूक्ष्म पर्याप्ता का, एक नरक का, और १ केवली का यों १० भाङ्गे इस गुणस्थान में नहीं पाते हैं. । और २४ का उदय तो एकेंद्रिय के उत्पन्न होते ही होता है. यहां भी बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता के यशः अपयशः के विकल्प से दो भाङ्गे सास्वादन गुणस्थान में पाते हैं. बाकी के सूक्ष्म साधारण के भाङ्गे नहीं पाते हैं. और वैक्रिय वाला भाङ्गा तो वायु काय केही होता है. सो भी सास्वादन में नही पाता है. । और २५ का उदय तो देवगति में उत्पन्न होतही होता है. तथा किसी के नहीं भी होता है. वहां देवता के ८ भाङ्गे—सुभग दुभग, आदेय अनादेय, यशः अयशः से उपजते हैं. । और २६ का उदय विक्लेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय मनुष्य में उत्पन्न होतेही पाता है. वहां अपर्याप्ता का एकेक भाङ्गा छोडकर विक्लेन्द्रिय पर्याप्ता के ६ पचेन्द्रिय तिर्यंच के २८७, मनुष्यके भी २८८, यों ५८२ भाङ्गे २६ के उदय में पातेहैं । और २७-२८ का, उदय तो सास्वादन में होता ही नही है. क्योंकि-यह दोनों स्थान उत्पन्न हुवे. से-अन्तर मुहूर्त बाद पाते है. और सास्वदन तो ६ आवलिका मा ठेरी मात्रही होता है. इसलिये यह भी पावे. और २९ का उदय देवता नारकी के पर्याप्ता अवस्था में प्रथम प्राप्त सम्यक्त्व से पडते हुवे होता है, वहां देवता के ८, और नर्क का १, यों ९ भांगे पाते हैं. । और ३० का उदय तिर्यंच पचेन्द्रिय मनुष्य के

सर्व स्थान पर्याप्ति पूरी किये बाद औपशमिक सम्यत्क्व से पडते हुवे होता है. तथा उत्तर वैक्रिय करते हुवे देवता के उद्योत के वक्त में होता हैं. वहां मनुष्य और तिर्यंच के अलग अलग ११५२ भाङ्गे होते हैं, और देवता के ८ भाङ्ग होते हैं, यों सर्व मिल २३१२ भांगे उदय के होते है, । और ३१ का, उदय पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्ता के प्रथम सम्यक्त्व का वमन करते पाता है, वाहां भाङ्गे ११५२ होते है. यों सब ७ उदय के ४०९७ भांगे सास्वादन गुणस्थान में पाते हैं. सास्वादन में ९२ का और ९८ यह दो सत्ता स्थान होते है. और ८८ की सत्ता तो चारों गति के सास्वदनी के पाती है. ॥ अब सम्बेध कहते हैं:—२८ के बन्ध में सास्वादन में ३० का और ३१ का, यह दो उदय स्थान होते हैं. क्योंकि—देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृत्ति का, बंध अपर्याप्ता के होता है, इसलिये दूसरे उदय स्थानक इसके नहीं होते हैं. वहां मनुष्य बन्धक की अपेक्षा से ३० का उदय और ९२ की ८८ की सत्ता स्थान होते हैं. और तिर्यच के उपशम श्रेणि होती नही हैं. इसलिये उपशम श्रेणि के पडने के अभाव से—९२ की सत्ता नहीं पाती है. फक्त ८८ की सत्ताही पाती है. और तिर्यच मनुष्य के प्रायोग्य २९ का बन्ध करते सास्वादनी के ७ उदय स्थान होते हैं. वहां अपने २ उदय स्थानों में एकेक ८८ का सता स्थान पाताहै. और मनुष्य के ३० के उदय में वर्तते—९२ का और ८८ का, यह दो सत्ता स्थान पाते हैं. बाकी के सब के फक्त ८८काही सत्ता स्थान पाता है. ऐसे ही ३० के बन्ध का भी सम्बेध कहना. यों सब मिलकर सास्वादन गुणस्थान में १८ सत्ता स्थान पाते हैं.

३ मिश्र गुणस्थान में—२८ का और २९ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं. वहां मिश्र दृष्टि तिर्यच मनुष्य के देवगति प्रायोग्य २८ का बन्ध होता है. वहां भाङ्गे ८ पाते हैं और मनुष्य प्रायोग्य २९ का बन्ध मिथ्यात्व दृष्टि देवता नर्क के होवे वहां स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, यशः अयशः के विकल्प से भाङ्गे ८ होते हैं. दुसरे जो छे स्थान कादि के विकल्प से भाङ्गे. उत्पन्न होवे. वो यहां नहीं पाते हैं. (यों आगे के गुणस्थान में भी जानना) सब वन्ध के भाङ्गे १६ होते हैं. ॥ मिश्र गुणस्थान में २९ का, ३० का, और ३१ का यह ३ उदय स्थान पाते हैं. तहां २९ के में देवता के भाङ्गे ८, और नर्क का भांग १, यों ९ भाङ्गे पाते हैं. और ३० के उदय-तिर्यंच पाचेंद्रय के १७२८ और मनुष्य के ११५२ यों सब २८८० भाङ्गे ३० के उदय में होते हैं । और ३१ के उदय पचेन्द्रिय तिर्यंच के होता है वहां ११५१ भाङ्गे पाते हैं,

यों सब सर्व मिश्र गुणस्थान में उदय के ४०४१. भाङ्गे पाते हैं। यहां सत्ता स्थान ९२ का और ८८ का यह दोही होते हैं॥ अब सम्वेध कहते हैं–२८ के बन्ध में मिश्र दृष्टि के ३० का और ३१ का यह दो उदय स्थान है, उस में अलग अलग ९२ का और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं और २९ के बन्ध के एक २९ काही उदय स्थान होता है. वहां भी वोही दो सत्ता स्थान होता हैं.

४ अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान में–२८ का, २९ का, और ३० का यह ३ वन्ध स्थान होते हैं, वहां तिर्यंच मनुष्य के चौथे गुणस्थान में देव प्रायोग्य का वन्ध करते २८ का वन्ध होता है, वहां भाङ्गे ८ उपजते हैं, और मनुष्य के देवगति प्रायोग्य जिन नाम सहित वन्ध करे तो, २९ का बंध होता है वहां भी ८ भांगे, और देवता तथा नर्क के चौथे गुणस्थान में मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का बंध करते भाङ्गे ८ होते हैं. देवता नारकी के सम्यक्त्व प्रत्यय ३० जिन नाम सहित मनुष्य प्रायोग्य ३० का बंध करते भी भांगे ८ होते हैं. यों बंध के सब ३२ भांगे होते हैं. ÷॥ चौथे अविरति सम्यक्त्व दृष्टि गुणस्थान में–२१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ८ उदय स्थान पाते है. इस में २१ के उदय में देवता के भाग ८, मनुष्य के ८, तिर्यंच पचेंद्रिय के ८, × नर्क का १, यों २५ भांगे २१ के उदय के होते हैं. (टीप हैं क्षायिक सम्यक दृष्टि पूर्व आयु वन्ध वाला. चारों में उपजता है और पुरा पर्यासा होता है. इस में अपेक्षा से - २१ उदय ग्रहण करना. २५ का तथा २७ का उदय देवता के नर्क के और वैक्रिय-तिर्यंच मनुष्य के होता है. इस में नर्क के जीवों तो क्षायिक तथा वेदक सम्यक दृष्टि जानना. और देवती तीनों सम्यक्त्वी होते हैं। और २६ का उदय पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुश्य वेदक तथा क्षायिक सम्यक दृष्टि के होता है. =। और २८ तथा २९ का

+ अविराति सम्यक दृष्टि अपर्यासा मे उपजना नहि है अर्थात् पुरापर्माण जरूराहि होताहै इस अपर्यासा का एकेक भाङ्गा कमी हानेसे बाकीके ८ ही पातेहै

× उपसम, क्षयोंपशम और क्षायिक यह तीनो समकत्व पातीहै

= ऊपशाम सम्मकदृष्टा तिर्यंच मे और मनुश्य में ऊपजते नहीहै और ऊसेमभी वेदक सम्मक सृष्टिजो मोहनीकी २८ प्रकृति की सता वालेहि होताहै.

यह दोनों उदय नर्क तिर्यंच और देव के होतेहैं। ३० का उदय नर्क विना तीनों गतिमें होताहै और ३१ का उदय पचेंद्रिय तिर्यंचके होताहै. यहां सर्व स्थान अपने अपने उदयके भांग ग्रहण करना॥ चौथे अविरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थानमें चार सत्ता स्थान होतेहैं:-अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान मे आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ का बन्ध कर पड़ता हुवा मरकर देवता होवे, उस अपेक्षा से ९३ की सत्ता जानना और आहारक चतुष्क का बन्ध कर फिर परिणामों प्रवर्ति से मिथ्यात्वीहो चारों गति में से किसी गति में उत्पन्न होकर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करे, उसके ९२की सत्ता पाती है. यह सत्ता देवता और मनुष्य के मिथ्यात्व में गये विना भी पाती है, इसलिये यहां ग्रहण करी है. और ८९ की सत्ता तो-देवता नारकी और मनुष्य अविरति सम्यक दृष्टि के जिन नामका वन्ध है इसलिये पाती है. और ८८ की सत्ता चारों गति के सम्यक दृष्टि जीवों के पाती है. ॥ अब सत्ता का सम्वेध कहते हैं:- अविरति सम्यक दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य देव प्रायोग्य २८ के बन्ध में ८ उदय स्थान होते हैं, तहां २५ का और २७ का उदय वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य के होता है, दुसरे ६ स्थान सामान्य से पाते हैं, उन एकेक उदय में-९२ का और ८८ का यह सत्ता स्थानक पाते हैं. यों आठों उदय के १६ सत्ता स्थान होते हैं। और २९ का बन्ध एक देवगति प्रायोग्य, दुसरा मनुष्य गति प्रायोंग्य होताहै, वहां देवगति प्रायोग्य, जिन नाम सहित २९का बन्ध मनुष्यके होताहै, परन्तु तिर्यंचके नहीं होताहै, उनके ३१का उदय विना सात ही उदय स्थान होते हैं, क्योंकि-मनुष्य के ३१ का उदय नहीं है. उन एकेक उदय में ९३ और ८९ यह दो दो सत्ता स्थान होते हैं, और मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का बन्ध देवता नर्क के होता है वहां-२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, यह ५ उदय स्थान होते हैं, एकेक उदय में-९२ का और ८८ का, यह दो दो सत्ता स्थान होते हैं. और मनुश्य गति प्रायोग्य जिन नाम सहित ३० का बन्ध भी देवता नारकी के होता है वहां-२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ६ उदय स्थान होते हैं. उन में अलग अलग ९३ का और ८९ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं, क्योंकि-नरक में जिन नामकी सत्ता होते आहारक की सत्ता नही होती है, इसलिये ९३ की सता होती है, और ३१ के उदय में दो सता होती है. यों सब मिल ५४ सता स्थान होते हैं.

५ पांचवा देश विरति गुणस्थान में-२८ का और २९ का यह दो बन्धस्था

न होते हैं. वहां मनुष्य तिर्यंच देश विरति देवगति प्रायोग्य २८ का वन्ध करे उसके ८ भाङ्गे, और येही जिन नाम सहित २९ का वन्ध मनुष्य देश विरति करे (परन्तु तिर्यंच के नही होवे) जिसके ८ भाङ्गे, सब १६ भाङ्गे, । देश विरति गुणस्थान में सामान्य–२५ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ६ उदय स्थान होते हैं, वहां २८ के वन्ध में पहिले के उदय तो वैक्रिय तिर्यंच मनुष्य के होवे इनका एकेक भाङ्गा करने से चार भाङ्गे होवे, और २८ का, २९ का, यह दोनों उदय सामान्य तिर्यंच मनूष्य के होवे, तथा वैक्रिय के भी होवे, वहां उदय के भङ्गे ६ होते हैं. और ३० का उदय तिर्यंच मनुष्य के होवे, वहां ६ संघयण ६, संस्था के विकल्प से ३६ भाङ्गे होवे. इने सुस्वर दुस्वर से दुगुने करने से ७२ होवे. इने शुभा शुभ गति से दुगुने करने से १४४ होवे, इनमें अलग २ एकेकका, उदय होताहै. यहां दौर्भाग्य अनादेय और अयशः कीर्तिका उदय यहां गुण प्रत्यय करके नही होता है, और वैक्रिय तिर्यंच के उदय में भाङ्गा—१, यों सब मिल २८९ भाङ्गे होते हैं. । और ३१ का, उदय तिर्यंच के होता है, वहां भाङ्गे १४४ होते हैं. और सबमिल ४४३ भांगे २८ के वन्ध में पाते हैं. ॥ और २९ के वन्ध में मनुष्य के–२५ का २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ५ उदय स्थान होते हैं, इसमें पहिले के चार उदय स्थान तो वैक्रिय के हैं., उसका भांगा एकेक. और ३० के उदय में भांगे १४४, यों मिलकर १४८ भांगे होते हैं. और सब उदय स्थानके ५९१ भागे होते. ॥ देश विरति गुणस्थान में ९३ का, ९२ का, ८९ का, और ८८ का, यह ४सत्ता स्थान होते हैं. इसमेंसे जो अप्रमत अपूर्व करण वाले-तीर्थंकर नाम तथा आहारक का वन्धन कर पडते हैं. उन परिणामो से देश विरति होवे उनके ९३ की सत्ता होती है. और वाकी की सब चौथे अविरति गुणस्थान की तरह कहना. ॥ अब सम्वेध कहते हैः—देश विरति मनुष्य के २८ के वन्ध में–२५ का, २७ का २८का २९ का, और ३० का, यह ५ उदय स्थान होते हैं. तहां अलग अलग ९२ का, और ८८ का, यह दो दो सता स्थान होवे. तैसे तिर्यंच के भी–३१ सहित ६ उदय में दो दो सत्तास्थान होवे, और २९ का वन्ध देश विरति मनुष्य केही होता है. वहां २५ और ३० वाले उदय स्थान पहिले कहे सोही पांचों उदय स्थान कहना. और वहां ९३ का, तथा ८९ का, यह दोनों सता स्थान होते हैं. देश विरति में सब मिल २२ सत्ता स्थान होते हैं.

६ प्रमत संयति गुणस्थान का, बन्धादि सम्बेध कहते हैं:-प्रमत साधु के २८ का, और २९ का, दोनों बन्ध स्थान देश विरति की तरह कहना. यहां अलग२ बन्ध में मनुष्य के आठ२भांगे मिला १६भांगे होते हैं, । और २५का,२७का२८ का, २९ का, और ३० का, यह पांच २ उदय स्थान होते है. इसमें के पहिले के चारों उदय तो आहारक और वैक्रिय करने वाले साधु की अपेक्षा से लेना, वहां २५ के और २७ के उदय में दो दो भांगे वैक्रिय करने वाले साधु की अपेक्षा से लेना, वहां -२५ के और २७ के उदय में दो दो भांगे. और २८ तथा २९ के उदय में चार २ भांगे, ३० के उदय में सहज मनुष्य के होवै, वहां दो भागे आहारक और वैक्रिय के यों, १४४ सहज के मिल १४६ सर्व मिल एकेक बन्ध में १५८ भांगे करते ३१६ उदय के भांगे होते है वहां ९३का, ९२ का, ८९ का, और ८८ का. यह ४ सत्ता स्थान पाते हैं. ॥ अब सम्बेध कहते हैः-२८ के बन्ध में ५ के उदय ९२ का, और ८८ का यह दो सत्ता होती है, इसमें आराहक के९२की सता होती है, और जिन नाम की सत्ता होवे तब २८ का बन्ध नहीं होता है, इसलिये ९३ का और ८९ का यह दो सत्ता २९ के बन्ध में पांचो उदय स्थानक में अलग २ होती है, इसलिये २९ का, बन्ध जिन नाम बान्ध तेही होता हैं, यों सब मिलकर२०सत्ता स्थान छटे प्रमत संयति गुणस्थान में पाते हैं,

७ अप्रमत संयति गुणस्थान में-२८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह चार बन्ध स्थान होते हैं. इसमें के पहिले दोनों स्थान तो छट्टे गुणस्थान की तरह ही कहना. और आहारक द्विक सहित बन्ध करते अनुक्र में-३० का और ३१ का बन्ध होता हैं. इन चारों बन्ध स्थानों में अलग २ एकेक भाङ्गा होने से चर भाङ्गे होते है. क्योंकि-अप्रमत के-अस्थिर अशुभ अयशः का बन्धनहीं होता है. और इन एकेक बन्ध स्थान में-२९ का, और ३० का, यह दो उदय स्थान होते हैं, इसमें जो प्रमत पणे वैक्रिय तथा आहारक का आरंभ कर अप्रमत में आते हैं, उनके उद्योत का उदय होने से-२९ का उदय होता है, तथा ३० का उदय सहज होता है. उनअलग २ उदय में एक भाङ्गा वैक्रिय का और एक आहारक का यों दोनों उदय भेंदो भांगे और सहज शरीर से अप्रमत के ३० के उदय मे पहिले देश विरति के स्थान १४६ भांगे कहे सोही होते हैं. यह सब मिलकर एकेक बन्ध में उदय के १४८ भागे होते हैं. चारों बन्ध के मिल ५९२ भांगे उदय के होते हैं. वहां २८ के बन्ध में

दोनो उदय में अलग अलग २८ की सत्ता होती है. और२९के वन्ध के दोनों उदय में अलग अलग ९२ की सता होती है. और ३१ के वन्ध में दोनों उदय में अलग अलग ९३ की सत्ता होती है. = यों सव ८ सत्ता पाती है.

८ अपूर्व करण गुणस्थान में-२८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, और १ का, यह पांच वन्ध स्थान होते हैं. इसमें के चारो तो अप्रमत की तरह ही कहना. और १ यशः कीर्ति का वन्ध सो सातवे भाग मे देवगति प्रायोग्य बन्ध कर विच्छेद करत हैं, वहां अलग २ एकेक भाङ्गा होता है. सव मिल वन्ध के ५ भाङ्गे होते हैं. इन प्रत्येक वन्ध स्थानो में ३१ काही उदय स्थान होता है. यहां ६ संघयण से ६ संस्थान के विकल्प कर ६ भांगे होते हैं. इने शुभा शुभ खगति से गिनने से-१२ भांगे होते हैं. इने सुस्वर दुस्वर से गिनने से २४ भांगे हाते हैं. + सव पांचों उदय में ३६० भांगे होते है. इममें पहिले के चारों वन्ध स्थान में ३० के उदय में अनुक्रम से ८८ का, ८९ का, ९२ का, और ९३ का, यह एकेक सत्ता स्थान होता है. और१ के वन्ध में ३० के उदय मे यह चारो मत्ता स्थान पाते है. सव ८ स्थान. ९-१० अनिवृत्ति वादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-१ यशः कीर्ती का वन्ध और ३० का, उदय इसमें क्षपक के भाङ्गे २४ और औसशमिक के तीनों संघयणों के विकल्प से ७२ भांगे उदय के होते हैं. और ९३ का, ९२ का, ८९ का, ८८ का, यह चार सत्ता स्थान पाते हैं.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान में-वन्ध के अभाव से ३० का १ ही उदय स्थान होता हैं. यहां भांगे ७२ होते हैं. और ९३ का ९२ की, ८९ का, और ८८ का, यह चार सत्ता स्थान पाते हैं.

१२ क्षीणमोह गुणस्थान में-एक ३० प्रकृत्ति का उदय स्थान होता है, यहां भी तीर्थंकर नाम सहित के स्थानादिक सव प्रशस्त होते हैं. इसलिये ८० का, सत्ता

+ यहां तीर्थंकर नाम तथा आहारक निश्चय से बान्धते है उनके एकेक की ही सत्ता होती है.

+ कितनेक आचार्य पहिलेके ८ संघयण में उपशम श्रेणि का अभाव मानते हैं उनके मतसे उदय के ७२ भागे होते हैं.

और ७६ का, सत्ता स्थान तीर्थंकर के और ७९ का, और ७५ का, सत्ता स्थान अ तीर्थंकर होते हैं, यों ४ सत्ता स्थान इस गुणस्थान में पाते हैं.

१३ सयोगी केवली के—२० का, २१ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ८ उदय स्थान होते हैं. जिसके ६०० भांगे पहिले सामान्या देश मुजबही कहना. यहां सत्ता स्थान ४ क्षीणमोह गुणस्थान में कहे सोही पाते हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में—९ का, और ८ का, उदय स्थान होते हैं, जिसके २ भांगे, और ८० का, ७९ का, ७६ का, ७५ का, ९ का, और ८ का, यह तीन सत्ता स्थान पाते है. इसमें तीर्थंकर के ९ का, उदय और ८० का, ७६का और ९ का, सत्ता स्थान, और सामान्य केवली के ८ का, उदय में—७९ का, ७५ का और ८ की सत्ता पाती है.

गोत्र कर्म के भाङ्गे.

गोत्र कर्म की दो प्रकृत्तियों में से सामान्या प्रकार से एक वक्त में एक का, बन्ध और एककाही उदय होता है. क्योंकि—दोनों प्रकृत्ति बन्ध और उदय विरोध कीहै. और सत्ता एककी तथा दोनोंकी पाती है. जैसे—जिस वक्त तेऊ काय और वा यु काय में रहता हुवा जीव ऊंच गोत्र को उवेल कर सत्ता से निवारे, तब तेउ वायु में अथवा वहां से मरकर दूसरे जन्म में जहां तक ऊंच गौत्र का बन्ध नहीं करे, वहां तक एक नीच गोत्र की सता जानना. और अयोगी केवली गुणस्थान के चरम सम य एक ऊंच गोत्र की सत्ता जानना. यों बन्ध का और उदय का स्थान एकेक औ र सता के स्थान दो होते हैं. अब इसके भांगे कहते हैं:—१ नीच गोत्र का बन्ध, नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सता यह प्रथम भांगा तेउ वायु में उंच गों त्रके उवेले बाद पाताहै.२नीच गोत्र का बन्ध २नीच काहीं उदय और नीच तथा उंच दोनों की सत्ता ३ नीच का बन्ध उंच का उदय और उंच नीच दोनों की सता, य- है दूसरा तीसरा भांगा—मिथ्यात्व और सेस्वादन इन दोनों गुणस्थान में पाताहैं क्यों कि—आगे के गुणस्थान में नीच गोत्र का बन्ध नहीं है. ४ उंच गोत्र का बन्ध नीच का उदय और दोनो की सत्ता यह भांग मिथ्यात्व से लगा देशविरति गुणस्थान तक पाता है. क्योंकि—आगे के गुणस्थान में नीच गोत्र का उदय नहीं है. ५ उंच का ब

न्ध उंच का उदय ओर दोनों की सत्ता, यह भांगा दशवे गुणस्थान तक पाता है. ६ उंच गोत्र का उदय और उंच नीच दोनों की सत्ता, यह भांगा इग्यारवे गुणस्थानसे लगा चउदवे गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त पाता है. ७ उंच गात्र का, उदय, और उंच की ही सता यह भांगा अयोगी केवली गुणस्थानके अन्तिम समय पर्यन्त पाता है. यह ७ भांगे गौत्र कर्म होते हैं.

अन्तराय कर्म के भांगे.

अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृत्ति ध्रुव बंध की है अर्थात्-एक ही साथा पांचों का ही बन्ध होता है, और उदय भी ध्रुव होता है, और सत्ता भी ध्रुव ही पाती है इसलिये-१ अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृति का वन्ध, पाचों का उदय, और पांचों की सत्ता, यह एक ही भांगा होता है, सो दशवे गुणस्थान पर्यत पाता है, और आगे बंध के अभाव से-२ पांचों प्रकृति का उदय और पांचों की सत्ता यह दुसरा भांगा इग्यारवे बारवे गुणस्थान तक पाता है.

बन्धिके भागों का खुलासा.

१ बंधि बंधिन्ति बंधोति सो-गत कालेंमे कर्म बांधे, वर्तमानमें कर्म बंधताहै. और आवते काल में बन्धन करेगा सर्व संसारी जीवों, २ बान्धि, बन्धन्ति नवन्धति, सो गत काल में बंधे वर्तमान, में बंधता है, भविष्य में नहीं बंधेगा-चरम शरीरी. ३ बंधि, नवंध, बन्धिन्ति, गत काल में बंधे, वर्तमान में नहीं बंधे, आगे को बंधेगा. स्वर्ग प्राप्त होने वाले मुनि. और ४ बंधि, नवंधंति, नवधति, अतित काल में बंध किया, प्रत्युपन्न में बंध नहीं करते हैं. और अनागत में भी बन्ध नहीं करेंगे. सो केवल ज्ञानी.

इर्यावही के भांगे का खूलासा.

१ बंधि, बंधंति, बंधेति सो-गत कालमें उपशम श्रेणि कर इग्यारवा गुणस्थान स्पर्श्य इर्यावही का बन्ध कर पडवाइ हुवे, और वर्तमान काल में (दुसरे वक्त] फिर उपशम श्रेणी चड इग्यारवे गुणस्थान जा इर्यावहीका बन्ध कररह हैं. वो फिर वहां से फिर पडेंगे, और फिर तीसरी वक्त उपशम श्रेणी से या क्षपक श्रेणी से चड कर इर्यावही का बन्ध करेंगे. २ बांधि, बंधति, नवंधेति, सो-गत काल में उपशम श्रेणी चड

इर्यावही का बंधकर पडवाइ हुवे, वर्तमान में तेरवे गुणस्थानमें हैं सो इर्यावहीका बन्ध कर रहे हैं. आवते काल में चउद वे गुणस्थान में जायंगे तब फिर इर्यावही बंध नहीं होगा. ३ बंधि, नबंधे, बंधती सो-गत काल में श्रेणी कर पडे, वर्तमान में श्रेणी नहीं करते हैं, परन्तु आगामिक काल में श्राणी कर चडेंगे इर्यावही का बंध करेंगे. ४ बंधि नबंधे, नबंधेति, सो गये काल में तेरवे गुणस्थान में इर्यावही का बन्ध किया, वर्तमान में चउदवे गुणस्थान में है सो बंध नहीं करते हैं. आगमिक मोक्ष जावेंगे सो भी बंध नहीं करेंगे.५नबन्धि, बंधती बंधेति सो-गये काल में कभी श्रेणी चडा नहीं, वर्तमानमें श्रेणी चढ बन्धन कररहे हैं. आगमिक तेरवे गुणस्थान को प्राप्त हो बंध करेंगे. ६ न बंधि, बंधे, नबंधेति सो—गये कालमें श्रेणी चढे नहीं, वर्तमानमें चडताहै. परन्तु आगामि काल में श्रेणी चडेगा नहीं, यह भांगा शुन्य है, कही भी नहीं मिलता है. ७ नबंधि, नबंधति, बंधेति सो—गये काल में श्रेणी चडा नहीं, वर्तमान में चढे नहीं, परंतु आगमि काल में चडकर इर्यावही का बंध करेगा. और ८ नबांधि, नबंधे, नबंधेति गये काल में बंधे नहीं, वर्तमान में भी बंधे नहीं, और आवते काल में बंधेगे नहीं यह भांगा अभव्य आश्रिय जानना.

भावद्वार का खुलासा.

उवसम खय मिसोदय, परिणामा दु नव ठार इगवीसा॥
तिअ भेए सन्निवाइय, सम्मं चरणं पढम भावे ॥१॥
बीए केवल जुअलं, सम्मं दाणाइ लद्धिपण चरणं ॥
तइए से सुव ओगा, पण लद्धि सम्म विरइ दूग्गं ॥२॥
अन्नाण मसिद्धता, ऽसंयम लेसा कसाय गइ वेआ ॥
मिच्छे तूरिए भव्वा, ऽ भव्वत्त जिअत्त परिणामि ॥३॥

१ औदायिक भाव के २१ भेदः—(१) अज्ञान—मिथ्यात्व मोहनीय के उदय कर जो मिथ्यात्वी का ज्ञान है सो अज्ञान. = (२) असिद्धत्व—अष्ट कर्मोदय करजीव

= जैसे—अनाचार, अशील आदि शब्दो चार से आचार की और शील की नास्ति न

सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं करसके-संसारीही बना रहै सो असिद्धत्व.(३) अविरत-अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय कर जी व्रत प्रत्याख्यान नहीं कर सके-सो (अविरति. (४-९) छेलेश्या जिन अध्यवसायों कर आत्मा लेपाय सो-कृष्ण-नील-कापुत -तेजो-पद्म-और शुक्ल-यह छे प्रकार की लेश्या हैं. × (१०-१३] चार कषाय-मोह कर्मोदय कर जिस प्रणतिसे ससारका कस-रस आवे सो-क्रोध-मान-माया और लोभ यह चार कषाय. (१४-१७) चारगति-जो नाम कर्मोदय कर जीवों गमनागमन करे ऐसी-नर्क-तिर्यंच-मनुष्य और देव चारों गति. (१८-२०) जो मोह कर्मोदय से विषयाभिलाषा रूप विकार को वेदे सो-स्त्री पुरुष नपूंसक-यह तीन वेद हैं. और २१. मिथ्यात्व मोह भी मोह कर्म के उदय से होता है.

२ ओप शमिक भाव के दो भेदः—(१) ओपशम सम्यक्त्व सो अनंतान वंधि चौक और तीन दर्शन मोहनीय इन सातों प्रकृति यों-रसोदय और प्रदेशोदय को प्राप्त न होवे सो उपशम भाव, और उस से जो प्रगट हुइ तत्वों की रुचि सो उपशम सम्यक्त्व, और. (२) जो बाकी रही २१ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों उपशम होनेसे जो स्थिरता रूप चारित्र होवे सो ओपशमिक चारित्र

९ क्षयोपशमिक भाव के १८ भेदः—४ चार ज्ञान (केवल विना) ७ तीन अज्ञान. १० तीन दर्शन [केवल दर्शन विना) १५ पांच क्षयोशम लब्धि छद्मस्तकी. १६ क्षयोपशम सम्यक्त्व, १७ क्षयोपशम चारित्र, और १८ संयमासंयम. (इन का खुलासा इस में माति ज्ञानावरणीय, श्रुति ज्ञानावरणीय, चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षु दर्शनावर

हीं समझ ते-कु आचार और कुशील समझा जाता है. तैसे ही यहा अज्ञानका अर्थ कु ज्ञान जानना सो अनादि और स्वभाविक होनेसे-औदायिक भाव में गृहण किया है.

× (१) जो आचार्य अष्ट कर्मोदय से लेश्याको मान ते है. उनके मतसे 'लेश्या' औदायिक भाव में हैं.

(२) जो कषायोदय से लेश्या माने उनके मत से मोहका औदयिक भाव में लेश्या और जो.

(३) योगों की प्रकृति से लेश्या माने उन के मत से नाम कर्मी औदायिक भाव. यों तीन मत हैं.

णीय, इन चारों का उदय बारवे गुणस्थान पर्यन्त देशघातिक होता है. उस उदयावली प्रविष्ट रस के क्षयसे अप्रविष्ट रस के अनुदय रूप उपशम से, और कितनेक स्पर्द्धकके उदय से उदयानुविध क्षयोपशामिक होते हैं. और अवधि ज्ञाना वरणीय, मनः पर्याव ज्ञानावरणीय, और अवधि दर्शनावरणीय इन के सर्व घातिक रस के स्पर्द्धक के उदय से फक्त उदय भाव होता है. और जिसवक्त विशुद्धाध्य साय से देश घातिक पने परिणाम के मंदरस कर उदयावली प्रविष्ट अंश के क्षय से तथा प्रविष्ट के उपशम से और वर्तमान के उदय से जो अवधि, मनः पर्यव, चक्षु दर्शनादि गुण प्रगटे सो क्षयोपशामिक उदयानु विधि होतीहै. और मोहनीयकी प्रकृत्ति जो१२ कषाय, और १३ वा मिथ्यात्व मोह सर्व घातिक है, उसका रसोदय होते हुवे क्षयोपशम नहीं होता है, सो प्रदेशो दय में होता है. रस उन प्रदेशों को वेदते देशघातिक रस में लाकर वेदते हैं जिस से सर्व घातिक नहीं होते हैं. बाकी रही मोहनीय की प्रकृत्तियों रसोदय. प्रदेशोदय होते भी क्षयोपशामिक अविरोध पने होता है. जिस से सब जीवों को पांचों लब्धि क्षयोपशामिक भाव से होती है. और तीनों अज्ञान भी मती श्रुति-अवधि ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम विशेष कर होते हैं. अनन्तान बन्धि चौक मिथ्यात्व मोहनीय के क्षयोपशम से होता है. और सम्यक्त्व मोहनीय के उदय में वेदते हैं. तब वेदक सम्यक्त्व पाती है. देशविरति पना अप्रत्याख्यनावरणीय के क्षयोपशम से होता है. और सामायिकादिक तीनों चरित्र प्रत्याख्यानियादिक के क्षयोपशम से होता है, इसलिये इन १८ ही भेदों को क्षयोपशम भाव में लिये हैं.

४ क्षायिक भाव के ९ भेदः—केवल ज्ञानावरणीय और केवल दर्शनावरणीय इन दोनों सर्व घातिक कर्मोका सर्वथा नाश होनेसे आत्मा के सर्व गुण रूप केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट हुवा, अन्नतानू बन्धि चौक और तीनों दर्शन मोहनीय का का क्षय होने से आत्मा में अक्षय तत्वरूची रूप गुण प्रगट हुवा सो-क्षायिक सम्यक्त्व, और २१ चारित्र मोहनीय की सर्व प्रकृतियों के क्षय होनेसे सर्व जीवोंको अभय देने रूप जो गुण प्रगट हुवा सो यथाख्यात चारित्र, और अन्तराय की दानादि पांचों प्रकृति के क्षय होनेसे-१ अनन्त दान लब्धि, २ अनन्त लाभ लब्धि, ३ अनन्त भोग लब्धि, ४ अनन्त उपभोग लब्धि, और ५ अनन्त बलवीर्य लब्धि, गुण प्रकटे. यह ९ भेद क्षायिक के. यह क्षायिक भाव सो क्षयकी हुइ प्रकृतियों को पछि उदयादिक भावको कदापि प्राप्ति नहीं होने देता है.

५ परिणा मिक भाव के ३ भेदः—(१) मुक्ति जाने जोग जीव का स्वभाव सो भव्य पना. (२) मुक्ति कदापि नहोवे ऐसा जीव का स्वभाव सो अभव्य पना. और (३) द्रव्य तथा भाव प्राणों का स्वभाव सेही धारण करने,वाला सो जीव प-ना. यह तीनों स्वभाव अनादि अनन्त उत्पन्न और नाश रहित सो परिणामिक भा-व जानना. यों—पांचों भावों के—सब मिल ५३ भेद होते हैं. =

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्मो में एक ओपशमि क भाव विना चारों भाव पाते हैं. वेदनीय, आयुष्य नाम और गोत्र इन कर्मो में—१ ओदयिक, २क्षायिक और ३परिणामिक यह तीन भाव पातेहैं. और मोहनीय कर्ममें फ क्त एक ओपशमिक भाव पाता है.

पांचों भावों के विशेष भेद सूत्र से.

१ ओदयिक भाव—जैसे धतुरा का भक्षण करने से श्वेत रङ्ग की वस्तु पीले र ङ्ग मय देखाती है. तैसेही जीवतो शुद्ध सिद्ध समान है, परन्तु अष्ट कर्म रुप धतुरे के नशे के उदय कर जीव कर्म स्वभाव में परिण मे सो ओदयिक भव. और जैसे सुवर्ण नामक धातुतो एकही है. परन्तु सुर्वण कार सबके संयोग से मुकट कुंडल हारादि अ नेक रुप मे परिणमावे तैसे ओदयिक भाव के स्वभाव से आत्मा अनेक रुप में परिण में जैसे-अहंस्त्री, अहंपुरुष, अहंकृष्ण, अहं शुक्ल, अहंस्थुलं, अहंकृस्य. इत्यादि. इस उ दय भावके दो भेद:-१ जिसमे आठो कर्मोंका उदय होवेसो उदय और२उदय निष्पन्न इसके दो भेदः—१. जीव उदय निष्पन्न और२ अजीव उदय निष्पन्न. इसमें जीव उद

=धर्मास्ति काय,अधर्मास्ति काय,आकास्तिकाय काल द्रव्य,और पुद्गलास्ति काय.यह पाचों द्रव्य अनादि परिणामी भाव में परिणमते है. अपने स्वभाव में ही रम रहे है. कदापि पर स्वभा व में रमण नहीं करने सें-अनादि परिणामी भाव में गिने जाते है. इस में पुद्गल द्वणकादि स्कन्ध है सो-सादिक भाव पणे परिणामता है. ऐसेही अनत प्रदेशी स्कन्ध जाणना. सो ओदायिक भाव में भी गिने जाते हैं. क्योंकि—कर्म पुद्गल के स्कन्ध जीव के सम्बन्ध से पु-द्गल विपाक की कर्म प्रकृति के औदारिक नो कर्म के विषे वर्णादिक होते है. इसलिये अनन्त प्रदेशी स्खन्ध कर्म वर्गणादि पुद्गल सो सब औदयिक भाव में होते है. यह अजीव आश्रिय भाव के भेद कहे.

य निष्पन्न के-३३ भेदः-४ गति, ६ काय, ६ लेश्या, ४ कषाय, ३ वेद (एवं २३ और)२४असन्नीपणा, २५ अज्ञानी पणा, २६मिथ्यात्व पणा, २७ अविरति पणा,२८ आहारिक पणा, २९ संसारिक पणा, ३० छद्मस्त पणा, ३१ सयोगी पणा, ३२ अ. केवली पणा, और ३३ असिद्ध पणा.। और दूसरे अजीव उदय निष्पन्न के ३० भेद -५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८स्पर्श,५शरीर, और पांचों के परिण में प्रयोग से पुद्गल।

२ ओपशमिक भाव—जैसे राख कर ढकी हुई अग्नि किसीभी वस्तु को दग्ध नहीं कर सक्ति है. परन्तु अभ्यन्तर में दग्ध करने की सत्ता वनीहै वो वायु आदि संयोग से प्रकट होतीं है. तैसेही-जीवके परिणाम अन्तमुहूर्त काल शुद्ध परिण में-ज्ञान दर्शनादि शुद्ध उपयोग में प्रवृते जिससे मोहनीय कर्म की शक्ति का अच्छादन (ढक्कन॰) होवे सो उपशम भाव, इसके दो भेद;-१ अनन्तान वन्धी चौक और तीनों मोहनीय इन सातों प्रकृत्तिका रस और प्रदेश नही होता है. उसे उपशम कहते हैं. और उससे तत्वकी रुचि प्रगटे सो उपशम सम्यक्त्व. बाकी रही २१ प्रकृत्ति के उपशम से जो चारित्र मे स्थिर भाव होवे सो ओपशमिक चरित्र. +

३ क्षायिक भाव-जैसे पाणी करके साफ बुझाइ हुइ अग्नि पीछी प्रज्वालित नहीं होती है. तैसेही जघन्य मोह कर्म की ७ (अनन्तान बन्धी चौक और दर्शन त्रिक) प्रकृत्ति, उत्कृष्ट२८ ही प्रकृत्तिका ऐसा क्षय करे कि पीछी वो कदापि परगट नहीं होवे सो क्षायिक भाव. इसके २ भेदः-१ प्रथम मिथ्यात्व मोह, फिर अनन्तानु बन्धि चौक, फिर प्रयाख्यानी चौक, यों अनुक्रम से क्षय करे सो क्षायिक, और २ क्षायिक, निष्पन्न इसके ९ भेदः-१ ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयसे अनन्त केवल ज्ञान प्रगट हुवा, २ दर्शनावरणी के क्षयसे अन्नत केवल दर्शन प्रगट हुवा.३ अनन्तान बन्धि चौक ओर तीनों मोहनीय के क्षयसे अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट हुवा. ४ मोहनीय की बाकी रही २१ प्रकृत्ति के क्षयसें क्षायिक यथाख्यात चारित्र प्रगट हुवा. (और अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृत्तियों के क्षयसें प्रगट हुइ पांचों लब्धियों अर्थात) ५ दानान्तराय के क्षयसें अनन्त दानलब्धि प्रगटी, ६ लाभान्तराय के क्षयके अनन्त लाभ लब्धि प्रगटी

+ पाठान्तर-उपशम भाव के ११ भेदः—४ कषाय, ५ राग, द्वेष, ६ दर्शनमोह, ७ चारित्रमोह, ८ दर्शनलब्धि, ९ चारित्र लब्धि, १० छद्मस्त और ११ वीतरागी.

७ भोगान्तराय के क्षयसे अनन्त भोग लब्धि प्रगटी, ८ उप भोगान्तराय के क्षयसे अनन्त उपभोगा लब्धि प्रगटी, और ९ वीर्यान्तराय के क्षयसे अनन्त बलवीर्य लब्धि प्रगटी. ×

४ क्षयोपशमिक भाव—जैसे वद्दलोंकी गहरी घटासे अच्छादित हुवा सूर्य का तेज, वायु के प्रयोग्य से ज्यों ज्यों वद्दल पतले पडते जाते हैं. त्यों त्यों तेज—प्रकाश अधिक वढता जाता है ? तैसेही कर्म रुप वद्दलों से अच्छादित हुइ आत्मा ज्ञानादि गुणों रुप तेज के मन्दता में स्थित, शुभ परिणाम रुप वायु के प्रयोग्य से—उदयावसीरम के क्षयसे, अप्रविष्ट रसके अनुदय रुप उपशम से और कितनेक स्पर्द्धक के उदय से उदयानुविधि क्षयोपशम होता है. सो फक्त चारों घातिये कर्मों काही होता है· अघातिये का नहीं. इसलिये जो घातिये कर्म उदयमें आयेथे उनको तो क्षयकिये. बाकी के कर्म सत्ता में रहै वोभी पतले पडगये, ऐसी मिश्रता होनेसे इसे मिश्र भावतथा क्षयोपशम भाव कहते हैं, इसके दो भेद:—१. ऊपरोक्त विधिसे चारों घन घातिक कर्मों क्षयोपशम करे सो-क्षयोपशम और क्षयोपशम निष्पन्न कर्मो का क्षयोपशम होने से ३२ गुण प्रगटे:—प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से८ गुणों की प्राप्तिहोवे:—१. मतिज्ञान, २ श्रुतिज्ञान, ३ अवधि ज्ञान, ४ मनःपर्यव ज्ञान, ५ मतिअज्ञान, ६ श्रुतिअज्ञान, ७ विभङ्ग ज्ञान, और ८ आचाराङ्गादि सूत्रका जान पना. । दूसरा दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम ोने से ८ गुण प्रगटे.—९ चक्षुदर्शन, १० अचक्षुदर्शन ११ अवधि दर्शन, १२ श्रोतेन्द्रिय का जानपना. १३ चक्षुइन्द्रियका जान पना. १४ घणेन्द्रिय का जान पना. १५ रसेन्द्रिय का जान पना. और १६ स्पर्शेन्द्रिय का जान पना. । तीसरे मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ८ गुण प्रगट हुवे:—१७ सम्यग दृष्टि पना. १८ मिथ्यात्व दृष्टि पना. १९ सममिथ्यात्व दृष्टि पना. २० सामायिक चारित्री पना. २१ छेदो स्थापनीय चारित्र पना. २२ परिहार विशुद्ध चारित्र पना. २३ सू-

---

× पठान्तरः—क्षायिक निष्पन्न के ३७ भेदः—५ ज्ञानावरणिय की, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीय की, ८ (क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, दर्शनमोह और चारित्र मोह यह ८) मोहनीय की, ४ आयूष्य की, २ नामकी, २ गोत्रकी, और ५ अन्तरायकी, यों आठों कर्मोंकी सब ३७ प्रकृत्तियों का क्षय-सर्वथा नाश करे सो क्षायिक निष्पन्न भाव.

क्ष्म सम्पराय चारित्र पना. और २४ यथाख्यात चारित्र पना. । चौथे अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से ८ गुण प्रगट हुवे, २५ क्षयोपशम दानलब्धि, २६ क्षयोपशम लाभ लब्धि, २७ क्षयोपशम भोगलब्धि, २८ क्षयोपशम उपभोग लब्धि, २९ क्षयोपशम व लविर्य लब्धि, ३० बाल वीर्य; ३१ पण्डित वीर्य. और ३२ बाल पण्डित वीर्य + ॥

+ यह क्षयोपशम भाव सम्यगदृष्टि और मिथ्यात्व दृष्टि दोनेके ही होता है. क्योकि-चारो घातिये कर्मोंकी-देशसे निर्ज्जरा होवे उसे क्षयोपशम भाव कहते हैं:—यह निर्ज्जरा दोनो प्रकार के जीवों कर शक्ते है. जिस में सम्यग दृष्टिके ज्ञानावरणी आदि कर्मो का क्षयो पशम होनेसे मति ज्ञानादि चारो ज्ञान की प्राप्ति होती है. और मिथ्यात्व दृष्टि के ज्ञानावरणीय कर्मोका क्षयोपशम होनेसे मति अज्ञानादि तीनो अज्ञानकी प्राप्ति होतीहै. क्योंकि-मिथ्यात्वीने ज्ञानावरणीय कर्म का तो क्षयोपशम किया. परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय का उदय प्रवर्तता है. और सम्यक दृष्टिने दोनों का क्षयोपशम किया है. ऐसेही क्षयोपशम दानादि लब्धि में भी जानना. सम्यग दृष्टि पात्रापात्र का विचार. क.र दान कर्ता है. और मिथ्यात्वी समझे नहीं. और भी कितनेक ग्रन्थों मे—क्षयोपशम लब्धि के-५ भेद किये है:—१. क्षयोपशम लब्धि सो जैसे निगोद मे जीवो जन्म मरण कर रहे है. वहा मोहनीय कर्म की वर्गण अकाम निर्ज्जरा से कूछ पतली हुइ, तब वहां से निकल पृथ्व्यादि पाचो स्थावरों में आया, फिर वहां भी कर्म पतले पडे तब त्रस पनापाया, योहीं कर्म वर्गणा पतली पडते २ तेन्द्रिय, चोरिन्द्रिय, असज्ञी पचेंद्रिय, सज्ञीपचेन्द्रिय, नर्क, देव जावत मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुवा. यों ज्यों ज्यो उज्वल होता गया त्यो त्यो ऊंचा आता गया, सो क्षयोपशम लब्धि. २ विशुद्धता लब्धिसो—क्षयोपशम लब्धि मे जो विशुद्धता करिथी उस से अधिक विशुद्धता होनेसे-सम्यक की प्राप्ती तो नही कर सका परन्तु मतिकी विशुद्धताकर जिनेश्वरका और जिनेश्वर के मार्ग में प्रवतक चारो तीर्थो का भाक्तिवन्त बना. दानादि धर्म साधन करने लगा. त्याग वैराग्यादि भाव भी प्रवर्ते—यथा शक्ति किये भी-स्वत: जिन बचनो का पठन मनन करे, दुसरे से करावे. नर्क निगोदादि के दुःख से कम्पाय मान होवे, परन्तु आत्म पुद्गलों का भेद विज्ञान न होवै. । जिससे पुद्गलोंपर से ममत्व घटे नहीं. बावलेकी माफिक तप संयमका आचरण कर नवग्रीवेग तक उत्पन्न होवै, परन्तू एक भी भव घटावै नहीं. अभव्यवत्. सो विशुद्धता लब्धि. । ३ उपदेशना लब्धि सो—विशुद्धता लब्धि से अधिक विशुद्ध होने से-तीर्थकर के-

५ परिणामिक भाव—जो जीव अजीव के परिणाम परिणमे सो परिणामिक भाव, इसके दो भेद:—१ सादि परिमाण सो पलटे उसे कहते हैं. जिसकें अनेक भेद:—

वली गणधर साधु साध्वी श्रावक श्राविका सम्यक दृष्टि के मुख से निग्रन्थ प्रवचनों का श्रवण कर तत्वज्ञ बने, सम्यक्त्व को प्राप्त करे, महोदयकी प्रवलता से पीछा पडे, वो उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन बाद अवश्य सम्यक्त्व को प्राप्त करे, सो उपदेश लब्धि. ४ प्रयोग्य लब्धि सो—उपदेश लब्धिसे भी अधिक विशुद्ध ता होनेसे—संसार घठावै—१७प्रकार सयम पाले १२ प्रकार तप करे, २२ परिसह सम भावसहै. तथा—श्रावक के—१२ व्रत, ११ प्रतिमा आदरे पाले. जिस से अनन्त कर्म वर्गणाकी निर्जरा होवे, परन्तू महोदय कर-निन्दव, एकान्त वादि जमालीवत होवै. कुछ संसार भ्रमण बाकी रहैसो प्रयोग्यसा लब्धि और ५.. करण लब्धि सा प्रयोग्य लब्धि से भी परिणामों की अधिक विशुद्धता होने से जविकी भवस्थिति काल स्थिति परिपक्व होवे तव मिथ्यात्व ग्रन्थी का भेद कर, उसवक्त तीन करण होतेहैं सो कहते हैं. (१) अधः करण सो—आयुष्य विना सातों कर्मोंकी स्थिति एक कोडाकोड सागर में कुछ कम होवे तव अधः करण होता है. उस वक्त सम्यक्त्व और मिथ्यात्वीकी तुल्यना हो अन्तर मुहूर्त पर्यन्त रहे. तव मिथ्यात्व मोहका क्षय करने प्रवर्तता सम्यक्त्व दर्शने योग्य वने, जैसे कृषी क्षेत्र को समारकर वीज डालने लायक बनावे, त्यों आत्म बोध बीज ग्रहण करने योग्य वने सो अधः करण. यह करण भव्य अभव्य दोनों के होता. बहूत से जीवो यहा तक आकर पीछे पडजाते हैं. और कितनेक जविो आगे चडते है. तव—(२) अपुर्व करण को प्राप्त होते है. जैसी परिणामोंकी उज्वलता अपूर्व करण मे होतीहे वैसी पाहिले कदापि नहीं हुइ इसलिये इसे अपूर्व करण कहते है. यहा अन्तर मुहुर्त काल रहै वाद—(३) अनिवृत्ति करण होता है—जिस से पीछा निवृतना नहीं होता है. अर्थात् यहा आये वाद सम्यक्त्व जरूरही स्पर्शता है. भेद विज्ञान की प्राप्ति होती है. आत्माका और पुद्गलों का भिन्न २ स्वरूपका अनुभव होता है. जिससे पुद्गल प्रणति से इन्द्रियों के विषय की लोलुप्ता घट जाती है—सुखवृत्ति वन जाती है. आत्मानुभव होता है. तव भव भ्रमण घटाने का खप करता है. यहा सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति होती है. यह तीनों करण जिस के होते है सोही चतुर्थ गुणस्थान स्पर्श शक्ता है. सम्यक्त्वी कहा जाता है. ॥ यह पाचो लब्धियोभी क्षयोपशम भाव में समाजाती है.

जैसे जीवके परिणाम-गति जाति कषाय, लेश्या, इत्यादि पलटे सो, और अजीव केप रिणाम वस्तु के विषय उत्पात व्यय क्षय होवै सो. और अनादि परिणाम-सो कदापि पलटे नहीं जिसके ३ भेदः—१ जीव परिणामी, २ भव्य परिणामी, ३ अभव्य परिणा मी. यह तीनों शाश्वते भाव हैं.

६ सन्नीवाइ भाव सो—जैसे दही के और सक्कर के मिलने से दोनों का एक र स हो श्रीकरण नाम का पदार्थ बनता है. ऐसेही—एक दो तीन चार या पांचो भावों एकस्थान संयोग होवे उसे—सन्नीवाइ भाव कहते हैं. जिसमें दो भावों का मिलाप हो- वे सो द्विसंजोगी भङ्ग कहा जाता है, जिसके—१० भाङ्गे होते हैं:—१ उदय उपशम २ उदय क्षायिक, ३ उदय क्षयोपशम, ४ उदय परिणामी, ५ उपशम क्षायिक, ६ उपश म क्षयोपशम, ७ उपशम परिणामी, ८ क्षायिक क्षयोपशम, ९ क्षायिक परिणामी, और १० क्षयोपशम परिणामी. । ऐसेही तीन भाव मिलने से तीन संयोगी भी १० भाङ्गे होते हैं:—१ उदय उपशम क्षायिक, २ उदय उपशम क्षयोपशम. ३ उदय उपशम परि णा मी. ४ उदय, क्षायिक, क्षयोपशम. ५ उदय क्षायिक परिणामी. ६ उदय क्षयोपश म परिणामी. ७ उपशम क्षायिक क्षयोपशम, ८ उपशम क्षायिक परिणामी. ९ उपशम क्षयोपशम, परिणामी. और १० क्षायिक क्षयोपशम परिणामी. । चार भाव मिलने से चउ संयोगी ५ भाङ्गे होते हैं:—१ उदय उपशम क्षयोपशम परिणामी. २ उदय उपश- म क्षायिक परिणामी. ३ उदय उपशम क्षयोपशम परिणामी. ४ उदय क्षायिक क्षयोप शम परिणामी. ५ उपशम क्षायिक, क्षयोपशम और परिणामी. । और पांच संयोगी— एकही भाङ्गा होता है:—१ उदय उपशम क्षायिक क्षयोपशम और परिणामिक. । यों पांचों भावों के सब मिल २६ भाङ्गे होते हैं. इन २६ भाङ्गो में से २० भाङ्गे तो शु- न्य है. कंही मिलते नहीं. और ६ भाङ्गे मिलते हैं. सो कहते हैं:—१ द्विक संयोगी न- वबा भाङ्गा क्षायिक और परिणामिक भाव वाल सिद्ध भगवन्त में पाता है. २ त्रीसं- योगी पांचवा भाङ्गा उदय क्षायिक और परिणामिक भाव वाला—केवली भगवन्त में मिलता है. ३ और त्रिसंयोगी छट्टा भाङ्गा उदय क्षयोपशम परिणामिक वाला—दुसरा गुणस्थान छोड पाहिले गुणस्थान से दशवे गुणस्थान तक—क्षयोपशप सम्यक्त्वी में मि लता है.४ चौसंयोगी का तीसरा भाङ्गा—उदय उपशम क्षयोपशम परिणामिक भाव वा ला उपशम सम्यग् दृष्टि में मिलता है, ५ चौसंजोगी चौथा भाङ्गा—उदय क्षायिक क्ष योपशम परणामिक भाव वाला—क्षायिक सम्यक्त्वी में मिलता है. और ६ पांच संयो-

१ भाङ्गा इग्यारवे गुणस्थान में मिलता है.

श्रेणिद्वार का वहुतही विस्तार से खुलासा प्रथम खण्डके ५वे लक्षण द्वरा में किया हैं सो सब यहां जानना

वेदे द्वार सो उदय में आये हुवे कर्म पुद्गलों का शुभा शुभ परिणाम को आत्म प्रदेशों कर चैत्यन्यता—उपयोग युक्त अनुभवे सो वेदना जानना. इसका विशेष खुलासा अन्य स्थान मेरे देखने में न आया इसलिये यहां संक्षेप मेंही लिखाहै. परन्तु रचना विशेषत्व उदय द्वार के जैसी देखाती है.

ऐसेही निर्जरा का भी खुलासा विशेष नकर सका परन्तु इसकी रचाना विशेषत्व ऊदीरणा द्वार जैसी जानना.

दश करण द्वार का खुसासा

वन्धुक्कट करणं । सं संकम मोकद दीरणा सत्तं ॥
उदयुव समा मणिवत्ती । णिकाचणा होदिपडि पयडी ॥

गोम्मट सार कर्म काण्ड गो° १४७

१ कर्मों का सम्वन्ध होना अर्थात्—मिथ्यात्वा परिणामों से जो पूद्गल द्रव्य का ज्ञानवरणीयादि रुप होकर परिणमन करने से ज्ञानादि को आवरण करना सो वन्ध करण है. २ कर्मो का स्थिति तथा अनूभाग का बढाना सो – उत्कष्टण करणे है. ३ वन्ध रुप प्रकृत्ति का दुसरी प्रकृत्ति रुप परिणमना सो संक्रमण करण है. ४ स्थिति तथा अनुभाग का कम होना सो " अपकर्षण करण " है. ५ जिसके उदय का अभि समय नहुवा. ऐसे जो कर्म द्रव्य उसको अपकर्ष के वलसे उदया वली वलमें प्राप्त करना सो—"ऊदीरणा करण" है. ६ जो पुद्गल कर्म रुप रहे सो सत्ता करण है.७ जो कर्म अपनी स्थिति को प्राप्त होवे. अर्थात—फलदेने के समय को प्राप्त होवे. सो " उदय करण " है. ८जो कर्म उदयावली में प्राप्त नहीं किया जाय, अर्थात्—ऊदीरणा अवस्थाको प्राप्त नहीं होसके, सो " उपशान्त करण ,, है. ९ जो कर्म उदयावली में भी प्राप्त नहोसके, और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त नहो सके सो " निधात्ति करण ,, है. और १० जिस कर्म की ऊदीरणा, संक्रमण, उत्कषण, और अपकर्षण, यह चारोंही अवस्थाओं नहो सके सो—निकाचित करण है. अवस्था वाला कहतेहै ॥

इन दशोंही करणों में से–आयुष कर्म में तो संक्रमण करण विना नव करण पाते हैं. और वाकी के सातोंही कर्णों में दशोही करण पाते हे. । इसका विशेष खुलासा यह है कि–उपशान्त कषाय गुणस्थान में–मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का संक्रमण करण होता है, अर्थात्–इन दोनों के कर्म प्रमाणुओं सम्यक्त्व मोहनीय रुप परगम जाते हैं. और बाकी की प्रकृत्तियों का संक्रमण नहीं होता है. दही करण होते हें. । बन्ध करण और उत्कर्षण करण यह दोनों प्रकृत्तियों अपनी२ बन्ध व्युच्छितिके स्थान होती हैं और प्रकृत्तियों अपनी २ जाति की जहां बन्ध से बुच्छिति है. वहां संक्रमण करण होता । अयोगी के ८५ सत्ता की प्रकृत्तियों का, सयोगी के अन्त समय तक अपकर्षण करण होता है. तथा क्षीण कपाय गुणस्थान में सता से व्युच्छेद हुइ १६ प्रकृत्ति. और सूक्ष्म स्म्पराय गुणस्थान में सत्ता से व्युच्छेद रुप हुवा जो सूक्ष्म लोभ,यों२७प्रकृतियों काक्षय देश पर्यन्त अपकर्षण करण जानना. वो क्षयदेश काल यहां पर एक समय अधिक आवली मात्रहै. क्योंकि–यह १७ प्रकृत्तियों स्वमुखो दयीहै.×। देवायु का अपकर्षण करण उपशन्त कषाय पर्यन्त है. मिथ्यात्वादि तीनो अनिवृत्ति, करण में क्षय हुइ १६ प्रकृत्तियों इनके क्षय देश । ÷ (अन्त कान्डा के अन्त काली पर्यन्त अपकर्षय करेहै. और क्षपक अवस्था में–अनिवृत्ति करण में क्षय हुइ जो ८ कषाय से लेकर २० प्रकृत्तियें है, उनका भी अपने २ क्षय देश पर्यन्त अप कर्षर्ण करण है. । उपशम श्रेणि में उपशान्त गुणस्थान पर्यन्त मिथ्यात्वादि तीनों दर्शन मोहनीय और नर्क द्विकादि १६ इन प्रकृत्तियों अपकर्षण करण है. तथा ८ कषायादि को का अपने २ उपशम करने के स्थान तक अपकर्षण करण है.। अनन्तानु बन्धि चौक का असंयतादि चारों गुणस्थानो में यथा संभव जहां विसंयोजना (अन्य रुप परिणमन) होवै, वहां तकही अपकर्षण करण है । तथा नर्कायु के असंयति गु-

---

× प्रकीतयो दो प्रकार की होती है:—१ स्वमुखोदयी सो-अपनेही रूप उदय फल देकर नाश होजाय. इसका काल एक समयाधिक आवली प्रमाण है, वही क्षय देश-क्षय होनेका स्थान है. और २ परमुखोदयी सो- जो प्रकृति अन्य प्रकृति रूप उदय फल देकर नष्ट होजाय इसके अन्त काण्ड की अन्तफली सो क्षय देश है.

÷ जिस स्थान मे क्षय हूवा हो सो क्षय देश होता है.

णस्थान तक और तिर्यचायु के देश संयति गुणस्थान तक–ऊदीरणा, सता, उदयय है तीनों करण प्रसिद्ध हैं. क्योंकि–पहिले कहे हैं. । उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुवे जीवके–मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त में एक समयाधिक आंवली काल पर्यन्त मिथ्या त्व प्रकृत्ति का उदीरणा करण होता है. उतनेही काल तक उसका उदय है. और सू क्ष्म लोभका सूक्ष्म सम्पराय में ही ऊदीरणा करण है, इसके आगे उदय नही. ॥ जो कर्म उदया वलीमें प्राप्त नही किया जावे अर्थात्–जिसकी निर्जरा नहोसके जो ऊदी रणा रुप भी नहोसके और संक्रमण रुप भी नहो सके उत्कर्षण और चपकर्ष भी न-हो सके, चारों किरिया नहो सक्ति हो एसे क्रमसे उपशान्त करण विधत्ति करण औ र निका चित करण यह तीनों करण अपूर्व करण गुणस्थान तक ही होते हैं. इसके ऊपरयथा संभव उदयावली आदि प्राप्त होनेकी सामर्थ वलेही कर्म प्रमाणू पायेजातेहै.

गुण श्रेणीका झूलासा

जैसे कोइ दुर्वल रोगिष्ट अतिवृद्ध अवस्था कर जीर्ण शरीर को प्राप्त हूवा पुरु ष वोठे कुहाडे से खेरके वबूल के काष्टा को महा परिश्रम कर थोडा भाग छेद सक्ता है. जौर कोइ जन्म से अरोग्य प्रवल तरुण पुरुष तीक्षण फरसी फरसी कर सूके हुवे आकडे के थता एरन्ड के काष्ट को थोडेही परिश्रम से और थोडेही काल में वहुत क ट डालता हैं. चकना चूर कर डालता है. तैसेही जो मिथ्यात्वी जीवों है. वो कर्म रु प रोग की प्रवलता का वीर्यहीन–जीर्णहुवे अपने अत्यन्त चीकने कर्म रुप काष्ट को वाल तपश्चरणादि वोठेशस्त्र कर वहुत काल तक महा कष्ट सहन करही अल्प-थोडे क र्मों की निर्ज्जरा कर सक्ते है.; और जो सम्दग दृष्टि जीवों हैं. ज्ञानादि आत्माके नि-ज गुणों कर वलिष्ट हुवे, शुभ परिणामों की व्रद्धि रसघात स्थितिघात कर, निःसार हुवे कर्मों को अपूर्व करणादि तीक्षण शस्त्रकर थोडे काल में और थोडेही प्रयास कर वहुत कर्मों का चकना चूर कर डालते है. वो कैसी तरह से कौन २ जीवों हीनाधिक कर्मों को निर्ज्जर कैसी तरह से करते हैं. जिसका स्वरुप अनुक्रम से ११ गुणश्रेणि में दर्शाया है सो यहां कहते हैं:—

१ प्रथम सम्यक्त्व के निमित ग्रन्थि भेद करते तथा दूसरा अपूर्व करण करते –स्थिति घात रसघात गुणश्रेणि और अपूर्व वन्धन इन चारों का मोंको करते–प्रति

समय असंख्यात गुणि निर्ज्जरा की बृद्धि होती है. तैसेही अपूर्व निवृत्ति करण में भी जानना. और सम्यक्त्व प्राप्त हुवे बाद भी सम्यक्त्व प्रत्यय कर अन्तर मुहूर्त प्रमाणें बाकी रहै कर्मों के दलको खपाने गौपूच्छ के संस्थान जैसी दलोंकी रचना करे सो प्रथम सम्यक्त्व गुण श्रेणि जाणना. यह आगे कहेंगे उन दूसरी श्रेणियों की अपेक्षा कर सम्यक्त्व प्रत्यायिक मन्द विशूद्धि वेदने के वासते दीर्घ अन्तर मुहूर्तमें वेदने लायक और अल्प पदेशों की गुणश्रेणि होती है.

२ इससे देशविरति निमित अपूर्व करण करता पहिली गुणश्रेणि के संख्यात गुणहीन ऐसे अन्तर महूर्त वेदने लायक और पूर्वकी श्रेणिसे संख्यात गुणबृद्धि प्रदेश दलकी रचना से देश विराति गुण प्रत्यायि श्रेणि सो प्रथम गुणश्रेणि की निर्जरा से असंख्यात गुण निर्जरावन्त दुसरी श्रेणी है.

३ उस देश विराति गुणसे अनन्त गुण विशुद्धि में बृद्धि पाते सर्व विराति की लब्धि निमित अपूर्व करण करता सर्व विरति-गुण प्रत्यायिक देश विरति गुणश्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुनहीन ऐसी अन्तर मुहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुणबृद्धि प्रदेशात्मक असंख्यात गुण निर्ज्जरा हेतु ऐसी सर्व विराति रूप तीसरी सर्व विराति गुण श्रेणि होती है.

४ इससें अनन्त गुण बृद्धि अनन्तान बन्धि कषाय की विसंयोजना कर्ता सर्व विराति गुण श्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुणहीन अन्तर मूहूर्त वेदने लायक असंख्यात गुण बृद्धि दलिक ऐसी चौथे गुण श्रेणि जाणना.

५ इससे भी अत्यन्त विशुद्ध परिणाम से पहिले की गुण श्रेणी के अन्तर मुहुर्त के संख्यात गुण हीन अन्तर मुहूर्त में वेदने लायक असंख्यात गुण बृद्धि दालिक तीनों दर्शन मोहनिय खपाने के लिये गुण श्रेणिकरे सो क्षायिक सम्यक्त्व प्रत्यायिक असंख्यात गुण निर्ज्जरा रूप पांचवी गुण श्रेणि होती है.

६ इससे भी संख्यात गुणहीन ऐसी अन्तर मुहूर्त वेदने लायक असंख्यात गुण बृद्धि दलिक असंख्यात गुण निर्ज्जरा हेतु चारित्र मोहनीय को उपशमाते अपूर्व करण अनिवृत्ति करण गुणस्थान छठी गुणश्रेणि करे.

७ इससे अनन्त गुण विशुद्धि उपशान्त मोह प्रत्यायिक संख्यात गुणहीन मूहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुण बृद्धि दलिक उपशान्त मोह गुण श्रेणी.

८ इससे भी अनन्त गुण विशुद्धि संख्यात गुणहीन मुहूर्तमें वेदनें योग्य असं-

ख्यात गुण व्रद्धि दलिक असंख्यात गुण निर्ज्जरा से बृद्धि पाते चारित्र मोहनीय ख पाते आठवे और दशवे गुणस्थान में दलिक रचना करे.

९ इससे अत्यन्त विशुद्ध संख्यात गुनहीन अन्तर मुहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुण बृद्धि दलिक क्षीणमोह गुणस्थान प्रत्ययि की करे.

१० इससे संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त मे वेदने लायक असंख्यात गुण बृद्धि दलिक सयोगी केवली के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा हेतु दलिक रचन करे सो दशवी श्रेणि. और

११ इसमे भी इतर अयोगी केवली गुणस्थान कर्म खपाने निमित संयोगी गुणश्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त वेदने योग्य असंख्यात गुण बृद्धि दलिक कर्मदल रचना करे सो ११ वी गुण श्रेणी. यों इग्यारेही गुण श्रेणिकी. रचना कर बहुत काल में वेदने योग्य कर्मो की थोडेही काल में निर्ज्जरा कर डालते हैं. अर्थात्-गुणा कारसे कर्म दलको वेदकर निर्ज्जरा अर्थ कर्म दलको व्यवस्थासेस्थापन करना. उपर की स्थिति से उतार २ कर उदयावली स्थिति के समय २ स्थिति में असंख्यात गुण बृद्धि पाता संक्रमावते जोदल श्रेणीसो गुणश्रेणि कहना. यों थोडे काल में बहुत कर्मदल निर्ज्जरता है, । इसमें प्रथम गुण श्रेणि का काल अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से किंचित विशेष अन्तर मुहूर्त प्रमाणे जाणना. उस वेद्यमान अन्तर मुहूर्त से उपर की स्थिति के दलिये उतार २ कर वेद्यमान स्थिति के उदय प्रति समय असंख्यात गुण २ बृद्धिपाता अन्तिम समय तक संक्रमाता है अर्थात्-ऊपर की स्थिति का उतारा हुवा जो दल उसमें पाहिले समय थोडा संक्रमावे, उससे दूसरे समय असख्यात गुणा संक्रमावे. उससे तीसरे समय असंख्यात गुणा संक्रमावे, यों समय २ असंख्यात गुण बृद्धि कर्ता अन्तर मुहूर्त के अन्तिम समय सर्वोत्कृष्ट संक्रमाकर-भोगवकर खपावे परन्तु गुणश्रेणि के काल में बृद्धि करे नहीं. ऐसी तरह से सब गुण श्रेणी का स्वरुप जाणना. परन्तु एकेक से श्रेणिका अन्तर मुहूर्त संख्यात गुण हीन २ पहिले की श्रेणिके अपेक्षा से होता है. ओर कर्म दल असंख्यात वढता होता है. ।इसमें देश विरति और सर्व विरति-पणा प्राप्त कर्ता तो दो करण करे परन्तु तीसरा अनिवृत्ति करण नहीं करे. तथा देश विरति से सर्व विरति से अभोग पडा और फिर जो देशवृत्ति अङ्गीकार करे, उस वक्त भी दो करण करे, और अनाभोग पडातो उन करणों के किये विनाही चडता है इन दोनों करणों कर देश-

व्रत गुण प्राप्त करेतो वो जीव अवश्य बृद्धमान परिणामी होवे वहां बृद्धमान परिणाम में किसी वक्त संख्यात गुण अधिक किसी वक्त असंख्यात गुण अधिक किसी वक्त संख्यात भाग अधिकी, कभी असंख्यात भाग अधिक दलकी रचना करे. और जोहाय मान परिणाम होवे तो इन चारों की हायमान दलिक रचना करे. और तुल्य परिणाम में तुल्य दलों की रचना होती है. परन्तु अपनी २ गुणश्रेणि का अन्तर मुहूर्त एकसाही होता है. और अनन्तानु बन्धिकी वीसंयोजना देवता मनुष्य और देवता पर्याप्ता अविरति सम्यग दृष्टि देशविरति और सर्व विरति यह सब तीनों करणों कर करते है. जिसमें अपूर्व करण अनिवृत्ति करण के काल में गुणश्रेणि करे. इसमें प्रथम की तीनों गुणश्रेणि सम्यक्त्वी देशविरती सर्व विरति सहसात्कारे पडता हुवा कितनेक काल में मिथ्यात्व गुणस्थान में आवे. ऐसी तरह गुणश्रेणि की रचना जानना.

❀ इति कर्मा रोहण नामक द्वितीय खण्ड ❀

* तृत्तिय खण्ड-संसारा रोहण *

संसारा रोहण के ४१ द्वारोंका अर्थ.

१-३ गतीद्वार जिसमें जीवों गता गत (जाना आना) करे सो गति चार है; -(१) "नर्क"-अन्धकार मयस्थान है. सो "नर्कगति" (२) तिर्यंच तिरछे वहुत वढे या तिरछे लोक में अधिकांश पावे सो तिर्यंच. (३) मनुष्य मनकी हौंश पुरी करसकै सो मनुष्य गति. और (४) "देव" दिव्य प्रकाश वन्त सो देवगति. इन चारों गति में से किसी एकगति में दुसरे स्थान से आकर जीवों उत्पन्न होवें सो "आगति उत्पन्न हुवे उसिगति में स्थिर वने रहे सो "पागति" और मरकर आगे दुसरे स्थान जावे सो "जागति" यह गति आश्रिय ३ द्वार. ४-६ "जाति द्वार" जिससे जीवों का स्वपरु जाना जावे सो जाति-५ है:-(१) जिसके फक्त एक स्पर्शेन्द्रिय

चारों गति का स्वरूप गोमटसार ग्रन्थ के जीव कान्ड में ऐसा वताया है.

गाथा-णरमन्ति जदो णिचं । दव्व खेतय काल भावेय ॥
अणोण हिय जम्हा । तम्हा ते णारया भणिया॥१४६॥

अर्थ-जो जीवों को एसा द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का संयोग बना हैकि जिससे उनका नन रमण नहीं करता है. अमन्योग लगते हैं. और सदा जहां अन्धकार मय स्थान है सो नर्क गति कही जाती है.

गाथा-तिरियंती कुटिल भावं । सुविउल सणाणि गिहःमणाणा,
अच्चन्त पाव वहला । तम्हा तिरिच्छया भणिया ॥१४७॥

होवेसो-'एकेन्द्रिय जाति' (२) जिस के-रसेन्द्रिय और स्पर्शेंद्रिय, दोनों होवे सो-बेन्द्रिय जाति. (३) जिसके घ्राणेन्द्रिय, रसेंद्रिय, और स्पर्शेन्द्रिय, तीनों होवेसो तेन्द्रिय जाति. (४) जिसके-चक्षुरेन्द्रिय, घणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय और स्पर्शेद्रिय, चारों इन्द्रिय होवेसो चौरेन्द्रिय जाति. और [५] जिसके श्रतेंद्रिय, चक्षुरेंद्रिय, घणेंद्रिय,रसेंद्रिय और स्पर्शेन्द्रिय यह पांचोंही इन्द्रिय होवे सो पचेंन्द्रिय जाति. इसके ३ द्वार. ७-९ 'काया द्वार'-जिस आकार में जीवोंका शरीर परिणमे सो काया ६ है:—[१) जिस का कठिण शरीर हो सो 'पृथ्वी काय.' (२) जिसका-पतला शरीर हो सो अपकाय. (३) उष्ण शरीर होसो 'तेउकाय.' (४) जिस का सूक्ष्म शरीर होवे सो 'वायु काया.' (५) जिस का विचित्राकार का शरीर होवे सो वनस्पति काया. और (६) जिस को. त्रास (दुःख) हुवा प्रत्यक्ष जान ने में आवे सो 'त्रस काया.' जाति मुजब काया के भी ३ द्वार जानने.

१०-१२ दन्डक द्वार-बहुत जीवों का समोह होकर जहां रहे सो दन्डक २४ हैं:- = सातों नर्क का १ दन्डक, दश भवन पाति देवों के १० दन्डक, पांचों

अर्थ-तिर्यंच वक्र (बाँके) स्वभाव वाले. हेय उपादेय ज्ञान राहित. मायावी-फक्त स्वार्थीये पाप कार्य पर प्रीति वन्त. सो तिर्यंच गति जानना.

गाथा-मणन्ति जदोणिचं । मणेण णिउणा मणुकूडा ॥
जम्हा मणुझवाय सव्वे । तम्हाते मणुसा भणिया ॥१४८॥

अर्थ-हेय उपादेय पदार्थोंको मनन पूर्वक जाने ऐसा निपुण कला कैशल्यता वन्त. इच्छा होसो कार्य कर सके सो मनुष्य.

गाथा-दिव्वांति जदोणिच्चं । गुणेहि अठे हिय दिव्य भावेहिं॥
भासन्त दिव्व काया । तम्हाते भणिया देवा ॥५५०॥

अर्थ-दिव्य-अच्छी क्रिडा सदा करे, अणीमादि अष्टसिद्धीयोंके धारक होवे. महाँ ऋद्धि वन्त होवे, जिनके शरीर का दिव्य प्रकाश पडता होवे, रोगादि दोष रहित होवे सो देव गति जानना.

= दण्डक द्वारका और सामान्य जीव भेद के द्वारका खुलाशा विशेष जीव के भेद द्वार से जानना.

स्थावार जाति के ५ दन्डक, तीनों विक्लेन्द्रिय जीवों के ३ दन्डक, तिर्यंच पचेन्द्रिय का १ दन्ड मनुष्य का १ दन्डक, वाण व्यन्तर देवका १ दन्डक, जोतिषी देवका१ दन्डक, और विमानिक देवका १ दन्डक,

१३ सामान्य (संक्षेप से) जीवके भेद १४ हैं:—१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ वादर एकेन्द्रिय, ३ वेन्द्रिय, ४ तेन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असज्ञी पचेन्द्रिय, और ७ सज्ञी पचेन्द्रिय, इन सातों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता यों १४ भेद.

१४ विशेष (विस्तार से) जीवों के ५६३ भेद होते ते हैं सो कहते हैं नर्क के १४ भेद:-७ नर्क के नाम [१] घम्मा, [२] वंशा, (३) शीला (४) अंजना (५) रिट्टा, [६] मघा, और [७] माघवइ इन सातों के गोत्र-(१) रत्नप्रभा, (२) शर्कर प्रभा, (३) वालु प्रभा. (४) पंख प्रभा, (५) धुम प्रभा (६) तम प्रभा, ७) तमतमा प्रभा, इन सातों का पर्याप्ता और अपर्याप्ता, यों १४ नर्क के भेद । तिर्यंच के ४८ भेदः—पृथवीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय. इन ४ को सूक्ष्म वादर पर्याप्ता और अपर्याप्ता इन चारो से चौगुने करने से ४+४=१६ भेद हुवे. वनस्पति के ६ भेदः—सूक्ष्म, साधारन, और प्रत्यक, इन तीनों का पर्याप्ता और अपर्याप्ता. यों एकेन्द्रिय तिर्यचक २२ भेद हुवे. । वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रिय इन तीनों विक्लेन्द्रिय के पर्याता अपर्याप्ता यो ६ भेद, तिर्यंच पचेन्द्रिय, के-जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, और भुजपर, यह ५ सन्नी और ५ असज्ञी यों, १० इन १०, के पर्याता, और १० का, अपर्याप्ता यों २० भेद होते हैं. । सव तिर्यंच के ४८ भेद हुवे. ॥ मनुष्य के ३०३ भेद कहते हैं:-१ भरत, १ ऐराव्रत, १ महा विदेह, यह तीनों कर्मा भूमी मनुष्य के क्षेत्र जंबु द्वीपमें हैं. २ भरत, २ ऐरावत, २ महाविदेह, यह ६ क्षेत्र कर्मा भूमीके धातकी खन्ड द्वीप में हैं. और ऐसेही ६ क्षेत्र कर्म भूमीके पूष्करार्ध द्वीपमें हैं. यों १५ क्षेत्र कर्मा भूमीके हैं. । १ हेमव्रय, १ एरणव्रय, १ हरीवास, १ रम्यकवास, १ देवकुरु, १ उत्तरकुरु, यह ६ क्षेत्र अकर्म भूमी (युगल) मनुष्य के जंवू द्वीपमें हैं. और येही दो दो क्षेत्र यों १२ क्षेत्र धातकी खण्ड द्वीप में है. और येही १२ क्षेत्र पुष्करार्ध द्वीप में हैं. यों ३० क्षेत्र अकर्म भूमी मनुष्य के हैं. और जंबु द्वीपमें भर्त क्षेत्र की मर्यादा का करने वाला चूलहेम वन्त पर्वत, ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा का करने वाला शिखरी पर्वत, इन दोनों पर्वतों के दोनों खूनो से दो दो दाढों निकली हैं. यों दोनों पर्वतों, की ८ दाढों हैं. और एकेक दाढों पर सात द्वीप (डों-

गरीयों) हैं, यों ५६ द्वीप भी अकर्म भूमी मनूष्य हैं. सब १५+३०+५६+१०१ क्षेत्र मनुष्य के है, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता यों २०२ भेद, और इनी १०१ मनुष्य के १४ स्थान कों में समुर्छिम जीव उत्पन्न होवे सो, अपर्याप्ताही मरण पाते हैं १०१ भेद यों ३०३ भेद मनुष्य के॥ और देवताके १९८ भेदः—१ असुर कुमार २नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४ विद्युत कुमार, ५ अग्नि कुमार, ६ उदधी कुमार ७दिशा कूमार, ८ द्वीप कुमार, ९ पवन कुमार, १० स्थनित कुमार, (यह १० भवन पति देव) ११ अम्बे. १२ अम्ब रसे, १३ शाम, १४ सबल, १५ रुद्दे, १६ महारुद्दे, १७ काल, १८ महाकाल, १९ अस्सीपत्त, २० धनुए. २१ कुम्भीए, २२ वालु, २३ वेतरणी, २४ खरस्वर. और २५ महाघोष (यह १५ परमाधामी देवभी भवन पतिकी असुर कुमार जातिमें समावेश होता है.) २६ पिशाच, २७ भूत, २८ यक्ष, २९ राक्षस, ३० किन्नर, ३१ किंपुरुष, ३२ महोर्ग, ३३ गन्धर्व, ३४ इसीव, ३५ भुइव,३६ आणपन्नी, ३७ पाणपन्नी, ३८ कन्दिय, ३९ महाकन्दिय, ४० कोहड, ४१ पहंदेव. (यह १६ वाण व्यन्तर देव) ४२ आण झमक, ४३ पाण झमक, ४४ लेण झमक, ४५ सेण झमक, ४६ वत्थ झमक, ४७ फल झमक, ४८ फूल झमक, ४९ फल झमक ५० आभि पतिया झमक, ५१ वीज झमक (यह १० त्रिझमक देवों का भी वाण व्यन्तर देवों में समावेश होता है.) ५२ चन्द्र, ५३ सूर्य, ५४ ग्रह, ५५ नक्षेत्र, ५६ तारा. और ५७–६१ येही ५ स्थिर (यह १० जोतिषी देव) ६२ तीन पलिये, ६३ तीन सागरीये, ६४ तेरे सागरीये. (यह ३ किलविषी देव) ६५ साइच, ६६ आदित्य, ६७ वरण, ६८ वन्हि , ६९ गदतोय, ७० तुषित, ७१ अरिठ, ७२ अगिच्छ, ७३ अव्या वाध. (यह ९ लोकान्तिक देव) ७४ सुधर्मा, ७५ इशान, ७६ सनत कुमार ७७ मेहेन्द्र ७८ ब्रह्म, ७९ लान्तक, ८० महशुक्र, ८१ सहसार, ८२ आण ८३ पाण, ८४ अरण, ८५ अचुत, [यह १२ देवलोक] ८६ भद्दे, ८७ सूभद्दे, ८८ सुजाये, ८९ सुमान से, ९० सुदंशण, ९१ प्रियदंशण, ९२ आमोए, ९३ पडीभद्दे.९४ जसोधरे (यह ९ ग्रीवेक) ९५ विजय, ९६ विजयन्त, ९७ जयन्त, ९८ अपराजित, और ९९ सर्वार्थ सिद्ध. (यह ५ अनुत्तर विमान) यों सब ९९ जातिके देवताओं है. इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता यों दुगुने करने से सब १९८ देवताके भेद होते हैं. । और सब मिल ५६३ जीवों के भेद होते हैं. ॥

१५ जीवायेनी द्वार सो—जिसका वर्ण गन्ध रस स्पर्श एकसा मिलताआ

वे सो योनी एक और भिन्न होवे सो योनी दूसरी. ऐसी सब जीवे के उत्पन्न होनेकी माता पक्षकी सब ८४००००० (चोरासी लख) योनी है. सो कहते हैं:—पृथवीकाय कीयोनी ७००००० (सात लाख) अपकाय की योनी ७००००० (सात लाख) तेउकाय की ७००००० (सात लाख) वायुकायका ७००००० (सात लाख) प्रत्येक वनस्पति की १०००००० (दशलाख) साधारण वनस्पति की १४००००० (चउदह लाख) बेन्द्रिय की २००००० (दोलाख) तेन्द्रिय की २००००० (दोलाख) चौरिन्द्रिय की २००००० (दोलाख) तिर्यच पचेन्द्रिय की ४००००० (चार लाख) नर्क की ४००००० (चार लाख) देवता की ४००००० (चार लाख) ओर मनुष्यों के उत्पन्न होने की योनी १४००००० (चउदह लाख.)

१८ कुल कोडी द्वार—जैसे भ्रमर जातिके चौन्द्रिय पक्षी की योनी तो एकही गिनी जाती है. और एक भृंग पुष्प का, एक काष्ट का, एक गोबर का, योंकुल अलग २ गिने जाते हैं. सो सब जीवों के पिता पक्षके कुल एक क्रोड साडी सतागवे लाख क्रोड (१९७५००००००००००) कूल होते हैं. सो कहते हैं:—पृथवी काय के १२०००००००००००० (वारह लाख क्रोड) अपकाय के ७०००००००००००० (सात लाख क्रोड) तेउक काय के ३०००००००००००० (तीन लाख क्रोड) वायु काय के ७०००००००००००० (साति लाख कोक्र) वनस्पती के २८०००००००००००० (अठाइस लाख कोड) बेन्द्रिय के ७०००००००००००० (सातलाख क्रोड) तेन्द्रिय के ८०००००००००००० (आठ लाख क्रोड) चोरिन्द्रिय के ९०००००००००००० (नवलाख क्रोड) जल चर के १२५०००००००००००० (साडी वाररह लाख) स्थल चरके १०००००००००००० (दशलाख क्रोड) खेचर के १२०००००००००००० (वारह लाख क्रोड) उरपर के १०००००००००००० (दशलाख क्रोड) भुजपर के ९००००००००००००० (नवलाख क्रोड) नर्क के २५०००००००००००० (पचीस लाख क्रोड) देवता के २६०००००००००००० (छब्बीस लाख क्रोड) और मप्यनु के १२०००००००००००० (बारह लाख क्रोड) कुल उत्पन्न होने के पिता पक्षके होते हैं.

१६ सूक्ष्म वादर द्वार:—जो चरम (चमडकी) चक्षु (आंखो) कालेके निघा में नही आवे ऐसे शरीर के धारक पांचोंही स्थावरों के जीवों जो सम्पूण लो-

कर्मे काजळ की कूपली की तरह ठसो ठस भरे हैं. सो सुक्ष्म कहे जाते हैं. और जो आंखो देखने में आवे ऐसे बडे शरीर के धारक छेही काया के जीवों है. सो बादर कहे जाते हैं.

१८ त्रस स्थावर द्वारः—जो " आडय "–अन्डे से उत्पन्न होवे–पक्षी प्रमुख " पोयया"–कोथली में से निकले हाथी प्रमुख. " जराउया " जडसे होवे गौप्रमुख, " रसया "–रसया उत्पन्न होवे कीडे प्रमुख, "संसेयया" पशीने से उत्पन्न होवे ज्युं प्रमुख, "समुछिमा"समुर्छिम (सहजही)उत्पन्न होवे मक्खी प्रमुख, "उम्भीया", जमीन फोडकर निकले तीड प्रमुख,"उववाइया"उत्पन्नही होवे नर्क देव यह सब त्रस जीवों. इनके लक्षणः-अपने शरीरको–संकोच सके प्रसार सके, रुदन करे. भय भीत होवे, त्रास पावे. भग जावे, इत्यादि लक्षण जिनोके देखने में आवे सो त्रस जीवों. और जो एकस्थान स्थिर रहे पृथवी, पाणी, अग्नि हवा + वनस्पति, यह पांचों स्थावर जीवों जाणना.

१९ सन्नी असन्नी द्वारः—जिन जीवों का शरीर मात पिता के संयोग से नर्क के बिलों में × और देवता की सैय्या में उत्पन्न होवे सो सन्नी जीव इनके मन (ज्ञान) होता है. और जो समुर्छिम (सहजही) उत्पन्न होवे पांचो स्थावर तीनों बिकेन्द्रिय और ऐसे पचन्द्रिय तिर्यंच ÷ मनुष्य को असन्नी जीवों जानना. इन के मन नही होता हैं.

+ श्री उत्तराध्यायन जी सूत्र के ३६ वे अध्याय मे चालित गुणानुसार तेउ और वायु को भी त्रस कहे है.

× कोइ नर्क के बिलों में और कोइ नर्क की कुंभीयों मे नर्क के जीवों की उत्पति फरमाते है.

÷ मनुष्यके शरीर से उत्पन्न हुवे-उच्चार-बडीनीत, (विष्टा) पासवण-लघुनीत(मूत्र) खेल-खेंकार, संवेण-सेडा (नाकका मेल) उत्ते-उलटी, पित्ते-पित,सूए-राद. पुए-रक्त, सुके-वीर्य, सुके पुगळ पडी सारे—वीर्य आदि पुद्गल सूक कर पीछे भींजे उस में. मृत्युक शरीर, स्त्री पुरुष के संयोग, नगर के नाले. और लोक में रहे सर्व अशुची स्थानो में अन्तर मुहूर्व बाद असख्यात समुर्छिम (असन्नी) मनुष्यो उत्पन्न होते हैं.

२० भाषक अभाषक द्वारः—जो पर्याप्ते विकेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय मनुष्य नर्क देव बोल. है. सो भाषक कहे जाते हैं और सब अभाषक जानना.

२१ आहरक अनाहारक द्वारः—जब जीवों एक शरीर छोडकर दुसरे शरीर मे जाते हैं. तब रस्तमें केवल समुत्घात करती वक्त चौथे पांचवे समयमे और मोक्ष के जीवो तो अनाहारिक ही रहते है. बाकी के सब जीवों आहारिक ही होते है.

२२ ओजादि आहार द्वारः—जो उपजति वक्त में जीवों आपेल नजीक में रहे हुवे शुभा शुभ अहार गृहण करते हैं. जैसे सज्ञी मनुष्य तिर्यंच माता का रुद्र और पिता का शुक्र भोगवे,सो ओज आहार.२जो शरीर धारी जीवों समय२प्रति वायु आदि स्पर्शादि होते पदार्थ को गृहण करे, सो रोम आहार. और३ जो असन पानादि मुख द्वारा आहार गृहण करे सो कवल आहार किया जाता है. ऐसे तीन प्रकार के आहार होते हैं.

२३ सचितादि आहार द्वारः- १ पुष्फ फल बीजादि सजीव वस्तु का अहार किया जावे सो सचित्त आहार. २ निर्जीव किये हुवे अन्न पाणी आदि भोगनेमें आवे सो अचित्त आहार, और ३ कुछ सचित कुछ अचित ऐसे दोनों प्रकारके मिले पदार्थो भोगवने (खाने) में आवे सो मिश्र आहार यह भी ३ आहार.

२४ दिशी आहार द्वारः-ऊर्द्ध-ऊंची, अधो-नीची, और चारों तरफ की दिशाओ तिरछी. यों भी तीन दिशी गिनी जाती है और पूर्व, पश्चिम, उत्तर,दक्षिण ऊंची, और नीची यो ६ दिशी भी गिनी जाती है. इसमेंसे पांचों स्थावरों सूक्ष्म जो सर्व लोक में ठसोठस भरे हैं, उनमे के कितनेक लोक के अन्त में एक कोन में रहहै वो लोक के तरफ की तीनो दिशामें रहे पुद्गलों का तो आहार गृहण करते है परन्तु अलोक की तरफ से आहार गृहण नहीं करते हैं, क्योंकि-अलोक में पुद्गल हैही नहीं इस अपक्षा से जघन्य तीन दिशी आहार गृहण करे. और उत्कृष्ट लोकके मध्य रहे सर्व संसारी जीवों छेही दिशी का आहार गृहण करते हैं.

२५-२६ पर्याप्ता पर्याप्त द्वारः-१ प्रथमही आकर जिसस्थान में जीवों उत्पन्न होते हैं वो नजीक में रहे शुभा शूभ पुद्गलों कों आहार रूप से गृहण करते हैं. सो आहार पर्या. २ वो गृहण किया हुवा आहार सेही शरीर का बन्ध-आकार होता है, सो शरीर पर्या. ३ एकेन्द्रियादि जिस जाति में उत्पन्न हुवा हो उतनी इन्द्रियों का जिसमें आकार बन्धे सो इन्द्रिय पर्या. ४ उन इन्द्रियों के द्वार (छिद्रो) द्वारा जो वा-

यु का आवा गमन होवे सो श्वाशोश्वास पर्या. ५ मुखेन्द्रिय द्वारा व्यक्त अव्यक्त शब्दो चारण की शक्ति सो भाषा पर्या. और ६ विचार शक्ति सो मन पर्या. इन६ पर्या. में से अहार, शरीर, इन्द्रिय, और श्वाशोश्वास, यह ४ पर्या तो एकेन्द्रियों के होती है, बिकेन्द्रिय के और असन्नी पचेन्द्रिय तिर्यच के भाषा पर्या अधिक होने से पांच पर्या होती है. और सन्नीपचेन्द्रियके६ही पर्या होती है. परन्तु नर्क और देव मन और भाषा का बन्ध साथही करते हैं, इसलिये पांच पर्या कहते हैं, तोभी छेही पर्या पाती है. । इनछे पर्या में से जितनी पर्या जिसमे पाती है, उतनी पूरी नहीं बन्धे वहां तक अपर्याप्ता कहना. जो पर्या बन्धता पूरी पर्या किया बिना अपर्याप्ता ही मरजावे उसे लब्धि पर्याप्ता कहना. और जो पूरी पर्या बान्धले उसे पर्याप्ता कहना. अपर्याप्ता तो फक्त अन्तर मुहूर्तही रहता है. फिर इन्द्रियादि प्रगट नहोवे तो भी सत्ता रूप सब होजाती है.

२७ प्राण द्वारः—जिसके आधार से जीव रहे उसे प्राण कहते हैं. सो दश प्राण हैं—१ श्रोतेन्द्रिय बलप्राण, २ चक्षुन्द्रिय बलप्राण, ३ घणेन्द्रिय बलप्राण, ४ रसेन्द्रिय बलप्राण, ५ स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, ६ मन बलप्राण, ७ वचन बल प्राण, ८ कायाबल प्राण, ९ श्वाशो श्वास बल प्राण, और १० आयुष्य बलप्राण,.

२७ इन्द्रिय द्वारः—१ अगोचरी, २ गोचरी, ३ दुम्मुइ, ४ चरपरी, और ५ अनमानि. (यह पांचों इन्द्रिय के नाम) और १ श्रोतेन्द्रिय, २ चक्षुइन्द्रि, ३ घणेन्द्रिय ४ रसेन्द्रि, और ५ स्पर्शेन्द्रिय, (यह पांचों इन्द्रिय के गोत्र) [१] जो अगोचर–विनदेखे पदार्थो के भावको गृहण करे. सो अगोचरी और श्रुतज्ञान की बृद्धि करे या श्रोत्र छिद्ररूप होवे जीवका अजीवका और मिश्र शब्द ग्रहण करे सो श्रोतेन्द्रिय. इसकी अभ्यन्तर अवघेणा अङ्गलके अंसख्यातवे भाग और बाह्य संठाग कदम के पुष्प जैसा, इसकी विषय असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिके ८०० से धनुष्य की, और सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय के १२ योजन की अर्थात्–इतनी दूरका शब्द गृहण कर सके

× प्रथम की तीनो पर्य पुरी किये विना तो कोइ मरताहि नहीं, क्यों कि-आहार शरीर और इन्द्रिय पर्या पुरी हुवे बाद ही परभव का आयुष्य बन्ध होत है. और आयुबन्ध हुवे बाद ही जीव मरता है. इसलिये चौथी पर्यायबन्द तेही अपर्याप्ता मरता है.

है. । (२) गोचरी जो देखे हुवे पदार्थों को गृहण करेने से आंखो का नाम गोचरी हैं. अन्तः करण लश समुत्पन्न करे सो कृष्ण नील रक्त, पित, शुक्ल वर्णको ग्रहण करेसो चक्षुइन्द्रिय गोवहै.इसकी अभ्यन्तर अवेगणा अंगुलके असंख्यातवे भाग,और वाह्य संस्थान चन्द्रमा व मसूर की दाल जैसा, यह इन्द्रि चोरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय दोनोके होती है. जिसमें चौरिन्द्रिय की चक्षुइन्द्रिय की विषय २९५४ धनुष्यकी. असन्नी पचेन्द्रिय की ५९०८ धनुष्यकी और सन्नीपचेन्द्रिय की ४७२६३ योजन की. अर्थात इतनादुर का रूप गृगह करें. [३] दुम्मइ-जिसके दो मुख (दोस्वर) हैं. इसलिये नाकका नाम दुम्मइ है. और जो घ्राण दुर्गंच्छा समुत्पन्न होवेसो घ्राणेन्द्रिय गोव है. यह सुगन्ध दुगन्ध दोनोको गृहण करे,इसकी अभ्यन्तर अवगेणा अङ्गुलके अंसख्यातवे भाग,और वाह्य संस्थान धमण जैसे यह इन्द्रिय तेन्द्रिय चोरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय के होती है. जिसमें-तेन्द्रिय की घ्रणेन्द्रिय की विषय १०० धनुष्य की चौरिन्द्रिय की २०० धनुष्य, की असन्नी पचेन्द्रिय की ४०० धनुष्यकी और सन्नीपचेन्द्रियकी १२ योजन की, अर्थात-इतने दुर से वास गृणह करे सकते हैं. । (४) जो चरपर २ चले सो जवानका नाम चरपरी और कटु मधु तक्षिण अमल कषित रस को गृहण करेसो रसेंद्रीय गोव. इसकी अभ्यन्तर अवगेणा अङ्गुल के अंसख्यातव भाग, और वाह्य संस्थान छुरपले (उस्तरे) जैसा. यह इन्द्रिय वेन्द्रिय तेन्द्रिय चोरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय के पाती है. इसमें वेन्द्रिय की रसइन्द्रिय की विषय ६४ धनुष्य की तेन्द्रिय की १२८ धनुष्य, चौरिन्द्रियकी२५६धनुष्य, असन्नी पचेन्द्रियकी५१२धनुष्य, और सन्नीपचेन्द्रियकी १२ योजन की अर्थात इतनी दूर रहा हुवा पदार्थ का स्वाद लेसकते हैं. । (५) जिसके मन नहीं होवे ऐसे शरीर का नाम अनमनी है. और शीत, उष्ण,रूक्ष,चीकन कोमल, कठिन, गुरु लघुस्पर्शे को गृहण करनेके सबबसे स्पर्शेन्द्रिय कही जातीहै. इसका संस्थान विचित्र प्रकार का है. यह इन्द्रिय एकेन्द्रिय से लगा पचेन्द्रिय तक सब जीवों के होती है. इसमें एकेन्द्रिय की स्पर्शन्द्रिय का विषय ४०० धनूष्य, वेन्द्रिय की ८०० धनुष्य, तेन्द्रिय की १६०० धनुष्य, चौरिन्द्रिय की ३२०० धनुष्य, असन्न, पचेन्द्रिय की ६४०० धनुष्य, और सन्नीपचेन्द्रिय की १२ योजन. अर्थात इतनी दूर का स्पर्श समझ सकती है.

२९ इन्द्रि विषय द्वारः—१ श्रोतेन्द्रिय की-१ जीव शब्द, २ अजीव शब्द और मिश्रशब्द, ये ३ विषय और इन तीनों को शुभ अशुभ से दुगुने करने ६ होते

है. और इन ६ को राग द्वेष से दुगुने करने १२ बीकार होते हैं. (२) चक्षुइन्द्रिय की कृष्ण, हरित, रक्त पित और श्वेत यह ५ विषय. और इन ५ को सचित्त आचित्त मिश्र इन तीनों से तीगुने करने से १५ और इन शुभ अशुभ से दुगुने किये ३० और इन ३० को राग द्वेष से दुगुने किये ६० बीकार होते है. (३) घणेन्द्रिय की सुर्भिगन्ध, दुर्भिगन्ध, येह २ विषय. इन २ को सचित आचित्त मिश्र इन तीनों से तीन गुने करने से ६, और इन ६ को, रागद्वेष से दुगुने करने से १२ बीकार होते हैं. (४) रसेन्द्रिय की कटूं मिष्ट, तीक्षण, आम्लन, क्षारा, यह ५ विषय. इनको सचित्त आचित्त और मिश्र से तीगुने करने से १५ और इन १५ को शुभ अशुभ से दुगने किये ३०, और इन ३० को रागद्वेष से दुगुने करने से ६० बीकार होते है, (५) स्पर्शेन्द्रिय की गुरु, लघु, शीत, उष्ण, रुक्ष, चीकन, कठिण, सुकुमाल, यह ८ वीषय इन ८ को सचित आचित मिश्र से तीगूने करने से २४ हुवे, और इन २४ को शुभ अशुभ से दुगुने करने से ४८ हुवे, और इन ४८ को रागद्वेष से दुगुने करने से ९६ बीकार होते है, ५ इंद्रियकी सर्व २३ विषय और २४ बीकार होते हैं.

३० सज्ञा द्वारः—१ आहार सज्ञा-४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) सशक्ति से, (२) क्षुधा वेदनी के उदय, (३) आहार का स्थान देखने से और (४) आहार की बात सुनने चिंतवने से. २ भय सज्ञा ४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) अशक्ति से,(२) भय मोहनीय के उदय, (३) भयके स्थान गये. और (४) भयकी बात सुने चिन्तवे से ३ मैथुन सज्ञा ४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) रक्त मांस की पुष्टि से, (२) मैथुन मोहनीय के उदय, (३) मैथुन के स्थान गये, और (४) मैथुन की बात सुने चिंतवे. और ४ परिग्रह सज्ञा ४ कारण होवे-(१) परिग्रह के संग्रह से, (२) परिग्रह मोहनीय के उदय. (३) परिग्रह के स्थान गये. और (४) परिग्रह की बात सुनने चिंतवने से.। नर्क में भय सज्ञा अधिक। तिर्यंच में आहार सज्ञा आधिक। मनुष्य में मैथुन सज्ञा णाधिक और देवता में लोभ सज्ञा आधिक होती है.

३१ वेद द्वारः—१ जिस के योनी कुचादि अङ्गो पाङ्ग होवे, और जो पुरुष का सङ्गम इच्छे सो स्त्रीवेद. २ जिस के लिङ्ग मूछ आदि अङ्गोपाङ्ग होवे. और जो स्त्रीके सङ्गम की इच्छा करे सो पुरुष वेदे. ३ जिस के स्त्री चिन्ह व पुरुष चिन्ह निर्बीज होवे और, स्त्री पुरुष दोनों के संयोगकी इच्छा करे सो नपुंसक वेद.

३२ कषाय द्वारः—जिन परिणामों द्वार कर्मोका कष (रस) आवे सो कषाय

चार प्रकार की:—(१) प्रकृति को करूर बनावे सो क्रोध कषाय. (२) जो प्रकृति को करडी बनावे सो 'मान' कषाय, (३) जो प्रकृति को वक्र (बाँकी) बनावे सो माया कषाय और (४) जो प्रकृति को विस्तारे फैलावे सो 'लोभ' कषाय.

३३ लेशा द्वार:-जिन परिणामो कर आत्मा कर्मो कर लेपावे (भरावै) सो लेशा ६ प्रकार की;-(१) कृष्ण वर्ण, दुर्गंध, कटुरस तीक्षण स्पर्श सो द्रव्य कृष्णलेश्या, और पांचों आश्रवों आप सेवन करे, दुसरे के पास सेवावै. तीनों जोगों और पांचों इन्द्रियों को यथेच्छ छुट्टी प्रवर्तने दे, तीव्र परिणामों से आरंभ करे, हिंसा कर्ता अवकाय नहीं. क्षुद्र परिणामी, दोनों लोक के दुःख से डरे नहीं. इत्यादि लक्षण वाले को भाव कृष्ण लेशी जानना. (२) हरावर्ण दुर्गन्ध तीखारस और खरखरा स्पर्श सो द्रव्य नील लेश्या. इर्षावन्त, दूसरो के गुणोंको सहन कर सके नहीं. आप तपश्चर्या करे नही. दुसरो को करने देवे नही, तैसे ही ज्ञानाभ्यास भी आप करे नहीं दूसरों को करने देवे नही. नीवड कपटी. लज्जा रहित, रस गृद्धि, महा आलसी, फक्त आपहीका सुख चहावै इन लक्षणो युक्त होवे सो भाव नील लेशा वाला जानना, (३) ऊदावर्ण, दुर्गंध, रस कषायला और स्पर्श कठिन सो द्रव्ये कापूत लेश्या, और बॉका बोले, बॉका (स्वेच्छा) चले, अपने दुर्गुणो को ढके, दुसरे के प्रकट करे; कठोर वचनी, चोर, दूसरो की सम्पती देखकर झूरे इन लक्षणों वाले को 'भाव' कपोत लेशी जाणना.(४) वर्णरक्त, दुर्गंध, रस खट मिठा, स्पर्श नरम सो द्रव्य तेजु लेश्या और न्याय वन्त, स्थिर स्वभावी, शरल, कितुहल रहित, विनीत, ज्ञानी, दमित इन्द्रिय, दृढ धर्मी, प्रिय धर्मी, पाप करते हुवे उसके फल भुक्तने का डर रखे सो भाव तेजु लेशी जानना. (५) पीत वर्ण, सुगंध, मीठारस और कोमल स्पर्श सो सो द्रव्य पद्म लेश्या ओर, चारों कषायों पतली करे सदा उपशांत चित्त रहे, त्रियोगों स्ववश में रक्खे, थोडा बोले, इन्द्रियों का दमन धर्म मार्ग मे करे, सो भावे पद्मलेशी जानना. और (६) शुक्ल वर्ण, सुगंध, मधुर, रस और सुकुमाल स्पर्श होय सो द्रव्ये शुक्ल लेश्या और, आर्त ध्यान रौद्रध्यान को छोड धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान को ध्यावे, राग द्वेष को पतले किये या सर्वथा निवृते. इन्द्रियों को स्ववश में कर, समिता समता गुप्ति गुप्ता रहे, सरागी तथा वीतरागी चरित्र वंत. इन लक्षणों वालों को भावे शुक्ल लेशी जानना,

३४ जोग द्वार;—जो दुसरो से संबंध करे—जुड सो जोग तीन प्रकर के हैं:—१

जो अंत करण में विचार उत्पन्न होवे सो मान जो बचन बोले सो बचन और जो प्रत्यक्ष में दिखे शरीर रूप होवेसो काया जोग जानना.

३९ शरीर द्वारः—औदारिक शरीर सो—औदर—प्रधान श्रेष्ट अर्थात्—(१) इस की भव धारनीय शरीर की अवघेणा सब शरीरोंसे बडी है. (२) तीर्थंकर चक्रवर्ति बलदेव वासुदेव घणधर केवल ज्ञानी, साधु श्रावक इत्यादि उत्तम पुरुषों इसी शरीर में होते हैं. (३) और मोक्ष भी इसी शरीर से पाते हैं. इत्यादि गुण निष्पन्न इसका नाम आदारिक शरीर—उत्तम शरीर दिया है. यह शरीर हाड मांस रूधीर सुत्र भेज नाशे आदि सप्त धातु का पूतला होता है, मनुष्य तिर्यंचही इस शरीरके स्वामी होते हैं. (नर्क स्वर्ग के जीवोंके यह शरीर नहीं होता है) यह शरीर के छे संघयण और छेही प्रकार के संस्थान में होता है, इसकी अवघेणा भवधार नी की जघन्य अङ्गल के असंख्यातवे भाग. उत्कृष्ट १००० योजन झाजेरी होती है. और उत्तर विक्रय + करे तो जघन्य अङ्गल के संख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १००००० योजन की कर सकते हैं. और इस शरीर धारी जीवों है तो सर्व लोक में भरे हुवे परंतु चारण मुनिवरों तेरवे रुचक द्वीप तक जा सकते हैं इसलिये इसकी विषय रुचक द्वीपतक ही गिनी जाती है. और इस का प्रयोजन मोक्ष साध ने का है. २ वैक्रिय शरीरः—एक रूप के अनेक रूप और अनेक तरह के रूप बनावे इसलिये इस का नाम वैक्रिय शरीर है. इस शरीर के स्वामी नरक और स्वर्ग के जीवो होते हैं. नरक के जीवों का शरीर दुर्गंधि विद्रूप अशुभ पुद्गलोंका पूतला होता है. और देवता का शरीर महा दिव्य तेजस्वी सुरूप सुगंधि पूतला होता है. यह शरीर = असंघयणी और प्रथम अन्तिम संस्थानी होता है, इसकी भवधारनीय शरीर की अवघेणा जघन्य अङ्गल के असंख्यात भाग, उत्कृष्ट ५०० धनुष्य × की, और उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अङ्गल के

+जिनको तपादि के प्रभावसे लब्धि उत्पन्न हूइ होवे वो मनुष्य तिर्यंच वैक्रिय शरीर बना सकते है. जघांचरणा और विद्याचरण चारण मुनि दो तरह के होते है.

= संघयण हडीयोंका होता है, और नरक देव के शरीरमें हड्डीयों नहीं है इसलिये असंघयणी कहे है. परन्तु है महापराक्रमी. देवताके समचतुरस्त्र सस्थान और नर्क के हुंडसंस्थान है.

× सातमी नरक मे ५०० धनुष्य की है.

संख्यातवे भाग उत्कृष्ट१०००० योजनकी इसका विषय असंख्यात द्विप समुद्रों तक है, और इस शरीरका प्रयोजन इच्छित रूप वनानेका है. ३ आहारक शरीरः— यह शरीर आहारिक (आहार करने वाले) जीवों के होता है इसलिये आहारक शरीर कहा जाता है. यह एक हात भरका पुतला प्रथम संस्थानवन्त अत्यन्त सूक्ष्म दिव्य पुद्गलोंका होता है. इसके श्वामी चउदह पूर्वधारी मुनीराज होते हैं. इसकी विषय अढइद्विप प्रमाणें और प्रयोजन संशय छेदन व समव शरण के दर्शनका. ४. तेजस शरीरः— तेज अग्निके जैसा दाहक-पाचक गुणका धारक ग्रहन किये हुवे आहारादि पदार्थों को पचाकर रस वनाता हैं इसलिये तेजस शरीर कहा जाता है, इसका प्रयोजन अहार पचानेका है. और ५ कार्माण शरीर सो जिन पुद्गलों का तेजसने रस वनाया है. उन पुद्गलोंको द्रव्ये तो धातु अदिका जैसा शरीर होवे उस पणे और भावे ज्ञानावरणी आदि कर्मोकी प्रकृति पणे परिणमावे-परगमावे-हिस्सा कर बांटदेवे सो कारमण शरीर, इसका प्रयोजन संसारमें रुलानेका, यह तेजस और कार्मण इनदोनो शरीरके श्वामी सर्व संसारी जीवों हैं. और यह दोनो सूक्ष्म-अन्तिरिक शरीर होनेसे इनका वाह्यमे कुछ संघयण संस्थान नही होता है, परन्तु इन दोनों शरीरके धारक प्राणीयों छेही संघयण और छेही संस्थानों युत्त होते हैं. इन दोनों की अवघेणा जघन्य अङ्गल के असंख्यातवे भाग की उत्कृष्ट सर्व लोक प्रमाणें ÷ और विषय भी सम्पूर्ण लोक प्रमाणें जानना.

३६संघयणद्वार१.वज्र रुषभ नाराच संघयण-जो दोनों हडियोंकी सान्धि स्थिर करने पटीये जैसी तीसरी हडी होती है उसे परिवेष्टित पट्ट वज्र कहतेहैं. और उन तीनों हडीयोंका कर सन्धिकों द्रढ करे ऐसी चौथी हडी कीले रूप होवे उसे ऋषभ कहते हैं, और जिस स्थान दोनों हाडियों एकेक हडी के साथ ऑकडी से ऑकडी मिलावे वो फिर किसी उपाव से टूटे नहीं ऐसा दोनों हडीयों का आपास में दृढ वन्धन करने वाला म-

÷ केवल समुद्घात होती वक्त चौथे समय मे केवली भगवन्त सम्पूर्ण लोक व्यापी वनते हैं. तव तेजस और कार्मण दोनो शरिर के धारक होते है. इसलिये दोनों शरिर की अववेणा सम्पूर्ण लोक प्रमाण कही है.

रकट बन्ध होवे = सो नारच, + ऐसी तरह से जो संयुक्त हडीयों होती है जिसे स-घयण. "सो दोनो तरफ की हडीयों मरकट बन्ध कर बन्धि होवे, उसपर ऋषभ नाम क हडीने वेष्टित किया हो, उस में इनतीनों हडीयों भेदी हुइ कीली होवे, जिस से सर्व शरीर अत्यन्त स्थिर बलकट मजबूत बंधा हुआ होवे सो बज्र ऋषभ नारच संघयण. २ "ऋषभ नारच संघयण" सो जिस मे उपरोक्त सर्व रचना होवे फक्त बज्र की कीली नहीं होवै. ३ "नारच संघयण" सो पटीया और कीली दोनो नहोवे, फक्त मरकट बंध से हडीयों बंधी होवे ४ "अर्ध नारच संघयण" सो आधा—एकही तरफ मरकट बंध होवे, और दुसरी तरफ सादी कीली होवे ५ "कीलीक संघयण" फक्त सादी कीलीयों से ही हडीयों की सन्धि का मिलाप होवे और ६ "छेवट संघयण" सो किली बिना फक्त एकेक हडी के आश्रय मे दुसरी हडीयों रही होवे. धक्का लगतेही छूटपडे-

३९ 'संस्थान द्वार':—जिस आकार में शरीर परिणमा हो उसे संस्थान कहते हैं सो ६ प्रकार हैं:—१ 'सम चउरस्त्र संस्थान' सो सम—बरोबर, चउ—चारों, अस्त्र—खोने, अर्थात—पद्मासन से बैठे हूवे का शरीर दोनों पगों के घुटने का अन्तर और दोनो स्कन्धों का अन्तर इन चारों का अन्तर मध्य भाग बरोबर होवे, और सामुद्रिक शास्त्र के कथनानूसार प्रमाणोंपेत उत्तम लक्षण व्यंजन युक्त होवे सो सम चउ रस्त्र संस्थान २ "न्यगोध्र पारि मंडल संस्थान" सो न्यग्रोध नाम बड के झाड के जैसा, उपर का सर्वंग सूंदर प्रति पूर्ण शोभित होवे ओर नीचे बडवाइयों छूटने से अशोभनिक दिखे. तैसे कम्मर के नीचे के शरीर का विभाग विद्रूप होवे. ३ "सादि संस्थान" सादि-आदि नीच का शरीर उत्तम प्रमाणों पेत होवे, और कम्मर के उपर का शरीर अशोभनिक होवे. ४ "कूब्ज संस्थान" कु-खराब, बज-तरह, अर्थात् जिस के हाथ पग पेट ग्रीवा इत्यादि शरीर के अवयव उत्तम होवे, और हृदय पृष्ट पेट ही न होवे पीठपर छाती पर कुब्ज-हडीका टेकरा होवे सो कुब्ज संस्थान. ५ 'वावन संस्थान':—५२ अङ्गल प्रमाणे ठेंगणा शरीर होवै, मध्य का शरीर ठीक होवे और

= जैसे बन्दरी का बच्चा बन्दर को फलाग भरती वक्त उस के हृदय को दृढ ग्रहण करता है. तैसा ही जिन हडीयों दृढ बन्धन होवे उसे मारकट बन्ध कहा जाता हैं. मरकट नाम बन्दर का है.

+ बज्र-ऋषभ-नारच-यह तीनों शब्द समय भाषा के हैं जिसका ऐसा अर्थ होता है.

हाथ पांव छोटे होवे सो वावत स्थान, और ६ 'हुंड संस्थान' सो जिस के सब अङ्गो पाङ्ग खराब आधे जले मुरदे जैसे खराब होवे सो हुंड संस्थान.

३८ मरण द्वार:-मरती वक्त मे आतम प्रदेश दो तरह से निकल ते हैं;-१ जो कीडीयों की नाल की तरह समय २ धीरे २ थोडे २ प्रदेशों निकल कर जिस गति में जाना हो वहां का ताना वाना बान्धे, पीछे से ८ रुचक प्रदेशों के साथ आत्मा गमन करे उसे समोया कहते हैं. और २ जो बंदूक के भडाकेकी माफिक एकदम स व प्रदेशों साथ ही निकल जावे उसे असमोया मरण कहते हैं.

३९. विग्रह गति द्वार:-मरकर प्रथम शरीर त्याग जीवों दुसरि गति में दो त-रह से जाते हैं;१ जो जीव प्रथम शरीर को छोडे बाद सीधाइ एक समय मात्र में नि यमित गति में जाकर उत्पन्न हो जावे सो ऋजु गति. और २ जो शरीर छोडे बाद रस्ता भूलकर इधर उधर चल जावे वो जीव जघन्य एक मोड, मध्यम दो मोड और उत्कृष्ट तीन मोड तक खाता है, जितनी मोड खाता है, उतने ही समय अनाहारिक रहता है. फिर अनुपूर्वी नामक कर्म उसे खेंचकर नियमित गति में ले जाते हैं, उसे विग्रह गति कहते हैं.

४० स्वर्ग मर्याद द्वार:-स्वर्ग (देव लोक) २६ हैं:-१ सुधर्मा, २ इशान, ३ सनत कुमार. ४ महेंद्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहसार, ९ आण, १० पाण, ११ अरण, ओर १२ अचुत (इन १२ को देवलोक या कल्प कहते हैं, क्योंकि इन में रहने वाले देवताओ के मालक-राजा इन्द्र हैं. उन ने कल्प मर्यादा बन्धी है, उस मर्यादि प्रमाणें सर्व देवताओं चलते हैं. इसलिये इन १२ को कल्प भी कहते हैं.) १३ भद्दे, १४ सुभद्दे, १५ सुजाये, १६ सुमान से, १७ सुदंशणे, १८ प्रियदंसणे, १९ आमोह, २० सुपडिभद्दे, २१ यशोधरे, (इन ९ को ग्रीवेक कहते हैं क्योंकि यह स्थान पुरुषाकार लोक के ग्री-ग्रीवा-गरदन के स्थान हैं) २२ विजय, २३ विजयंत २४ जयन्त, २५ अपराजित, और २६ सर्वार्थ सिद्ध, (इनों को अनुत्तर विमान कह-ते है. क्योंकि यह सब वीमाणों में अनुत्तर-प्रधान-श्रेष्ठ हैं. और उपर के १४ स्वर्ग को कल्पतीत कहते हैं, क्योंकि-यहां देवता के शिरपर कोइ मालक-इन्द्र नहीं है. इसलि ये यह स्वेच्छा चारी हैं परन्तु यहां फक्त जैन लिङ्गी साधू ही उत्पन्न होते हैं इसलिये यह अमर्यादित कृतव्य कदापि नहीं करते हैं.)

४१. षटस्थान हानी बृद्धि द्वार;—यथा दृष्टान्त असत्य कल्पना से जैसे-पाव भर गुड, शेर भर शक्कर और मण भर मिश्री. इन पदार्थों में भाग (वजन) की अपेक्षा से गुड संख्यात गुण, शक्कर असंख्यात गुण, और मिश्री की अपेक्षा अनन्त गुणा. तैसाही गुण (मिठास) में—गुड संख्यात गुण मिष्ट, शक्कर असंख्यात गुण मिष्ट और मिश्री अनन्त गुण मिष्ट. यह ३ बोल भाग आश्रिय और ३ गुण आश्रिय मिलकर ६ बोल बृद्धि आश्रिय कहै. तैसे ही इन ६ बोलो को उलट गिन ने से ६ हानी के बोल होते हैं. यो षड गुण हानी बृद्धि के १२ बोल जानना

इति संसारा रोहण नामक तृतीय खंड

चतूर्थ खंड-धर्मा रोहण
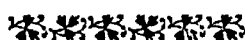
धर्मा रोहण के २३ द्वारोंका अर्थ.

१. मूल उपयोग द्वार:— मूल उपयोग दो हैं:- १ "साकार बहुता" सोज्ञान. अर्थात्-अकारादि स्वर और क कारादि व्यंजन मे अक्षर श्रूत रूप आकार होवे और जो वस्तुका वाह्य स्वरूप आकार जाने, इस विपेश ज्ञानको साकार बहुता कहते हैं, और १. अनाकार वहुता सो दर्शन. अर्थात् ज्ञानसे जानी हुइ वस्तुका सामान्य रूप गुण का जो अन्तःकरण में भाष होवे सो दर्शन निराकार उपयोग है

२ विपेश उपयोग १२ हैं. जिसमें सकार बहुताके ८ भेद:— १ मतिज्ञान सो बुद्धि निर्मळ होय। २ श्रुतिज्ञान सो शास्त्र सम्बन्धि जानपना. ३ अवधिज्ञान मर्याद प्रमाणें दूरवर्ती पदार्थोंको देखे. ४ मन पर्यवज्ञान अढीद्विपके अन्दरके जीवोंके मनकी बात जाने, और केवल ज्ञान सो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावको जाने (यह ५ज्ञान) और अवल कहे तीनों ज्ञानोंतो मिथ्यामति कर विपरीत भाष होणे लगे इसलिये उन तीनोंको १.मतिअज्ञान, २श्रुतिअज्ञान, ३ विभङ्गज्ञान, कर बोले जाते हैं. यह पांच ज्ञान और तीन अज्ञान मिल सकार बहुता उपयोगके ८ भेद हुवे. ॥ और अनाकार बहुताके चार भेद:— १. आखोंसे देखे हुवे पदार्थके गुण अन्तःकरण में भाष होवे सो 'चक्षु दर्शन' २. आखोंविन चारों इन्द्रियोंसे और मनद्वार गृहण किये पादार्थका अन्तःकरण में भाश होवे सो 'अचक्षु दर्शन' ३ अवधी ज्ञानसे गृहण किये पदार्थोंका

गुण अन्तःकरण में भाष होवे सो अवधी दर्शन, और केवल ज्ञानसे गृहण किये पदार्थोंका गुण भाष होवे सो केवल दर्शन. (यह १२ उपयोग हुवे.)

६ दृष्टिद्वारःजिससे पदार्थो स्वरूप प्रतिभाष होवेसो दृष्टितीन प्रकारकीः१जैसे शुद्ध नेत्रोंवाले को जैसे रङ्गका पदार्थ होताहै वैसाही प्रति भाष होता है तैसेहि जीवादि नवोंहि पदार्थोंका स्वरूप यथा तथ्या [है जैसा] जाने श्रद्धे सो ' सम्यग् दृष्टि. ' २ जैसे पीलियेके रोगीको स्वेत स्स्तुभी पीत(पीलेरंगकी) भाष होतीहै तैसे जिसको मिथ्या महोदय कर जीवादि पदार्थोका बिपरीत पणें भाष होवेसो मिथ्यात् दृष्टि और३ भोले मनुष्यकी तरह अनसमझ से पदार्थोंका स्वरूप कुछ यथार्थ समझे कुछ यथार्थ श्रद्धेसो मिश्र दृष्टि.

७ भव्याभव्य द्वारः— जैसे अनाज अग्नि पाणी और भाजनका संयोग मिलनेसे सीझता—पकता है. फिर वो अंकूर समुत्पन्न करने जैसा नहीं रहता है. तैसेहि जो ज्ञान दर्शन चरित्रकी पूर्णता को प्राप्त हो सर्व कर्मोंक बिद्वंश कर सीझते हैं मोक्ष प्राप्त करते हैं उन्हे भव्य जीव कहेजते हैं और २ जैसें मूंग मोठ अदि कितनेक अनाज में कूचेर कोरडू अनाजके दाणें निकलते हैं, वो मणोंबन्ध पाणी अग्निके संयोग में बर्षोंबन्ध सीझानेसे भी सीझते—पचते नहीं हैं परन्तु अंकूर समुत्पन्न हो बृद्धि पाते हैं, तैसेहि जो जीवों व्यवहार ज्ञान दर्शन चरित्र की क्रोड पूर्व तक अनन्त भवमे पालन करके भी भव घटानेकी रसायण न निपजासके, मोक्ष प्राप्त कर सके नहीं. अनन्त भव भ्रमण कराही करें सो अभव्य.

८ " चरमाचरमद्वारः "— ४ गति, २४ दंडक, ८४००००० जीवायोनी और १,९७५०००००००००००० कुलोंमें से एकही गति, एकही जाती एकही योनी, या एकही कुलका चरम पणा कर देवे, अर्थात् फिर उसमे कदापि उत्पन्न होवो नहीं सो चरम. और जिसने एकभी भव कभी नही किया हो. हाल सबस्थान जन्म मरण कर स्पर्श ना बाकीरहा होवे सो अचरम.

९ परितापरितद्वारः—जो जीवों अनन्त कालसे संसारके सन्मुख मुख करके परिभ्रमण कर रहे थे, वो जीवों कर्मांश पतला पडनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानका त्याग कर संसारके तरफ पीठकर मोक्षकी तरफ मुखकियवो कदापि सम्यकत्वसे पडवाइभी होगये तो भी पीछे चडकर जरुर मोक्ष पावेंगे. इसलिये उन्हे परत कहना, और जो मोक्ष सन्मुख नहीं हुवा सो अपरत.

१० पद्वीद्वारः— पद्वीयों २३ होती है, जिसमें ७ एकन्द्रिय रत्नकी ७ पचन्द्रिय

रत्नको, ओर ९ मोटी पद्धि. इनका स्वरूपः— १ चक्र रत्न सों. छेहो खण्ड साधणे का रस्ता वतावे. २ 'छत्ररत्न' १२ योजन में छांहकरे शीत ताप पाणी से बचावे. ३ 'दण्डरत्न' वेताड पर्वत की गुफाके कमाड खोले, रस्ता सम करे- ४ 'खड्गरत्न' हजारो कोश दूर रहे शत्रुकी भी घातकरें [यहचारों चक्रवर्तिकी आयुध शाळामें उत्पन्न होते हैं.] ५ 'मणिरत्न' बारह योजनमें चन्द्रमाके जैसा प्रकाश करे. ६ कांगुणीरत्न सोनारके ऐरण के जैसा चारों तरफ चार २अङ्गुल होता है, इससे तमस गुफाम आर खण्ड मापात गुफामें एकेक योजनके अन्तरसे गोलचन्द्रमा जैसे मण्डल अलेखते हैं. जिससे चक्रवर्ती जीते रहे, वहांतक उस रस्तमें प्रकाश बना रहता है, और ७ 'चरम-रत्न गंगा सिन्धु जैसे वडी छोटी नदीयो मे डालनेसे१२ योजनकी नावारूप बन जाता है जिसमें सर्व सेना युक्त चक्रवर्ती स्वारहो पार हो जाते हैं. तथा खेतरूप बन सर्व पदार्थ निपजा देता है (यह तीनो लक्ष्मी भंडारमे उपजते हैं) (यह ७ एकेन्द्रियरत्न) ८ 'सेनापतिरत्न' भरत क्षेत्र में के वीचमेंके दोनों खण्ड छोडकर वाकीके चारों खण्डो का साधन करे. ९ 'गाथापति' चरम रत्नको खेतस्वरुप बना उसमें अनाज मेवे मशाले बावे, वो एक प्रहर में सब तैयार हो जावे, उने दुसरे पहर में रान्ध कर-पका कर तीसरे पहर में सब सेना को जीमा देवे. १० 'वढाइ रत्न'—चक्रवर्ती का जहां पडाव होवे वहां बारह योजन लम्बा नव योजन चोडा राज मेहल पोषध शाळा सहित एक मुहुर्त मात्रमें नगर वसा देवे ११ 'पूरोहित रत्न'महूर्त शकुन स्वप्न फल सामुद्रिकादि बता वे. शान्ति पाठ पढे. (यह चारों रत्न चक्रवर्ती की नगरी में उत्पन्न होते हैं.) १२ 'स्त्री रत्न'—श्री देवी-वेताड पर्वत पर उत्तर दिशा की विद्या धरों की श्रेणि में राज कन्या महा दिव्य रूप वन्त परमाणों पेत उत्तम लक्षण व्यजन सम्पन्न होती है, कुमारी का की तरह सदा योवन वन्ति रहती है, १३-१४ अश्व रत्न और गज रत्न दोनों वेताड पर्वत के मुल में उत्पन्न होते हैं. खुद चक्रवर्ती को सवारी में काम आते हैं. (यह ७ पचेन्द्रिय रत्न] (यह १४ ही रत्ना चक्रवर्ती राजा के होते है. इनकी एकेक के एकेक हजार देव अधिष्टायक होते हैं.) १५ 'तीर्थंकर' चारों तीर्थोके स्थापक सर्व जगतके पूज्य महन धर्म गुरू सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते हैं. १६ 'चक्रवर्ती' सपूर्ण भरत क्षेत्र के श्वामी, हजारों देवों के पूज्य, महा ऋद्धि वन्त महाराजा होत हैं. १७ 'वासुदेव' आधे भरत के श्वामी चक्रवर्ती से आधी ऋद्धि वाले होते हैं.१८'वलदेव' वसूदेव के वडे भाइ होते हैं, परन्तू ऋद्धि आधीही पाते हैं. (यह ४ उत्तम पुरुष) १९

केवली' सर्वज्ञ सर्व दर्शी, महाज्ञानी महात्मा. २० 'साधु' २७ गुण युक्त. २१ श्रावक-२१ गुणयुक्त. २२ 'सम्यक दृष्टि'-शुद्ध श्रद्धावन्त और २३ मंडलिक राजा-एक देश का अधिपति. (यह ९ महा पद्वी.)

११ आत्मा द्वारः-जो खुद जीव द्रव्यहै सो द्रव्यात्मा. २ उसकी क्रोधादि कषाय मय प्रणाति परिण में सो कषायात्मा, ३ मनादि जोग में प्रणाति परिण में सो जोगात्मा. ४ शुभाशुभ उपयोग में परिण में सो उपयोगात्मा. ५ ज्ञान में परिण में सो ज्ञानात्मा, ६ दर्शन देखने में पारिण में सो दर्शनात्मा. ७ चारित्र रूप परिणमा परिण में सो चारित्रात्मा. और ८ शुभाशुभ कृत्यों में वीर्य वन्त उद्यम वन्त होवे सो 'वीर्यात्मा.'

१२ ध्यान द्वारः-सो ध्यान ४ प्रकार के होता है:—१ अर्त ध्यान, २ रौद्र-ध्यान (यह दोनों ही खराब हैं. सो छोड ने योग्य हैं. और) ३ धर्म ध्यान, ४ शुक्ल ध्यान (यह दोनों अच्छे हैं सो आदरणीय है.)

१३ ध्यान के पाये द्वारः-चारों ध्यान के १६ पाये होते हैं: प्रथम आर्त ध्यन के ४ पायेः-(१) अनिष्ट के संयोग से, (२) इष्ट के वियोग से, (३) रोग के उद्भवने से. और (४) भोग की इच्छा से जो विचार होवे सो आर्त ध्यान +। दुसरा रौद्र ध्यान के ४ पाये-(१) हिंसा की (२)झूठकी(३) चोरी की और(४) विषय के संरक्षण की इन चारों की अनुमोदना कर ते जो विचार होवे सो रौद्र ध्यान. ×। तीसरे धर्म ध्यान के ४ पायेः-(१) आणा विचयः-जिनाज्ञा में रहने का, (२) अपाय विचय कर्मो के नाश का, (३) विपाक विचय-कर्मोके फल का. और (४) संस्थान विचय-

---

+ आर्त ध्यान के ४ लक्षण-१ आक्रन्द करे, २ शोग करे, ३ रुदन करे, और ४ विलापात करे.

÷ रौद्र ध्यान के ४ लक्षण-१ थोडा दोष लगावे, २ बहूत दोष लगावे. ३ अज्ञानी, ४ अविचारी.

× धर्म ध्यान के ४ लक्षण—१ जिनाज्ञा आराधने की, श्रुत चारित्र धर्म आराधनेकी ३ शास्त्र श्रवणकी और४ उपदेश ग्रहण करनेकी—इन चारोंकी रूची वाला होवे। धर्म ध्यानी के ४ आलम्बन-१ सूत्रादि धर्म ग्रन्थों का पठन करे, २ संशय निवार ने प्रश्न पूछे. ३ असंखालित करने पर्यटना करे, और ४ धर्म वृद्धि करने धर्म कथा कहे. धर्म ध्यानी की ४

लोक के संस्थान का. वीचार होवे सो धर्म ध्यान ÷। चौथा शुक्ल ध्यान के ४ पाये" (१)पृथक्त्व वीतर्क-अलग २ पर्यायों को वीतर्क सहित विचारे, (२)एक्त्व वीतर्क—एक' ही पर्याय को वीतर्क सहित त्रिचारे विचार—पलटे नहीं. (३) सूक्ष्म क्रिया अप्रति पाति फक्त इर्यावही क्रिया. और अपडवाइ होवे. और ४ 'व्युछिन्न किरित्त अनिवृत्ति ध्याता' सर्व क्रिया रहित मोक्ष मार्ग में अखण्ड प्रवर्तक.

१४ 'द्रव्य द्वार'-द्रव्य ६प्रकर के:—१. धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति, और ६ पुद्गलास्ति.

गाथा—परिणाम जीव मुत्ता। सपएसा एग खित्त, किरियाए॥
णिच्चं कारण कत्ता। सव्व गइ इयर अपवेसा ॥१॥

अर्थ—छेहो द्रव्यों में से 'परिणाम' जीव और पुद्गल अन्य द्रव्यों में परिणम ने से परिणामी हैं. और चारों द्रव्यों निज स्वभाव में ही रहनेसे अपरिणामी हैं. 'जीव जीवतो चेतन्यादि लक्षण युक्त जीव है और पांचों निर्जीव है. 'मुत्ता'—पूद्गल देखने में आते हैं सो मूर्ति है. और पांचो अमूर्ती है. 'सपएसा'-काल है सो अप्रदेशी है' और पाचों सप्रदेशी है, जिस में आकास्ति और पुद्गल आस्ति तो अनन्त प्रदेशी है, वाकी तीनों असंख्यात प्रदेशी हैं. 'एगे'-छहों द्रव्यों में-धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशस्ति यह तीनों एक एक द्रव्य हैं. और काल जीव पुद्गल अनन्त हैं. 'खेत्त'-आकाश तो सब जीवों को अवगहा (स्थान) देता है, इसलिये क्षेत्र हैं. और पांचों द्रव्य आकाश रूप क्षेत्र में रह ने से क्षेत्री हैं. 'किरियाय' जीवके और पुद्गल के संयोग से

अनुप्रेक्षा—१. पुद्गलिक वस्तु अनित्य जाने. २ संसार का सम्बन्ध असार जाने, ३ आत्माको एकली जाने, और ४ संसार को दुःख का कारण जाने.

÷ शुक्ल ध्यानी के ४ लक्षण:—१. बाह्य अभ्यन्तर संयोग से सदा अलग रहे. २राग द्वेष नाश करे या पतले करे. ३ तीनों योगो को स्थिरी भूत करे. और ४ सर्वथा मोहका नाश करे. ३ शुक्ल ध्यानी के ४ आलम्बन:—१ शान्त स्वभावी होवे. २ निर्लोभी होवे, ३ शरल स्वभावी होवे. और ४ निर्भिमानी होवे. । शुक्ल ध्यानी की ४ अनुप्रेक्षा—१. पाचों आश्रय को अपाय का कारण जाणे. २ अनन्त ससार की प्रवृति से निवृते. ३ अशुभ की उत्पातिसे दूर रहे. और ४ पूद्गलों के स्वभाव मे परिणमें नहीं.

हरेक किरिया निपजती है. और चारों द्रव्य अक्रिय हैं. 'णिच्चं' पुद्गलों की पर्यायका पलटा होता ही रहता है। जिस से अनित्य है. और पाचों द्रव्य नित्य हैं. कारण'– जीव के पांचों द्रव्य काम में आवे इसलिये पांचों कारणी, जीव अकारणी. 'कत्ता'– जीव ज्ञान युक्त है इसलिये सब कार्यों का कर्ता है. पांचों अकर्ता हैं. "सव्वगइ इयर अपेवसा" और सर्व स्थान एक आकाश द्रव्य भारा है.

१५ 'परिणाम द्वार'–सो जो घटते जावे–पढते जावे उसे हायमान परिणाम कहते हैं. जो बढते जावे सो वृद्धमान. और जो सदा काल एकसे बने रहै घटे बढे नहीं सो अवुठीया परिणाम.

१६ वीर्य द्वार–सो१जो अज्ञानी अव्रत्ति जीवों उद्यम करते हैं. पराक्रम फोडते, हैं, सो बालवीर्य.२ जो श्रावक जन कुछ धर्म मार्गमें और कुछ संसार मार्गमें दोनों तरफ पराक्रम फोडते हैंसो बाल पण्डित वीर्य. और ३जो मुनिराजों एकान्त धर्मार्थ पराक्रम फोडते सो पण्डित वीर्य

१७ 'तीर्था तीर्थ द्वार'–जो संसार समुद्र के किन्नारे आ रहे ऐसे मोक्षगामी साधु साध्वी श्रावक श्राविका को तीर्थ कहे जाते हैं. और चारों सिवाय जो जीवों है. वो अतीर्थी कहे जाते हैं.

१८ साम्यक्त्व द्वारः— सो सम्यक्त्व ५ हैं;– १ उपशम, २ क्षयोपशम, ३ सास्वादनं, ४ वेदक, और ५ क्षायिक, इनका स्वरुप (१)किसी जीवको पहिली किसी भी वक्त साम्यकत्वकी प्राप्ति न हुइ. वो जीव काललब्धि परिपक्व होते स्वभावसे ही अकाम [परवश्य] निर्जराकर आयुष्य कर्म+विना सातों कर्मोंकी स्थिति १ कोडाकोडी सागरोपम में पल्यो पमके असंख्यातवे भाग कम करे. और कदापि नवीन बन्ध करे तो भी इतनी स्थितिके अन्दर कांही करें, परन्तु ज्यादा नहीं करें ऐसे कर्म हलके होने से जीव मिथ्यात्व मोहनीय के दल को उदय भावसे निवार सात्तमें दल स्थापन करे जसे– कीचडसे डोहले हुवे पाणीमें केतकका बीज डालनेसे कीच जम जाता-नीचे बैठ जाता है तैसे अनन्तानबन्धि चौक और तीनों मोहनीयको उपशमावे उसवक्त मिथ्यात्व रस नहीं हो शका हैसो उपशम सम्यकत्व. जेसे वो पाणी हलनेसे पीछा गदलाहो जाता है, तैसे इस सम्यकत्व वाले के अन्तर मुहूर्त वाद पीछा उदयहो जाता हैं. (२) क्षयोपशम सम्यकत्व सो पहिली १ प्रकृत्तियों तो प्रदेश उदय मेंही है और १ सम्यकत्व मोहनीय विपाक उदय में है. इसलिये इसमें चल मल और अवगाढ तीनों दोषों रहतेहै.

जैसे वृद्ध पुरुष आश्रय निमित्त जैष्टिका [लकडी] गृहण करता हैं परन्तु उसे दृढ भी गृहण नही कर शक्ता है, और छोडताभी नहीं है, तैसेही इस साम्यकत्व वाले तीनों तत्त्वो की शुद्ध श्रद्धा तो रखतेहैं परन्तु इस लोकके सुखार्थ उनका भजन सेवन करें पुद्गलिक सुख की वांछा करे. इनने मिथ्यात्वकी वर्गणा उदय में आइ उसका क्षय किया परन्तु सम्यकत्व मोहरूप कुछ अंश रहगया सो क्षयोपशम सम्यकत्वी. (३) सास्वादन सम्मकर्त्वा सो – उपरकही हुइ उपशम और क्षयोपशम सम्यकत्वमें वर्तते अनन्तान बन्धिका उपशम कियाथा उसका पुनः उदय होनेसे मिथ्यात्वकी तरफ जीव गमन करें, वो अन्तरालवर्ती रहे वहां तक सास्वादन सम्यकत्व रहती है. (४) 'वेदक सम्यकत्व - क्षयोपशम सम्यक्त्व में उपशमाइ हुइ प्रकृतियों सर्वथा क्षयकर आगे वडे, और क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सके उसके बीच में उन सत्तों प्रकृतियों को क्षपाने के लिये १. समय मात्र वेदे सो वेदक सम्यक्त्व. (५) 'क्षायक सम्यक्त्व' ऊपरोक्त सातों प्रकृति का सर्वथा नाश होनेसे सर्व दोपो रहित अत्यन्त विशुद्ध निर्दोष जो गुणकी प्राप्ति होवे सो क्षायिक सम्यक्त्व. यह सादि अनन्त होती है.;

१९ "संयता संयति द्वारः"–जो सर्व विरति साधु होवे सो संयति जिनके बहुत व्रत होवै और कुछ आगर होवे सो श्रावक संयातासयंति. और जिनके कुछ भी व्रत नहोवे सो असंयति.

२० लिङ्ग द्वारः–जिस भेप को देख लोको को परतीत होवे की यह अमुक (गृहस्थ या साधु) पुरुप हैं. उसे लिङ्ग-चिन्ह कहा जाता है. सो तीन प्रकार के होते हैं: —१ जो रजुहरण मुहपति आदि जैन मुनिके भेपके धारकसो स्वलिङ्ग, जोचिमटाघोटा भगवे वस्त्र आदि बावा जोगी भेपके धारक सो अन्य लिङ्ग, और ३पगडी अङ्गरखा आदि गृहस्थ का भेप सो गृहलिङ्ग.

२१ चारित्र द्वारः–चारों गतिसे उद्धार कर आत्मा को पञ्चम मोक्षगति में पहोंचावे तथा चारों कापाय आत्मा में उद्धार कर शान्त दान्त आदि गुण प्रगटावे सो चारित्र के ५ प्रकारः–१ सामायिक चारित्र–द्रव्य से सावद्य (पाप कारी) योगों की प्रवृत्ति और भावसे रागद्वेप मन्दहो परिणामों में सुख दुःख के विषवाद रहित जो समगुण की प्राप्ति होवे सो सामायिक चारित्र, इसके दो भेदः– (१)प्रथम और चरम तीर्थंकरों के मुनीवरों अवल सामायिक चारित्र धारण करतेहै. फिर उनको जघन्य ७ दिन बाद, मध्यम ४ महीने बाद, और उत्कृष्ट ६ महीने बाद छेदोस्थापनीयचारित्र

में आरोपण किये जाते हैं. सो 'इतरीय सामायिक चरित्र' × और (२) मध्यके २२ तीर्थकरों के साधु जाव जीव पर्यन्त सामायिक चारित्र वन्तही रहते हैं. सो अवकाहीय सामायिक चारित्र. २ छेदो स्थापनीय चारित्रसो जैसे छिदे फटे हुवे वस्त्र को जोड कर (सीकर) बरोबर करते हैं, तैसेही चारीत्रीयों दोषित आत्मा को फिर विशुद्ध करे सो छेदोस्थापनीय चारित्र इसके दो भेद:-१ प्रथम चरम तीर्थकरों के वारेमे के साधुओं मूलगुण पंच महाव्रतों उत्तर गुण समिती गुप्ति प्रत्याख्यानादिमें अनाचीर्ण लगाकर घातिक होवे उनको पुनः संयम में स्थापन करने नवेसिर महाव्रतों का आरोपण करे, जिससे पूर्व पर्याय का विच्छेद होवे सो सअतीचार छेदोस्थापनी. और इतरीये सामायिक चारित्रीये को किसी भी दोष के विन सेवन कियेही ७ वे दिन ४ महीना या ६ महीने में जो महाव्रतों का आरोपण किया जावे सो तथा तीर्थकरोंका सासण का संक्रमण होते अवस्थित कल्प मे स्थितित कल्प अङ्गिकार करे निर्दोषीको भी छेदोस्थापनी किये जाते हैं. + सो निरती चार छेदोस्थापनी ३ परिहार विशुद्ध चारित्र सो उत्तम तप, उत्तम परिणाम, उत्तम पर्याय से सदा शुद्ध व्रति रहे सो परिहार विशुद्ध चारित्र, इसके दो भेद:-(१) परिहार विशुद्ध चारित्र में प्रवेश करते मुनिको निरविसमान कहते हैं यह और (२) तपसे निवृत हुवे मुनिको निराविष्टकाय कहते हैं, यह परिहार विशुद्ध चारित्र प्रथम और आन्तिम तीर्थकरों की वक्तमें तीर्थंकर विराज मान होते हैं उसही वक्त होता है. २२ तीर्थकरों के वारे में महाविदेह क्षेत्र में या तीर्थकर मोक्ष गये बाद यह चारित्र नहीं होता है. और जिनोंने पहिले परिहार विशुद्ध चारित्र अङ्गि कार किया हो उनही के पास दुसरे परिहार विशुद्ध अङ्गिकार कर सक्ते हैं. दुसरे के पास नही यथा दृष्टान्त जैसे ९ साधु ओं परिहार विशुद्ध चारित्र पालने प्रवर्त हुवे. उनमें से एक साधुतो कल्पास्थित होवे. उनके समिप्य आठों साधु समाचारी का वाहन करें, उन आठ साधुओंमें से चार साधु तप करे,

× कितनेक आचार्या गृहस्थ की सामायिक को इतरीय सामायिक चारित्र कहते हैं. और साधु की सामायिक का अवकाहीय सामायिक चारित्र कहते हैं.

+ जैसे श्रीमहावीर श्वामी के सासण की प्रवर्ति हूवे बाद पार्श्व नाथजी के संतानीये केशी श्रमणको गोतम स्वामी ने छे दो स्थापनीय चारित्र दे भेले किये.

सो परिहारिक साधु कहे जाते हैं. और चार साधु उनकी वैयावच्च करें सो अपरिहारक साधु कहे जाते हैं. ६ महीने हुवे वाद परिहारिक (तपश्वी) साधु ओं तो अपरिहारिक वैयावची वनते हैं. और अपरिहारिक परिहारिक वनते हैं. फिर छे महिने हुवे वाद जो पहिले एक साधु कल्प स्थित रहेथे वो परिहारिक वनतेहैं. और आठों उनकी वैयावच्च करते हैं. अवजो परिहारिक साधू तप करते हैं वो उष्ण ऋतु में चघन्य चौथ. (१ उपवास) मध्यम छट्ट [वेला] उत्कृष्ट अठम (तेला) करे, शीत ऋतूमें जघन्य छट्ट (वेला) मध्यम अठम(तेला)उत्कृष्ट दशम(चौला) और वृषा ऋतमें जघन्य अठम (तेला) मध्यम दशम(चोला)उत्कृष्ट द्वादशम(पचोला)करे,और जो अपहारिक साधु यद्यपि नित्य आहारिक रहते हैं, तद्यपि आंविल करते हैं. यों १८ महिने हुवे वाद जो इच्छा हो तो पूर्वोक्त परे पुनः तपकरे, और नहीं तो पीछे गच्छमें मिलजावे, ऐसी तरह तप करेसो परिहार विशुद्ध चारित्र कहा जाताहै. यह चारित्र छेदोस्थापनीय चारित्र यों केहिहोता है. दुसरे के नहीं और २९वर्ष की वय हुवे वादही अङ्गीकार किया जाताहै क्यों कि–९ वर्ष की वय हुवे वाद तो दीक्षा ग्रहण करे और २० वर्ष की दीक्षा हुवे वाद स्थिवर पणा प्राप्त होवे तवही परिहार विशुद्धि होसकते हैं. ४ 'सूक्ष्म सम्पराय चारित्र' सूक्ष्म अत्यन्त पतली, सम्पराय कषाय अर्थात् फक्त संज्वल का किंचित मात्र लोभ रुप कषाय रहगइ है ऐसे दशवे गुणस्थान वर्ती मुनिको सुक्ष्म सम्परायी चारित्री कहते हैं. इसके दो भेद.–(१) उपशम श्रेणि से गत इग्यारवे गुणस्थान से पडते हुवे दशवे गुणस्थान में आवे उनके संक्लेशमय परिणामों की वृद्धि होने से संक्लेश मान सूक्ष्म सम्परायी कहे जाते हैं, और (२)नववे गुणस्थान में विषय कषाय रहित हो दशवे गुणस्थान में आये हैं, सुक्ष्म लोभ रहा है. उसे उपशमाने तथा क्षपाने के उद्यमीहै अन्तर मुहूर्त वाद उपशम कषायी वीतरागी होने वालेहैं. सो विशुद्ध मान चारित्री. ५ यथाख्यात चारित्र यथा जैसा. ख्यात फरमाया अर्थात श्रीतीर्थंकर भगवान ने शास्त्र, द्वारा जैसा आचार गोचार फरमाया है, वैसाही वरोवर किंचितही न्युन्या धिकता रहित वीतरागी भाव से पाले सो यथा ख्यात चारित्र, इसके दो भेद.-(१) उवशान्त मोह गुणस्थान वर्ती वर्तमान में सर्वथा कषाय का उपशम कर शान्त स्वरुपी–यथाख्यात चारित्री हुवे हैं. परन्तु उनके कषाय सत्ता रुप वनी है सो उनको निश्चय से गिरावेगा इसलिये उसे पडवाइ यथाख्यात चारित्र कहना. और (२) वारवे तेरवें चउदवे गुणस्थान वर्ती सर्वथा कषाय का मूलमें से नाश कर अकषाइ वीतरागी वने वो

पीछे कदापि पडे नहीं सो अपडवाइ यथाख्यात चारित्र.

२२ नियंठा द्वारः–कर्म रूपी ग्रन्थी-(गॉठ) से छूटने वाले होवे सो निग्रन्थ ६ प्रकार के होते हैं.–१ 'पुलाक निग्रन्थ'–यथा दृष्टान्त–जैसे खेत में से शाली नामक धन्य के वृक्षों को काट कर एकस्थान ढग किया, उस में-धान्य-अनाज तो थोडा और कचरा (घांस) बहूत होता है. जिन में चारित्र के गुण तो अनाज जैसे थोडेही पाते हैं. और दोष बहूत बड पावे हैं. ऐसे निग्रन्थ के दो भेदः–(१) लब्धि पुलाक सो जो पुलाक लब्धि के योग से कोपायमान, हुवे चक्र व्रति की सेना का चूर्ण कर डाले, और (२) दुसरे प्रति सेवना पुलाक के दो भेदः–(१) मूल गुण पुलाक सो महा व्रत का भङ्ग करे, और (२) उत्तर गुण पुलाक के ५ भेदः–एक-ज्ञान पुलाक सो ज्ञान की विराधना करे, दुसरे दर्शन पुलाक सो-सम्यक्त्व का भङ्ग करे, तीसरा-चारित्र पुलाक सो-दश पच्चखाण समिति गुप्तिका भङ्ग करे. चौथा-लिङ्ग पुलाकसो साधु के वेष का पलटा करे, और पांचवा-यथा सूक्ष्म पुलाक सो-अन्तः करण में कषायादि की प्रबलता रहै. । २ बुकस नियंठा सो-यथा दृष्टान्त-उस शाली वृक्ष के ढग में से घास-पराल निकाल अलग डाले तब भी उस शाली के ढग में पूर्व की अपेक्षातो कचरा बहुत कम होगया तो भी अनाज से कचरा ज्यादा है, तैसे ही-गुण थोडे और दुर्गुणो की विशेप ता होवे सो बुकस निग्रन्थ-इनके दो भेदः—(१) शरीर बुकस सो हाथ पांव पखाले, शरीर की विभूषा करे. और (२) उपकरण बुकससो वस्त्र पत्र शुशोभित रक्खे. और भी बुकस निग्रन्थ के-५ भेदः (१) अभोग बुकस सो-जानके दोष लगावे. (२) आना भोग बुकस सो-अनजान में दोष लगावे (३) सबुड बुकस सो छिपकर दोष लगावे. (४) असबुड बुकस सो-प्रगट दोष लगावे. और (५) यथा सूक्ष्म बुकस सो-अन्तः करण में कषाय की तीव्रता रक्खे. यों अतीचारों कर संयम गुणों को काबरे बनावे सो बुकस निग्रन्थ जानना. । ३ प्रति सेवना निग्रन्थ सो यथा दृष्टान्त-जैसे उस शाल के ढग को खले में डाल बैलोंके पग से चगदा हवा में उडाउफण उस में का कचरा दूरकर शाल का एक तरफ ढग करे, उस में किंचित मट्टी, कुछ फोंतरे आदि कचरा होनेसे अनाज की और कचरे की तुल्यता होतीहै, तैसे ही जिन मुनि के गुण अवगुण की तुल्यना होवेसो-प्रति सेवना निग्रन्थ इन के दो भेदः (१) प्रति सेवना कुशील सो किंचित दोष सेवन करे, जिस के ५ भेदः–(१)ज्ञान प्रति सेवना सो ज्ञान के १४ आतिचार लगावे. अल्प ज्ञाताके योग से हीनाधिक पठन उ-

चारन करे, (२) दर्शन प्रति सेवना सो-स्वपरका मन रखने हिनाधिक परुपणा करे, (३) चारित्र प्रति सेवना सो-प्रमाद के वश उत्तर गुणकी खन्डना करे,(४) लिङ्ग प्रति सेवना सो-लोकीक साध ने वस्त्रादि की शोभा करे, और (५) यथा सुक्ष्म प्रति सेवना सो-छद्मस्तता से सुक्ष्म अतिचार लगावे.। ४ कषाय कुशील निग्रन्थ सो-यथा दृष्टान्त जैसे-उस ऊफाणे हुवे शाल धान्य को ऊखली में कूटकर उसके फोंतर-छिलटे अलग कर फक्त चांवल ही रक्खे, उस में धान्य ज्यादा और कचरा थोडा, तैसे ही जिनों में गुण ज्यादा और अवगुण थोडे होवे व्यवहार को शुद्ध रख कर स्वपर के सुधारे के लिये क्रोध भी करे, मताभिमान धर्माभि मान भी रक्खे. शाशन के सुधारेके लिये, वादीयोंके विजय के लिये, मायाका भी सेवन करे. शिष्य सम्प्रदाय शास्त्र धर्मोप करण वृद्धि का लोभ भी करे. इत्यादि निमित से दोष लगाने की इच्छा विना भी दोष लगावेसो कषाय कुशील निग्रन्थ, इन के ५ भेद:-(१) ज्ञान कषाय कुशील, (२)दर्शन कषाय कुशील,(३)चारित्र कषाय कुशील,(४)लिङ्ग कषाय कुशील और(५) यथा सूक्ष्म कषाय कुशील. इन पांचों का अर्थ प्रति सेवन नियंठे में कहा मुजब जानना. विशेष इतनाही की यह किंचित संज्वल के लोभ के वशहो किंचित दोष सहजही लगाते है. तो भी सदा शुभ योगों की प्रवृती से दोषों से आत्माको बचाने का यत्न करते हैं. ५ निग्रन्थ नियंठा सो यथा दृष्टान्त जैसे वो ऊखलीमें कूटके साफ किये चांवलों सुपसे झटक कंकर वीन शूद्ध करे तब उनसे मेल रूप कचरा तो जरांसा रहाहैं, और अनाज विशेषधिक होवे.तैसेही निग्रंथ निग्रन्थ मोहकर्म रुप लाली रहित कर्म ग्रन्थ रहित अकषायी क्षायिक भावी वीतरागी होवे इनके ५ भेद:-(१)वीतराग भाव प्राप्त हुवे उसी समय पढम समय निग्रन्थ (२) नन्तर अन्तर मुहूर्त तक रहे सो अपढम समय निग्रन्थ (३) इसस्थान की अन्तिम अवस्था सो चरम समय निग्रन्थ (४) इसस्थान के अन्तिम समय के पहिले समये सो अचरम समय निग्रन्थ, और (५) इसुस्थान की सर्व वर्ती सो यथा सूक्ष्म निग्रन्थ। ६ स्नातक निग्रन्थ सो यथा दृष्टान्त जैसे उनसाफ किये चांवलों में से खण्डित चांवलों को अलग कर अखण्ड चांवलों को पाणीसे धोकर रज मेल कलंक रहित शूद्र पवित्र निर्मल किये, फक्त धान्यही रहा किंचित भी कचरा नही, तैसेही सर्व घातिक कर्मोंके दोष रहित उज्वल परिणामी शुक्लध्यानी होवे सो सनातक निग्रन्थ इनके ५ भेद:-(१) जोगों का निरुंधन कियासो अछवी (२) अतिचार रुप मेल रहित हुवे सो असवल (३) घनघातिक कर्मों के अंश रहित हु-

वे सो अकर्मांश (४) शुद्ध ज्ञान दर्शन के धारक अर्हंत जिनेश्वर केवली हुवे सो संसुद्धं नाण दंसण धरे अरहा जिण केवली और [५] सर्व योगों का निरुंधनहोने से सर्व कर्मों का आना रुक गयासो अपरी सवी हुवेसो निग्रन्थ.

२३ कल्पद्वार;—मर्यादा कायदा सो कल्प ५प्रकारके होते हैं:—१.स्थिति कल्प सो प्रथम और चरम तीर्थंकर के वारे के साधुओंको सामायिक चरित्र की पर्यायका विच्छेदकर छेदोस्थापनिय किये जावे सो स्थिति (मर्यादित) कल्प. २ अस्थिति कल्पसो— बीचके २२ तीर्थं करोंके बारेके साधुओं सदा सामायिक चरित्र में रहेसो. ३ 'जिनकल्पसो' वनवासी साधु, मूंढ हात कापना और तीन हातका लम्बा रखे, उससे ग्राममें जावे तब गुप्ताङ्ग ढकलेवे, और ग्रामसे निकले बाद उसे दूर रक्ख दें. एक पात्रा, ओगा, मुहपति, झोली, गणना, इन सिवाम और उपकरण रखे नहीं. सिंह, सर्प, कांटा प्रमुख सन्मुख आवे तो आप टले नाहीं. रोगादिका उपचार करे नहीं. यों ६ महिने पर्याय पालकर फिर स्थिवरकल्प में जावें' और २ कल्पातीत सो कल्प का करता श्री तीर्थंकर जो स्वइच्छा से सर्वोत्तम आचर पालते हैं. सो कल्पतीत सर्व कल्प से रहित होते हैं.

२४ परिसहद्वार:— सूत्र "मार्गाच्यवन निर्ज्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः"

अर्थात्— संयम धर्म रुप मोक्ष मार्ग में प्रवर्त ते उनमें विघन करने जो दूसरों की तरफ से अर्थात् चार+कर्मों की उदय रुप प्रेरना होनेसे दुःख सकट आकार पडे उन्हे

+ २२ परिसह चार कर्म के उदय से होते हैं:-"ज्ञानायरणी" प्रज्ञाज्ञान २० वा प्रज्ञा परिषह, और २१ वा अज्ञान परिषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होवे. "दर्शन मोहन्त रायये दर्शन लाभों." सम्यक्त्व मोहनीय के उदय २२ वा दंसण परिसह, और अन्तराय कर्म के उदय से १५ वा अलाभ परिसह, "चारित्र मोह नाग्न्य राति स्त्री निषद्या क्रोश याचा सत्कार पुरस्कराः"—चारित्र मोहनीय के उदय से ६ अचेल, ७ वा अराति, ८ वा स्त्री, १० वा निसेर्ज,१२ वा अक्रोश, १४ वा याचना, और १८ सत्कार पुष्कर यह ७ परिसह, " शेषा वैदानिया " और बाकी रहेसो—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश मच्छार, ६ चरीया, ११ शया, १३ बध, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ जलमल, यह ११ पारसिह वेदनीय कर्म के उदय से होवै.

अपन धर्म मार्गमें स्थिर और उदयमें आये कर्मोकी निर्ज्जरा करने-क्षय करने जो विकल्प रहित सम भाव से सहना करना उसे परिसह जय कहते हैं, सो परिसह २२ हैं-

सूत्र-क्षुत्पिपासा शीतोष्ण दंशमसक नागन्यारति ॥
स्त्री चर्य्या निषद्या शय्या क्रोश वधांचा लाभ ॥
रोग तृण स्पर्श मल सत्कार पुरस्कार प्रज्ञा अज्ञान दर्शनानि:-

अर्थ१.क्षुधा परिसह निर्दोप आहारका जोग नहीं मिलनेसे सदोष अहारकी वांछा नहीं करे, २तृषापरिसह अचित पाणी नहीं मिलनेसे सचित पाणीको छीनेकीभी वांछा नहीं करे.३ शीतपरिसहः-शीत (ठन्ड) लगनेसे अधिकवस्त्र रखनेकी व तपानेकी वांछा नहीं करे ४ उष्णपरिसहः- उष्णता (गरमी) लगनेसे शीतोपचार नहीं करे. ५ दंसमसपरिसहः-डांस मच्छर पटमल आदि जीवों का दंश समभाव रहे, उने अलग नही करे. ६ अचेल परिसह-वस्त्र रहित होजावे तोभी सदोप वस्त्र वांछे नहीं. ७ अरति परिसहः-संयम में संकट पडे तो आरति चिन्ता नहीं करे, ८ स्त्री आदि को देख विषय वाछा नही करे, ९ चरिया परिसहः-विहार (गमन) कर्ता घबराय नहीं १० निसिज्जा परिसहः-बैठने विसम भूमीका मिले तो क्लेश नही करे. ११. शय्या परिसहः-असन्योग मकान रहने को मिलने से खेद नही करे.१२अक्रोश परिसहः-कठिन वचन सुनद्वेष नहीं करे. १३ बन्ध परिसहः-मरताड सम भाव रहे, १४ याचना परिसहः-आहर वस्त्रादि याचता मांगता शरमाय नहीं, १५अलाभ परिसहः-इच्छित वस्तु नही मिलेतो देष नही करे १६ रोग परिसहः-रोग उत्पन्न हुवे समाधी भाव रक्खे सचित औषधी नहीं करे, १७तृण स्पर्श परिसहः-तृणाकी शैय्या के स्पर्श से कोचवाय नहीं, १८ जलमल परिसहः-पसीने और मेल से घबराय नहीं १९सत्कार पुरस्कार परिसहः-सत्कार सन्मान वांछे नहीं,२० प्रज्ञ परिसहः-पण्डित हो प्रश्नोत्तर करते घबराय नही, २१ अज्ञान परिसहः-विशेष ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवेतो खेद नहीं करे. और २२ दंशण परिसहः- सम्यक्त्व में शंका कंखा दी दोप नहीं लगावे.

२५ प्रमाद द्वारः—पर परिणति का मद में आत्मा को परिणमावे सो प्रमाद पांच प्रकार के हैं-

गाथा-मद विषय कषाय । निद्दा विगहा पंच भणीया ।

ए ए पंच पम्माया । जीवा पडन्ति संसारे ॥ १ ॥

अर्थ.-१. मदः-मद-मदीरा के नशे में मनुष्य बे भान होते हैं तैसे ही-(१) जति मद, (२) कुल मद, (३) बल मद, (४) रूपमद, (५) तप मद (६) सूत्र मद,(७) लाभमद, (८) इश्वरी मद. इन मद में से एक मद मे छका हुवा आत्म वे वश्यहो जाता है, तो जो आठोंही मद मे छक जाता है उसकी क्या दशा ! । २ विषय जैसे-विष जेहर खाने से प्राणी की अकाल मृत्यु निपजती है. सो (१) श्रुत इन्द्रियकी ३ विषय (२) चक्षुइन्द्रिय ५ विषय (३) घणेन्द्रिय की २ विषय (४) रसेन्द्रिय ५ विषय (५) स्पर्शेन्द्रिय की ८ विषय यों ५ इन्द्रियों की २३ विषय में से किसी भी एक भी विषय में लुब्ध होने से अत्म गुणों की अकाल मृत्यु होती है, तो जो २३ ही विषय के वशमे लुब्धे उनकी क्या दशा ! ? ३ 'कषाय, जो कर्मो के कष रसकों खेंच कर आत्मा के प्रदेशों पर लपटावे और आत्मा को गुरु (भारी) बनाकर संसार में डूबावे सो कषाय चार प्रकार की है (१) क्रोध, (२) मान (३) माया (४) लोभ, इन चारों मे से किसी भी एक कषाय में रमण करने वाला आत्मा संसार में डूब जाता है, तो जो चारों कषायों में गरक हैं, उनकी क्या दशा ! । ४ निन्दा जो निन्दनीय वस्तु सो निन्दा दो प्रकार कहते हैं. (१) निद्रा के वश में आत्मा वे वश होताहै. और (२) निन्दा दुसरों के अवरण वाद बोलने से भी आत्मा मोक्ष से विमुख होता है. ५ विकहा-विकथा खोटी कथा (व्यर्थ बातों) चार प्रकार की होती है:-(१)स्त्रीयों के श्रृंगार की कथा, (२) भोजन भक्ष बनाने की स्वाद की कथा (३) राजाओं के वैभव पराक्रमादि की कथा और (४) देशों के रीवाजो की कथा, इन चारों में से किसी एक भी कथा करने से भी बज्र कर्म बन्ध होने का प्रसङ्ग आता है, तो जो चारों वीकथा करें उनकी क्या दश ! ! इन पांचो प्रमाद के वशमे पड आहारक शरीर धारीमुनि भी नरक गामी होजाते हैं. एस भगवतीजी सुत्र के शतकन्थ उदेश में फरमायाहै.

२६ सरागी वीतरागी द्वारः-जो रागद्वेष मय परिणामों संयुक्त होवे सो सरागी और राग द्वेष रहित होवेसो वीतरागी वीतरागी कहनेसे फक्त राग रहित द्वेषीही नहीं समझना. क्योंकि पनवणा जीमें फरमाया है. कि-राग जहां द्वेषाकी नीमा (जरूर होवे) और द्वेष जहां राग की भजना अर्थात्-होवे और नहीं भी होवे इसलिये जिनने रागका नाश किया उनने द्वेषका भी नाश जरूरही किया, जिससे उने वीतरागी कहे हैं.

२७ पडवाइ अपडवाइ द्वारः-जो गुणस्थानारोहण कर (चड) पीछे पड जावै सो पडवाइ, और पडे नहीं सो अपड वाइ जानना.

२८ छद्मस्त केवली द्वारः-जिनके ज्ञानके ज्ञानादि आत्मिक गुण कर्मों कर अच्छादित होवे सो छद्मस्त और (२) जिनो के घन घातिक कर्म रूप अच्छादन (ढक्कन) दर होने से पूर्ण तोर से आत्मीक गुण प्रगट होवे सो केवली.

२९ समुदघात द्वारः-जो आत्म प्रदेशों का मथन हो किसी प्रकार के गुणात्र गुणका घात होवे सो समुदघात ७ हैः-१ वेदनी समुदघात असाता वेदनीय का उदय होने से जीव हायवाहा करे सो,२ कषाय समुदघात क्रोधादि उत्पन्न हुवे पतलेसे मनुष्य को ५-७ मनुष्य संभाले तो भी संभले नहीं सो, ३ मरणातिक समुदघात सो मरती वक्त आत्म प्रदेशों निकलकर जिस स्थान उत्पन्न होना होवे वहां जमे और फिर आत्मा८ रूचक प्रदेश के साथ जावे तब क्रोडा क्रोड गुणी वेदना होवे सो, ४वैक्रय समुदघात जो एक रुपके अनेक रुप वनाते प्रदेशों का मथन करेसो, ५ तेजस समुदघात सो तेजुलेशा प्रगट कर उत्कृष्ट साडी सोल देश वालकर भस्म करेसो, ६ आहारक समुदघात सो चउदे पूर्वके पढे हुवे मुनि राज आहारक लब्धि वन्त सन्देह निवारने या समवसरण की रचना देखने आत्म प्रदेशका पुतला वनाकर तीर्थंकर व केवल ज्ञानी के वहां भेज इच्छा पूर्ण करेसो, और केवल सपुदघातसो केवली भगवन्त के आयुष्य कर्म रहे थोडे और वेदनीय कर्म रहे ज्यादा, तब दोनों को वरोबर करनेके वास्ते आठ समयमें समुदघात होती हैः-प्रथम समय आत्म प्रदेश का सातवी नर्क कीनीचे से लगा ऊपर मोक्ष तक लम्बा दण्ड रुप होवे दूसरे समय वो दण्ड के पूर्व पश्चिम में कपाट रुप होवे, तीसरे समयमें उन पटीयोंका उत्तर दाक्षिणमें मथन चूरा रूप होवे-चौथे समय में सर्वलोक में अन्तर पूरे (तब सर्व जगत् व्यापी वने) पांचवे समय में अन्तर सहार (भेला) कर पुनः मथन रूप वन जावे, छट्टे मयमसें मथन सहार कपाट रूप वनजावे सातवे समयमें कपाट सहार दण्ड रुप बनजावे और आठवे समयमें दन्ड सहार कर मूल रुप (अवल थे वैसे) वनजावे, उसके वाद कितनेक तो अ इ उ ऋ ऌ इन पांचों अक्षरो के ऊचार में जितनी देर लगे ऊतने काल वाद मोक्ष पधार जावे और कितनेक ऊत्कृष्ट ६ महीने वाद तो जरुरही मोक्ष पावे. ×

× दी गम्बरी के तत्वार्थ सूत्र की टीका में लिखा हेकी-जिनका आयुष्य फक्त ६-

३० देवद्वारः— श्री भगवति सूत्रके शतक उदेशामें ५ प्रकारके देव फरमाये हैं. १ 'भवीद्रव्यदेव'— जो जीवों मनुष्य तिर्यंच के भवमें देव गतिका आयुबन्ध कर बैठे हैं (मरकर देवता होवेंगे) वो भवी द्रव्य देव कहे जाते हैं. यह जुगलिये मनुष्य तिर्यच और सर्वार्थ सिद्धके देवता सिवाय+सर्व स्थानसे आकार उत्पन्न होते हैं. और मरकर देव गति मेंही जाता हैं. इनकी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट ३३ सागरकी होती है. २'नरदेव' चौरासी २लक्ष हाथी घोडे रथ. छिन्नूं क्रोड पायदल सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के महाराज चक्रवर्ती होते हैं, सो नरदेव कहे जाते हैं. यह चारों जातिके देवता और प्रथम नरकसे आकर उत्पन्न होते हैं और मरकर नर्क में जाते हैं.÷ इनकी स्थिति जघन्य ७०० वर्ष की, उत्कृष्ट ८४ लक्ष पूर्वकी होती है. ३ 'धर्मदेव' पाच महाव्रत के पालक साधुजी महाराज सो धर्म देव कहे जाते है, यह छही सातवी नर्क, मनुष्य तिर्यंच युगलिया, तेउवायु इन स्थान सिवाय सर्व स्थानके आये हुवे होते हैं. और मर कर देव लोक में तथा मोक्ष में जाते हैं. इनकी स्थिति जघन्य अन्तर हुहूर्त की उत्कृष्ट क्रोड पूर्वकी होती है. ४ 'देवाधिदेव' जो अनन्त चतुष्टयके धारक सर्व जगत् के पूज्य श्री तीर्थंकर भगवन्त सो देवाधिदेव. यह प्रथमकी तीन नर्क और वीमानीक देवता के आकर उत्पन्न होते हैं और मोक्ष पधारते हैं. इनकी स्थिति जघन्य७२वर्षकी उत्कृष्ट८४ लक्ष पूर्वकी होती है. ५ 'भावदेव' जो भवनपति, बाणव्यन्तर, जोतिषी, वीमानी, इन चारों जातिके देवों (जो देवता के भाव में विराजमान हैं उन) को भाव देव कहे जाते हैं. यह सज्ञी मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय से आकर होते हैं. और मरकर पृथ्वी पाणी वनस्पाति मनुष्य तिर्यंच में जाते हैं. इनकी स्थिति जघन्य दशहजर वर्षकी उत्कृष्ट ३३ सागर की. इन पांचो देवों में से सब से थोडे नरदेव १२ ही होते हैं. इनसे देवाधिदेव सख्यात गुणें क्योंकी २४ होते हैं. इनसे धर्म देव संख्यात गुणा क्योंकी उत्कृष्ट नव-

---

महीनेही बाकी रहा होय उनको केवल ज्ञान की प्राप्त होवे, वोही समुद घात करतेहे. अन्य नहीं. परन्तु यह बात मिलती नहीं. क्योकि तीर्थंकर के भी हेती है

÷ क्योकि—युगलिया मरकर तो फक्त देवताही होते है. और सर्वार्थ सिद्धके देव मनुश्य हो मोक्ष में ही जाते हैं.

+ चकवर्ती जो सयम लेवेतो स्वर्ग मोक्षमें जाते है. परन्तु तब नर देव नहीं रहतेहैं. धर्म देव या देवाधी देव होते हे.

हजार क्रोड होते हैं. इनसे भवीद्रव्य असख्यात गुणे क्योंकी असंख्यात मनुष्य तिर्यंच देवायुबन्ध कर रहेहैं, और इनसे भाव देव असंख्यात गुणे क्योंकी चारों जातिके देवता असंख्याते हैं.

३१. जीव परिनामी द्वार:- जिसवक्त जीव निज स्वभाव में परिणमें उसवक्त परिणाम शुद्ध होवे, और परस्वभावमें परिणमें उसवक्त अशुद्ध होवे, जिससे जो भाव जीवोंके उत्पन्न होवें उसे जीव परिणाम हैं. (यहां कारण को मुख्यतामे कर कार्य का उपचार किया है) इसके भगवति सूत्र में ३९ बोल कहे.

गाथा--गइ इन्दिय कषाय । लेसा जोए उव ओगे ॥
णाणा णाण दिट्ठी । चरित्त वेए परिणामि ॥

अर्थ-४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ जोग, २ उपयोग, ५ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दृष्टि, ५ चारित्र और ३ वेद.

३२ 'करण द्वार'-जो जीवों के कर्म संयोगों में कारण भूत होवे सो करण के भगवती सूत्र में ५९ बोल कहे हैं.

गाथा--दव्व सरीर इन्दि । मण वयण क साय लेसा ॥
समुग्घाइ सान्ना दिट्ठी । वेय असाव पंच (करणं) ॥

अर्थ-द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव यह ५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन के योग, ४ वचन के योग, ४ कषाय, ६ लेश्या, ७ समुघात, ४ सज्ञा, ३ दृष्टि, ३ वेद और ५ आश्रव.

३३ निवृत्ति द्वार--जिन बावतोंसे आत्मा निवृति भाव को प्राप्त होवे सो निवृत्ति जिनके भगवतीजी सूत्र में ८२ बोल फरमाये हैं:-

गाथा--कम्म सरीर इन्दि । भासा मण कसाय वणादि ॥
संठाण सन्ना लेसा । दिठी णाणा णाणे जोग उवोगे ॥

अर्थ-८ कर्म, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा के योग, ४ मनके योग, ४ कषाय, ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श, ६ संठाण, ४ सज्ञा, ६ लेशा, ३ दृष्टि, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ जोग और २ उपयोग.

३४ आश्रव द्वारः—जिस रस्ते कर जीवों को कर्म आकर लगे उने आश्रव कहे जाते है, जिस के ४२ भेद फरमाये हैं:—५ अव्रत, ५ इन्द्रियों का अनिग्रह, ४ कषाय की प्रवृति, और २५ किरिया.

३१ वे, ३२ वे, ३३ वे और ३४ वे द्वारों में कहे हुवे सब बोलों का खुलासा पीछे होगया है, इसलिये यहां सक्षेप में ही लिखे हैं,

३५ संवर द्वार;—जो कर्म आने का रस्ता है उसे रोक सो संवर के ५६ बोल सूत्र में कहे हैं;—१ इर्या समिती-रस्त में चलती वक्त आगे १ धनुष्य देखे, रस्ता छोडकर चले नहीं, रात को विन कारण स्थानक के वाहिर जावे नही, पांचों इन्द्रिय की विषय का ध्यान, और पांच प्रकार की सज्झाय ÷ करे नहीं. २ भाषा समिति-कर्कस, कठोर, छेदक, भेदक, दुःख कर्ता, सावद्य, हिंसक, मिश्र इत्यादि वचन बोले नहीं, पहर रात गये बाद दिन उगे वहां तका जोरसे बोल नहीं. सदा उपयोग युक्त बोले, ३ एषणा समिती. आहार वस्त्र पात्र और स्थानक ४२ दोष टाल गृहण करे, आहार दो कोस से ज्यादा लेजाकर भोगवे नहीं. पहिले पेहर में लाया चौथे पेहर में भोगवे नहीं. पांच मन्डल के दोष टाल आहार करे, ४ आदान निक्षेपना समिती-भंड पात्रे उपकरण वस्त्र पाट आदि यत्नासे गृहण करे और यत्ना रक्खे, गृहस्थ के घर रक्खकर विहार करे नहीं. दोनों वक्त (शुभे शाम) प्रति लेखना (देखा) करे, और ५ 'परिठावणिया' समिती';—विष्टा पेशाब मेल नख केश शरीर आदि बस्तु यत्नासे परिठावे. दुगंच्छा निन्दा होवे वहां परिठावे नहीं. दिनको देख के और दिनको देखी भूमि का में रातको परिठावे. (यह ५ समिती) ६ मन गुप्ति ७ वचन गुप्ति ८ कायागुप्ति (इन वचन काया के योगों को सारम्भ समारम्भ आरम्भसे निवारेसो तीन गुप्ति)९—३० बावीस परिसह पीछे कहे सो) ३१ खन्ति-क्षमा, ३२ मुर्ति-निर्लोभता, ३३ अज्जव-शरलता, ३४ मद्दव-निर्भिमान, ३५ लाघव-लघुत्व, ३६ सच्चे-सत्य, ३७ संयम-आत्म निग्रह, ३८ तवं-तप, ३० चेइए-ज्ञाना भ्यास, और ४० बंभ-ब्रह्मचर्य. (यह १० याति धर्म) ४१ आनित्य भावना-पुद्गलिक पदार्थ सर्व अनित्य (विनाशीक) जाने. ४२ असरण भावना-इस संसार में कोइ भी शरण दाता नहीं है. ४३ संसार भावना-अनं-

÷ वांचना, पूछना, फेरना, याद करना, और धर्मोप देश देना. यह ५ सज्झाय.

त संसार परि भ्रमण किया है,४४'एकत्वभावनां'-आत्मा सदा एकली है. ४५ अन्यत्व भावना-शरीर से आत्मा अलगहै, ४६ 'अशुचि भावना' शरीर अशुची का भंडार है. ४७ आश्रव भावना-आश्रव से कर्म आते हैं. ४८ संवर भावना-संवर कर्म को रोकते हैं. ४९ निर्जरा भावना-निर्ज्जरा से कर्म क्षय होते हैं. ५० लोक भावना-लोक सुपइठ पुरुषाकार है. ५१ बोध भावना-बोध बीज सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनी दुर्लभ है. और ५२ धर्म भावना-धर्म ही तारण शरण है. (यह १२ भावना) और ५३-५७-पांच चरित्र (इन का वरणन् पीछे होगया है.)

३६-३७ निर्जरा द्वारः—जो श्री वीतरागके आज्ञा वाहिर सूत्र से विधिसे रहित स्ववश या परवश पणे धर्मार्थ या संसारार्थ कष्ट सहे. उससे अकाम निर्ज्जरा होती है. जिसका फळ मोली (काष्ट काट कर वेंचने वाले) व्यापारी के जैसा कष्ट तो बहुत और लाभ थोडा, तैसा होता है. और २ जो वीतराग की आज्ञा में रहकर सूत्र विधिके अनुसार निर्वद्य करणी मोक्षार्थ करे जिस से सकाम निर्ज्जरा होवे. जिस का फल जोहरी के व्यापार जैसा होता अर्थात् कष्ट थोडा और नफा बहुत. सकाम निर्ज्जरा दो तरह से होती है. (१) बाह्य (प्रगट) और (२) अभ्यन्तर. (गुप्त) इस में—(१) 'अनसन) आहार के त्याग, (२) ऊणोदरी-आहार उपाधी कम रक्खे. (३) भिक्षाचरी-गोचरी कर वस्तु ला भोगवे. (४) रस परित्याग-दूध दही घी तेल मीठा के त्याग करे, (५) कायाक्लेश-धर्मार्थ कायको कष्ट दे,(६) प्रति सालिनता-इन्द्रियो कषाय योग का निरुंधन करे. (यह ६ बाह्य तप) और (७) प्रायछित-पाप निवारने तप करे, (८) विनय-सदा नम्र हो रहे, (९) वैयावच्च-भक्ति करे, (१०) सज्झाय-शास्त्र के मूळ पाठ की स्वध्याय करे, (११) ध्यान-सूत्रार्थ का चिन्तवन करे. और (१२) काउसग्ग-का युत्सर्ग करे. (यह ६ अभयन्तर तप) यों १२ भेद तपसे निर्जराहोती है.

३८ करणी फल द्वारः—पुन्य रूप मिष्ट फल और पाप रूप कटु फल दोनों संसार बृद्धिके कारण है, सो सफल करणी कही जाता है सम्यक्त्व दृष्टि यह चहाते नहीहं. और मोक्षार्थ जो करणी करते हैंसो अफल गिनी जातीहै. सुयगडांग जी सूत्र में फरमाया है.

गाथा—जेय बुद्धा महा भागा । वीराऽसम्मत दंसीणो ॥
अशुद्धं तेसिं परिकत्ता । सफल होइ सव्व सो ॥१॥

जेय बुद्धा महा भागा । वीरा सम्मत दंसीणो ॥
सुद्धं तेसिं परिकत्ता । अफल होइ सव्वसो ॥२॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी हत भागी कू-कार्य में वीर मिथ्यात्वी हैं उनकी अशुद्ध की हुइ करणी सर्व सफल होती है. और जो बुद्दि वन्त महा भाग्य सू-कार्य सूरवीर सम्यक्त्वी सत्पुरुष हैं उनकी की हुइ शुद्ध करणी सर्व अफल होती है.

३९ हेय ज्ञेय उपादेय द्वार— हेय-सो त्याग ने-छोडने योग्य, ज्ञेयसो-जान ने योग्य, और उपादेय सो-आदरने योग्य.

४० तीर्थंकर गोत्र वन्ध द्वारः—जो प्राणी बीस बोलों में से किसी भी एक दो चार या अधिक बोलों का आराधन करता है, और उसकी परमोत्कृष्ट रसायण आती है तव तीर्थंकर गोत्र की उपार्जना होती है—ऐसा श्री ज्ञाताजी सूत्र में फरमाया है.

गाथा—अरिहन्त सिद्ध पव्वयण । गुरु थेरे वहूसूए तवसीसु ॥
वच्छलाय ते सिं । अभिख नाण मुवगये ॥१॥
दंसण विणय आवसय । सीलवय निरायारो ॥
खिणालव तव चेइए । वेयावच्च समाहीए ॥२॥
अपुव्व नाण गाहणे । सुयभत्ति पव्वणे पभावणीए ॥
एत्थेही कारणे ही । तित्थयरे तं लहे जीवो ॥ ३ ॥

अर्थ—१ अरिहन्त, २ सिद्ध, ३ शास्त्र, ४ गुरू, ५ स्थिवर, ६ वहुसूत्री, ७ तपश्वी-इन सातों के गुणानुवाद करनेसे, ८ ज्ञान में वरम्वार उपयोग लगानेसे, ९ सम्यक्त्व निर्मल पालने से. १० गुरूवादि पूज्य जनोंका विनय करनेसे. ११ सदा दोनों वक्त प्रातिक्रमण करने से, १२ शील आदिव्रत निरति चार पालने से, १३ सदा निवृति भाव रखनेसे. १४ वारा प्रकार तप करने से, १५ सूपात्र दान देने से, १६ गुरू रोगी तपश्वी नवी दिक्षीत की वैयावच्च करनेसे. १७ क्षमा करने से, १८ अपूर्व ज्ञान पढनेसे. १९ जिन वचन वहुमान पूर्वक सुण नें श्रद्धनेसे और २० जैन धर्म को तन मन धन कर दीपानेसे.

४१ तीर्थंकर गुणस्थान स्पर्शनाद्वार:— श्री तीर्थंकर भगवान गत भवसे चौथा गुणस्थान सेही आते हैं. इसलिये पहिले के तीन तो यह छूटे. और पंचवा गुणस्थान कायर नरोंका हैं. [जो संयम लेने समर्थ न होसो) इसलिये उत्तम पुरुषों पाचवा गुणस्थान भी स्पर्शते नहीं हैं. और इग्यारवा गुणस्थान तो पडवाइ होता हैसो स्पर्शत हैं. श्री तीर्थंकर भगवान पडवाइ नहीं होते हैं. इसलिये १-२-३-५-११ इन पांचों गुणस्थान स्पर्शन की मना है.बाकीके९ गुणस्थान स्पर्शते हैं.

४२ मोक्षद्वार:- चारों वावतो की अनुक्रम से आराधना करने से मोक्ष मिलती है:- १ प्रथम सम्यक ज्ञान करके जीवोंका यथार्थ स्वरूपका जान होवे. २ नन्तर जीवादि पदार्थो को जैसे जाने हैं, वैसेही सम्यक दर्शन कर उनको यर्था श्रद्धे. (यों ज्ञान और दर्शन का जोडा है, अर्थात् यह दोनोंही साथही रहते हैं) ३ जो जीवादि पदार्थों को सम्यग् ज्ञान कर जाने, सम्यग् दर्शन कर श्रद्धे उनमेंसे जीव अजीव पुण्य तीनोंको जाने पाव अश्रव वन्ध इन तीनोंको सर्वथा त्यागे, और संवर निर्जरा मोक्ष इन तीनों को पूर्ण पणे समाचारे सो सम्यग् चरित्र. और जैसी तर सम्यग् चरित्र द्वारा तीनों वावतो समाचारी है वैसी तरह जावो जीव तावे, उमर तक पूर्ण तोरस आराधे पाले स्पर्श सो सम्यग् तप. जैसे ज्ञान दर्शन का जोडा है तैसे ही चारित्र तपका भी जोडा है. इन चारों का यथा विधी अनुक्रम से आराधन पालन स्पर्शन जावो जीवतक करने से आत्मा पमानन्दी परम सुखी होता है.

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषिजी महाराज के स-
म्प्रदाय के महन्त मुनिश्री खूबाऋषिजी म-
हाराजके शिष्यवर्य आर्य मुनिश्रीचे-
ना ऋषिजी महाराजके शिष्य
श्री केवल ऋषिजी महाराज
के आश्रित बाल ब्रम्हचारी
मुनिश्री अमोलख ऋषि
जीमहाराज रचित
मुक्ति सोपान गुणस्थान रोहण
अढीशत द्वारीका प्रथम
अर्थ काण्ड
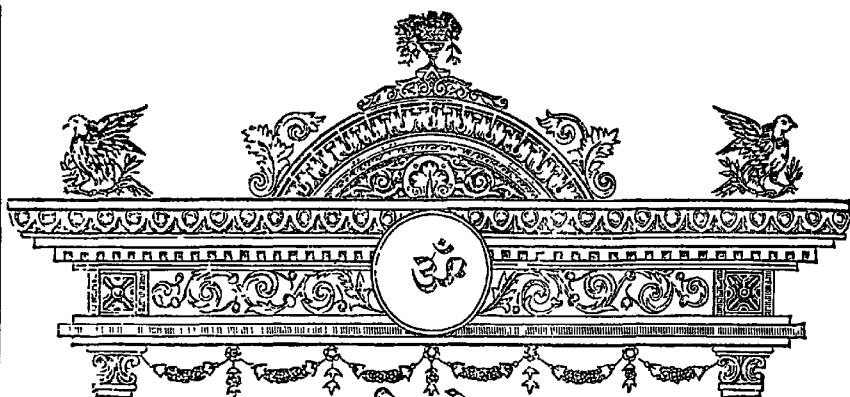
मुक्ती-सोपान

श्री गुणस्थान रोहण अढीशतद्वारी

द्वितीय-मूल काण्ड.

प्रवेशीका

गाथा—वंदामि सिरि जिणवर । भणामि वितीय मूल खण्ड ॥
चउदश गुण ठाणस्स । रोहण अढसित द्वारा ॥ १ ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर भगवन्त को नमस्कार कर के "मुक्ति सोपान,"—"गुणस्थाना रोहण अढीशत द्वारी" ग्रन्थका दूसरा मूल खण्ड कहता हूं इस में अर्थ काण्ड में कहे हूवे २५२ द्वारों को अब मूल चउदेही गुणस्थानो पर अलग २ संक्षेप से उतार ते हैं प्रथम अर्थ काण्डके पठन से सब द्वारों का अर्थ-मतलब समझ में आगया जिससे इस काण्ड में १४ गुणस्थानों पर उतारे हूवे २५२ द्वारकी समझ सुलभता से हो सकेगी.

प्रथम खन्ड–मूल द्वारा रोहण

मूल ३२ द्वारों के नाम

१ नाम द्वार, २ अर्थ द्वार, ३ प्रवेश द्वार, ४ लक्षण द्वार, ५ दृष्टान्त द्वार, ६ गुण द्वार, ७ अवघेणा द्वार, ८ उत्पति द्रव्य प्रमाण द्वार, ९ पावति द्रव्य प्रमाण द्वार, १० खपाति द्रव्य प्रमाण द्वार, ११ क्षेत्र प्रमाण द्वार, १२ क्षेत्र स्पर्शन द्वार, १३काल प्रमाण (स्थिति) द्वार, १४ काल प्राप्त द्वार, १५ भाव प्रमाण द्वार, १६ निरन्तर गुण द्वार, १७ गति मार्गणा द्वार, १८ अगति मार्गणा द्वार, १९ परस्पर गति मार्गणा द्वार, २० परस्पर अगति मार्गणा द्वार, २१ अवरोह उवरोह द्वार, २२ चडपड गति दृष्टान्त द्वार, २३ अन्तर द्वार, २४ विरह द्वार, २५ शाश्वता श्वत द्वार, २६ पढमापढम द्वार, २७ एक भवाश्रिय स्पर्शना द्वार, २८ बहुत भवाश्रिय स्पर्शना द्वार, २९ परस्पर स्पर्शना द्वार, ३० परभव गमन द्वार, ३१ भव संख्या द्वार, ३२ अल्पा बहुत द्वार.

अब आगे इन तेंतीस ही द्वारों का चउदह गुणस्थानोंपर पृथक २ (अलग२) विवेचन (वरणन्-उत्तरा) किया जाता है.

१ पहिला "नाम द्वार" *

चउदे ही गुणस्थानों के नाम-१ पहिला—मिथ्यात्व गुणस्था-

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ काण्डके पृष्ठ १४ वा.

न, २ दुसरा-सा स्वादन गुणस्थान, ३ तीसरा मिश्र गुणस्थान, (अपर नाम) सम मिथ्या गुणस्थान, ४ चौथा-अविरति-सम्यग दृष्टि गुणस्थान, ५ पांचवा देश विरति (श्रावक का) गुणस्थान, ६ छठा प्रमत-संयति (साधु का) गुणस्थान, ७ सातवा अप्रमत संयति गुणस्थान, ८ आठवा नियटि बादर गुणस्थान, (अपर नाम) अपूर्व करण गुणस्थान, ९ नववा अनियटि बादर गुणस्थान (अपर नाम) अनिवृत्ति करण गुणस्थान, १० दशवा सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान, ११ इग्यारवा उपशान्त मोहनीय गुणस्थान, १२ बारवा क्षीण मोहनीय गुणस्थान, १३ तेरवा संयोगी-केवली गुणस्थान, १४ चउदवा अयोगी केवली गुणस्थान, और इस के आगे अन्तिम खास मुक्तिस्थान मोक्षस्थान-सिद्धि स्थान.

दुसरा-अर्थ द्वार *

चउदेही गुणस्थानों के नाम का अर्थः—

१ मिथ्या=खोटे+गुण का+स्थान=ठिकाणा, अर्थात्-जो खोटे गुण (दुर्गुणों) के रहने का निवासस्थान होवे सोही मिथ्यात्व गुण स्थान.

२ सा=प्रथम के+स्व स्थान को+आदन=आवे. अर्थात्—पहिले गुणस्थान को पीछा आने वाला (रस्तागिर) सो सास्वादन गुणस्थानी.

३ मिश्र=दोनों की मिलावट रूप गुणस्थान, अर्थात्—मिथ्यात्व की और सम्यक्त्वकी एकत्रता-सेल भेले होवे सो मिश्र गुण स्थानी.

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ट १४ वा.

४ अविरति=व्रत रहित, और सम्यग दृष्टि=सम्यक्त्व युक्त, अर्थात्-सर्वज्ञ प्रणित निश्चय और व्यवहार नय को साध्य साधक भाव से माने परन्तु प्रत्याख्यानावर्णिय कर्मोदय से इन्द्रियोंके सुख का त्याग नहीं कर सके सो अविरति-सम्यग दृष्टि गुणस्थानी.

५ देश=थोडे+विरति=व्रत वन्त. अर्थात् सर्व विरति साधुओं की अपेक्षा कर थोडे व्रत का धारन करने वाला सो देश विरति गुणस्थानी.

६ प्रमत=प्रमाद युक्त+संयति=साधु. अर्थात् सर्व विरति साधुतो हुवे परन्तु प्रमादी-आलसी हो सदोषित रहते हैं सो प्रमत संयति गुणस्थानी.

७ अप्रमत-प्रमाद रहित+संयति=साधु, अर्थात् सर्व विरति रूप साधु की क्रिया को प्रमाद रहित पाले सो अप्रमत संयति गुण स्थानी.

८नियटि=निवृते+बादर-बडी कषाय से. अर्थात्-दर्शन मोहनीय रूप बडी कषाय से निवृति धारण करी सो नियटी बादर गुण स्थानी. और इसही गुणस्थान का दुसरा नाम-अपूर्व-पहिले नहीं हुइ ऐसी× करण-कषाय की मन्दता करिसो अपूर्व करण गुणस्थानी

९ अनियटि-निवृते नहीं, बादर-बडी चारित्र मोहनीय कषाय से×साफ निवृते नहीं, थोडी सी कषाय और भी बाकी रही है.

+ यह अपेक्षा बचन है अर्थात्-आठवे गुण स्थान में तो चरित्र मोहनीय की अपेक्षा से दर्शन मोह को बडा गिना, और इस नववे गुणस्थान में सात कर्मों की अपेक्षासे चारित्र मोह की सर्व था निवृति न होनेके सबबसे अनियटि बादर इसका नाम हैं:-तत्व केवलिगम्य.

सो नियटी बादर गुणस्थानी और इसही गुणस्थान का दुसरा नाम अनिवृति-निवृते नहीं÷करण—कषाय की मन्दता से अर्थात्-जो कषायों की मन्द (कमी) करने श्रेणी प्रारंभ करी है. उस से पीछे हटे नहीं आगे बढते ही जायँ, सो अनिवृति करण गुणस्थानी.

१० सूक्ष्म—बहूत ही थोडी÷सम्पराय—कषाय, अर्थात् फक्त संज्वलन के लोभ रूप यत्किंचित मात्र-सोभी बहूत पतली कषायका उदय सो सूक्ष्म संपराय गुणस्थानी.

११ उपशान्त—उपशमाया (ढका)×मोह-मोहनीय कर्म, अर्थात् मोहनीय कर्म की सर्व २८ ही (कषायों) प्रकृतियों को सर्वथा प्रकार से उपशमन किया-ढक दिया सो उपशान्त मोह गुणस्थानी.

१२ क्षीण-क्षय किया×मोह=मोहनीय कर्म, अर्थात्-मोहनीय कर्म की २८ ही प्रकृतियों का सर्वथा क्षय-नाश किया सो क्षीण मोह गुणस्थानी.

१३ सयोगी—योग सहित÷केवली=केवल ज्ञानी. अर्थात् मन वचन कायाके शुभ अवलम्बन वन्त केवल ज्ञानी जिनेश्वर सो संयोगी केवली गुणस्थानी.

१४अयोगी-योग रहित+केवली केवल ज्ञानी. अर्थात्-मनादि योगों जो कर्म पुद्गल रूप वर्गणा को ग्रहण करने कारण भूत आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द (चलन) उस से रहित, और केवल ज्ञान के धारक सो अयोगी केवली गुणस्थानी.

३ तीसरा प्रश्नोत्तर द्वार ×

+ इस द्वारक खुलासेके लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ट १९ वा.

१ प्रश्न मिथ्यात्व को भी गुणका स्थानक कहने *का क्या सबब? उत्तर (१) जो इस जगत में अचैतन्य (जड)पदार्थ हैं. उस से ऊंच पक्ति का अनन्त ज्ञानादि गुण का धारक-अधिक शक्ति वन्त चैतन्य जीव का रहना का यह मूल स्थान है, यह ही इसमें गुण है, (२) बहूत से जीवों इस ही स्थान में रहे हुवे-मिथ्या-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का आराधन पालन कर अनेक गुणवन्तों के भी परम पुज्य बनते हैं. यों व्यवहार की भी शुद्धि होनेसे यह गुणका स्थान है. (३) अभव्य जीवों सदा इसही स्थान मे रहते हैं वो द्रव्ये ज्ञानादि गुणों का पालन कर नववी ग्रीवेग (२१वे स्वर्ग) तक जाते हैं. यह भी गुण है. (४) और भी कितनेक व्यवहार तो मिथ्यात्वी देखाते हैं. परन्तु अन्तर में मिथ्यात्व मोहनी आदि प्रकृतियों का उपशम होगया सम्यक्त्वादि गुणों का स्पर्श किया है. तो भी मिथ्यात्वी कहे जाते हैं. इत्यादि गुण इस स्थान में पाने से इसे मिथ्यात्व गुणस्थान कहा जाता है.

२ प्रश्न—सास्वादन गुणस्थान वाले तो पडवाइ होते हैं, उसे गुणका स्थान कहने का क्या सबब? उत्तर—इस गुणस्थान का स्पर्शने वाला जीवने कर्म ग्रन्थी का भेद कर सम्यक्त्व का स्पर्शन किया है इसलिये यह पडवाइ है तो भी उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन संसार परि भ्रमण कर निश्चय से सम्यक्त्व का स्पर्शन कर मोक्ष पावेगा. इसलिये यह गुणका स्थान ही—गुणस्थान है.

३ प्रश्न-मिश्र गुणस्थान में मिथ्यात्व का और सम्यक्त्व का

* मिथ्यात्व गुणस्थान सो खोटे गुणका स्थान एसो अर्थ अर्थ धारये किया है; परन्तु जो मिथ्यात्व गुणस्थान को मिथ्यात्व ही गुणका स्थान ऐसा अर्थ करते हैं, उनके समाधान लिये यह प्रश्नोत्तर है

सेल भेल (गडवड) है उसे गुण का स्थान कैसे कहा जावे? उत्तर क्यों नहीं कहा जावे, जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जानता था वो सत्य को तो सत्य जान ने लग गया. तो कभी असत्य को असत्य भी जानने लग जायगा.

४ प्रश्न—जो सम्यक् दृष्टि हो व्रतों के फल को जान कुछ व्रत धारे नहीं आविरति सम्यग दृष्टि ही रहे तो उस से क्या फायदा? उत्तर—जो जानेगा कि इस मकान में उपद्रवी व्यन्तर देव (भूत) रह ता है. और उस में कभी जाने का प्रसङ्ग भी आगया तो वां डरेगा. ऐसेही सम्यग दृष्टि भी पाप करते डरेंगे जिससे जिन के चिकन कर्म बन्ध नहीं होगा. यथार्थ जानना ही मुशकिल है. कहा हैकि "सद्धा परम दुलहा." जाना येही बडा गुन है.

५ प्रश्न—जो संसार सम्बान्धि आरंभ के अनेक कृतव्य कर यदि यत्किंचित व्रत धारण करभी लिया तो उस से क्या फायदा? उत्तर—देश विरति शब्द तो साधुओं के सर्व विरती पने की अपेक्षा से है, परन्तु किंचित व्रत नहीं जानना. क्योंकि-इनोंने सर्व लोक के महारंभ महा परिग्रह की क्रिया का निरुंध कर, फक्त यत्किंचित अटकते कार्य को चला ने जितनी ही छुट्टी रक्खी है, और सो भी सर्वथा त्याग ने अभिलाषी हैं, इसलिये. तथा परिणामों से सर्वथा अव्रत की क्रिया उत्तर गइ है, येही जबरफायदा है. इसलिये यह गुणस्थान है.

६ प्रश्न—जो संयति (साधू) होकर ही प्रमाद का सेवन करे तो फिर क्या फायदा? उत्तर-बडा फायदा तो यह हुवा कि-अविरत की क्रिया साफ रुक गइ, और यद्यपि अप्रमादी ही सदा रहने का खप करते हैं. तद्यापि कर्म की प्रबलता से जो कुछ प्रमाद

मय परिणती परिणमतीहै. उसे रोककर भी ज्ञान ध्यान तप आदि वृद्धि कर लाभोपार्जन करते हैं, सो फायदा ही है.

७प्रश्न-जब पांचोंही प्रमादोंका क्षय किया तबसब दुर्गुणाका क्षय हुवा, फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है.? उत्तर-इनने वाह्य वृत्ति में पांचों प्रमाद का अभाव करने से अप्रमदी बने हैं. परन्तु अन्तर करण में तो एक मद प्रमाद का तो सर्वथा अभाव हुवा है, और यत्किंचित बने हैं सो भी आगे नाश करने परिव्रत हुवे हैं वो सब नाश होंगे जब ही केवलज्ञान पावेंगे इस से अप्रमादी कहना.

८प्रश्न-निवृति बादरका क्या अर्थ होताहै? उत्तर-बादर(बडी) कषायों से निवृति पागये. चपालता का अभाव हुवा.

९ प्रश्न-आठवे का नाम निवृति बादर और नववे का नाम अनिवृति बादर यह भी कैसा आश्चर्य! गुण वृद्धि के बद्दल उलट गुणहानी के दोष रोपण होता है.इसका क्या सबब? उत्तर-आठवे गुणस्थान में श्रेणी प्रारंभ होती है, इसलिये यहां उतेजन देने का संभव हैकि अब कषायों से निवृते हो इसलिये शीघ्र आगे बढो, और इस स्थान में सावधान-किया है कि होंशार रहो!जो थोडा भी विषय कषाय का अंश रहा है वह छल नहीं लेवे ! और आठवे गुणस्थान में तो १७ कषाक का नाश किया था यहां २१का नाश किया है. इसलिये गुणाधिक ही जानना.

१० प्रश्न-सूक्ष्म सम्पराय का क्या अर्थ? उत्तर सब क्रिया २५ हैं, जिस में २४ सम्परायिक क्रिया है सो कर्मों का बन्ध कर ने वाली है, इस गुणस्थानी २३ क्रिया का तो सर्वथा अभाव कर दिया और पेजवती क्रिया है उस के दो भेद (माया और लोभ) जिस में से

मायाका भी नाश कर दिया और लोभ के चार भेद में से फक्त एक अन्तिम संज्वलका ही लोभ रहा सो भी अत्यन्त सुक्ष्म, इसलिये सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहा है.

११ प्रश्न-उपशान्त मोह गुणस्थान में मोहकी सर्व २८ ही प्रकृति का उपशम किया. और उन प्रकृतियों का प्रगट होने का भी कारण नहीं हैं, फिर पडवाइ क्यों होते हैं? उत्तर इस स्थान में प्रकृतियों का क्षय नहीं हूवा है, इसलिये वो अन्दर रही हूइ प्रकृतियों वाष्फकी माफक उछाला देने से और इस स्थान से आगे बढने के रस्ते के अभाव से पडवाइ होते हैं.

१२ प्रश्न-क्षीण मोह गुणस्थान में सर्वथा मोहका क्षय हुवा फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है; उत्तर-कारणसे कार्य निपजता है. इस स्थान घातीये कर्म का नाश होता है तव आगे केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है. परन्तु निश्चय नयके मतसे तो यहां ही केवल ज्ञानी गिने जाते हैं.

१३ सजोगी केवली कहे सो केवल ज्ञानीके योग क्या काम आते हैं? उत्तर-अनुत्तर विमान के देवों को प्रश्नका उत्तर देने द्रव्य मन, देशना देने में द्रव्य वचन जौर जिन पुद्गलों को स्पर्शने बाकी रहे हैं उने स्पर्श ने काया के योगकी प्रवृत्ति होती है. इसलिये सयोगी हैं, परन्तु निश्चय से तो अयोगी समझना-क्योंकि-वो इच्छासे-ऊपत कर योग की प्रवर्ती नहीं करते हैं.

∴ पांचों अनुत्तर विमान वासी देवों अपने स्थान में ही रहे हुवे साविनय प्रश्न पुछतेहै. उनका केवल ज्ञानी प्रश्नका उत्तर मनके द्रव्य पणे प्रगमा कर देतेहैं. क्योंकि ज्ञान अरूपी है उसे अवधी ज्ञानी ग्रहण नहीं सकते है, और मन रूपी चौ फरसी है. उसे ग्रहण कर लेते हैं.

१४ अयोगी गुणस्थान स्पर्शने बाद ही योगों का निरुंधन होता है फिर इस स्थान को अयोगी कैसे कहना? उत्तर—भगवन्त का फ़रमान हैकि-"करे माणे करे" अर्थात् जो काम करना सुरु किया उसे किया ही कहना. वो योगों का निरुंधन तुर्त ही कर डालते हैं. और यहां ही योग रहित हो फिर मोक्ष पधारते हैं.

प्रश्न—योग राहित हुवे बाद मोक्ष जाने की क्रिया कैसे कर ते है? उत्तर—पूर्व के प्रयोग से कुम्मार के चक्रवत्, कर्म सङ्ग रहित होने से निर्लेप तुम्बीवत्, प्रति बन्ध छेद होनेसे एरण्ड बीजवत्, और जीवका उर्द्ध गमन के स्वभाव से अग्नि शिखावत् मोक्ष में पधार ते हैं.

प्रश्न—जब जीव का उर्द्ध गमन स्वभाव है तो फिर मोक्ष स्थान के आगे क्यों नहीं जाता है? उत्तर गति में सहायता कर ने वाली धर्मास्ति काया का आगे अभाव होने से अलोकमें आत्मा गमन नहीं कर सकती है.

४ प्रवेश द्वार *

१ प्रायः सर्व संसारी जीवों का प्रथमस्थ येही स्थानहै, और सम्यक्त्व व चारित्रसे पडे जीवोंभी मिथ्या स्थानमें प्रवेश करतेहैं

२ आगे कहेंगे उस चतुस्थान में प्रवृत ता हुवा जीव क्षयोपशम तथा उपशम सम्यक्त्व में घुनः लगने से अर्थात् अनन्तानबन्धि कषायों का उदय होनेसे भ्रष्ट हो नीचे पडकर मिथ्यात्वकी तरफ़ आने लगा उसके मिथ्यात्व का तो उदय नहीं हुवा, परन्तु

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ठ १९ वा.

मिथ्यात्व की सह चारिणी (साथ रहने वाली) अनन्तान बन्धि कषाय का उदय हुवा है, सो सास्वादन में प्रवेश करते है.

३ मिथ्यात्व की पर्याय हायमान होती जाती है-घटती जाती है, और सम्यक्त्व की वृद्धमान होती है-बढती जाती है, सो जीव मिश्र गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

४ चौथे गुणस्थान में दो तरह से जीवों प्रवेश करते हैं:—(१) निसर्ग से अर्थात्—स्वभाव से और (२) अधीगम से अर्थात्-गुरु के सद्बोध से. (१) जो भव्य जीवों सन्नी पचेन्द्रिय पर्याप्तावस्था की पर्याय को प्राप्त हूवा सो पहिले अनन्तान बान्धि चौकडी का प्रथम यथा प्रवृति करण से, फिर दूसरे अपूर्व करण में स्थिति घात-रस घात-गुणश्रेणी-गुण संक्रम और अन्य स्थिति बन्ध से तीसरा अनिवृत्ति करणसे, और चौथा उपशान्त अद्धा से, दर्शन त्रिक-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय युक्त उपशम कर-उपशम सम्यक्त्व,क्षयोपशमकर-क्षयोपशम सम्यक्त्व और क्षयकर क्षायिक सम्यक्त्व,इन तीनोंमेंसे किसी एक सम्यक्त्वकी प्राप्ति करताहै, सो अधीगम से प्रवेशी जानना. (२) और निश्चय से तो अधीगम हूवे ही, व्यवहार में-आर्य क्षेत्र-उत्तमकुल-दीर्घायु-पूर्णेन्द्रिय-निरोग्यता-सुलोप जीवी-इत्यादि सुसामग्री युक्त को सद्गुरु-निग्रन्थ का संयोग मिलने से सर्वज्ञ प्रणित धर्म श्रवण कर तत्वार्थ का श्रद्धान होवे सो निसर्गः से प्रवेशी जानना.

५ पांचवे गुणस्थान में तीन तरह से प्रवेश करते हैं:—चौथे गुगस्थान में अनन्तान बन्धि चौकडी और दर्शन त्रिक इन ७ स सम्यक्त्व मोहनीय की प्रकृतियों का क्षयोपशम करने से प्रवेश हुवा, और इस गुग स्थान में सात तो वोही और अप्रत्याख्याना-

वरणीय कषाय की ४ चौकडी (यह ४ चारित्र मोहनीय की प्रकृति) यों ११ प्रकृतियों में से-(१) सातों प्रकृतियों का क्षय करे और चारों प्रकृतियोंका क्षयोपशम करे,सो क्षायिक प्रवेशी.(२) सातों प्रकृतियों का ओपशम करे और चारों का क्षयोपशम करे,सो ओपशमिक प्रवेशी. (३) और दशों प्रकृतियोंका क्षयोपशम करे और एक सम्यक्त्व मोहनीय का उदय रहे सो क्षायोपशमिक प्रवेशी, तथा दशों प्रकृतियों का प्रदेशोदय और सम्यक्त्व मोह का विपाकोदय रहे सो भी क्षयोप शमिक प्रवेशी जानना.

६ छठे गुणस्थान में भी तीन तरह से प्रवेश करते हैं:-उपर कही सो ११ प्रकृतियों और प्रत्याख्यानावरणीय चौकडी यों१५ प्रकृतियों में से यथा प्रवृति करण कर-(१) सात सम्यक्त्व मोहनीय की प्रकृतियों का क्षय करे, और ८ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का क्षयोपशम करे सो क्षायिक प्रवेशी (२) पन्दरेही का उपशम करे सो उपशम प्रवेशी, (३) और ७का उपशम करे और८ औदयिक रहे सो क्षयोपशामिक प्रवेशी जानना.

७ सातवे गुणस्थान में भी छठे की तरह ही १५ प्रकृतियों और संज्वलका मान यो १६ प्रकृतियों को (१) क्षय, (२) उपशम, और (३) क्षयोपशम कर तीनों तरह प्रवेश करते हैं. विशेषमें पांच प्रमाद-मद-विषय-कषाय-निन्दा और विकथा इनका त्यागीही इस गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

८ आठवे गुणस्थान में दो तरह से प्रवेश होता है:-(१) उपशम श्रेणिगत, और (२) क्षपक श्रेणिगत. (१) उपशम श्रेणि प्रवेशीक सो उपर कही सो १६ प्रकृतियों और संज्वलकी माया यों १७ प्रकृतियों को अपूर्व करण कर उपशमावे, जो बन्ध में नहीं आवे ऐ-

सी अशुभ प्रकृतियों को प्रावृत (पल्टा) कर अपूर्व गुण संक्रम और अपूर्व करणद्धा का संख्यातवा भाग जाने बाद निद्र और प्रचला यह दोनों दर्शनावरणीय की प्रकृतिका व्यच्छेद होते बहूत स्थिति खन्ड का सहश्रोंका अतिक्रम करते बाकी एकही भाग रहे तब स्थिति खन्ड प्रथक्त्व जावे तब उपशमश्रेणि प्रवेशी जानना. यह इग्यारवे गुणस्थान तक जाकर हायमान परिमाण परिणमने से के तो पडता है, या मरता है, परन्तु आगे नहीं चडता है) और (२) क्षपक श्रेणि प्रवेशिक सो-८ बर्ष से अधिक वयवाला, बज्र वृषभ नाराच संघयणी, क्षायिक सम्यक्त्वी, विशुद्ध संयमी, चौदह पूर्व का पाठी शुक्ल ध्यानी होता है, सोही क्षपक श्रेणि में प्रवेश कर सकती है. यह चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों-का क्षय करने का उद्यम यहां से सुरु करता है. (आगे के गुणस्थनों में क्षय करता है.) यथा प्रवृति आदि तीनों करणों को फिर से सुरु करताहै, और ऊपर कही १७ ही प्रकृतियों की ऐसी तरह क्षय करताहै कि जिसकी स्थिति अनिवृति करण अद्धा के प्रथम समय में ही पल्योपम के असंख्यातवे भाग मात्र रह जाय, सो क्षपक श्रेणि प्रवेशी. (यह वृद्धमान परिणामी अपडवाइ (पडता नहीं) इग्यारवा गुणस्थान को छोड सीधाही उपर जाता है और निश्चय से मोक्ष पाता है.)

९ नववे गुणस्थान में भी दोनों तरह ही प्रवेश करता है:-(१) उपशम श्रेणिगत और (२) क्षप श्रेणिगत. आठवे गुणस्थान में कही सो १७ प्रकृतियों और संज्वलका लोभ तथा तीनों वेदयों २१ प्रकृतियों के अनिवृति करण कर, जिन प्रकृतियों का उदय काल होवे वहा ही से श्रेणि आरंभ कर प्रकृतियों का उदय

तो नहीं है परन्तु बन्ध है उनका अन्त करण दल और जिन का उदय तथा बन्ध दोनों ही नहीं हैं उनका अन्त करण दल पहिले की स्थिति में नहीं मिलाते-दुसरी स्थिति में मिलाकर, उपशम श्रेणि वाला तो उपशय के अन्त में अश्वकरणद्धा और किट्टि करणद्धा इन दोनों कर उपशमावे, और क्षपक श्रेणि वाला-अश्वकरणद्धा किट्टि करणद्धा और किट्टि करण वेदना कर क्षय करे-सो नवधे गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

(आठवे गुणस्थान में जो उपशम श्रेणि करी हो वो यहा भी उपशम श्रेणि करता है और क्षपक श्रेणि करी होसो क्षपक श्रेणि करता है.)

१० दशवे गुणस्थान में भी दो ताह से प्रवेश होता है:—(१) उपशम श्रेणिगत, और (२) क्षपक श्रेणिगत. जो उपर कही हूइ २१ मोहनीय की प्रकृतियों और हाँस षटक (हाँस–रति–अरति–भय–शोक–जुगुप्सा) इन २७ प्रकृतियों को सूक्ष्म सम्परांय अद्धकर वेदकर उपशम श्रेणि वाला उपशमावे और क्षपश्रेणि वाला खपावे सो ही दशवे गुणस्थान के प्रवेशी जानना

११ इग्यारवे गुणस्थान में एक ही तरह प्रवेश करता है, दशवे गुणस्थान में कही हूइ २७ प्रकृति यों और संज्वल का लोभ यों सब मोहनीय कर्म की २८ ही प्रकृतियों का सर्वथा प्रकार से उपशम कर ने वाला—ढक ने वाल उपशांत मोह गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

१२ बार वे गुणस्थान में एक क्षपक श्रेणी वालाही प्रवेश करता है, इग्यारवे गुणस्थान में कही हूइ मोहनीय की२८ ही प्रकृतियों का सर्वथा क्षय किया फिर बाकी रहे-ज्ञानावर-

णीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्माकी स्थिति घात-गुण श्रेणि और गुण संक्रमण कर पहिले की तरह उस क्षीण कषायद्धा के संख्याते भाग जावे वहां लग प्रवृति करेसो क्षीण कषाय गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

१३ तेरवे गुणस्थान मे-बारवे गुणस्थान के प्रथम समय तो सर्वथा मोहका नाश किया, और अन्तिम समय बाकी रहे तीनों घन घातिक कर्मों का नाश किया, यों चारों घातिक कर्मों का नाश होतेही सयोगी केवली गुणस्थान में प्रवेश करते ही सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते हैं.

१४ चउदवे गुणस्थान में-तेरवे गुणस्थान में प्रवृता हूवा सूक्ष्म कियना में शुक्ल ध्यान के तीसरे पाये की समाप्ति होते व्युपरीत क्रिया अप्रति पाति नामे चौथा पायकी प्राप्ति होवे अयोगी केवली गुणस्थान में प्रवेश होता है.

और चउदवे गुणस्थान के अन्त में बाकी रहे चारों अघातिय कर्म वेदनीय-आयु-नाम-और गौत्र का नाश कर शुद्ध-हलकी आत्मा बन-१ धनुष्य मुक्त बाण वत्-पूर्व संयोगसे, २निर्लेप तुम्बीवत असंगी होने से, ३ एरन्ड बीजवत्-बन्धन मुक्त होने से-और ४ अग्नि शिखावत्-स्व स्वभाव से उर्द्ध गमन कर लोकके अन्तिम भाग में जो मुक्ति स्थान है उसमें प्रवेश कर परम परमात्म बन अनन्त काल तक स्थिर रहते हैं.

पांचवा लक्षण द्वार *

इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ट ४४ वा.

१ पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानी के लक्षणः—१ अव्यक्त मिथ्यात्व, २ व्यक्त मिथ्यात्व, २ अभिग्रह मिथ्यात्व, ४ अनभिग्रह-मिथ्यात्व, ५ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व, ६ संशायिक मिथ्यात्व, ७ अनाभोग मिथ्यात्व, ८ लोकीक देवगत मिथ्यात्व, ९ लोकीक गुरुगत मिथ्यात्व, १० लोकीक धर्मगत मिथ्यात्व, ११ लोकोत्तर देव गत मिथ्यात्व, १२ लोकोत्तरगुरु मिथ्यात्व, १३ लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व, १३ कुप्रावचनी देवगत मिथ्यात्व, १४ कुप्रा बचनी गुरु गत मिथ्यात्व, १५ कुप्रा बचनी धर्मगत मिथ्यात्व, १६ सर्वज्ञ प्राणित सूत्रों से कमी परूपणा मिथ्यात्व, १७ सर्वज्ञ प्राणित सूत्रोंसे अधिक परुपणा मिथ्यात्व, १८ सर्वज्ञ प्रणित सूत्रों से विप्रित परुणा मिथ्यात्व; १८ धम्म अधम्म सन्ना मिथ्यात्व,१९ अधम्म धम्म सन्ना मिथ्यात्व, २०साहु असाहु सन्ना मिथ्यात्व,२१असाहू साहुसन्ना मिथ्यात्व,२२जीव अजीवसन्ना मिथ्यात्व,२३अजीव जीवसन्ना मिथ्यात्व २४मग्ग उमग्गसन्ना मिथ्यात्व,२५उमग्ग मग्गसन्ना मिथ्यात्व२६रुवी अरुवी सन्ना मिथ्यात्व, २७अरुवी रुवी सन्ना मिथ्यात्व, २८ अविनय मिथ्यात्व, २९ असातना मिथ्यात्व, ३० अकिरिया मिथ्यात्व, ३१ अज्ञान मिथ्यात्व, ३२ प्रवर्तन मिथ्यात्व, ३३ परिणाम मिथ्यात्व, और ३४ प्रदेश मिथ्यात्व. इन ३४ मिथ्यात्वों में का किसी भी प्रकार का मिथ्यात्व सेवे सो मिथ्यात्वी.

२ दुसरा सास्वादन गुणस्थान का लक्षण-मोहोदायि, आर्त रौद्र ध्यानी, हायमान परिणामी, मूर्छित मति, दुर्मति, विषयी, कषायि, प्रमादि, पडवाइ इत्यादि लक्षण का धारक सो सास्वादन गुणस्थानी.

३तीसरे मिश्र गुणस्थानीके लक्षण-मिश्र गुणस्थानी सर्वज्ञ प्र

णित् तत्वोंको भी माने और, अज्ञानीयों कथित बातों को भी माने, दोनोंही के बचनों तत्व रूप माने-आस्तिक्य बने. मिश्र मोह के उदय कर सत्या सत्य का निर्णय करने की दरकार ही नहीं रक्खे सो मिश्र गुणस्थानी.

४ चौथा अव्रति सम्यग् दृष्टि गुणस्थानके लक्षण-"तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग दर्शनम"=अर्थात- १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बन्ध, और ९ मोक्ष. इन नवों ही तत्वों को द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंकर, तथा निश्चय और व्यवहार के श्वरूप कर सर्वज्ञ प्रणितानुसार द्रव्य क्षेत्र काल भाव से भिन्न २ यथा बुद्धि जानकर श्रद्धान करने वाले,

और व्यवहार सम्यक्त्व के ७७ लक्षण युक्त होते हैं:-१ परमार्थ के जान की संगति करे, २ परमार्थ का जान होवे, ३ सम्यक्त्व-धर्म का वमन किये की संगाति नहीं करे, और ४ पाखंडियों का परिचय नहीं करे. (यह ४ श्रद्धान) ५ विषयानुरागी की तरह जिन बचन का अनुरागी होवे, ६ क्षुधातुर इष्ठ भोजन का आदर करे त्यों जिन बचन का आदर करे, और ७ विद्यार्थी की तरह जिन बचन ग्रहण करे (यह ३ लिंग) ८-१७-अरिहंत-सिद्ध-आचार्य उपाध्याय स्थविरि[1],-कुले[2]-गणे[3]-संघ[4]-स्वधर्मी-और क्रियावन्त-इन दशों का विनय करे (यह १० विनय) १८-२० अर्हंत धर्मानुयायियों को-मनसे अछे जाने-बचन से कीर्ती करे और काया से

१ बृद्ध वयवाले, बहू सूत्री-पूराणे दीक्षित इन तीनोंकी स्थविर कहते हैं. २ एक गुरु के बहूत शिष्यों के समुदाय को कुल कहते हैं. ३ सम्प्रदाय को गण कहते हैं. ४ साधु-साध्वी-श्राविक-श्राविका इन चारों को संघभी कहते है और तीर्थ भी कहते हैं:—

सुख उपजावे (यह ३ शुद्धता) २१ समभाव रक्खे, २२ वैराग्य भाव रक्खे, २३ आरंभ परिग्रह कम करे, २४ दुःखी की अनुकम्पा करे और २५ जिन बचन का पुक्त आस्तिक्य होवे (यह ५ लक्षण) २६ जिन बचन में शंका नहीं करे, २७ परमत की वांछा नहीं करे, २८ करणी के फल का सन्देह नहीं करे, २९ पाखण्ड की महिमा नहीं करे, और ३० पाखण्डिका संग नहीं करे, (यह ५ दोष टाले) ३१ धैर्य वन्त, ३२ धर्मोन्नति कर्ता, ३३ धर्मात्म का भक्ति वन्त, ३४ चार तीर्थों के गुन का जान, ३५ चारों तीर्थोंकी बृद्धि कर्ता. (यह ५ भूषण) ३६ सर्व शास्त्र का जान, ३७ निशंक बोध कर्ता, ३८ यथार्थ संवाद कर्ता, ३९ अनुमानादि से त्रिकालज्ञ होवे, ४० बीकट तपस्वी, ४१ अनेक विद्या (इल्म) का जान. ४२ प्रसिद्धि में व्रत धारे, और ४३ कवित्व कर धर्म दीपावे (यह ८ प्रभाव) ४४-४९-राजा-ज्ञाति-मावित्र-गुरु-बलवन्त-और देव इनका हुकम से धर्म विरुद्ध कार्य का आगारी (यह ६ आगार) ५०-५५ धर्मात्माओंसे एक वक्त बोले-वारम्वार बोले, इच्छित वस्तु दे-सन्मान करे गुणानुवाद करे, और नमस्कार करे. (यह ६ यत्ना) ५६ धर्म वृक्ष का सम्यक्त्व मूल जाने, ५७ धर्म भूषण की सम्यक्त्व सन्दूक जाने, ५८ धर्म नगर का सम्यक्त्व कोट जाने, ५९ धर्म मेहल का सम्यक्त्व पाया जाने, ६० धर्म पदार्थों का सम्यक्त्व कोठार जाने, और ६१ धर्म भोजन का सम्यक्त्व भाजन जाने. (यह ६स्थान) ६२ आत्मा की आस्ति माने, ६३ आत्मा शाश्वति माने, ६४ आत्मा को कर्ता माने, ६५ आत्माको ही कर्म भुक्ता माने, ६६ मोक्ष की आस्तिमाने, और ६७ ज्ञानादि रत्न को मोक्ष का साधन माने (यह ६ भावना) इन ६१ लक्षणों युक्त अविरति सम्यग् दृष्टि

होते है.

और शुद्ध व्यवहारी, चतुर्विध संघकी परम हर्ष भक्ति भावसे वत्सलता के कर्ता, मन तन धन कर धर्मोन्नति करता, गुण ग्राही-सर्व जीवों के एकान्त सुख शान्ति के इच्छक सो सम्यग दृष्टि गुण स्थानी.

५ पांचवे देश-विरति गुणस्थानी के लक्षण—चौथे गुणस्थान में कहे मुजब सम्यक्त्वी के गुणयुक्त आगे अनुक्रम से योग्यता प्रमाणे इग्यारे प्रतिमा धारण करते हैं:—१ दर्शन (समकित) प्रतिमा २ विरत प्रतिम, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ पौषध प्रतिमा, ५ नियम प्रतिमा, ६ ब्रम्हचर्य प्रतिमा, ७ सचित त्याग प्रतिमा, ८ अनारंभ प्रतिमा, ९ पेसारंभ प्रतिमा, १० अदिष्ट कृत प्रतिमा. और ११ समण भूय प्रतिमा. इनको श्रावलके गुणमें कायम रहते हूवे आगे यथा शक्ति गुणों वृद्धि करते रहें.

यह २१ लक्षण धारी होते हैं:—१अक्षुद्र,२ रूपवन्त, ३ शान्त स्वभवी, ४ अक्रूर, ५ भीरु, ६ लोक प्रिय, ७ असठ, ८ विचक्षण,९लज्जालु, १० दयाल, ११ मध्यस्त, १२ सुदीर्घदर्शी, १३ गुणानुरागी, १४ सूपक्षी, १५ गम्भीर, १६ विज्ञानी, १७ वृद्धभक्त, १८ विनीत (नम्र), १९ कृतज्ञ, २० परहितकारी, और २१ लब्धलक्षी-शास्त्रज्ञ.

और भी २१ लक्षण—१ अल्पच्छा, २ अल्पारंभी, ३ अल्प परिग्रह ही, ४ सुशील, ५ सुविरती, ६ धर्मिष्ट, ७ धर्म विरती, ८ कल्प उग्र विहारी, ९ महा संवेग विहारी, १० उदासी, ११ वैराग्यवन्त,१२ एकान्त आर्य, १३ सम्यग मार्गी, १४ सुसाधु, १५ सुपात्र १६ उत्तम, १७ किरियावादी १८ आस्तिक्य, १९ आराधिक, २०

प्रभावक, २१ अर्हंत के शिष्य,

यों सब ५३ लक्षणके धारक होवे सो देश विरति गुणस्थानी

६ छठे प्रमत संयति गुणस्थानी के लक्षण—१ अहिंसा, २ सत्ये, ३ दत्त (अचोरी,)४ ब्रम्हचर्य और ५ निष्परिग्रही. (यह ५महाव्रत) ६—१० श्रोतेन्द्रि-चक्षुरोन्द्रि-घणेन्द्रि- रसेन्द्रि और स्पर्शोन्द्रिय इन पांचों का निग्रह करे. ११-१४ क्रोध-मान-माय लोभ-इन चारों कषाय को जीते, १५-१९ ज्ञानाचार-दर्शनाचार--चारित्राचार-तपाचार और वीर्याचार इन ५ आचार को आराधे, २०-२४ इर्यासमिति, भाषा समिति-एषणा समिति-आदान-निक्षेपना समिति-और परिठावणीया समिति. इन पांच समित युक्त सदा प्रवृते. २५-२७ मन-बचन-और काया इनको स्ववस्य करे. २८-३६ मकान-कथा-आसन-प्रेक्षन-सुणन-स्मरण-सरस अहार-अधिक अहार और सिणगार,यह नव ही कामें. विषय उत्पन्न होवे वैसे त्यागे. यों ३६ लक्षण के धारक होते हैं.

१७ प्रकार संयम पाले:—पृथवी-पाणी-अग्नि-वायु-वनस्पति बेन्द्रिय तेन्द्रिय-चौरिंद्रिय-पचेन्द्रिय और अजीव काय,इन दशोंकी यत्ना करे, प्रेक्षना-पमार्जना—उत्प्रेक्षा—और परिठावणीय यह काम यत्ना निमित करे, मन बचन और काय को धर्म मार्गमें संलग्न करे.

१२ प्रकार के तप—१ अनसन, २ ऊणोदरी, भिख्याचरी ४ रसपरि त्याग ५ काया क्लेश, और ६ प्रति सलिनता (यह ६ बाह्य तप) ७ प्रायाश्चित, ८ विनय ९ वैयावच्च, १० सज्झाय ११ ध्यान और १२ कायू-त्सर्ग. यह १२ प्रकारका तप सदा करे.

यह ६५ गुण के नाम कहे ऐसे अनेक उत्तम लक्षण के धारक प्रमत संयति होते हैं, परन्तु इस गुणस्थान का नाम परमत हो-

ने से यहा मद, विषय, कषाय, निन्दा और बीकथा इन पांचों प्रमादोंके निवासस्थान होने के सबब से तथा योगोंकी, दृष्टि की, भाषा की और भावोंकी इन चारोंकी चपलता होनेसबबसे बहुदा कृष्णादि तीनों अशुभ लेश्या परिणती में परिणम ने से मूल गुणों उत्तर गुणों में सुक्ष्म बादर अनेक प्रकार के दोषों लगते हैं उन से बच ने सदा प्रयत्न वन्त रहते हैं, और लगे दोषों से शुद्ध होने सदा प्रति क्रमण प्रायश्चितादि करते रहते हैं सो प्रमत संयाति गुण स्थानी जानना.

७ सातवे अप्रमत संयाति गुणस्थान के लक्षण—यहा पाचों प्रमाद का अभाव होने से यह जीवों-मन्दाभिमानी, मन्द विषयी, मन्द कषायी, सदा उद्यमी, अल्प भाषी, गुणानुवादी, गम्भीर्य, ए एकान्त धर्म ध्यानी, ज्ञानी शान्त दान्त आदि उत्तम गुण संयुक्त होवे सो अप्रमत संयति गुणस्थानी.

८ आठवे नियटि बादर गुणस्थान के लक्षण—यह बादर दुसरे के जान ने में आवे ऐसी क्रोधादि कषायों की प्रणति में नहीं परिणमते हैं, अचपल, स्थिर स्वभावी शुक्ल ध्यानी बन पण्डित वीर्य को अवरण-अच्छा दन करने वाली प्रकृतियों को क्षय करने तीव्र वेगमय परिणामोंकी धारा समय २ प्रति बृद्धि करते हैं, सो अपूर्व करण गुणस्थानी.

९ नववे निवृति बादर गुणस्थान के लक्षण—इन के सूक्ष्म भी क्रोध मान माय और तीनों वेदों के विकार का अभाव हुवा जिस से-अक्रोधी, अमानी, अमायि, निर्विषयी, अनुभव किये हुवे देखाते सुनाते भोगों की संपूर्ण वांछा रूप संपूर्ण संकल्प विकल्प रहित अपने परमात्म स्वरूप के ध्यान में निश्चल एकाग्र परिणम

से क्षीण में क्षय करने में नहीं आती ये वर्ण तथा अवयव रचना का भेद होनेपर भी जो अनिवृति करणी रहतेहैं, सो अनिवृति करणी गुणस्थानी जानना.

१० दशवे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान के लक्षण–किसी के भी जानने में न आवे ऐसे किञ्चित मात्र स्वभाविक ही लोभ अन्तःकरण में रहने सिवाय बाकी सर्व विषय कषाय नष्ट होने से यह निष्कषायी, निर्लोभी महा गम्भीर्य, महा वैरागी, निश्चिन्त स्वात्म रूप परमात्मा के ध्यान में एकान्त एकाग्रता से निमग्न सर्व प्रकार की वांछाते निर्मुक्त महा मुनि सो सूक्ष्म सम्परायी गुणस्थानी,

११ इग्यारवे उपशान्त मोह गुणस्थानी के लक्षण–यह कषाय को उपशांत कर हायमान परिणामी होनेसे पडते हैं, जिसके दो प्रकारः– (१) एकतो भव के क्षय होने से पडते हैं सो, और (१) स्थिति के क्षय होने से पडते हैं सो. (१) जो भव के क्षय होनेसे पडवाइ-पतीत होते हैं सो उन का इग्यारवे गुणस्थान स्पर्शे बाद आयुष्य पूर्व होने से उसी वक्त वो मनुष्य भव का क्षय कर मरकर नियमा से पांचों अनुत्तर विमानों में के किसी भी एक विमान में जाकर उपजते हैं. वहां उस ही समय बन्ध संक्रमण आदि आठों ही कारणो का उद्यम प्रवृति हो इग्यारवे गुणस्थान के पडे हुवे सीधे चौथे गुणस्थान मे आकर ठेहरते हैं- बीच में के गुणस्थान किंचित मात्र ही स्पर्शा ते नहीं हैं, उपशम सम्यक्त्व से पडते वेदक सम्यक्त्व का स्पर्शन कर क्षायिक सम्यक्त्वी बन जाते हैं, सो भव क्षय पडवाइ जानना (१) और जो जीवों इस गुणस्थान की जघन्य एक समय की उत्कृष्ट अन्तर मूहूर्त की स्थिति है वो सम्पूर्ण होने से आगे जाने के रस्ते के स्वभाव के अभाव से तुर्त वहां से पीछे गिरते

हैं और जहां जहां उदय उदीरणा प्रकृतियों का व्यव छिन्न पना हुवा हो उनको पीछी आरंभते अर्थात्-जैसी तरह से उपशमाइ थी वैसी ही तरह से पीछी उदय भाव में लाते वो पडते हुवे आठवे गुणस्थान में तो नियमासे आते हैं. उसमें से कितनेक जीवों तो आठवे गुणस्थान में आकर उपशम श्रेणि त्याग कर पीछी क्षपक श्रेणि का प्रारंभ कर नववे दशवे गुणस्थान को स्पर्श बारवे चले जाते हैं. वो निश्चय से उस ही भव में मोक्ष पाते हैं. और कोइ क्षायिक सम्यक्त्वी होकर पीछा श्रेणिका आरंभ नहीं करे और आठवे में नहीं संभले वो चौथे में आकर ठेहरते हैं. इस से नीचे नहीं उतरते हैं. और उपशम सम्यक्त्वी आठवे में नहीं संभले तो सातवे छठे पांचवे चौथे आकर ठेरे, और जो कभी चौथे में भी नहीं संभले तो दुसरे होकर पहिले आवे; मिथ्यात्वी बन जावे ÷ परन्तु नियमा नहीं. कितनेक नहीं भी आते हैं. ऐसी तरहसे जो गमन गमन करे उनको उपशान्त मोह गुणस्थानी जानना.

१२ बारवे क्षीण मोह गुणस्थानी के लक्षण—इन के सर्व कषाय का क्षय होने से सर्व कर्मों की प्रकृतियों का संख्यातवा भाग में से बाकी एक ही भाग रहे उस वक्त-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, ५ अन्तराय, और दो निन्द्रा, इन १६ प्रकृतियों की सत्ता की स्थिति सर्व अपवर्तना से अपवर्त कर (घटाकर) क्षीण कषाय की अद्धा जैसी करे, परन्तु निद्रा द्विक को स्थिति स्वरूप की अपेक्षासे एक समय हीन करे, और सर्व कर्मों रूप से बराबर होवे ज

÷ यह उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि चारित्र मोहकी प्रकृतियों को उपशमाने खपाने से होती है, परन्तु सम्यक्त्व मोहनी की नहीं.

व क्षीण कषायद्धा अनन्तर मुहूर्त प्रमाण रहे. उस वक्त उन १६ प्रकृति का रसघात विराम पावे (दुसरी बाकी रही प्रकृतियों का रस घात अभीतक विराम पाया नहीं है) फिर इन १६ प्रकृतियों को उदय ऊदीरणादि से वेदते २ एक समय अधिक अवलि का मात्र रह वहां तक वेदे, फिर ऊदीरणा से विरामपावे, उस वक्त एक आवलिका मात्र उदय कर वेदे, वो जावत् क्षीण कषाय के द्वी× चरम समय तक वेदे, फिर उस द्वी चरम समय में निद्रा और प्रचला का छद्मस्त पनमें ही घात करे-अर्थात् निद्राद्धिक स्वरूप सत्ता की अपेक्षासे क्षय होये फिर ज्ञानावरणीय आदि तीनों कर्मों की १४ प्रकृताय का भी धात करे, सो मोह गुणस्थानी.

१३ तेरवे सयोगी केवली गुणस्थानी के लक्षण—यह संजोगी होनेके सबब से इन के वाह्य चलोपकरण—आहार विहारादि कार्यार्थ गमना गमनादि शुभ चेष्टा युक्त होते हैं, और—१ सयोगी २ सशरीरी, ३शुक्ल लेशी, ४ क्षायिक सम्यक्त्वी, ५ यथाख्यात चारित्री, ६ पण्डितवीर्य ७ शुक्लध्यानी, ८ केवल ज्ञानी, ९ केवल दर्शनी और १० शेलशी अवस्था को प्राप्त होते हैं, और जो पहिले तीसरे भव में तीर्थंकर नाम कर्म की उपार्जना करी होतो यहां अष्ट प्रतिहार्य, ३४ अतिशय, ३५ वणीगुण, मुनिन्द्र-नरेन्द्र-सुरेन्द्र के वंदनीय पूज्यनीय होते हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानी के लक्षण—यह योग रहित होने से स्थिति घातादि रहित हुवे हैं, जितनी उदयवति प्रकृतियों है उन्हे वेदते हुवे-क्षय करते हैं, और, जिन प्रकृति का उयद

× अन्तिम समय के पाहिले समय को द्वी चरम समय कहते हैं.

नहीं है फक्त सत्ता में रही है उस के दालिक स्तिबुक + संक्रम कर उदयवाति प्रकृतियों है उन्हे वेदे, वेदे कर क्षपावे, यों अयोगिक द्वि चरम समय लग करने से चारों ही अघातिक कर्म का यहां नाश होता है, वो अयोगी, अशरीरी, अलेशी, परम शुक्ल ध्यानी पण्डित वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्र, केवल ज्ञान, केवल दर्शन इन गुनों सहित होते हैं. सो अयोगी केवली गुण-स्थानी जानना.

अन्तिम मुक्ति स्थान के परम परमात्मा के लक्षण केवल ज्ञान केवल दर्शन, निराबाध, क्षायिक-सम्यक्त्व, अजरामर, अरुप, अगुरुलघु. अनन्त शक्तिवन्त, येही सिद्धत्व के लक्षण है.

६ छट्टा दृष्टान्त द्वार. *

१ मिथ्यात्व गुणस्थानी—जैसे जन्मान्ध मनुष्य जन्म मात्र से किसी भी वस्तु के दर्शन न होने से उसका स्वरूप यथा तथ्य जान शक्ता नहीं है, तैसे जीवादि नवों पदार्थों को जानने नहीं हैं, और जो कोई जाने तो भी -(२) जैसे धतुरा पान करने से या पीलीये के रोग से अच्छा दित हुवा मनुष्य वस्तु को विपरीत-अन्य तरह से देखता है, तैसे मिथ्यात्वी जीवों भी नव ही पदार्थों को विपरीत. अन्य तरह से श्रद्धते हैं. ३६३ पाखण्डियों की माफिक जानना.×

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ठ ९ वा.

+काव्य—मिथ्यात्वे ना लीढ चित्तानितातं । तत्वा तत्वं जानते नैव जीवाः ।
किंजात्यन्धाः कुत्र चिद्व वस्तु जाने । रम्या रम्यं वक्त मासादयेयुः ॥१॥

२ सास्वादन गुणस्थानी—(१) जैसे कोइ मनुष्य ऊँचे प्रसाद पर चड नीचे देखने से चक्कर आया सो गिरा, परन्तु जमीन तक पहोंचा नहीं. तैसेही जीव सम्यक्त्व रूप महलपर चड परस्वभाव रूप प्रथवी का अवलोकन कर्ता कषायोदय रूप चक्र आनेसे पडा, परन्तु मिथ्यात्व तक पहोंचा नहीं सो सास्वादनी. (२) जैसे किसी ने खीर सक्कर का आहार किया और वान्ती (उलटी)) होगइ, फिर मुह में थोडासा गुलचटा स्वाद बना रहता है, तैसेही सास्वादनी सम्यक्त्व का वमन किया बाद जरा से भाव रहते हैं. (३) जैसे घडीयाल पर डंक्का मारने से अबल बुलन्द अवाज हो फिर मन्द पडता जाता है तैसे सास्वादनी के परिणाम हायमान होते हैं. और (४) जैसे अम्ब वृक्ष से टुटा फल पृथवी पर नहीं आया, तैसे जीव रूप अम्ब परिणाम रूप डाल, सम्यक्त्व रूप फल, मोह रूप हवा चलने से टुटा, परन्तु थ्थियात्व रूप पृथ्वी पर नहीं पडा सास्वादनी.

३ मिश्र गुणस्थानी–(१) जैसे दही और सक्कर दोनों भेले कर खाने से खट्टा और मीठा मिला हूवा दोनों तरहका स्वाद आता है तैसे खट्टे समान मिथ्यात्व का भी स्वाद लेते हैं, और मीठे समान सम्यक्त्व का भी स्वाद लेते हैं. (२) कोइ मिश्र दृष्टि मुनि राज के दर्शन करने गया, वहां मुनि राज का अभाव होनेसे बाव जोगी फकीर जो मिला उस के ही दर्शन कर उतना ही धर्म मान लिया सा मिश्र दृष्टि जानना.

४ अविरति सम्यग् दृष्टि गुणस्थानी-(१) जैसे नदी में पडा हुवा पत्थर पानी के आवा गमन से-अन्य पत्थरों रेतीसे अथडा २ कर-घिसा २ कर स्वभाव से ही गोळ साफ-चिकणा-चमकदार बन जाता है; तैसे यह जीव संसार रूप नदी में, जन्म मरण रूप आ-

वा गमन से, क्षुधा-तृषा-शीत-ताप-ताडन-भेदन-आदि अनेक कष्टों के सहन करने से, यथा प्रवृति करण कर कोमल बना, अपूर्व करण कर उज्वल बना और अनिवृति करण कर-निर्मल बना. सम्यक्त्वी हूवा. (२) जैसे महा मेघकी घाटा से अच्छा दित हुवा सूर्य वायु के प्रयोग से वो बदल पतले पडने से कुछ तेज का प्रकाश करता है. तैसे अनादि कर्म पटलों से कर्म पडलों कर अच्छा दित हुवा आत्मा का तीनों करण रूप वायु से कर्म पतले पडने से ज्ञानादि ज्योति का कुछ प्रकाश हुवा, जिससे सर्वज्ञ प्रणित तत्वों का श्रद्धान हूवा, उन तत्वोंकी प्रभावना करे देव दानव मानव के किये मरणातिक संकट से भी सम्यक्त्व से परिणाम चलित नहीं करे, द्रढ धर्मी प्रिय धर्मी होवे कृष्ण वासुदेव श्रेणिक राजा आदिवत्

५ देश विरति गुणस्थनी–जैसे अफीम को जेहर जानता हुवा भी व्यश्र का प्रेरा हुवा कार्य साधन करने प्रमाण युक्त सेवन करता है, तैसे श्रावक भी आरंभ परिग्रह को खोटा जानते हुवे भी कर्म रूप व्यश्र के प्रेरे हुवे, आत्म कार्य साध ने मर्यादके अन्दर सदा प्रवृति करते हैं. (२) जैस धाय माता-दुसरे के बच्चे को स्तनपान कराती-क्रिडा कराती भी उस बच्चे से विरक्त भाव रहती है. तैसे श्रावक भी शरीर सज्जन का पोषण करते विरक्त भावी रहते हैं. दशों श्रावकोवत्.

६ प्रमत संयति गुणस्थानी–(१) जैसे धनावा शेठ अपने प्राण प्यारे देव दत्त पुत्र का घातिक विजय चोर के साथ (एकही खोडे मे) कर्म योग फस अपना कार्य साध ने उदासीन भाव से उसे अहार का विभाग दिया. तैसे साधु भी आत्म गुण के घातिक शरीर रूप चोर के वश्य में पड, मोक्षार्थ साध ने निर्वद्य उपचा

र से शरिर पोषते हैं. (२) जैसे लाभार्थी व्यापारी, थोडा द्रव्य का व्यय कर बहुत लाभोपार्जन करने खप करते हैं, त्यों साधु अपवाद मार्ग में प्रवृति रूप द्रव्य का व्यय कर, उत्सर्ग मार्ग की प्रवृति रूप लाभोपार्जन की खप करते हैं, धर्म रूचीजी के गुरू धर्म घोष जीवत्, या वृतमान साधूओं वत्.

७ अप्रमत संयाति गुणस्थानी—(१) जैसे उत्कृष्ट कामार्थि अपनें दुसाध्य कार्य को साध ने तत्पर हुवा, उस के मध्य में आते हुवे महा विघानो की दरकार नहीं रखता, महा कष्टों को भी शुभ रूप मान, इष्ट कार्य की तरफ लक्ष विन्दु चौंटा कर कार्य साधता है, तैसे ही अप्रमत मुनिराज भी आत्मार्थ साधन में लक्ष बिन्दू एकाग्रता से लगा, उपसर्ग परिसहों की दरकर नहीं रखते हुवे आत्म मोक्षार्थ का साधन करने में प्रवृति करते हैं, धन्ना अणगार, मेघ कुमर आदि मुनियोंवत्.

८ नियट्टी बादर गुणस्थानी—(१) जैसे अनेक पंथानुगामी (रस्तागिर) अजान रस्ते में भ्रमित हूवे, पुनः रस्ते के जान होते ही उसे उत्सहा से उलंघते हुवे, उन में से जो राज पन्थ धारण करता है सो इष्ट स्थान प्राप्त करता है. और जो छन्डियों (अपूर्ण रस्ते) में पडता है उसे आगे रस्ता न होने से उसी रस्ते पीछा पलटना पडता है, तैसे ही अष्टम गुणस्थान वृति मोक्ष मार्ग में उत्सहासे गमन करते जो क्षपक श्रेणि रूप राज मार्ग धारण करते हैं वो मोक्षस्थान प्राप्त करते हैं, और जो उपशम श्रेणि रूप छन्डि का मार्ग धारण करते है वो पडवाइ होते हैं, प्रसन्न चन्दजी राज ऋषिवत्.

दुहा—जो समदृष्टि जीवडा । करे कुटुम्ब प्रानपाल ।
अन्तरसे न्यारा रहे । ज्यो ध्याय खेलोवबल ॥१॥

९ अनियट्टी बादर गुणस्थानी—जैसे क्षार के संजोगसे दूध फट जाने से वो घृत से निरांश होता है, फक्त स्वभाविक चिकणास की झलक रहती है, तैसे नववे गुणस्थान वृति महात्मा के अन्तः करण से निवृति करण रूप क्षार कर के, विषय कषाय रूप घृत से निराश हुवा फक्त स्वभाविक संज्वल के रूप चीकास रही, हरकेशी ऋषिवत्.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानी—जैसे कासूंबे के रंग से रंगति वस्त्र को क्षारादि से धो साफ किये बाद-श्वेत हुवे बाद भी उस में रंग की कुछ मोतीया झलक रहती है. तैसेही दशवे गुणस्थान वर्ति ने आत्म रूप वस्त्र का कषाय रूप रंग को दुर करने चारित्र रूप पाणी, तप रूप अग्नि, और सूक्ष्म करण रूप क्षार (साबन) से धो उज्वल करी है तो भी सूक्ष्म संज्वल लोभ कषाय रूप झलक रहजाती है.

११ उप शान्त मोह गुणस्थानी—(१) जैसे अग्नि के प्रज्वलित अंगारे को राख कर ढक देने से उस का तेज छिप जाता है, परन्तु उसका कुछ नाश नहीं होता है, वायु का प्रयोग होते ही उपर ढकी हुइ राख दूर होते ही उस अग्नि का तेज प्रगट होता है, तैसे ही इग्यारवे गुणस्थान वृति ने मोह कर्म रुप अंगार को उपशम भाव रूप राख कर ढकी थी, सो संज्वल के रूप वायु का झपटा लग ने से पुनः जरूर ही प्रगट होती है (जिस से वो पडवाइ होता है, (२) जैसे चौतरफ मुद्रित कर एक ही दरवज्जे वली कोटडी में प्रवेश किया हुवा मनुष्य जिस रस्ते से प्रवेश किया था, उसी रस्ते से पीछा बाहिर आना पडता है-दूसरी तरफ जा नहीं शक्ता है, तैसेही इग्यारवे गुणस्थानवर्ति जिन

प्रकृतिययों का उपशम कर प्रवेश कियाथा उन्ही प्रकृतियों का पीछा उदय होने से पीछे निकलते हैं. अर्थात् पडवाइ होते हैं. कुंडरिकवत्.

१२ क्षीण मोह गुणस्थानी—जैसे प्रज्वालित अग्नि अमोघ मेघ धारा की बृष्टि कर शान्त शीतल होजाती है—साफ बुझ जाती है—फिर जिस मे उत्पन्न होने की शक्ति बिलकूलही नहीं रहती हैं. तैसेही बारवे गुणस्थान वर्ती महात्मा ने मोहनीय रूप अग्निका परम शान्ति रूप पाणी की अमोघ बृष्टिसे साफ बुझा कर—निरांकुर करी. सो पीछी कदापि उत्पन्न नहीं होती है, स्कन्धक मुनि

१३ सयोगी केवली गुणस्थानी—मेघ पटलोंका सर्वथा नाश होनेसे नभ मण्डल में संपूर्ण किरणो कर जाज्वल मान सूर्य का प्रकाश होता है. तैसे ही तेरवे गुणस्थान वर्ती के घन घातिक कर्म रूप आभ्रपठलों का नाश होते ही अनादि निधान केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप सूर्य का महान प्रकाश होता है, श्री महावीर स्वामीवत् व, चौवीसी तीर्थंकरोवत्.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानी—जैसे सर्व पर्वतों में बडा सुदर्शन मेरु पर्वत एक हजार जोजन की जमीन नीव बाला ९९ हजार जोजन का उंचा उसको प्रलय काल होवे ऐसा पवन भी हला नहीं शक्ता है, तैसे चउदवे गुणस्थानी परमात्मा के भी मनादि त्रियोगों निषक्रिय हो निष्फन्द स्थिरी भूत होजाते हैं वों कदापि चलित नहीं होते हैं. गजसुकुमालवत्.

आन्तिम—मोक्ष स्थानो प्राप्त करने के रीति—जैसे (१) पूर्व प्रयोग से—जैसे धनुश्य से छुटा हुवा बान पाहिले प्रयोग-धके कर आगे को जाता है, तैसे आत्मा भी पाहिले मुक्ति प्राप्त होनेके लिये प्र-

योग-उद्यम करता था उस प्रयोग के धक्के से मुक्ति तक जाता है. (२) असंग से सो-जैसे मट्टि और सण के लेपसे भारी हुवा तुम्बा पाणी में डूबा हुवा था, वो लेप गलकर छूटतेही तुर्त पाणी के उपर आजाता है, तैसे ही आत्मा कर्म वर्गणा के लेप कर संसार में डुब रहाथा, वो लेप गल के छूटने से संसार के अन्तिम विभाग में मोक्ष को प्राप्त होता है. (३) बन्ध छेद से सो–जैसे एरन्ड के फळ में बीज बन्धा हूवा था सो फल सूक कर फटते ही बीज ऊंचा उछल पडता है, तैसे ही आत्म कर्म बन्ध से छूटते ही उर्द्ध लोक को गमन करता है.(४)जैसे पवन रहित अग्नि की ज्वाला का स्वभाव से ही उर्द्ध गमन होता है, तैसे ही कर्म रहित आत्मा भी स्वभाव से ऊंची दिशा जाती है (५) जैसे पांचों रसों में से घृत का किसीभी रस में कथन नहीं कर सके (स्वाद नहीं बता सके) त्यों सिद्ध के सुकों का भी वरणन न होसके.

---

७ सातवा-गुण द्वार. *

१ मिथ्यात्व गुणस्थान वाला—मिथ्यात्व बुद्धि-दुर्बुद्धि कर असत्य पदार्थों में सत्य भाव धारण कर. दुःख को सुख रूप मान पुद्गल परिणति में आपा स्थापन कर, अनेक प्रकार की आधि व्याधी उपाधीसे पिडित होता है, आगे चारों गति रूप चोहटे (चौरस्त) में जीव रूप गेन्द को, कर्म रूप दंडाका प्रहार कर मिथ्यात्व रूप खेलाडू सदा परिभ्रमण करता ही रहेगा. जहां तक इस स्थान में संस्थित रहेगा वहां तक संसारका अन्त कदापि नहीं पा

---

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कण्डका पृष्ट १०४ वा.

यगा-परमात्मा नहीं बनेगा.

२ सास्वादन गुणस्थान में आने से कृष्ण पक्षी का शुक्ल पक्षी + हुवा, और आगे उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन काल बाद निश्चयसे मोक्ष पावेगा.

३ मिश्र गुणस्थान में आने से मिथ्यात्व कर काला उदिड ध्यान्य जैसा था, सो परिणामों कि मिश्रिता रूप पाणी से धोवाकर मोगर दाल जैसा उज्वल हुवा, कृष्ण पक्षी का शुक्ल पक्षी हुवा, अनादि से उलटा (मोक्ष की तरफ पृष्ट और संसार की तरफ मुख) था सो सुलटा होगया. सम्यक्त्व सन्मुख हुवा. आगे शक्ति की वृद्धिकर उत्कृष्ट देश ऊणा (कुछ कम) अर्ध पुद्गल परावर्तनमें मोक्षपावे

४ अविरति गुणस्थान स्पर्श ने वाले-सम्यक्त्व उपार्जन किये पहिले, आयू का बन्ध पड गया हो, वो और सम्यक्त्व का वमन किये बाद भी चारों गति में चला जाता है. तो भी देश ऊणे अर्द्ध पुद्गल परावर्तन के अन्दर मोक्ष पाता है, और जो पहिले आयुष्यका बन्ध नहीं पडा होवे तो-सम्यक्त्व उपार्जन कियेबाद-१ नरकगति, २ भवनपाति देव, ३ व्यन्तर देव, ४ जोतिषी देव, ५ तिर्यंचगति, ६ स्त्रीवेद, और ७ नपूंसक वेद, इन सातों स्थानों में उपजने का-मरकर जाने का आयु बन्ध करे नहीं. अर्थात्-सम्यक्त्वी मरकर इन सातों स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है. सम्यक्त्वी तो फक्त एक ऊंच जाति के विमानीक देवों में प्रथम स्वर्ग से बारवे स्वर्ग तक जाकर उत्पन्न होता है, और जो सम्यक्त्व का वमन नहीं करेतो निश्चय से

+ मिथ्यात्व रूप राहु करके चैतन्य रूप चन्द्रमा अनादि से अच्छा दिन, रहथा सो इस स्थान में आने से वो राहूं जरा दूर हुवा जिस से द्वितीया के चन्द्र जैसा ज्ञानादि आत्म गुणका प्रकाश हुवा.

पन्दरे भवों के अन्दर ही मोक्ष प्राप्त करलेता है.

५ देशव्रति गुणस्थान में आने वाले-संतोष रूप आनन्दके भुक्ता, सर्व जीवों के विश्वासनिय, माननिय, यशःश्वी बने, और जो व्रतों का भंग नहीं करे तो-जघन्य पहिले देव लोक में उपजे, उत्कृष्ट बारवे देवलोक में उपजे, और जघन्य ३, उत्कृष्ट १५ भवमें मोक्ष प्राप्त करे.

६ प्रमत संयाति गुणस्थान वाले—सर्व चिन्ता से निर्मुक्त, शील संतोष दया क्षमा आदि विभुति से भूषित, तपोधन, नरेन्द्र सुरेन्द्र के वंदनीय पूज्यनीय, ज्ञानान्द के ध्यानानन्द में निर्मग्न रह आयुष्य समाप्ति बाद जघन्य प्रथम स्वर्ग उत्कृष्ट अन्तिम स्वर्ग सर्वार्थ सिद्ध विमान तक जाकर उपजते हैं, और जघन्य ३, उत्कृ-ष्ट १९ भव में मोक्ष पाते हैं.

७-१० अप्रमत संयति से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में प्रवृत ते, अप्रमादि निर्विषयी, निःकषायी आत्म ध्यानके परमानन्द में मग्न हूवे, आष्यु के अन्त कल्पतीत देवों में जाकर उत्पन्न होवे. और उत्कृष्ट तीसरे भव मे मोक्षकी प्राप्ति करे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान वाले-वीतरागी-यथाख्यात चा रित्री, परम उपशान्त रस मे निर्मग्न, आत्म ज्ञान के सहाजनन्द सुखों में रमण कर्ता, आयुष्य पूर्ण कर अनुत्तर विमान में उपज-ते हैं. और जघन्य उसी भव में, उत्कृष्ट तीसरे भव में मोक्ष पातेहैं. १२क्षीणमोह गुणस्थान वाले-क्षपकश्रेणि,क्षायिकभाव क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक-यथाख्यात चारित्र, करण सत्य, जोग सत्य, भाव सत्य, अमायी, अकषायी, वीतरागी, भावनिग्रन्थ, संपूर्ण सम्बुड, सम्पूर्ण भवीतात्मा, महा तपश्वी, महा सुशील, अमोही, अविकारी, महा-

ज्ञानी, महा ध्यानी, वृद्ध मान परिणामी, अपडवाइ उस ही भवमें मोक्ष पाते हैं.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान वाले-परमात्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन प्रकट होने से सर्वज्ञ सर्व दार्शी बने, अर्थात्-सर्व द्रव्य सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव और सर्व भवों की परिपाटीको एक समयमें अविछिन्न पने जानने देखने लगे, सर्व जगत् जंतुओंके माननिय वंदनीय पूज्यनीय हूये. और आयुष्य के अन्त निश्चय समोक्ष पावे.

१४अयोगी केवलगुगस्थानवाले सर्व उत्तमोत्तम गुणोंके सागर सर्वथा कर्म मल रहित, परम पवित्र, अनन्तर, अप्राति पाति, अनिवृति ध्याता, रूपातीत, फक्त पंचलघु अक्षर उच्चारनेमें जितनी देर लगती है उतनी देर बाद में ही मोक्ष प्राप्त करते है.

और अन्तिम मोक्ष स्थान को प्राप्त भये हैं. वो परमात्म-जन्म जरा मरण रूप जालम दुःखों सर्व था मुक्त हो आधि व्याधि उपाधी का जड मूल से नाश कर, निराबाध-अक्षय-अनन्त सुख के भुक्तावने, सिद्ध, बुद्ध, परांगत, परम्परागत, सर्व कार्यार्थ साध, कृतकृतार्थ, निष्टितार्थ, अतुल सुख सागरमें सदा निर्मग्न बने रहते हैं.

आठवा अवघेणा द्वार *

मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्र और अविरति इन चारों गुणस्थान में वर्तने वाले जीवों के शरीर की अवघेणा (ऊंचाइ) जघन्य (थोडीसे थोडी) अंगुल के असंख्यातवे भाग जितनी, और उत्कृष्ट

* इस द्वाराके खुलासे के लिये देखीये अर्थ काण्डका पृष्ट १०९ वा.

(ज्यादा से ज्यादा) एक हजार जोंजन प्रमाणें होती है

देशव्रति गुणस्थान वालों की जघन्य ९ अंगुल की, उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवघेणा होती है.

प्रमत अप्रमत गुणस्थान वालों की जघन्य १ हाथ की उत्कृष्ट पांचसो धनुष्य की अवघेणा होती है.

अपूर्व करण गुणस्थान से लगाकर अयोगी केवली गुणस्थान वालों की जघन्य २ हाथ की उत्कृष्ट ५०० धनुष्यकी अवघेणा.

और अन्तिम स्थान मुक्ति में जो परमात्माके शुद्धात्म प्रदेशों है उन की जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ सोले अंगुल, और उत्कृष्ट ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल की अवघेणा होती है.

नववा-उत्पाति द्रव्य परिमाण द्वार=

एकही समय में जीवो उत्पन्न होवे तो मिथ्यात्व गुणस्थान में जघन्य-१-२-३, उत्कृष्ट संख्याते असंख्याते और अनन्ते जीव.

सास्वादन, मिश्र, अविरति, और देश विरति-इन पांचों गुणस्थान में जघन्य -१-२-३, उत्कृष्ट-संख्याते असंख्याते जीवों पावे.

छट्टे प्रमत गुणस्थानमें जघस्य १-२-३-उत्कृष्ट ÷ प्रत्येक हजार

सातवे अप्रमत गुणस्थानमें जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक सो.

अपूर्व करण,अनिट्टी बादर, और सूक्ष्म सम्पराय, इन तीनों गुणस्थान मे अलग जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट दोनों श्रेणि के मिल १६२ जीवों पावे.

☞ = इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ठ १०९ वा.

÷ दोसे लगाकर ९ तक की संख्या को 'प्रत्येक' नाम से बोलाते हैं.

उपशान्त मोह गुणस्थानमें जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट५४जीवो औ क्षीण मोह, संयोग केवली अजोगी केवली इन गुण-स्थाने में तया अन्तिम मोक्ष स्थान में जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट१०८ जीवो उपजते हैं.

दशवा-पावति द्रव्य परिमाण द्वार. ×

हरवक्त-मिथ्यात्व गुणस्थान सें-अनन्तांत जीवों पातेहैं.

सास्वादन और मिश्र गुणस्थान में-जघन्य-१-२-३, उत्कृष्ट असंख्याते-आविराति और देशविराति गुणस्थान में-जघन्य थोडेअ-संख्याते उत्कृष्ट बहूत असंख्याते जीव पावे.

प्रमत गुणस्थान में जघन्य दो हजार क्रोड, उत्कृष्ट ९ ह-जार क्रोड-अप्रमत गुणस्थानमें-जघन्य दोसो क्रोड उत्कृष्ट९सो क्रोड.

अपूर्व करण, अनिटीबदर और सूक्ष्म सम्पराइ इन तीनो गु णस्थानों में उपशम श्रेणिके ५४ और खपक श्रेणिके १०८ दोनों मिल १६२. उपशान्त मोह गुणस्थानमें-पूर्व प्रवर्तन आश्रय-जघन्य, १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक,सो वर्तमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट ५४ जीवोंपावे.

क्षीण मोह गुणस्थान में-पूर्वप्रवर्तन आश्रिय जघन्य१-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येकसो, वृतमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट १०८ जीवों पावे.

संयोगी केवली गुणस्थानमें पूर्व प्रवर्तन आश्रिय जघन्य दोक्रोड उत्कृष्ट नव क्रोड जीव पावे, वृतमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-

× इस द्वारके खुलासाके लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट १०९वा.

३, उत्कृष्ट १०८ जीवों पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान मे पूर्व प्रवर्तन आश्रिय जघन्य, १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक सो जीव पावे. वर्तमान प्रवृतन आश्रिय जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट १०८ जीवों पावे.

अन्तिम सिद्धस्थान में-सदा अनन्तांत जीवोंका निवासहै.=

इग्यारवा-क्षपति द्रव्य परिमाण द्वार.

एक समय में जीवोंचवे-खपे-मरे तो-१ मिथ्यात्व गुणस्थानमे जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट-संख्याते असंख्याते अनन्ते.

२-५ सास्वादन से देशविरति गुणस्थान वाले जीवों एक समय में चवेतो जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्याते असंख्याते.

६-७ प्रमत अप्रम गुणस्थान मे-जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक सो.

☞ × इस द्वारके खुलासा के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ठ १०९ वा.

* दिगम्बर आमना के सुदृष्ट-तरगणी ग्रन्थ में गुणस्थानों में जीव द्रव्य का परिमाण इस्तरे बताया है:—पहिले गुणस्थान में-अनन्तान्त जीवों पावे दुसरे मे--तेरे (१३) क्रोड़ जीवों पावे. तीसरे में-५२ क्रोड, चौथेमे-७०० सो क्रोड, पांचवे में-१०४ क्रोड, छठे मे-५९३९८२०६, सातवे में-२९६९९१०३, ॥ उपशम श्रेणी आश्रिय आठवे में-२९९, नववे में २९९, दशवे में, और इग्यारवे मे भी २९९, सर्व--११९६ और क्षपक श्रेणी आश्रिय-आठवे में-५९८, नववे में ५९८, दशवेमें-५९८ वारवे मे भी ५९८, और चउदवे में भी ५९८ सब-२९९०, और तेरवे गुणस्थान में-केवल ज्ञानी ८९८५०२ पाये, यों पाहिला छोडतेरे ही गुणस्थान के मिल ८९९९९९९७ इतते जीव एकही वक्त में पाते हैं. यह वात वहूत ही विचार ने जैसी है किस अपेक्षासे लिखा है सो ग्रन्थ कर्ता जाने.

८-१०अपूर्व करण-अनिटी बाद और सूक्ष्म सम्पराय इन तीनों गुणस्थान में. जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट दोनों श्रेणिके मिल कर १६४ जीवों.

११ उपशान्त मोह में जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट ५४ जीवमरे.

१२–१४ क्षीण मोह,सयोगी केवली और अजोगी केवली गुणस्थान में जघन्य १-२-३ जीवों चवे, उत्कृष्ट-१०८ जीवों एक समयमें मरे, और आन्तिम सिद्धस्थानमें खपति नहींहै-सदा बृद्धिहीहै.

बारवा-क्षेत्र परिमाण द्वार *

१ मिथ्यात्व गुणस्थान सर्व लोक में पावे.

१-४ सास्वदन, मिश्र, और अविरति यह तीनो गुणस्थान त्रस नाडी मेंही पावे.

५ देशविरति गुणस्थान-तिरछे लोक में और अधोलोक में.

६–१४ प्रमत से संयोगी केवली तक के ९ गुणस्थान वाले जीवों अढाइ द्वीपमेंही पातेहैं.

तेरवा-क्षेत्र स्पर्शना द्वार*

१ मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों सर्व लोक स्पर्शे.

२ सास्वादनी-नीचे पंडग वन से छठी नरक तक स्पर्शे उपर अधोगामिनी विजय से नवग्रिवेक तकका क्षेत्र स्पर्शे.

३ मिश्र गुणस्थान वाले-लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्शे.

४ अविरति गुणस्थानी-ऊपर अधोगामिनी तिजय से बारह

* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये- अर्थ कांडका पृष्ठ ११९ वा.

देव लोक तक, और नीचे पडंगवनसे छठी नरक तकका क्षेत्र स्पर्शे.

५ देश विरति गुणस्थानी-अधो गामिती विजय से १२ देवलोक तक स्पर्शे.

६-११ प्रमत गुणस्थानी से लगा, उपशान्त मोह गुणस्थान वाले जीवों अधोगामिनी विजय से लगाकर पांच अनुत्तर विमान तक स्पर्शे.

१२ क्षीण मोह गुणस्थान वाले लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्शे.

१३ सयोगी केवली गुणस्थानी-सर्व लोक स्पर्शे. =

१४ और अयोगी केवली गुणस्थानी-तथा सिद्ध भगवान लोक का असंख्यात वा भाग स्पर्शे.
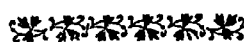
चउदवा-काल परिमाण (स्थिति) द्वार.×

१ मिथ्यात्व गुणस्थानकी स्थिति तीन प्रकार कीः-(१)अणाइया अपज्जवासिया" अर्थात्-आदि और अन्तरहित मिथ्यात्व अभव्य जीवों का होता है, अभव्य कदापि सम्यक्त्व नहीं स्पर्शतेहैं. (२) "अणाइया सपज्जवसीया"-अर्थात् आदि तो नहीं परन्तु अन्त आता है, ऐसा मिथ्यात्व भव्य जीवोंका होता है, किसीभी वक्त मिथ्यात्व गुणस्थान का त्याग कर आगें बडते हैं. (३) सइया सपज्जवसीया" अर्थात्-आदि और अन्त दोनों सहित. ऐसे

☞ × इस द्वारके खुलासा के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट ११९ वा.

= सर्व लोक केवल समुद घात करतीं वक्त स्पर्शते हैं

मिथ्यात्वी पडवाइ + सम्यग् दृष्टि जीव होते हैं. जिनकी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्तकी, उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन काल जितनी

२ सास्वादन गुणस्थान की स्थिति-जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट छे आवलि का और सात समय की, फिर मिथ्यात्व में जावे.

३ मिश्र गुणस्थान की स्थिति—जघन्य उत्कृष्ट अंतर ही मुहुर्त की. ÷

४ अविरति सम्यकदृष्टि गुणस्थानकी स्थिति-जघन्य अन्तर मुहूर्त मुहुर्त की, उत्कृष्ट६६ छांसट सागरोपम झाजेरे की (कुछ ज्यादा)×

५-६-१३ देश विरति, गमत संयति और सयोगी केवली इन तीनो गुण स्थानों की स्थिति-जघन्य अन्त मुहूर्त की, उत्कृष्ट-देश उणा (८ वर्ष कम) क्रोड पूर्व की. ×

+ पडवाइ सम्यक्त्व दृष्टि उसे कहते हैंकि-जो मोहनीय की प्रकृतियोंका उपशम (ढक) कर सम्यक्त्वकी प्राप्तिकरी, और फिर मोहोदय होने से सम्यक्त्व का वमन कर पडा-मिथ्यात्व में गया (यह मिथ्यात्व की आदि हुइ) और फिर भी उन प्रकृतियोंकी उपशम क्षयोपशम क्षयकर उस गुणस्थान छोड ऊपर चडा(यह अन्त हुवा) यों दोनों भांगे पाते हैं.

÷ जितना व्यजनात्र ग्रहका काल (पृथक श्वाश प्रमाण) होता है, उतनी मिश्र गुणस्थानकी स्थिति है.

× यह ६६ सागरोपम यों होते हैं.—बारवे देवलोक में २२ सागरोपम की स्थिति उत्कृष्टी है. वहां तीन वक्त उपजे, और बीच में तीन भव मनुष्यके करेसो झा. जेरा जानना. क्योंकि देवता मरकर देवता होता नहीं हैं इसलिये बीच में तीन भव मनुष्यके गिने है. यों छांछट सागर तीन पूर्व क्रोडी मनूष्य भव आश्रिय अधिक पूरा कर फिर जो माहोदय होयतो मिथ्यात्व में चलाजाय.

÷ साधू पना और श्रावक पना विज्ञान वय (८ वर्षकी) हुवे बाद ही ग्रहण

७-११-२ प्रमत गुणस्थानसे लगा उपशान्त मोह गुणस्थानँ तक पांचोंकी अलग २ स्थिति—जघन्य १ समय, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की·

१४ अयोगी केवली गुणस्थान की स्थिति पंच लघु अक्षर (अ· इ. उ. ऋ. ल.) इन के उच्चार में वक्त लगे उतनी.

और अन्तिम स्थानी सिद्ध भगवन्त की स्थिति दो प्रकार की—(१) "अणादिया अपंजवसिया," सो अन्त सिद्धोंका आदि और अन्त दोनों ही नहीं हैं· क्योंकि अन्त काल वीत गया और वीत जायगा और (२) "सआय अपज्जवसीया" सो कितनेक सिद्धों की आदि तो है जैसे महावीर प्रभू कार्तीक अमवस्य को मोक्ष पधारे परन्तु अन्त नहीं· अमर हैं·

पन्दरवा-काल प्राप्त द्वार

३—१२—१३ तीसरा-मिश्र, बारवा-क्षीण मोह, और तेरवा—संयोगी केवली इन तीनोगुण स्थानों में कोइभी जीव कदापि काल प्राप्त नहीं करता—मरता नहीं है·

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में अवस्य काल करता हैं-

१—११ बाकी दश गुणस्थानों में काल करने की 'भजना'—अर्थात् कोइ मरे और कोइ नहीं भी मरे· उपर नीचे चला जाय. और सिद्धतो अमर ही हैं.

कर सकते है, सो कर्म भूमीही ग्रहण कर सकते हैं. उनकी उत्कृष्ट उम्मर क्रोड पूर्व की ही होती है.

सोलवा-भाव परिमाण द्वार.

१—१ मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा कर दशवे सूक्ष्म सम्प राय गुणस्थान तक तीव्र, मन्द, मंदतर, तीव्रतम्ययों असंख्यात स्थान (समय २ पलटा) होते ही रहते हैं. ११—१४ इग्यारवे- उपशान्त मोह गुणस्थान से चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान तक कषायोदय नहीं होने के सबब से चारित्र के स्थानमे भेद नहीं होता है, (परंतु निर्ज्जरा के स्थान में अनेक भेदहैं.) सदा एक सेभावरहतेहैं.

सतरवा-निरंतर गुण परिमाण द्वार

१—३ मिथ्यात्व सास्वादन और मिश्र इन तीनो गुणस्थानों में पल्योपम के असंख्यातवे भाग के काल जितनी देरतक निरन्तर गुण रहते हैं.

४—५ अविराति और देशविरति गुणस्थान में—आंवलि का असंख्यातवे भाग काल तक निरंत्र गुण रहते हैं.

६—१४ प्रमत गुणस्थान से लगाकर चउदवे गुणस्थानक८ समय पर्यंत निरंत्र गुण रहते हैं.

अठारवा मार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थानि के गति मार्ग चार पाहिले गुणस्थान से—१ तीसरे में जाम, २ चौथे जाय, ३ पांचवे जाय, और ४ सातवे जाय.

२ सास्वादन गुणस्थान की गति मार्गणा नहीं, क्योंकि पड वाइ होता है.

३ मिश्र गुणस्थान की गति मार्गणा तीनः—तीसरे गुण-स्थान से—१ चौथे गुणस्थान जाय, २ पांचवे गुणस्थान जाय, औ र सातवे जाये.

४ अविरति गुणस्थानी की गति मार्गणा दोः—चौथे गुण स्थान से (१) पांचवे जाय और (२) सातवे जावे.

५ देशविरति गुणस्थानकी गति मार्गणा एक-सातवे जावे.

६ प्रमत गुणस्थनीकी भी गति मार्गणा एक-सातवे जावे.

७ अप्रमत गुणस्थानी की गति मार्गणा एक आठवे जावे.

८ अपूर्व करण गुणस्थानीकी गति मार्गणा एक-नववेजावे

९नियटि बादर गुणस्थानीकी गति मार्गणा एक-दशवेजावे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान की गति मार्गणा दो इग्यार-वे जावे.

११ उतपशान्त मोह गुणस्थानी की गति मार्गणा नहीं, क्योंकि-पडवाइ होता है,

१२क्षीण मोह गुणस्थानीकी गति मार्गणा एक-तेरवे जावे.

१२ संयोगी केवली गुणस्थानी की गति मार्गणा एक—चौ-दवे जावे.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानीकी गति मार्गणा-मोक्ष जावे मोक्ष स्थान से गति मार्गणा नहीं सदा स्थिर रहते हैं.

उन्नीसवा उपमार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में उपमार्ग नहीं,-क्योंकि-पाहिला ही

उत्कृष्ट वैराग्य दिशा प्राप्त होतेही सातवे गुणस्थान में चले जाते हैं, और फिर „देंव भेट की जातरा पूरी हुइ" इस दृष्टान्तानुसार वो पडकर छठेमें आते है.

२ सास्वादन में उपमार्ग एक-पहिले आवे.

३ मिश्र गुणस्थानी का उपमार्ग एक-पहिले आवे,

४ अविरति गुणस्थानी के उपमार्ग तीन-तीसरे आवे दूसरे आवे, और पहिले आवे.

५ देश विरति गुणस्थानी के उपमार्ग चार-१ चौथे आवे, २ तीसरे आवे, ३ दूसरे आवे और ४ पहिले आवे.

६ प्रमत गुणस्थानी के उपमार्ग-३ पवे पांचवे आवे चौथे आवे, ३ तीसरे आवे, ४ दूसरे आवे, और ५ पहिले आवे.

७ अप्रमत गुणस्थानी के उपमार्ग दो - १ छठे आवे के २ चौथे आवे.

८ अपूर्व करणी के उपमार्ग दो-(१) सातवे आवेके २चौथे आवे.

९ नियटि बादरीके उपमार्ग दो—१ आठवे आवेके २ चौथे आवे.

१० सूक्ष्म संपरायिके उपमार्ग दो-१ नववे आवे के २ चौथे आवे.

११ उपशांत मोहीके उपमार्ग दो-१ दशवे आवे के २ चौथे आवे.

१२—१४ क्षीण मोहसे सयोगी केवली तक और सिद्धों के उपमार्ग नहीं पडें नहीं.

---

२० बीसवा "परस्पर मार्गणा द्वार"

१ मिथ्यात्व गुणस्थान छोड-चौथे पांचवे और सातवे जावे

२ सास्वादन गुणस्थान छोड-पहिले ही जावे.

३ मिश्र गुणस्थान छोड पडेतो पहिले आवे और चडेतो चौथे जावे.

४ अविरति गुणस्थान छोड-चडेतो पांचवे और सातवे जा-

वे और जो पडे तो-पाहिले-दुसर-और-तीसरे-आवे.

५ देशविरति गुणस्थान छोड चडेतो-सातवें जावें. और पडेतो पाहिले दूसरे तीसरे और चौथे आवे.

६ प्रमत गुणस्थान छोड-चडेतो सातवे जावे, और पडेतो पहिले दुसरे तीसरे चौथे और पाचवे आवे.

७ अप्रमत गुणस्थन छोड-चडेतो आठवे जावे, और पडेतो छठे आवे, और काल करेतो चौथे आवे.

८ अपूर्व करण गुणस्थान छोड चडेतो नववे जावे, और पडेतो सातवे आवे, और काल करे तो चौथे आवे.

९ नियटि बादर गूणस्थान छोड-चडेतो दशवे जावे, और पडेतो नववें आवे, और काल पूर्ण करेतो चौथे आवे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गूणस्थान छोड-चडेतो उपशम श्रेणिवाला इग्यारवे जावे. क्षपक श्रेणि वाला बारवे जावे, तथा पडेतो नववे आवे और कालपूर्ण करेतो-मरेतो-चौथे आवे.

११ उपशान्त मोह गूणस्थान छोड-चडे नहीं. पडेतो दशवे और आवे मरेतो चौथे आवे.

१२ क्षीण मोह गूणस्थान छोड-तेरवे जावे, पडे नहीं

१३ सयोगी केवली गुणस्थान छोड-चउदवे जावे, पडे नहीं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान छोड-मोक्ष जावे पडे नहीं. और मोक्ष छुटही नहीं. कही जावेही नहीं सदा वाही बने रहैं.

इक्कीसवा–परस्पर उपमार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में-दुसरे तीसरे चौथे पांचवे और छट्टे

इन ५ गुणस्थान से आवे.

२ सास्वादन में चौथे पांचवे और सातवे इन३गुणस्थानसे आवे.

३ मिश्र गुणस्थान में-पहिला चौथा पांचवा और छट्ठा इन ४ गुणस्थान से आवे.

४ अविरति गुणस्थान में पहिला-तीसरा-पांचवा और जावत इग्यारवे गुणस्थान तक के कितनेक परिणाम से और कितनेक कर्म से आते हैं.

५ देशविरति में-पहिला चौथा और छठा इन ३ गुणस्थान से आवे.

६ प्रमत गुणस्थान में-फक्त एक सातवे गुणस्थान से ही आवे.

७ अप्रमत गुणस्थान में-१ पाहिलेसे, चौथे से पांचवे से, छंठे से. और आठवे से. इन ५ गुणस्थान से आवे.

८ अपूर्व करण में-बृद्धमान पारिणामी सातवे से और हायमान परिणामी नववे से आवे.

९ नीयठि बादर में-बृद्धमान परिणामी आठवे से, और हायमान परिणामी दशवे आवे

१० सूक्ष्म सम्पराय मे-बृद्धमान परिणामी नववे से, और हायमान परिणामी इग्यारवे से आवे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान में फक्त दशवे गुणस्थान से ही आवे.

१२ क्षीण मोहगुणस्थान मे फक्त एक दशवे गुणस्थान सेही आवे.

१३ सयोगी केवली गूणस्थानमें फक्त एक बारवे गुणस्थान से ही आवे.

१४अयोगी केवली गुणस्थानमे फक्त एक तेरवे गुणस्थासेही आवे.

और मोक्ष स्थान में फक्त एक चउदवे गुणस्थान से ही आवे.

बावीसवा-अरोह अवरोह द्वार.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान वाले की एक आरोह-चडती गति.

२ सास्वादन गुणस्थानी की एक अवरोह-पडति गति.

३-१० मिश्र गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान वाले-अरोह अवरोह-चडति पडति दोनों प्रकार की गति करें.

११ उपशान्त मोह गुणस्थानी की एक-अवरोह गति.

१२-१४ क्षीण मोहसे संयगी केवली तक एक-अवरोह गति.

और सिद्धस्थान में दोनों ही गति नहीं-स्थिर हैं.

तेवीसवा चडाचड गति दृष्टान्त द्वार

१ दादुर (मेडक,) २ परनाल, ३ ईलड, और ४ उलाल, इन चारों प्रकारकी गति में से.

१ मिथ्यात्व गुणस्थानी की एक दादुर गति-फदक मारचडे,

२सास्वादन गुणस्थानीकी एक परनालगति-परनाल ज्यों पडे,

३ मिश्र गुणस्थनी की गति दो तरह—१इलड और उलाल.

४अविरति गुणस्थानी चारों प्रकारकी गति करतेहैं.

५देश विरति गुणस्थानी तीनप्रकारकी गति करे-१ दादुर२ प्ररनाल, और ३ उलाल.

६—९ प्रमत गुणस्थान से नियट्टि बादर गुणस्थानवाले तीन प्रकारकी गति करे-१ ईलडगति, २ परनालगति, और ३ उलालगति.

१० सूक्ष्म संपराय गुणस्थानी चारोंही प्रकारकी गति करे

११ उपशान्त मोह गुणस्थानी दो प्रकारगति करे-१ परनाल और २ उलाल.

१२—१४ क्षीण मोह से संयोगी केवली गुणस्थान वाले तक एक इलड गति करतेहैं, और सिद्ध परमात्माके एकही प्रकारकी गति नहीं है, सदा स्थिर हैं.

चौबीसावा अन्तर काल द्वार*=

एक जीव आश्रिय-मिथ्यात्व गुणस्थान का विरह पडे तो जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट ६६ सागर का अथवा १३२ सागर का ÷ झाजेरा.

सास्वादन गुणस्थान से लगाकर उपशान्त मोह गुणस्थान तक का विरह पडेतो जघन्य अन्तर मुहूर्त अथवा पल्योपमके असंख्यातवे भाग जितना क्योंकि इतने काल विना उपशम श्रेणिकर पीछा पडे नहीं. और उत्कृष्ट अन्तर देश ऊणा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन का.

क्षीण मोहसे अजोगी केवली गुणस्थान का अन्तर पडे नहीं. पीछे अवे नहीं. और सिद्धस्थान का भी कभी अन्तर पडताही नहीं है.

☞ * इस द्वाराके खुलासे के लिये देखीये अर्थ काण्डका पृष्ट १०९ वा

= कच्छेसे आये गुणस्थान द्वारके थोकडे के अनुसार-दुसरे तीसरे गुणस्थान का अन्तर जघन्य १ समय का, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग का. आठवे नववे दशवे गुणस्थान का, उपशम श्रेणिवाले के ९ बर्ष का, और क्षपक श्रेणि बाले के ६ महीनेका, इग्यारवे में फक्त उपशम श्रेणि है सो ९ बर्ष का, और बारवे से चउदव गुणस्थान का अन्तर पडे ही नहीं.

÷ मिथ्यात्व छोड ६६ सागरोपम तक चौथे गुणस्थान में रहे वहांसे अन्तर मूहूर्त तीसरे गुणस्थाम में रहे और, फिर चौथे गुणस्थान में आकर ६६ सागरोपम रहे और फिर मिथ्यात्व में चला जावे.

पच्चीसवावा-विरह काल द्वार.

इस लोकमेंसे-१ मिथ्यात्व, ४ अविरति, ५ देश विरति,६प्र-मत संयति और १३सयोगी केवली इन पांचों गुणस्थानों का विरह कदापि नहीं पडता हैं, यह गुणस्थान लोक में सदाही पाते हैं.

सास्वादन और मिश्र का विरह पडेतो जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट अन्तर मुहुर्त का.

अपूर्व करण, नियटि बादर, सूक्ष्म सम्पराय, उपशान्त मोह क्षीण मोह और अयोगी केवली इन गुणस्थान का विरह पडेतो ज घन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट छे महीनेका, फिर तो कोइ जीव ज रूरही गुणस्थान स्पर्शे होताहै.

२६वा एक भव आश्रिय स्पर्शना द्वार.

एकही भव में-१ मिथ्यात्व गुणस्थान जघन्य १ वक्त, उत्कृ-ष्ट ९०० वक्त स्पर्शे. २सास्वादन गुणस्थान जघन्य एक वक्त, उत्कृ ष्ट दो वक्त स्पर्शे.

३–४ मिश्र और अविरति गुणस्थान जघन्य १ वक्त, उत्कृ ष्ट प्रत्येक हजार वक्त स्पर्शे.

५-७ देशविरति, प्रमत संयती और अप्रमत संयती गुणस्थान १ जघन्य वक्त उत्कृष्ट ९०० वक्त स्पर्शे.

८-१० अपूर्व करण नियटि बाद और सूक्ष्म सम्पराय गुण-स्थान जघन्य एक वक्त, उत्कृष्ट चार वक्त स्पर्शे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान जघन्य १वक्त उत्कृष्ट २ वक्त स्पर्शे.
१२-१४क्षीणमोह-सयोगी केवली-और अयोगी केवली यह तीनों गुण

स्थान एक ही वक्त स्पर्शे.

और सिद्ध स्थान भी एक वक्त स्पर्श बाद छूटता ही नहीं है.

सतावीसवा-बहुतभव आश्रिय स्पर्शना.

बहुत भवों में-१ मिथ्यात्व गुणस्थान को जघन्य दो वक्त स्पर्शे. उत्कृष्ट-असंख्यात वक्त स्पर्शे.

२सास्वादन गुणस्थान जघन्य दो वक्त, उत्कृष्ट-५वक्तस्पर्शे.

३-४ मिश्र और अविरति गुणस्थान जघन्य-दो वक्त उत्कृष्ट असंख्यात वक्त स्पर्शे.

५ देश विरति गुणस्थान जघन्य-दो वक्त, उत्कृष्ट ९०००वक्त स्पर्शे.

६-७ प्रमत और अप्रमत गुणस्थान,-जघन्य दो वक्त, उत्कृष्ट ९०० वक्त स्पर्शे.

८-१० अपूर्व करण नियटि बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान जघन्य दो वक्त स्पर्शे. उत्कृष्ट ९ वक्त स्पर्शे

११ उपशान्त मोह गुणस्थान दो वक्त, उत्कृष्ट५ वक्त स्पर्शे.

१२-१४ क्षीणमोह सयोगी और अयोगी गुणस्थान एकही वक्त स्पर्शे

और सिद्ध स्थान भी एकही वक्त स्पर्शे.

अठातीसवा-परस्पर स्पर्शना द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थानी-पहिला गुणस्थान तो नियमाही स्पर्शे, दूसरे गुणस्थानसे अलगकर इग्यारवे गुणस्थान तक स्पर्श ने की भजना.÷

÷ कोइ स्पर्शे कोइ नहीं स्पर्शे उसे भजना कहते है. और जरूर ही स्पर्शे उसे नियमा कहते हैं

२ सास्वादन गुणस्थानी-पहिला दुसरा और चौथा यह तीनो तो गुणस्थानतो नियमा से स्पर्शे. और तीसरे पांचवासे जावत इग्यारवे तक स्पर्शने की भजना.

३ मिश्र गुणस्थानी-पहिला तीसरा और चौथा तो नियमां से स्पर्शे. बाकी दुसरा पांचवा छठा जावत इग्यारवे तक स्पर्श ने की भजना.

४ अविरति गुणस्थानी-पहिला और चौथा तो नियमा से स्पर्शे. बाकी दुसरा तीसरा पांचवा जावत इग्यारवे तक स्पर्श ने की भजना.

५ देश विरति गुणस्थानी-पहिला चौथा और पांचवा तो नियमासे स्पर्शें. और दूसरा तीसरा छठा जावत इग्यारवातक स्पर्श ने की भजना.

६ प्रमत गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा और सातवा यह तो नियमा स्पर्शे, और दुसरा तीसरा पांचवा आठवा जावत इग्यारवा स्पर्श ने की भजना.

७ अप्रमत गुणस्थानी-पहिला चौथा और सातवा यह ३तो नियमा स्पर्शें. और दूसरा तीसरा पांचवा छठा आठवा जावत इग्यारवा स्पर्श ने की भजना.

८अपूर्व करण गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा और आठवा यह५तो नियमासे स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा नववा दशवा और इग्यारवा इन ६ गुणस्थान स्पर्शने की भजना.

९ नियट्टि बादर गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा और नववा यह ६तो नियमा से स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा, दशवा इग्यारवा इन ५ के स्पर्श ने की भजना.

१० सूक्ष्म सम्परायी गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा और दशवा यहतो नियमासे स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा इग्यारवा की भजना.

११ उपशान्त मोह गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा जावत इग्यारवा यह८तो नियमासे स्पर्शें, और दुसरे तीसरे पांचवेकी भजना

१२ क्षीण मोह गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा यह १०तों नियमात स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा इग्यारवा इन चारों की स्पर्श ने की भजना.

१३-१४ सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थानि-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा यह १० तो नियमा से स्पर्शें और दुसरे तीसरे पांचवा इग्यारवा गुणस्थान स्पर्श ने की भजना.

और सिद्ध परमात्मा के जीवों ने-पहिला चौथा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा इन ९ गुणस्थानका तो निश्चयसे स्पर्श किया बाकी के ५ गुणस्थान स्पर्शनेकी भजना

उन्नतीसवा पढम अपढम द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान से उपशान्त मोह गुणस्थान तक पढम अपढम दोनो-अर्थात इन की पहिले स्पर्श ने वाला भी स्पर्शें और पहिली वार भी स्पर्शें. ऊपर के तीनो गुणस्थान एक-पढम एकही वक्त स्पर्शें.

३०वा शाश्वताशाश्वत द्वार

मिथ्यात्व, अविरति, देशविरति. प्रमत, कौर सयोगी केवली यह पांचों गुणस्थान शाश्वते-सदा पावे. बाकी के नव गुणस्थान अशाश्वते-किसी वक्त पावे किसी वक्त नहीं भी पावे.

३१वा-परभव गमन द्वार

मिथ्यात्व सास्वादन और अविरति यह तीनों गुणस्थानों तो पर भव में जाते हूवे जीवों के साथ जातेहैं. बाकीके ११ गुणस्थान स्पर्शे होवे वहां ही रहजाने है.

बतसिवा भवसंख्या द्वार.

मिथ्यात्व मिथ्यात्व अनन्तान्त भव तक व साथ बना रेह, सास्वादन से लगाकर देश विरति गुणस्थान जघन्य १-२-३ भवत क लगोलग प्राप्त होवे, उत्कृष्ट सात तथा आठ भव तक लगोलग प्राप्त होवे. और प्रमत गुगस्थान से सजोगी केवली गुणस्थान तक फक्त एकही भव में ही साथ रहै.

तेतीसवा-अल्प बहुत द्वार.

सबसे थोडे इग्यारवा उपशान्त मोह गुणस्थानमें प्रवर्तते जीवों-क्योंकि उपशम श्रेणिके आरंभमें एक समय ५४ जीवों पातेहैं.

इससे-बारवे क्षीण मोह गुणस्थान वाले जीवों संख्यत गुणे अधिक, क्योंकि क्षपक श्रेणिवाले एक समय में १०८ मिलते हैं, इस सबबसे इतने लिये नहीं तो इससे विपरीत जीवों पाते हैं.

इससे-इग्यारवा उपशांतमोह, दशवा सूक्ष्म संपराय-नववा-नियटिबादर, और आठवा अपूर्व करण इन तीनों गुणस्थान वाले आपसमें तो

सम-तुल्य (बरोबर) और बारवे गुणस्थान से संख्यात गुणे अधिक होते हैं, क्योंकि-इन तीनों गुणस्थानों में उपशम और क्षपक दोनों प्रकारकी श्रेणि वाले जीवों एक ही वक्त में पाते हैं. इस लिये उपशास श्रेणिवाले ५४ और क्षपक श्रेणि वाले १०८, यों दोनोंही मिलकर प्रत्येक गुणस्थानमें अलग२ उत्कृष्ट पदे १६२जीवों पातेहैं.

इससे—तेरवे सयोगी केवली गुणस्थान वाले संख्यात गुणे अधिक, क्योंकि-एक समय में प्रथक क्रोड पाते हैं.

इस से सातवे अप्रमत संयति गुणस्थान वाले संख्यत गुण अधिक, क्योंकि-एक समय में प्रथक सो क्रोड पाते हैं.

इस से छठे प्रमत संयति गुणस्थानी संख्यात गुण अधिक क्योंकि एक समय में प्रत्येक हजार क्रोड पाते हैं. और अप्रमाद के कालसे प्रमादका काल संख्यात गुणा अधिक है.

इस से—पंचवे देश विरति गुणस्थान वाले असंख्यात गुण अधिक, क्योंकि सन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय भी यहां पाते हैं.

इससे दूसरे सास्वादन गुणस्थान वाले असंख्यात गुणे अधिक क्योंकि-इस गुणस्थान वार्ति जीवों चारों गति मे पाते हैं.

इससे-तीसरे मिश्र गुणस्थान वाले असंख्यात गुणे अधिक क्यों कि—दुसरे गुणस्थान से इस की स्थिति असंख्यात गुणी अधिक है.

इससे-चौथे अविरति सम्यग दृष्टि गुणस्थान वाले असंख्याते गुणे अधिक, क्योंकि इस की स्थिति बहून ज्यादा है.

इससे-चउदवे अजोगी केवली गुणस्थामी अनन्त गुणे अधिक, क्योंकि-अयोगी की अपेक्षासे सिद्ध भगवंत भी इसमे लिये.

इससे पहिले मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों अनन्त गुणे

अधिक हैं. क्योंकि-निगोद के जीवों मे भी यह गुणस्थान पाताहै.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजकी सम्प्र
दायके बाल ब्रम्चहारी मुनि श्री अमोलख
ऋषिजी महाराज विरचित गुणस्थान
रोहणअढीसतद्वारी ग्रंथके प्रथम
मूल काण्ड का प्रथम
मूलद्वारा रोहण
खण्ड.
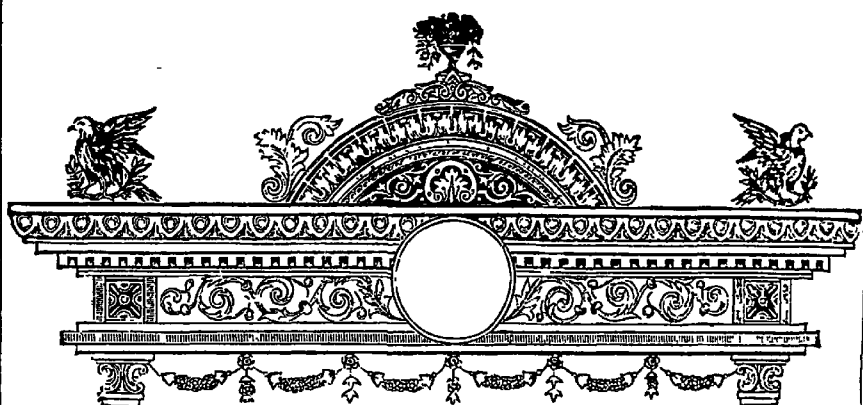
द्वितीय खण्ड-कर्म द्वारा रोहण.

प्रथम प्रकर्ण-कर्मोत्पाति द्वार.

कर्मोत्पाति के ७ द्वार के नाम

१ किरिया द्वार, २ मूल हेतू द्वार, ३ मिथ्यात्व हेतू द्वार, ४ अविरत हेतू द्वार, ५ कषाय हेतु द्वार, ६ योग हेतु द्वार, और ७ समुचय हेतु द्वार.

३४, पहिला-किरिया द्वार. =

२५ किरिया के नाम-१ कायिकी, २ अधिकरणी, ३ पाउसिया, ४ परितावणिया, ५ पाणाइ वाय, ६ आरंभीया, ७ परिग्गहिया, ८ मायवतिया, ९ अपच्चखाण वतिया, १० मिथ्या दंशण

☞ = इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट १५५ वा.

वतिया, ११ दिठीया, १२ पुठिया, १३ पाडुचिया, १४ सामंतोवणि या, १५ नेसाथिया, १६ सहथिया, १७ अणवणिया, १८ विदारणिया, १९ अणद २० अनाभोगा, कंखवतिया, २१ अनापउगी, २२ सामुदाणी, २३ पेजवतिया, २४ दोषवतिया, २५ इर्यावहीया किरिया. इन २५ क्रिया में से:

मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानी के २४ क्रिया लगे, २५ में से-इर्यावही टली.

सास्वादनी और अविरति गुणस्थानी के २३ क्रिया लगे, २४ मेंसे मिथ्य दंशणवतिया टली.

देश विरति गुणस्थानी के २२ क्रिया लगे, २३ मेंसे-अपच्च खाणिया टली.

प्रमत संयति के गुणस्थानी २१ क्रिया लगे,-२२ मेसे परिग्गहीया टली.

अप्रमत संयति से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गूणस्थानी तक के २० क्रिया लगे-उपर २२ कही उससे-आरंभिया क्रिया टली. ÷

उपशान्त मोह से लगा कर सयोगी केवली गुणस्थान के १ इर्यावही लगे.

अयोग केवली गुणस्थानी और सिद्ध भगवन्त के क्रिया विलकूलही नहीं लगे.

३५ दूसरा-मूल हेतू (कारण) द्वार *

कर्म बन्धके मूल हेतू कारण ५ हैं:—१ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ प्रमाद, ४ कषाय, और ५ योग. इनमें से.

☞ * इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट १९७ वा.

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचोंही कारण पावे.

सास्वादन मिश्र अविरत और देश विरति गुणस्थानी के ४ कारण, ५ मेसे मिथ्यात्व टला.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थानी में तीन कारण, ४ मे से अविरति टली.

अपूर्व करण, नियटी बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानी में दो कारण प्रमाद टला.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह, और सयोगी केवली गुणस्थानी में एक कारण योग.

अयोगी केवली गुणस्थानी में और सिद्ध में कर्म बन्ध का कारण नहीं पावे.

३६, तीसरा मिथ्यात्व हेतूद्वार. *

५ मिथ्यात्व के नाम-१ अविग्रह, २ अनाविग्रह ३ अभिनिवेशिक ४ संशायिक और ५ अनाभोग इन में सेः—

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचों ही मिथ्यात्व पावे, बाकी सास्वादन से लगाकर चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान तक मिथ्यात्व नहीं पाताहै.

३७, चौथा-अविरति हेतू द्वार *

१२ अविरति के नाम-५ पांच इन्द्रियकी, १ मनकी और ६ कायाकी· मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक १२ प्रकारकी अविरति लगे.

☛ * इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कण्डका पृष्ठ १५९ पृष्ट.

देशाविरति गुणस्थान में-त्रसकायकी अविरति विना ११ लगे. प्रमतसे अजोगी केवली गुणस्थानाके अविरति नहीं लगती है.

३८ पांचवा-कषाय हेतू द्वार ÷

२५ कषाय के नाम-४ अनन्तान बन्धि चौकडी, ४ अप्रत्याख्यानावरणीय चौकडी, ४ प्रत्याख्यानवरणीय चौकडी ४ और संज्वलन की चौकडी, यों १६, और १ हांस्य २ रति, ३ अरति, भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुष वेद, और ९ नपुंसक वेद. यों सब २५ हुइ.

मिथ्यात्य और सास्वादन गुगस्थान में-कषाय पावे २५ ही.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में-कषाय पावे २१, अनन्तान वान्धिक चौक टला.

देश विरति गुणस्थानी में-१७ कषाय, २१ मेंसे-अप्रत्याख्यानावरणीका चौकडी टली.

प्रमत अप्रम और अपूर्व करण गुणस्थानी में १३ कषाय, १७ मेंसे प्रत्याख्यानावरणी चौक टला.

अनियटि बादर गुणस्थानी में ७ कषाय. १३ मेंसे-हॉस्यादि ६ प्रकृति टली.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान मे एक कषाय संज्वलका लोभ.

उपशान्त मोहसे अजोगी केवली गूणस्थान तक और सिद्धों में कषाय नहीं

३९, छठा-योग हेतु द्वार. ÷

☞ इस द्वारोंके खूलासा के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट १५९ वा.

१५–४मनके(१)सत्यमन,(२)असत्यमन,(३)मिश्रमन और (४)व्यव हारमन,४वचनके(१)सत्यबचन(२)असत्यबचन(३)मिश्रवचन और ४ व्यवहारबचन(७)कायाके-(१)औदारिक, (२) औदारिक मिश्र,(३) वैक्रिय(४)वैक्रिय मिश्र(५)आहारक(६)आहारक मिश्रऔर(७)कार्मण, यों १५ योगोंमेंसे.

मिथ्यात्व सास्वादन और अविरति गुणस्थान में-१३ जोग पावे, १५मे से आहारिक के दोनों घटे, क्योंकि इन में मुनिराज नहीं पाते हैं.

मिश्र गुणस्थान में-४ मनके, ४ बचन के, १ उदरिक, १ वैक्रिय, यह १० योग पावे.

देशविराति गुणस्थानमें-२ आहारकके दो, और १ कार्मणका इन ३ विन १२ योग पावे.

प्रमत संयती गुणस्थान में कार्मण विना १४ जोग पावे.

अप्रमत संयाति गुणस्थानमें=औदारिक मिश्र,वैक्रिय मिश्र, आहारक कारमण इन ४ विना ११ योग पावे.

अपूर्व करण से क्षीण मोह गुणस्थान तक-४ मनके, ४ वचनके, औदारिक, यह ९ योग पावे

सयोगी केवली में-१ सत्यमन, २ व्यवहारमन, ३ सत्य भाषा, ४ व्यवहार भाष, ५ औदरिक ६ औदरिक मिश्र, और ८ कार्मण, यह ७ योग पावे.

अयोगी केवली और सिद्धों में एकही योग नहीं पावे.

= आहारक और वैक्रिय मिश्र जोगलब्धि फोडती वक्त पाता है और लब्धि फोडना यह प्रमाद अवस्था है, इसलिये तीनो मिश्र योगो अप्रमत गुणस्थानमें नहीं पाते हैं आहारक शरीर निपजे बाद अप्रमत हो जाते हैं.

सातवा समुचय हेतू द्वार.

५ मिथ्यात्व, १२ अविरति,+ २५ कषाय, १५ जोग, मिलकर ५७ हेतु सब होते हैं,

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में—५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय और १३ जोग यों ओघ (सब जीवों और सर्वकाल आश्रिय) ५५ हेतू पाते हैं. इसमें से एक जीव की अपेक्षा से-एक समय में जघन्य १० हेतू पाते हैं:—१ पांचों मिथ्यात्व में का एक मिथ्यात्व, १ छे काया के वध में का एक काया का वध, ३ पाचों इन्द्रियों की विषय में की एक की विषय, ४ तीनों वेदोंमें का१ वेद, हांस्य और रति शोक और अरति इन दोनों युगलों में का एक युगल, = अप्रत्याख्यानी चौकडी में की एक कषाय, ८ प्रत्याख्यानी चौकमें की एक कषाय, ९ संज्वलन चौकडीमें की एक कषाय, १० और ४ मनके, ४ वचन के ÷ १ औदारिक, १ और वै-

+ मूल हेतु ५ कहे और यहां चारों लिये-प्रमाद नहीं लिया इसका सबब पांच प्रमाद में से मदका शमावेश तो मान में होता है, विषयका समावेश अविरत में. कषाय में, निन्दा विकथा का जोग में समावेस होता है.

= यहां फक्त तीनों कषाय ही लेने का सबब यह हैकि-क्रोदादिक का उदय विरोधी है अर्थात्-क्रोध के उदय में मानाधि का उदय नहीं होता है इसलिये एकही ली,यह और अनन्तान वनधि चोकडी छोडनेका सबब यह हैकि-उपशम श्रेणिमें अनंतान वन्धि की वीसं योजना करते उसकी सत्ता टलती है. वहांसे पड जो यहां आये बाद मिथ्यात्वो दय भये फिर अनन्तान वान्धि का उदय नहीं होता है. इसलिये यहां जघन्य पद में फक्त तीनो कषाय का ही ग्रहन किया है.

÷ मिथ्यात्व गुणस्थान में अनंतान वान्धि के उदय विना मरण नहीं होता है, इसलिये अपर्याप्ता के अभाव से औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, और कार्मण, यह तीनों जोगों ग्रहण नहीं किये.

क्रिय, इन १० जोगों में का एक जोग, यों १० हेतू पाते हैं. और उत्कृष्ट १८ पाते हैंः—१० तो उपर कहे सोही. और ११ अनन्तान बन्धि चौकडी में की एक कषाय. १२ भय, १३ मत्सर, १८ पांचों काया का बध उत्कृष्ट यह १८ हेतू एक जीव के एक समय में पाते हैं.

२ सास्वादन गुणस्थान में-१२ अव्रत, २५ कषाय और १३ योग. यों ओघसे (सर्व जीवों और सर्व काल आश्रिय) ५० हेतू पाते हैं. और एक जीव के एक समय में जघन्य १० हेतू पावे ऊपर जो १० हेतू कहे हैं. उस मेंसे १ मिथ्यात्व तो घटाना, और अनन्तान बन्धि चौकडी की १ कषाय बढाना और उत्कृष्ट १७ हेतु पाते हैंः—सो १० तो येही और ५ कायाका बन्ध, तथा भय और मत्सर यों उत्कृष्ट १७ हेतू एक जीव के एक समय में पाते हैं.

३ मिश्र गुणस्थान में-१२ अव्रत, २१ कषाय, और १० जोग, यों ओघसे ४३ हेतू पाते हैं. और एक जीव के एक समय में जघन्य ९ हेतू पावेः—उपर १० कहे, उस में से १ अनन्तान बान्धी की कषाय कमी करना. और उत्कृष्ट १६ हेतू पाते है उपर कहे सो सोही ७ अधिक यहां जानना.

४ अविरति सम्यग् दृष्टि गुणस्थान में-२२ अव्रत, २१ कषाय और १३ योगयों औघसे ४६ हेतु पातेहैं और एक जीवके एक समय मे जघन्य ९ और उत्कृष्ट १७ हेतु तीसरे गुणस्थान में कहे सोही यहां पाते हैं.

५ देशविरति गुणस्थानमें— ११ अव्रत, १७ कषाय और १२ योग यों औघसे ४० हेतु पावे—और एक जीव के एक समय मे जघन्य ९, उत्कृष्ट १७ उपरोक्त हेतू पाते हैं.

६ प्रमत संयति गुणस्थान में—१३ कषाय और १४ जोग यों औघसे २७ हेतु पावे. और एक जीव के एक समय में जघन्य ५:—तीन वेदों में का १ वेद, संज्वल की चौकडी में की १ कषाय, दोनों यूगल में का १ युगल, और १३ जोग में का१ जोग, यों, ५ और उत्कृष्ट ७ पावे-आहारक के दोनों योगों बडे.

७ अप्रमत गुणस्थानमें-१३ कषाय, और ११ योगों, यों२४ हेतू औग से पाते हैं, इस में से एक जीव के एक समय में - ५ पाते हैं. छटे गुणस्थानकी माफिकही, विशेष इतनाही की यहां ७ योग में का योग लेना. और उत्कृष्ट ६ पाते हैं. १ आहारक योग अधिक हूवा.

८ अपूर्व करण गुणस्थान में १३ कषाय और ९ = जोग यों २२ हेतु औघसे पाते हैं. और जघन्य ५ पाते हैं:— अप्रमत में कहेसो ही.

९ नीयटि बादर गुणस्थान में-७ कषाय और ९ जोग यों १६हेतुं औघसे पातेहैं, और जघन्य एक जीव की अपेक्षासे दो पाते हैः-१कषाय और १ योग.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान में-१ कषाय और ९ जोग यों १० हेतु औघ से पावे. और जघन्य दो-पावे १ जोग, १कषाय.

११-१२ उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-फक्त९ जोग के ९ हेतूही औघ पाते है. और जघन्य फक्त १ जोग, ही पाता है.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान में फक्त ७ जोग के ७ हेतु

= फक्त औदारिक जोग वालाही श्रेणि प्रारंभ करता है. इसलिये यहां दोनों जोग घट गये.

ही पाते हैं, और जघन्य एक जीव की अपेक्षा-से एक जोगही पाता हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में जोग के अभावसे हेतु एक ही नहीं पाता है.

❋ इति कर्मोत्पति नामक प्रथम प्रकरणम्. ❋

द्वितिय प्रकरण कर्म बन्ध द्वार.

कर्म बन्ध के २७ द्वार के नाम.

१ चार बन्ध द्वार, २ समुचय मूल कर्म बन्ध द्वार, ३ ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध द्वार, ४ दर्शनावरणीय कर्म बन्ध द्वार, ५ वेदनीय कर्म बन्ध द्वार, ६ मोहनीय कर्म बन्ध द्वार, ७ आयुष्य कर्म बन्ध द्वार, ८ नाम कर्म बन्ध द्वार, ९ गौत्र कर्म बन्ध द्वार, १० अन्तराय कर्म बन्ध द्वार, ११ ध्रुव कर्म बन्ध द्वार, १२ ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १३ अध्रुव कर्म बन्ध द्वार, १४ अध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १५ सर्व घातिक कर्म बन्ध द्वार, १६ सर्व घातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १७ देश घातिक कर्म बन्ध द्वार, १८ देश घातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १९ अघातिक कर्म बन्ध द्वार, २० अघातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २१ शुभ (पुण्य) कर्म बन्ध द्वार २२ शुभ (पुण्य) कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २३ अशुभ (पाप) कर्म बन्ध द्वार, २४ अशुभ (पाप) कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २५ समुचय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २६ कर्म बन्ध व्यच्छेद द्वार, २७ कर्म प्रकृति बन्ध व्यच्छेद द्वार.

४१, प्रथम चार बन्ध द्वार.*

१ प्रकृति बन्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, और ४ प्रदेश बन्ध. ६ इन में १-१० पहिले मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर, दशवे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक चारों बन्ध पाते हैं.

११–१३ उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली, गुणस्थानमें दो प्रकार के बन्ध, प्रकृतिबन्ध और २प्रदेश बन्ध.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानमें बन्ध नहीं.

४२, दुसरा-समुचय कर्म बन्ध द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर अप्रमत गुणस्थान तक बीचका तीसरा मिश्र गुणस्थान छोड कर बाकी के ६ गुणस्थान में आयुष्य कर्म का बन्ध करे तब आठोंही कर्मोंका बन्ध होताहैं और आयुष्य नहीं बन्धे उस वक्त सात कर्मों का बन्ध करे.

मिश्र अपूर्व करण, और अनियटि बादर इन तीन गुणस्थानों में आयु कर्म का बन्ध नहीं होता है, इसलिये सातही कर्मों बंधतेहैं.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में शुद्ध परिणाम होने से आयुष्य और मोहनीय कर्मका बन्ध नहीं होताहै, इसलिये छेही कर्मोंका बंध करते हैं.

उपशांत मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली, इन तीनों गुणस्थान में फक्त एक वेदनीय कर्म बन्धतेहैं.

अयोगी केवली गुणस्थान में कर्म बन्ध नहीं करतेहैं.

☞ *इस द्वारोंके खुलासा के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ट १५९ वा.

४३ तीसरा-ज्ञानावरणीय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

१ मतिज्ञानावरणी २, श्रुतज्ञानावरणी, ३ अवधि ज्ञानावरणी ४ मनपर्यव ज्ञानवरणी और ५ केवल ज्ञानावरणी. मिथ्यात्व गुणस्थानसे लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति का बंध होता है, उपर एक ही नहीं बन्धाती है.

४४, चौथा-दर्शनावरणीय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार

१ चक्षु दर्शनावरणीय, २ अचक्षु दर्शनावरणीय, ३ अवधि दर्शनावरणीय, ४ केवलदर्शनावरणीय, ५ निद्रा, ६ निद्रानिद्रा, ७ प्रचला, ८ प्रचला प्रचला, और ९ थिणद्धी निद्रा. इन दर्शनावरणीय के ९ प्रकृतिमें से,

१-२ मिथ्यात्व सास्वादन गुणस्थानमें दर्शनावरणीयकी ९ही प्रकृतिका बन्ध होता है.

३-८ मिश्र गुणस्थान सें लगाकर आठवे अपूर्व करण गुणस्थान तक थिण्द्धी त्रिक×१निद्रानिद्रा,२प्रलचा प्रचला, और, ३थीणद्धी निंद्र इन३का बन्ध नहीं होता है. इसलिये छेही प्रकृति बन्ध होता है.

९-१० नियटि बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-१ निद्राका और २ प्रचला का बन्ध नही होने से चार ही का बन्ध हो-

× इन तीनों निद्रा का बन्ध अनन्तान बन्धि कषायके उदय में होता है. और यहां इसका उदय नही है जिससे टली है.

ता है, ऊपर इसका बन्ध नहीं होता है.

४५, पांचवा-वेदनीय कर्म प्रकृतिबंधद्वार

वेदनीय कर्म की दो प्रकृतिः—१ सात वेदनीय, और२असा ता वेदनीय.

१-६ मिथ्यात्वसे प्रमत गुणस्थान तक दोनों प्रकृति बंधतीहै.

७-१० अप्रमतसे-सूक्ष्म संपराय तक एक संज्वलकी कषाय + और साता वेदनीय बन्धाती है.

११-१३ उपशांत मोह से-सयोगी केवली तक ए साता वे-दनी ही बन्धाती है.

१४ अयोगी केवली में वेदनीय का बन्ध नहीं होताहै.

४६, छट्ठा मोहनीय कर्म प्रकृति बंधद्वार

मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतिः—४ अनन्तान बन्धि आदि चारों चौकडी की १६ कषाय, हाँस्यादि ९ नो कषाय, और-१ मि-थ्यात्व मोहनीय, इन २६÷ में से.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में २६ ही प्रकृति का बन्ध होता है.

२ सास्वादन गुणस्थान-१ मिथ्यात्व मोहनी और नपूंसक वे द इन दो विना २४ का बंध होता हैं.

३—४ मिश्र और अविरति गुणस्थरन में-४ अनन्तान बंधि

+ असाता वेदनीय का बन्ध प्रमादके उदय में होता है. और यहां प्रमाद नहीं है. जिससे टली.

÷ मोहनीय कर्म की सब २८ प्रकृति हैं. जिस में से १ मिश्र मोहनीय, २ और सम्यक्त्व मोहनीय का बन्ध योग नहीं है. इसलिये यह २ छोड कर यहां बंध की २६ ही प्रकृति ग्रहण करी है. मिथ्या मोह का आधार से मिश्र मोहका स्वल्परस सम्यक्त्व मोहमें होता है.

चौकडी और स्त्रीवेद विना १९ का बन्ध होता है.

५ देश विरति गुणस्थान में—अप्रत्याख्यानावरणीय की चौकडी विना १५ का बन्ध होता है.

६ प्रमत गुणस्थान में-प्रत्याख्यानावरणीय चौकडी विना ११ प्रकृति का बन्ध होता है.

७-८ अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान में शोक और अरति विना ९ प्रकृतिका बन्ध होता है.

९ नियटि बादर गुणस्थान में-हांस्य, रति भय और मत्सर इन ४ विना ५ का बन्ध होता हैं.

आगे मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं होता है.

सातवा आयुष्य कर्म प्रकृति बंध द्वार

आयुष्य कर्म की ४ प्रकृति-१ नरकायु, १ तिर्यचायु, ३ मनुष्यायु,और ४ देवायु इन ४ मेंसे.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में—चारों गतिके आयुष्यका बंध होताहै.

२ सास्वादन गुणस्थान में—नरक विना तीनों गतिका आयुर्बन्ध होता है.

मिश्र गुणस्थान में आयुर्बन्ध नहीं होता है.+

४ अविरति गुणस्थान में-१ मनुष्यायु और २ देवायु दोनों का बन्ध होता है.

५-७ देशविरति, प्रमत, और अप्रमत गुणस्थान में-१ देवा-

+ मिश्र गुणस्थानी मध्यस्थ परिणामी है. तथा आयुर्बन्ध काल जितनी इनकी स्थिति नहीं है इसलिये यहां आयु बन्ध नहीं हैं.

युकाही बन्ध होता है.=

ऊपर आयु बन्ध बिलकूल नहीं है.

१८, आठवा नाम कर्म प्रकृति बंध द्वार.

नाम कर्म की ६७ प्रकृति बन्धाती हैः–४ गति, ५ जाति, ५ शरिर, ÷ ३ अंगोपांग, ६ संघयण, ६ संठाण, ४ × वर्ण चतुष्क, ४ अनुपूर्व्वी, २ विहायोगति, १ पराघात नाम, १ उश्वासनाम, १ आताप नाम, १ उद्योत नाम, १ अगुरूलघु नाम, १ तीर्थंकर नाम, १निर्माण नाम, १ उपघात नाम, १ त्रस नाम, १ बादरनाम, १ पर्याप्ता नाम, १ प्रत्येकनाम, १ स्थिर नाम, १ शुभनाम,१ सौभाग्य नाम, १ सुस्वरनाम, १ आदेय नाम, १ यशःकीर्ति नाम, १ स्थावरनाम, १ सूक्ष्म नाम, १ अपर्याप्ता नाम,१ साधारण नाम, १ अस्थिर नाम, १ अशुभ नाम, १ दौर्भाग्य नाम, १ दुस्वर नाम १ अनादेय नाम, १ अयशःकीर्ति नाम. यह ६७ इनमेंसे.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में- २ आहारक द्विक और तीर्थंकर

= आयु बन्ध सालम्बीके होता है. ऊपरके गुणस्थानी निरालम्ब ध्यानी है.

÷ नाम कर्म की सब ९३ प्रकृतियों हैं, जिसमेंसे बन्ध स्थान में ६७ही प्रकृतियों ग्रहण करी जिसका सबबः—शरीर नाम कर्म में अपना २ बन्धन और संघात यह दोनों अविना भावी हैं, अर्थात्-शरीरके विना यह दोनों नही होसकते, इस लिये पांच बन्ध और पांच संघात यह १० प्रकृतिये बन्ध तथा उदय रूप में शरीर के भेली ही गिनी गइ है. जुदी नहीं गिनी. और ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८स्पर्शयह २० प्रकृतियों का भी,१वर्ण, २ गंध, ३ रस, और ४स्पर्श इन चारों में ही समावेश हुवा है क्योंकि यह अभेदी है इसलिये बीसोंका चारों में ही समावेश होजाता है. यों १० शरीर की और १६ वर्णादिकी मिल,२६ प्रकृतियों ९३ मेंसे कमी करनेसे बाकी ६७ प्रकृतियेंका बन्ध की रहती हैं.

नाम इन ३ विना ६४ प्रकृति का बन्ध होता है.

२ सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, १ स्थावर नाम, १ सूक्ष्म नाम, १ अपर्याप्ता नाम, १ साधारन नाम १ आताप नाम, १ हुंडक संस्थान, और १छेवटा संघयण इन १४ प्रकृति मिथ्यात्वीहीं बान्धता है, इसलिये इस में बन्ध नहीं होने से बाकी ५० का बन्ध यहां होता है.

३ मिश्र गुणस्थान में-१ तिर्यंच१तिर्यचानुपूर्वी, १ अशुभ विहायोगति, १ दौर्भाग्य नाम, १ दुस्वर नाम, १ अनादेय नाम, ४ बीचके चार संघयण, ४ बचिके ४ संठाण, इन १४ प्रकृति का बन्ध संक्लेश अनन्तान बान्धि के उदय में होता है, सो यहां न होने से बाकी रही ३६ प्रकृति का बन्ध यहां होता है.

४ अविरति गुणस्थान में:—ऊपरोक्त ३६ और १ जिन नाम यों ३७ का बन्ध होता है.

५-६ देश विरति और सर्व विरति गुणस्थान में:-१ मनुष्य गति, २मनुष्यानुपूर्वी, ३ औदारिक शरीर. ४ औदारिक आंगोपांग, और ५ वज्र वृषभ नाराच संघयण, इनके न होता है, क्यों कि यह देवायु ही बान्धते है इसलिये इन ५ विना बाकी रही ३२ प्रकृति का बन्ध यहां होता है.

७-८ अप्रमत और अपूर्व करण गुणस्थान में—अशुभ नाम, १ अस्थिर नाम, और ३ अयशःकीर्ति नाम यह तीन, प्रमाद के योग से बन्धाती है सो यहां नहीं होने से यह ३ घटी, तब २९ रही और विशुद्ध परिणाम की अधिकता होने से आहारक और आहारक अंगोपांग इन दो का बन्ध बढने से ३१ प्रकृतिबन्धते हैं.

९-१० अनीयटी बादर और सूक्ष्म सम्पराय में—यशः कीर्ती

का बन्ध होता है.

ऊपर के गुणस्थानों में नाम कर्म का बन्ध नहीं होता है.

४९, नववा-गोत्र कर्म बन्ध द्वार.

गौत्र कर्म की दो प्रकृति-१ उंच गौत्र और नीचे गौत्र. इसमें सेः—

१–२ मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानों में दोनों गौत्र का बन्ध होता है.

३–१० मिश्र गुणस्थानसे लगा सूक्ष्म सम्परायतक एक ऊंच गौत्रका ही बन्ध होता है.

५०, दशवा-अन्तराय कर्म बन्ध द्वार.

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृति-१ दानान्तराय, २लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, और ५ बलवीर्यान्तराय, इन ५ अन्तरायमें सेः—

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक पांचों प्रकृतिका बन्ध होता है. ऊपर अन्तराय का बन्ध नहीं.

५१, इग्यारवा-ध्रुव कर्म बन्ध द्वार.

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, मोहनीय, नाम, और अन्तराय यह ५ कर्म ध्रुव बन्धी हैंः—इनमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक पांचों-ही कर्मोंका बंध होता है, उपर के गुणस्थानोंमें ध्रुव बन्ध नहीं.

५२, बारवा-ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

ध्रुव-बन्ध-प्रकृति के खलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २०० वा.

ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीय ९, मोहनीय की १ (चारों कषायकी चौकडी, भय, मत्सर और मिथ्यात्व मोहनी) नामकी-४ वर्ण चतुष्क, १ तेजस, १ कार्मण, १ अगुरुलघू, १ निर्माण, १ उद्योत, येह ९ और अन्तराय की ५ यों सब ४७ प्रकृति ध्रुव बन्धी होती है इस मेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-४७ ही प्रकृतिका बन्ध होताहै.

सास्वादन गुणस्वान में-मिथ्यात्व मोहनी विना४६प्रकृतिका बन्ध होता है"

मिश्र और अविरति गुणस्थान में-अनन्तान बन्धि चौकडी औ र थीणद्धी त्रिक विना ३९ प्रकृतिका बन्ध होता है.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानी चौकडी विना ३५ का बन्ध होता है.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में प्रत्याख्यानी चौकडी विना का ३१ बन्ध होता है.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-दोनों निद्रा विना २९का बन्ध होता है.

अनीयटी बादर गुणस्थान में-भय मत्सर और नाम कर्म ९ + प्रकृति विना १८ प्रकृतिका बन्ध होता है.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में- संज्वल की चौकडी विना १४ प्रकृति का बन्ध होता है.

उपर के गुणस्थानों में ध्रुव बन्ध नहीं होता है.

☞ अध्रुव बन्ध कर्म प्रकृति के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट२०१वा.

+ वर्ण चतुष्क, ५ तेजस, ६ कार्मण, ७वर्ण चतुष्क, ८ अगुरु लघु, ९ निर्माण

५३, तेरवा-अध्रुव कर्म बन्ध द्वार

वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम और गौत्र यह ५ अध्रु-व बन्धि कर्म है.

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर अप्रमत गुणस्थानतक बीच का मिश्र गुणस्थान छोड बाकीके ६ गुणस्थानों में ५ही कर्म बंधतेहै.

मिश्र अपूर्व करण, अनियटि बादर, इन तीनों गुणस्थानोंमें आयुष्य कर्म विना चार कर्मोंका बन्ध होता है.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में आयुष्य और मोहनीय विन तीन कर्म का बन्ध होता है.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थानवालों के एक वेदनी का बन्ध होता है.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

५४, चौदवा-अध्रुव कर्म प्रकृति द्वार.

वेदनीय की २, मोहनीयकी छे२ वेद, १ हांस्य, १ रति, शोक, येह ६, आयुष्य की४, नामकी १ शरीर ३, अंगोपांग ३, संघयण ६, संठाण ६, गति ४, जाति ५, अणुपूर्व्वी ४, विहायोगति २, श्वाशोश्वास १, आताप १, उद्योत १, पराघात १, त्रसदशका ११, स्थावर दशका १०, तीर्थंकर नाम १, यह ५९. और गौत्र की २, यों सब ७३ अध्रुव बंध की प्रकृतियों होती है. इसमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्वीक और तीर्थंकर नाम विना ७० प्रकृति बन्धते हैं.

सास्वादन गुणस्थान में-३ नरकत्रिक, ४ जाति चतुश्क ४ १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्त, १ साधारण १ आताप, १ छवटो

संघयण और १ हुंड संस्थान, इन १४ विना बाकी रहीं ५६ प्रकृति बन्धते हैं.

मिश्र गुणस्थान में-४ आयुष्य की, ४ बीचके चार संघयण ४ बीचके चार संस्थान, १ अशुभ विहायोगति,१ स्त्रीवेद, २ तिर्यच द्विक, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, और १ नीच गौत्र इन २० विना ३६ प्रकृति बन्धाती है.

अविरति गुणस्थान में-१ तीर्थंकर नाम और मनुष्यायु, १ देवायु, यह ३ प्रकृति बढने से ३९ का बन्ध होता है.

देशाविरति और अप्रमत गुणस्थान में-१ बज्र ऋषभ नारच संघयण, १ मनुष्यगति, १ मनुष्यानु पूर्वी, १ मनुष्यायु, २ औदारिक द्विक, यह ६ विन २३ बन्धते हैं.

अप्रमत गुणस्थान में-१ शोक. १ अरति, १ अस्थिर, १ अ शुभ, १ अयशः कीर्ति, इन ५ प्रकृति विना २८का बन्ध होता है

अपूर्व करण गुणस्थान में-१ देवद्विक, १ पचेन्द्रियजाति, १ शुभविहायगति, ९ त्रस दशके मे की यशकीर्ती विना नव, २ वैक्रियद्विक,२आहारक द्विक, १ सम चउरस संस्थान. १उश्वास, और १ पराघात इन २० विना, ८ का बन्ध होती है.

अनीयटी बादर में-१ साता वेदनी, २ यशाकिर्ती, ३ऊंच गौत्र और ४ पुरुषवेद यह४ बन्धेती है.

सूक्ष्म सम्पराय में-पुरुष वेद विना तीन प्रकृति बन्धती है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवल गुणस्थानतक-१ साता वेदनी बंधे.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

५५, पंदरवा सर्व घातिक कर्म बन्ध द्वार

सर्व घातिक ३ कर्मः—१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय और ३ मोहनीय.

मिथ्यात्व से अप्रमत गुणस्थानतक तीनो कर्म बन्धते हैं और अपूर्व करण से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक मोहनी विनादो कर्म बन्धते हैं. उपर सर्व घातिका बन्ध नहीं.

६५,—सोलवा सर्व घातिक कर्म प्रकृति द्वार

१ केवल ज्ञानावरणीय, १ केवल दर्शनावरणीय, ५ निद्रा १२ संज्वलकी चौकडी विना तीनों चौकडी की ११ कषाय, और १ मिथ्यात्व मोहनीय. यह २० सर्व घातिक प्रकृति हैं. इसमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २० ही प्रकृति बन्धाती है.

सास्वादिन में-१ मिथ्यात्व मोहनीय विना१९ प्रकृति बन्धाती है.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में ४ अनन्तान बन्धि चौकडी और २ थीणद्धी त्रिक इन ७ विना १२ प्रकृति बन्धाती है.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानी चौकडी विना ८ प्रकृति बन्धती है.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में—१ केवल ज्ञानावरणीय, १ केवल दर्शनावरणीय, और दो निद्रा, यह ४ प्रकृति बन्धती है.

अपूर्व करण गुणस्थान के दूसरे भाग से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक- १ केवल ज्ञानावरणीय और २ केवल दर्शनावरणीय २ प्रकृति बन्धाती है.

आगेके गुणस्थानों में सर्व घातिक प्रकृति का बन्ध नहीं.

घातिक अघातिक कर्म प्रकृतिके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ२०३वा

५७, सत्तरवा देशघातिक कर्म बंध द्वार

देशघरातिक ४ कर्मः-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय.

मिथ्यात्वसे अनीयटी बादर गूणस्थानतक चारोंही कर्म बन्धाते हैं. सूक्ष्म संपरायके आदि भागमें मोहनीय विना तीनोंकार्म बंधाते हैं सूक्ष्म सम्परायके अन्तिम भागसे ऊपर देशघातिक कर्मका बंध नहीं

५८ अठार देशघातिककर्म प्रकृति बंधद्वार

देश घातिक कर्मोंकी २५ प्रकृति-ज्ञानावरणीय की ४, दर्शनाव रणीयकी ३, हांस्य षटक, ३ वेदनीय, ४ संज्वलकी चौकडी, और अन्तराय की ५, यों २५ में से मिथ्यात्व गूणस्थान में २५ ही प्र कृति का बन्ध होता है.

सास्वादन गूणस्थान में नपूंसक वेद विना २४ बन्धाती है.
भिश्रसे प्रमत गूणस्थानतक स्त्रीवेद विना २३ प्रकृति बाधाती है.
अप्रमत और अपुर्व करणमें-शोक अरति विना२१प्रकृति बंधातीहैं.
सूक्ष्म सम्पराय में-पुरुषवेद और संज्वलके चौक विना १६ प्रकृति बन्धाती है.

और सूक्ष्म सम्परायके अन्त में १२ ही का क्षय होनेसे आ गे बन्ध नहीं होता है.

५९ उन्नीसवा—अघातिक कर्मबंध द्वार.

अघातिक कर्म ४ हैं. १ वेदनीय, २ आयूष्य, ३ नाम और ४ गौत्र, इनमेंसे-

मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत गुणस्थानतक बीच का मिश्र गुगस्थान छोड कर बाकीके ६गुणस्थानोंमें चारोंही कर्म बंधतेहैं.

मिश्र, अपूर्व करण, से सूक्ष्म सम्परायतक आयुष्यविन तीनों कर्म बन्धते है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवली गुणस्थान तक एक वेदनीय कर्म बन्धता हैं.

आयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

६०, बीसवा अघातिक कर्म बंध द्वार.

अघाति प्रकृति ७५ होती है-२ वेदनीयकी, ४ आयुष्यकी, ६७ नाम की, २ गौत्रकी, यों ७५ मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक द्विक और जिन नाम विना ७२ का बन्ध होता है.

सास्वादन में ३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ साधारण, १ अपर्याप्ता, १ आताप १ हूंड संस्थान, १ छेवटा संघयण, इन १४ विना ५८ बान्धते हैं.

मिश्रमें-४ आयुष्यकी, २ तिर्यचद्वीक, ४ बीचके चार संघयण ४ बीचके चार संस्थान, १ अशुभ विहायोगति, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादे, और १नीच गौत्र इन १९ विना बाकी की ३९ का बन्ध होता है.

अविरति में—१ तीर्थकर नाम, और २ गतिका आयूष्य यह ३ बढने से ४२बन्धे.

देशविरति और प्रमत के १ वज्र वृषभ नाराच संघयण, मनुष्य त्रिक, और २ औदारिकद्विक, यह ६ टलनेसे ३६ का बन्ध होता है,

अप्रमतके-१ अस्थिर, अशुभ, १ अयशः १ नीच गौत्र येह ४

विना २२ प्रकृति बान्धते हैं.
अपूर्व करणसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक-१ यशकीर्ति, १ सत्ता-वेदनीय और १ ऊंच गौत्र यह तीनों प्रकृति बन्धाती है.
उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-१ सातावेदनीय बन्धाती है अयोगी केवलीके बन्ध नहीं.

६१, इक्कीसवा पुण्य कर्म बंध द्वार

पुण्य कर्म४ हैंः-वेदनीय, आयुष्य, ३ नाम, ४ और गौत्र. इनमेंसे.
मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत गुणस्थानतक बीचका मिश्र गुण स्थान छोडकर बाकी के ६ गुणस्थानों में-चारों ही कर्मों का बन्ध होता है.

मिश्र, अपूर्व करण, अनियटी बादर और सूक्ष्म सम्पराय इन चार, गुणस्थानों में-आयुष्य विना तीन कर्मोका बन्ध होता है.

उपशान्त मोह क्षीण मोह और सयोगी केवली में १ साता वेदनीय का बन्ध होता है.

अयोगी केवली के बन्ध नहीं.

६२, बावीसवा पुण्य कर्म प्राकृति बंध द्वार

पुण्य प्रकृति ४२ होती है. १ साता वेदनीय, ३ नरक विना तीनो गति का आयुष्य, ÷ १ मनुष्यगति १ मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, १ देवानुपूर्वी, १ पचेन्द्रिय जाति ५ शरीर ३ अंगोपांग, १ प्रथम संघयण, १ प्रथम संस्थान ४ शुभवर्ण चतुष्क, १० त्रस दशका १ अगुरु लघू, १ पराघात, १ उश्वास १ आतप, १ उद्योत १ शुभ विहायगति, १ निर्माण, १ तीर्थन्कर नाम और उंच गौत्र.

÷ तिर्यंच युगालिये होते हैं. इसलिये तिर्यंचायु पुन्य प्रकृति में लिया है.

यह ४२ इनमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक और तीर्थंकर नाम विना ३९ बन्धते हैं.

सास्वादन गुणस्थानमें-आताप नाम विना ३८ प्रकृति बन्धते हैं.

मिश्र गुणस्थानमें-तीनों आयुष्य उद्योत नाम विना ३४ बन्धते हैं, अविरातिमें-मनुष्यायू, देवायु, और तीर्थंकरन नाम यह ३ बढने से ३७ बन्धते हैं.

देश विरति और प्रमत गुणस्थान में-३ मनुष्य त्रिक, औदारिक द्विक, और प्रथम संघयण इन ६ विना ३१ प्रकृति बन्धतेहैं अप्रमत गूणस्थानमें-आहारक द्विक बढनें से ३२ प्रकृति बन्धते हैं.

अपूर्व करण गुणस्थानके ९ भाग-उसमेंसे पहिले ६ भागों में-देवायु विना ३२ बन्ध, और पीछले तीन भागों में-उंचा गौत्र. २ सातावेदनीय, और ३ यशःकीर्ति नाम यह तीनों प्रकृति बन्धते हैं.

अनीयटी बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानीके-उपरोक्त तीनों प्रकृति बन्धाती है.

उपशांत मोहसे सयोगी केवल तक-१ साता वेदनीय बन्धते हैं.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

६३, तेवीसवा पाप कर्म बंध द्वार

आठोंही पाप कर्म हैं:-उसमेंसे.

मिथ्यात्व और से स्वादन गुणस्थान आठही कर्म बन्धते हैं.

मिश्रसे प्रमत गुणस्थानतक आयु और गौत्र विना६कर्म बंधते हैं.

अप्रमतसे अनियटी बादरतक वेदनीय विना ५ कर्म बंधे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में मोहनीय विना ४ कर्म बन्धे.

उपर के गुणस्थानों में पाप कर्म का बन्ध नहीं.

६४, चौवीसवा पाप कर्म प्रकृति बंध द्वार

पाप कर्मकी प्रकृति ८२ होती है. ५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणियकी, १ असातावेदनीय, १६ चार चौकडी की कषाय, ६ हांस्यादि, ३ वेद, १ मिथ्या मोह, १ नरक का आयुष्य. २ नरक द्विक २ तिर्यंच द्विक ४ जाति चतुष्क, ४ वर्ण चतुष्क, ५ प्रथम संघयण विना ५ संवयण, ५ प्रथम संठाण विना ५ संस्थान, १० स्थावर दशका, १ अशुभ विहायगति, १ उपघात नाम १ नीच गौत्र, और ५ अन्तराय इन ८२ मेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-८२ ही प्रकृत्तिका बन्ध है.

सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, ४ स्थावर चतुष्क, १ छेवटा संघयण १ हूंडक संस्थान. २ मिथ्यात्व मोह, और १ नपुंसक वेद, इन २५ विना ६७ प्रकृति बन्धते हैं.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में- ४ अनन्तान बन्धि चौंक, ४ संघयण, ४ संस्थान, २ तिर्यंच द्विक, ३ थीणद्धी त्रिक, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, १ अशुभ विहायगति, १ स्त्रीवेद, और १ नीच गौत्र. इन २३ विना ४४ बन्धे.

देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानी चौकडी विना ४० बन्धते हैं,

प्रमत गुणस्थान में-प्रत्याख्यानी चौक विना ३६ प्रकृति बन्धाती है

अप्रमत गुणस्थानमें- शोक, १ अरति, १ अस्थिर, १ अशुभ १ अयशःऔर असाता वेदनीय इन ६प्रकृति विना ३० प्रकृति बन्धती है.

अपूर्व करण गुणस्थान के ९ भागोंमे से-पहिले के दोनों

भागोंमे तो उपरोक्त ३० काही बन्ध होता है. तीसरे से लगा छटे भागतक दो निद्रा विना २८ का बन्ध होता है. और अन्तिम तीनों भागोंमें-४वर्ण चतुष्क और पराघात नाम इन ५प्रकृति विना २३ का बन्ध होता है.

अनियटी बादरके५भागोंमेंसे पहिले भाग में-१हांस्य, १रति, १ भय, और २ मत्सर, इन ५ विना १९ का बन्ध, दुसरे भाग में पुरुष वेद विना १८ का बन्ध, तीसरे में संज्वल के क्रोध विना १७ का बन्ध चौथे में-संज्वलके मान विना १६ का बन्ध. पांचवे में-संज्वलकी माया विना १५ का बन्ध.

सूक्ष्म सम्पराय में ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, और ५ अन्तराय इन १४ प्रकृति का बन्ध होता है.

उपशान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक पाप प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है.

६५, पच्चीसवा-परावर्तमान कर्मबन्ध द्वार

दुसरे के बन्धको और उदय को रोककर अपनाही प्रभाव दर्शावे ऐसे परावर्तमान कर्म ५ हैं:—१ दर्शनावरणीय, १ वेदनीय १ मोहनीय, १ आयु, १ नाम और १ गौत्र.

मिथ्यात्वसे अप्रमत गुणस्थान तक छेही कर्मोंका बन्ध.

अपूर्व करण में—दर्शनावरणीय और आयुष्य विना कर्मों ४ का बन्ध होता है.

अनीयटी बादर में—वेदनी, नाम और गौत्र इन ३ कर्मोंका बंध होता है.

☞ परावर्तमान अपरावर्तमान कर्म प्रकृति के खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २०९ वा.

सूक्ष्म संपरायसे सयोगी केवलीतक-एक वेदनीयकाही बन्ध होताहै.
अयोगी केवली गुणस्थान में परावर्त मान का बन्ध नहीं.

६६,छब्बीसवा परावर्तमान कर्म प्रकृति द्वार

परावर्तमान कर्मोंकी प्रकृति ९१ हैः— १ निद्रा, २ वेदनी, ३ वेद, १ हांस्य, १ रति, १ अरति, १ शोक, १६ चारों चौकडी की कषाय, ४ आयुष्य, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ३ अंगोपांग, ६ संघयण, ६ संस्थान, ४ अनुपूर्वी, २ विहायोगति, १० त्रस दशका १० स्थावर दशका, १२ उद्योत, १ आताप, यों सब ९१.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक विना ८९ का बन्ध.

सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, १ स्थावर १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, १ साधारण, १हुंड संस्थान, १ छेवटा संघयण, १ आताप, और १नपूंसक वेद इन १५ विना ७४ प्रकृति बन्ध.

मिश्र गुणस्थानमें—३ थीणद्धीत्रिक, ४ अनन्तान बन्धि चौक, १ स्त्रीवेद २ तिर्यचद्विक, ४ मध्य के चार संघयण, ४ मध्य के चार संस्थान,१अशुभ विहायोगति, १ दौर्भाग्य, १ दूस्वर, १ अ-नादेय, ४ चारों आयु, १ नीच गौत्र, इन २७ विना ४७का बन्ध.
अविरति गुणस्थान में—१ मनुष्यायु, १ देवायु, दोनों बढने से ४९ प्रकृति का बन्ध.

देश विरति गुणस्थान में—४ अप्रत्याख्यानी चौक, १ प्रथम संघयण, ३ मनुष्यात्रिक, २ औदारिक द्विक, इन १० विना—३९ प्र-कृतिका बन्ध पावे.

प्रमत गुणस्थान में-प्रत्याख्यानी वरणिय चौक विना ३५का बंध

अप्रमत गुणस्थान में–१ शोक, १ अरति, १ अस्थिर, १ अशुभ, १ अयश, और १ असाता वेदनीय इन ६ विना २९का बंध

अपुर्व करण में–१ निद्रा और १ प्रचला विना २७का बन्ध.

अनियटि बादर में-संज्वलका चौक, १ सातावेदनीय, १ यश कीर्ति और उंच गौत्र इन ८ का बन्ध.

सूक्ष्म सम्पराय में संज्वल के चौक विना ३ का बन्ध.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-१ सातावेदनीयका बन्ध.

अयोगी केवली के परावर्तमान प्रकृति का बन्ध नहीं.

६७सतावीसवा-अपरावर्तमान कर्मबन्धद्वार

अपरावर्तमान ५ कर्म-१ज्ञानावरणीय, २दर्शनावरणी, ३ मोहनीय ४नाम और अंतराय.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अपूर्व करण गुणस्थान तक-पांचों कर्मोंका बन्ध.

अनियट बादर और सूक्ष्म सम्पराय में-मोहनीय और नाम विना ३ कर्म का बन्ध.

उपशान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-अपरावर्तमान कर्मोंका बन्ध नहीं होता है.

अठावीसवा अपरावर्तमानकर्मप्रकृतिबंधद्वा

अपरावर्तमान प्रकृति २९ है:-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, १ मिथ्यात्व मोहनीय, १ भय, १ मत्सर, ४ वर्ण चतुष्क, १ तेजस, १ कार्मण, १ अगुरु लघु, १ निर्माण, १ उपघात, १ पराघात, १ श्वासोश्वास, १ तीर्थंकर नाम, और ५ अन्तराय.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें—जिन नाम विना २८ का बन्ध.

सास्वादन और मिश्रमें मिथ्यात्व मोहनीय विना-२७का बंध

अविरातिसे अपूर्व करण तक-जिन नाम सहित २८ का बन्ध.

अनियट्टि बादर और सूक्ष्म सम्परायमें-५ ज्ञानावरणीय, ४दर्शनावरणीय, और ५ अन्तराय- यों १४ प्रकृतिका बन्ध.

उपशान्त मोह से अयोगी केवलीतक अपरावतमानका बन्ध नहीं.

६९, उनतीसवा-भूयस्कार कर्म बन्ध द्वार

उपशांत मोह गुणस्थान से पडता हुवा-एक वेदनीय का बन्ध कर सूक्ष्म सम्पराय में छे कर्मोंका बन्ध करे सो प्रथम भूयस्कार बन्ध.

सूक्ष्म सम्पराय में छे कर्मोंका बन्ध कर, अनियटि बादरमें सात कर्मोंका बन्ध करेसो दुसरा भूयस्कार.

अप्रमत गुणस्थानमें सात कर्मोंका बन्ध कर प्रमतादि गुण स्थान में आठ कर्मों का बन्ध करे सो तीसरा भूयस्कार.

७०, तीसवा-भूयस्कार कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

सामान्यपने-कर्म प्रकृति के बन्ध स्थान २९ होते हैं.-१ का १७ का, १८ का, १९ का, २० का, २१ का, २२ का, २६ का, ५३ का, ५४ का, ५५ का, ५६ का ५७ का, ५८ का, ५९ का, ६० का, ६१ का, ६३ का, ६४ का, ६५ का, ६६ का. ६७ का, ६८ का, ६९ का, ७० का, ७१ का, ७२ का, ७३ का और ७४ का, इन २९ स्थानों में से भूयस्कार बन्ध के २८ स्थानक हैं.

भूयस्कारादि चारों बन्धकी कर्म प्रकृतिके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पुष्ट२०८वा.

१ उपशान्त मोह में-१ वेदनीका बन्ध कर, सूक्ष्म सम्परायमें-५ ज्ञानावरणिय, दर्शनावरणीकी ४, अन्तराय की ५, ऊंच गौत्र१, यशकीर्ति १, यों १७ प्रकृतिका साता वेदनीय के साथ प्रथम समय में बन्ध करती वक्त प्रथम भूयस्कार बन्ध.

वहां से पडता अनियट बादर गुणस्थानमें-संज्वल के लोभ युक्त १८ प्रकृति का बन्ध करे सो दुसरा भूयस्कार बन्ध. ३ इसी में संज्वलकी मायाके साथ १९का बन्ध करेसो तीसरा भूयस्कार बंध. ४ इसी में संज्वलके मान के साथ २० का बन्ध करेसो चौथा भूयस्कार बन्ध, इसीमें संज्वलके क्रोधके साथ २१ का बन्ध करे सो पांचवा भूयस्कार बन्ध, ६ इसीमें पुरुष वेदके साथ २२ का बन्ध करे सो छठा भूयस्कार बन्ध, ७ अपूर्व करण के सातवे भाग में हांस्य, रति, भय, और मत्सर, इन चारों का बन्ध करे सो सातवा भुयस्कार बन्ध, ८ अपूर्व करण के छठे भाग में÷देवाप्रायोग २८ प्रकृति का बन्ध करे सो ५३ का आठवा भूयस्कार बन्ध. ९ तीर्थंकर नामका बन्ध करे सो ५४ का नववा भूयस्कार बन्ध, १० इसमें से-आहारक द्विक बन्ध करे सो ऊपरोक्त ५३ दोनों मिलाने से ५५का दशवा भूयस्कार बन्ध, ११ इसमें जिननाम का बन्ध करे सो ५६ का इग्यारवा भूयस्कार बन्ध, १२ अपूर्व करण के प्रथम भागमें तीर्थंकर नाम घटाकर, निद्रा और प्रचला का बन्ध करे सो ५७ का बारवा भूयस्कार बन्ध, १३ इस में-तीर्थंकर नाम अधिक करनेसे ५८ का तेरवा भूयस्कार बन्ध, १४ अप्रमत गुणस्थान मे-देवायु सहित ५९ का बन्ध करे सो चउदवा भूयस्कार बन्ध, १५ देशविरति गुण-

÷ देव प्रायोग्य बन्ध की प्रकृति २८ है. परन्तु यश कीर्ती नाम ऊपर कह देने के सबब से यहां.

स्थान में देवा प्रायोगकी २८ प्रकृति का बन्ध करते-५ ज्ञानावरणी यकी, ६ दर्शनावरणीयकी, १ वेदनीयकी १७ मोहनीयकी, २८नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तराय की यो ६० प्रकृतिका बन्ध करेसो पन्दरवा भूयस्कार बन्ध. १६ तिर्थंकर नाम सहित ६१का बंध करे सो सोलवा भूयस्कार बन्ध. १७ अविरति गुणस्थान में आयु अवन्ध वक्त में देव प्रायोग्य नामकी २८ प्रकृतिका बन्ध करते-५ ज्ञानावरणीय, की ६ दर्शनावरणीयकी, १ वेदनीयकी, १७ मोहनीयकी, २८ नामकी १ गौत्र की, और ५ अंतरायकी यों ६३ का बन्ध करे सो सतरवा भूयस्कार बन्ध, १८ देवायु सहित ६४ का बन्ध करे सो अठारवा भूयस्कार बन्ध. १९ तीर्थंकर नाम सहित ६५ का बन्ध करे सो उन्नीसवा भूयस्कार बन्ध. २० अविरति में-देवता होवे उनके मनुष्य प्रायोग्य ३० प्रकृति का बन्ध करते ६६ का बन्ध होवे सो बीसवा भूयस्कार बन्ध. २१ मिथ्यात्व गुणस्थान में-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, १ वेदनीय, २२ मोहनीय, १ आयुष्य, २३ नामकी १ गौत्रकी, और ५ अन्तराय की यों ६७ प्रकृति का बन्ध करे सो इक्कीसवा भूयस्कार बन्ध. २२ इसमें नामकी २५ प्रकृति करने से और आयुष्य की १ कमी करने से ६८ का बन्ध होवे सो तेवीसवा भूयस्कार बन्ध, २४ येही नाम कर्म की २६ प्रकृति के साथ ७० का बन्ध होवेसो चौवीसवा भूयस्कार बन्ध, २५ येही आयुष्य रहित और नाम की २८ प्रकृति साथ ७१ का बन्ध करे सो पच्चीसवा भूयस्कार बंध. २६ येही २९ नामकी प्रकृति साथ बंध करेसो ७२ का छब्बीसवा भूयस्कार बंध, २७ येही आयुष्य सहित ७३ का बंध करे सो सत्तावीसवा भूयस्कार बंध और २८ येही नामकी ३० प्रकृति का बंध करतें-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, १ वेदनीय, २२ मो

हनीय,१ आयुष्य, ३० नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अंतरायकी यों ७४ का बंध करे सो अठाविसवा भूयस्कार बंध.+

७१, इकतीसवा अल्पतर कर्म बंध द्वार

प्रथमके गुणस्थानों में आयु कर्म का बन्ध करते सात कर्मों का बन्ध करे सो प्रथम अल्पतर बन्ध.

सात कर्मोंका बन्ध कर दशवे गुणस्थानके प्रथम समय मोहनीय विना छे कर्मोंका बन्ध करे सो दुसरा अल्पतर बन्ध.

और छे कर्मोंका बन्ध किये बाद आगे उपशान्त मोह क्षीण मोहादि गुणस्थान में एक वेदनीय का बन्ध करे सो तीसरा अल्पतर बन्ध.

७२ बत्तीसवा-अल्पतर कर्म प्रकृति बन्धद्वार

जो उपर भूयस्कार बन्ध के २८ स्थान कहे हैं, उन्हीको उलट पढने से अर्थात्-पहेल २८ वा, फिर २७ वा, फिर २६वा, यों-आठाईस उलटाकर पढनासो अल्पतर बन्ध के २८ स्थान जानना.

७३, तेंतीसवा अवस्थित कर्म बंध द्वार.

प्रथम गुणस्थानोंमें आठों कर्मोंका बन्ध किये बाद आगेके गुणस्थान में सात कर्मोंका बन्ध करे उस वक्त प्रथम समयमें तो अल्पतर बन्ध जानना, और फिर वो बन्ध जितने कालतक वैसे-ही स्वरूप में कायम बनारहे उसे अवस्थित बन्ध कहते हैं.

+ यह २८ भूयस्कार बन्ध स्थान कहे इनके मकारान्त से अनेक भेद होते हैं सो स्वबुद्धि से कीजियेजी.

७४, चौतीसवा-अवस्थितकर्म प्रकृतिबंधद्वार

बन्ध के २९ ही स्थानोंमें जिन २ प्रकृतियों के बन्ध करने का स्वरूप भूयस्कार बन्ध में कहा है. वो प्रकृतियों बन्ध किये बाद उतनीही उसही स्वरूपमें कायम रहे. उसे अवस्थिति बन्ध समझना.

७५, पैतीसवा अव्यक्त कर्म बंध द्वार

अव्यक्त बन्ध-सर्व कर्मो से अबन्ध-निर्मुक्त हो फिर बन्धकरे उसे कहते हैं, सो किसी भी गुणस्थान में नहीं पाता है, क्योंकि सर्व कर्मोंसे निर्मुक्त अयोगी केवली गुणस्थान के बाद होते हैं, और सीधा मोक्ष में चले जाते हैं. परन्तु पडवाइ नहींज होते हैं. इसलिये यह बन्ध नहीं पाता है. एसाही अव्यक्त कर्म प्रकृति के सम्बन्ध में भी जानना.

७६, छत्तीसवा-समुचय कर्मप्रकृतिबन्धद्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में-ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीयकी ९, वेदनीयकी२, मोहनीयकी २६, आयुष्यकी ४, नामकी ६४, गौत्र की २, और अन्तराय की ५, यों सब ११७ प्रकृति का बन्ध होता है.

२ सास्वादन गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २४, आयुष्यकी ३, नामकी ५१, गौत्रकी २, और अंतरायकी ५, योंसब १०१प्रकृति बन्धातीहै.

३ मिश्र गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ६, वेदनीयकी २, मोहनीय की १९, नामकी ३६

गौत्रकी १, और अंतराय की ५, यों सब ७४ प्रकृति बन्धाती है.

४ अविरति सम्यग दृष्टि गुणस्थानमें-ज्ञानावाणीयकी ५, दर्शनावरणीय की ६, वेदनीयकी २, मोहनीयकी १९, आयुष्यकी, २, नामकी ३७, गौत्र की १, और अंतरायकी ५, यों सब ७७ प्रकृति बंधाती है.

५ देशविरति गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ६, वेदनीयकी २, मोहनीयकी १५, आयुष्य की १, नामकी ३२, गौत्रकी १, और अंतरायकी ५, यों सब ६७ प्रकृति बंधातीहै.

६ प्रमत संयाति गुणस्थान में-ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ६, वेदनीय की २, मोहनीयकी ११, आयुष्य की १, नाम की ३२, गौत्र की १ और अंतरायकी ५, योंसब६३प्रकृति बंधातीहैं.

७ अप्रमत संयाति गुणस्थानमें-ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ६ वेदनीयकी १, मोहनीय ९,, आयुष्य की १, नाम की ३१, गौत्रकी १, और अन्तरायकी ५ यों सब ५९ प्रकृति बंधाती है.

८ अपूर्व करण गुणस्थान के सात भागों में से-पाहिला भाग में ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीय की ६, वेदनीयकी १,मोहनीयकी ९, नामकी ३१, गौत्रकी १, और अंतरायकी ५ यों सब ५८ प्रकृति बन्धाती हैं. और दूसरे भाग से लगाकर छट्टे भाग तक मोहनीयकी २ प्रकृति कम होनेसे ५६ प्रकृति बन्धाती है. और सातवे भाग में नामकी ३० विना २६ बन्धाती है.

९ अनियट्टी बादर गुणस्थान के पाँच भागो में से-पाहिले भाग में ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ४, वेदनीयकी १, मोहनीयकी ५, नामकी १, गौत्रकी १, और अंतरायकी ५, यों स-

व २२ प्रकृति बन्धाती है, आगे प्रत्येक भाग में एकेक मोहनीय की प्रकृति कमी होनेसे-दुसरे भागमें २१ तीसरेमें २०, चौथे में १९ और पांचवे में-१८ प्रकृति बंधाती है.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में–ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीय की ४, वेदनीय की १ नामकी, १, गौत्रकी १, और अन्तराय की ५ यों १७ प्रकृति बन्धाती है.

११-१३ उपशान्त मोह क्षीण मोह और सयोगी केवली के एक सातावेदनीय का बन्ध होता है.

१४ अयोगी केवली के किसीकाभी बन्ध नहीं होता है.

७७, सैंतीसवा-कर्मबन्ध व्युच्छेद द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानसे अप्रमत गुणस्थान तक मिश्र गुणस्थान छोड बाकी ६ गुणस्थानोंमें कर्म बन्धका युच्छेद नहीं आठों ही कर्म बन्धाते हैं.

मिश्र. अपुर्व करण. और अनियटी बादर गुणस्थानों में आयू बन्ध व्युछेद.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में आयुष्य और मोहनीय कर्म बंध व्युच्छेद.

उपशांत मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन ३ गुण स्थानों मे एक वेदनीय कर्म विना सातों कर्म बन्धन का व्युच्छेद होता है.

और अयोगी केवली गुणस्थानमें सर्व कर्म बंधका व्युछद रहे.

७८, अढतीसवा कर्मप्रकृतिबंधव्युच्छेदद्वार

सब बंधकी १२० प्रकृति है. उसमेंसे:—

१ मिथ्यात्व गुणस्थानमें-नाम कर्मकी ३ प्रकृति का बंध व्युच्छेद होता है.

२ सास्वादन गुणस्थानमें-मोहनीय की २, आयुष्यकी १, और नामकी १६ यों सब १९ प्रकृतिका बंध व्युच्छेद होता है.

३ मिश्र गुणस्थान में-दर्शनावरणीयकी ३, मोहनीयकी ७ आयुष्यकी ४, नामकी ३१ और गौत्रकी १ यों सब ४६ का बन्ध व्युच्छेद होता है.

४ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें-दर्शनावरणीयकी ३, मोहनीयकी ७, आयुष्य की २, नामकी ३१ और गौत्रकी १ यों सब ४३ का बंध व्युच्छेद होता है.

५ देशविरति गुणस्थान में-दर्शनावरणीय की ३, मोहनीयकी ११, आयुष्य की ३ नाम की ३५, और गौत्र की १, यों सब ५३ का बंध व्युच्छेद होता है.

६ प्रमत गुणस्थान में दर्शनावरणीयकी ३ मोहनीयकी १५, आयुष्यकी ३, नामकी ३५, और गौत्रकी १ यों सब ५७ का बन्ध व्युच्छेद होता है.

७ अप्रमत गुणस्थान में-दर्शनावरणीय ३, वेदनीय १, मोहनीय-१७, आयुष्य की ३, नामकी ३६ और गौत्रकी १, यों सब ६१ का बंध व्युच्छेद होता है,

८ अपूर्व करण गुणस्थान के सात भागोंमें से पहले भागमें दर्शनावरणीय की ३, वेदनीयकी १, मोहनीयकी १७, आयुष्यकी ४, नामकी ३६ और गौत्र की १, यों सब ६२ का बन्ध व्युच्छेद होता है. दूसरे भाग से छेठ भागतक-दर्शनावरणीयकी ५ वेदनीयकी १, मोहनीय की १७, आयुष्की ४. नामकी ३६ और गौत्र की

१, यों सब ६० का बन्ध व्युच्छेद होता है. और सातवे भाग में नाम की ३० प्रकृति का बंध घटने से ९० का बन्ध व्युच्छेद होता है.

९ अनियट्टि बादर गुणस्थानके पांच भागों में से पहिले भाग से—दर्शनावरणीय की ५ वेदणीयकी १, मोहनीयकी २१आयुष्य की ४,नामकी६६, और गौत्रकी१यों सब ९८ प्रकृतिका बंध व्युच्छे- होता है, आगे चार भागों में मोहनीय की एकेक बधाने से-दूसरे भागमें ९९, तीसरे में १००, चौथे में १०१ और पांचवेमें १०२ प्रकृतिका बंध व्युच्छेद होता है.

१० सूक्ष्म सम्पराय में-दर्शनावरणीयकी ५, वेदनीयकी१ मोहनीयकी २६ आयुष्की ४, नामकी ६६ और गौत्रकी १, यों सब १०३ का बंध व्युच्छेद होता है.

११-१३ उपशान्त मोह, क्षीण मोह, और सयोगी केवली, इन ३, गुणस्थानोंमे ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ९, वेदनीय की १, मोहनीयकी २६, आयुष्य की ४, नरमकी ६७ और गौत्रकी२योंसब ११९का बंध व्युच्छेद होताहै, और अयोगी केवली गुणस्थान में १२० प्रकृति काही बन्ध व्युच्छेद होता है.

इति कर्म बंध नामक द्वितीय प्रकरण

समाप्तम.

तृतीय प्रकरण-कर्मोदय द्वार.

कर्मोदयके-३४ द्वारोंके नाम.

१ समुचय कर्मोदयद्वार, २ ज्ञानावरणीयोयद्वार, ३ दर्शनावरणीयोदयद्वार, ४ वेदनीयोदयद्वार, ५ मोहनीयोदयद्वार, ६ आयु

दयद्वार, ७ नमोदयद्वार, ८ गौत्रोदयद्वार, ९ अन्तरायोदयद्वार, १० ध्रुवकर्मोदयद्वार, ११ ध्रुवकर्मप्रकृतियोदयद्वार, १२ अध्रुवकर्मोदयद्वार, १३ अध्रुवकर्म प्रकृतियोदयद्वार, १४ पुन्यकर्मोदयद्वार, १५ पुण्य कर्म प्रकृतियोदयद्वार, १६ पाप कर्मोदयद्वार, १७ पापकर्म प्रकृतियोदयद्वार, १८ क्षेत्र विपाक कर्मोदयद्वार, १९ क्षेत्रविपाककर्मप्रकृतियोदयद्वार, २० भव विपाककर्मोदयद्वार, २१ भवविपाक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २२ जीवविपाक कर्मोदयद्वार. २३ जीव विपाककर्म प्रकृतियोदयद्वार, २४ पुद्गल विपाक कर्मोदयद्वार, २५ पुद्गल विपाक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २६ सर्वघातिक कर्मोदयद्वार, २७ सर्वघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २८ देशघातिक कर्मोदयद्वार २९ देशघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३० अघातिक कर्मोदयद्वार, ३१ अघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३२ समुचय कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३३ कर्मोदय व्युच्छेदद्वार और ३४ कर्मप्रकृतियोदय व्युच्छेदद्वार.

७९, प्रथम-समुचय कर्मोदय द्वार.=

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक आठोंही कर्मोंका उदय पाता है.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में मोहनीय विना ७कर्मोंका उदय पाताहैं, और सयोगी केवली. अयोगी केवली इन दोनों गुणस्थानोंमें-१वेदनीय, २ आयूष्य, ३ नाम, और४गौत्र इन चार कर्मोंका उदय पाताहैं.

८०, दुसरा-ज्ञानावरणीयोदय द्वार.

= क्योंकि थीणद्धी त्रिकका उदय स्थूल प्रमादीके होता है सो यहां नहीं है.

☞ उदय द्वारोंके खुलासे के लिये अर्थ कांडका २१४ वा पृष्ट देखीये.

मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति का उदय पाता हैं. उपर ज्ञानावरणीय का उदय नहीं.

८१, तीसरा दर्शनावरणीयोदय द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थानसे प्रमत गुणस्थान तक दर्शनावरणीकी ९ ही प्रकृति का उदय पावे.

अप्रमत से क्षीण मोह के पहिले भाग तक थीणद्धी त्रिक विना ६ प्रकृतिका उदय पावे.

क्षीण मोह के अन्तिम भाग में निद्रा द्विक विना ४ प्रकृति का उदय पावे.

उपरके गुणस्थानों में-दर्शनावरणीय का उदय नहीं पाता है.

८२, चौथा वेदनीयोदय द्वार.

अनेक जीवों की अपेक्षा कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान सें अन्तिम अयोगी केवली गुणस्थान तक वेदनीय की दोनों प्रकृतिका उदय पाताहै.+

८३, पांचवा मोहनीय उदय द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में–मिश्र मोह और सम्यक्त्व मोह × विना २६ प्रकृतिका उदय.

सास्वादन गुणस्थान में–मिथ्यात्व मोह विना २५ प्रकृति का उदय पाता है.

+ क्योंकि एक जीव एक समय में दोनों वेदनीय मेंकी एकही वेदनी वेद शक्ता है.

× क्ययोंकि-मिश्रमोहनीका उदय मिश्रगुणस्थान में पाता है, और सम्यक्त्व मोहनिय का उदय अविरति में पाता हैं.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में-४ अनन्तान बन्धि चौक, १ मिथ्यात्व मोह और १ सम्यक्त्व मोह, इन ६ प्रकृति विना १९ का उदय.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानावरणीय चौक विना १५ का उदय.

प्रमत-और अप्रमत गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानावरणीय चौक विना ११ का उदय.

अपूर्व करण गुणस्थान में-* सम्यक्त्व मोहविना १० प्रकृतिका उदय.

अनियट्टी बादर गुणस्थान में-हाँस्य षटक विना४ प्रकृति का उदय.

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें-१ संज्वलके लोभका उदय.

ऊपरके गुणस्थानोंमें-मोहनीय कर्मका उदय नहीं पाता है.

८४, छठा आयुष्य कर्मोदय द्वार

मिथ्यात्वसे अविरतिं गुणस्थानतक-चारोंगतिके आयुष्य का उदय.
देशविरति गुणस्थानमें-मनुष्य और तिर्यंच इन दोनों आयुष्य का उदय.
प्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ मनुष्यायु का उदय.

८५, सातवा-नामकर्मोदय द्वार.

नाम कर्मकी ९३ प्रकृतिमें से बन्ध की माफिक उदयकीभी ६७प्रकृति का उदय होता है.

* क्षयोपशम सम्यक्त्व पुद्गलिक होनेके सबब से सातवे गुणस्थान के आगे नहीं पातीं है इसलिये सम्यक्त्व मोहनी नहीं है

मिथ्यात्वगुणस्थानमें[1]-आहारकद्विक, और १तीर्थंकर नाम विना ६४ प्रकृतिका उदय पाता है.

सास्वादन गुणस्थानमें[2]-३ सूक्ष्मत्रिक, १ आताप नाम, १ नरकानुपूर्व्वी विना ५९प्रकृति का उदय.

मिश्रगुणस्थानमें-४जाति चतुष्क, १ स्थावरनाम, ३ [3]अनुपूर्व्वी विना ५१ का उदय.

अविरति सम्यग्दृष्टिमें-४[4]चारों गतिकी अनुपूर्वी अधिक होनेसे ५५ प्रकृति का उदय.

देशविरतिमें-१ [5]मनुष्यानुपूर्व्वी, १ तिर्यचानुपूर्वी, २ वैक्रिय द्विक, २ देवद्विक, २ नरकद्विक, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय, १अय-

---

क्योंकि १ आहारक द्रिक उदय तो चउदय पूर्व धारी मुनिके होता है और तीर्थंकर नामोदय चौथे गुणस्थान से चौदवे तक होता है.

२ सूक्ष्मादि चारोंका उदय तो निश्चय से मिथ्यात्वीके होता है, और नरकानुपूर्व्वीका उदय वक्र गति कर नरक में जाने वालेके पाता है और औपशमिक सम्यक्त्वका वमन करते नरक में नहीं जाता है. फक्त मिथ्यात्वके उदय में ही जाता है. सास्वादन वर्ती मनुष्य और तिर्यच जिस वक्त वक्रगति कर नरक में जाता है उसवक्त मनुश्य होवेतो मनुष्यका और तिर्यच होवेतो तिर्यचायु का उदय वर्तता है. फिर सम्यक्तका वमन करे बाद नरकानुपूर्वी का उदय होता है. और फिर नरकायुका उदय होता. इसलिये मिथ्यात्वी होकर ही नरक में जाता है. फिर नरकमें पर्याप्ता हुवे बाद उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है. फिर उसे वमन करे तब सास्वादन गुणस्थान पाता है. और उसी वक्त नरकायु का उदय पाता है. क्षायिक सम्यक्त्वी तो श्रेणिक राजा की तरह सम्यक्त्व सहित नरक में जाता है. और सास्वादन औपशमिक क्षयोपशामिक सम्यक्त्वका वमन कर नरक में जाता है. इसलिये इनका भी अनुदयहै.

३ यहां आयु बन्ध नहीं होनेसे अनुपूर्व्वीका उदय नहीं पाता है.

४ यहां आयु बन्ध होनेसे चारों अनुपूर्वी का उदय पाता है.

५ श्रावक फक्त देवगतिमें ही जाते है. इसलिये यहां दोनों अनुपूर्व्वीका उदय नहींहै.

श०, इन ११ विना ४४ का उदय.

प्रमतमें-१ तिर्यचगति और २ उद्योत नाम, यह २ तो घटाना. और २आहारक द्विक बढाने से ४४ का उदय होता है.

अप्रमतके-आहारक द्विक विना ४२ प्रकृति का उदय.

अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक-अन्तिम ३ संघयण विना ३९प्रकृति का उदय.

क्षीण मोह और सयोगी केवली में-१ वृषभ नारच और २ नारच संघयण विना ३७ रही. और १ तीर्थकर नाम अधिक करने से ३८ का उदय पाता है.

और अयोगी केवली गुणस्थान में- ३त्रसत्रिक, ३ शुभगत्रिक, १ मनुष्यगति, १ पचेन्द्रिय की जाति, और कितनेक जीवों के तीर्थकर नाम इन ९प्रकृतिका उदय रहता है.

८६, आठवा-गौत्रकर्मोदय द्वार

मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक दोनों गौत्रका उदय पाताहै.

---

६ भव धारणी वैक्रिय शरीर न होनेसे वैक्रिय उदय वर्जा है.

७ देवता और नरक में यह गुणस्थान नहीं पाने से दोनों द्विक वर्जा है.

८ यहां पूर्व धर मुनि होते हैं. जिससे आहारक शरीर पाता है.

९ आहारक लब्धि फोडने वाले साधुओं उत्सुकता के व्रस्य से अवस्य प्रमादी होते है. इसलिये यहां आहारक का उदय नहीं लिया है. परन्तु प्रमत साधूओं आहारक समुद घात किये वाद अप्रमत गुणस्थान में जाते हैं. इसलिये किसी आचार्यने यहां इसका उदय गिना है.

१० इन तीनों संघयण वाले श्रेणि पारंभ नहीं करते हैं.

११ इन दोनों संघयण वाला क्षपक श्रेणि नहीं करता है.

प्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक ऊंच गौत्र का हीं उदय रहता है.

८७, नववा-अन्तरयकर्मोदय द्वार

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थानतक पांचों अंतरायका उदय.

सयोगी केवली और अयोगी केवलीके गुणस्थान में अन्त राय कर्म का उदय नहीं.

८८, दशवा-ध्रुव कर्मोदय द्वार

ध्रुवोदयी ५ कर्मः—१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय, ३ मोहनीय, ४ नाम, और ५ अन्तराय.

मिथयात्व गुणस्थान में-पांचोंही कर्मोंका ध्रुवोदय पाता है. सास्वादनसे क्षीणमोहगुणस्थानतक मोहनीय कर्मविना चारों कर्मों का उदय पावे.

सयोगी केवली गुणस्थानमें एक नाम कर्म का ध्रुवोदय पावे. अयोगी केवली गुणस्थानमें ध्रुवोदयतो नहीं फक्त नाम कर्म पाताहै.

८९, इग्यारबा ध्रुवकर्म प्रकृतियोदय द्वार

ध्रुवोदयी २७ प्रकृतिः—ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयक ४ (५ निद्रा विना) १ मिथ्यात्व मोहनीय, १ निर्माण, १ स्थिर, १ अस्थिर, १ शुभ, १ अशुभ, ४ वर्ण चतुष्क, १ अगुरुलघु, १ तेजस, १ कार्मण, (यह १२ नामकी) और अंतरायकी ५, यों २७.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २७ ही प्रकृतिका उदय पावे.

☞ ध्रुव अध्रुवोयद द्वारोंके खलासे के लिये अर्थ कांडका २१४ वा पृष्ट देखीये.

सास्वादन से क्षीण मोह गुणस्थानतक-मिथ्यात्व मोह विना २६ का उदय.

सयोगी केवली गुणस्थानमें नाम कर्मकी १२ प्रकृतिका उदय.

अयोगी केवलीके ध्रुवोदय नहीं. फक्त नामकी १२ प्रकृतिका उदय ही पाता है.

१०, बारवा अध्रुव कर्मोदय द्वार.

अध्रुवोदयी ६ कर्म-१दर्शनावरणीय, २वेदनीय, ३मोहनीय, ४आयुष्य, ५नाम और ६गौत्र.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक छेही कर्मोका उदय पाताहै.

उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें मोहनीय विना पांचों कर्मों के उदय पाता है.

सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थान में दर्शनावरणीय विना चार कर्मोंका उदय.

११, तेरवा अध्रुव कर्मप्रकृतियोदय द्वार.

अध्रुवोदयी ९५ प्रकृति-निद्रा ५, वेदनीय २, मोहनीय २७ (मिथ्यामोह विना) आयुष्य की ४, और नामकी ५५ (६७ में से १२ ध्रुवोदयकी विन) यों सब ९५ प्रकृतिमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-२ मोहनीय, २ आहारक द्विक, १तीर्थकर नाम इन५ विना ९० का उदय.

सास्वादनमें गुणस्थानमें सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण, आताप, नरकानुपुर्वी इन ५ विना ८५ का उयद.

मिश्र-गुणस्थानमें ४ अनन्तान बान्धि चौके, ४ जाति चतुष्क,

३ अनूपूर्व्वी, और स्थावर नाम यह १२ घटाना और १ मिश्र मोहनी बडाने से ७४ का उदय पावे.

अविरतिमें-७४ में से मिश्र मोह घटाना और सम्यक्त्व मोह, ४ अनुपुर्व्वी बढाने से ७८ का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-१ मनुष्यानुपुर्व्वी, १ तिर्यचानुपूर्व्वी, २ वैक्रियरद्धिक, ३ देवत्रिक,३नरकत्रिक, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय,१अयशः, ४ अनंतानुबन्धी चौक इन १७ विना ६१ का उदय.
प्रमत संयति गुणस्थानमें-१तिर्यचगति१तिर्यचानुपूर्व्वी,१उद्योत नाम १ आताप नाम, १ नीच गौत्र, और ४अप्रत्याख्यानावरणीय चौक इन प्रकृति ९ विना ५२ का उदय.

अप्रमत में ३ थीणद्धी त्रिक,१आहारक शरीर इन४८विना४पावे.

अपूर्व करणमें-१ सम्यक्त्व मोह, और अन्तिम३संघयण इन ४विना ४५ का उदय पावे.

अनियट बादर में ६ हांस्य षटक विना ३९ का उदय पाता है.
सूक्ष्म सम्परायमें ३ वेद, और संज्वलत्रिक इन ६ विना, ३३का उदय पावे.

उपशान्त मोहमें-संज्वलके-लोभा विना ३२ का उदय पावे.

क्षीणमोह गुणस्थान में-दो संघयण विना ३० का उदय पावे.

सयोगी केवलीमें-दो निद्रा विना २८, और जिन नाम मिलानेसे २९ उदय पावे.

अयोगी केवलीमें-उपर कहीसो ही-१२ प्रकृतिका उदय पाता है.

९२, चौदवा पुण्यकर्मोदय द्वार.

मिथ्यात्व से अयोगी केवली गुणस्थानतक चारोंही पुण्य कर्म

का उदय पाता है.

१३, पन्दरवा-पुण्यकर्म प्रकृतियोदय द्वार

पुण्य कर्मोंकी ४२ सब प्रकृति में से.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-२ आहारकद्विक, और तीर्थंकर नाम विना ३९ का उदय पावे.

सास्वादन गुणस्थानमें-आताप नाम विना-३८ प्रकृतिका उदय पावे

मिश्रगुणस्थानमें-१मनुष्यानुपूर्व्वी,१देवानुपूर्व्वी इन२ विना ३६का उदय पावे.

अविरति गुणस्थानमें-१ मनुष्यानुपूर्वी, १ देवानुपूर्व्वी बढने से ३८ का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थान में-२ वैक्रियद्विक ३ देवत्रिक, १ मनुष्यानुपूर्व्वी इन ६ विना ३२ का उदय पावे.

प्रमत संयतिमें-तिर्यंचानुपूर्व्वी, उद्योत नाम घटा, और आहारक द्विक बढा जिससे ३२ का उदय पावे.

अप्रमतसे क्षीण मोह गुणस्थानतक-आहारक द्विक विना ३०का उदय पावे.

सयोगी केवली गुणस्थान में-तीर्थंकर नाम अधिक होनेसे ३१ उदय पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में-१ सातवेदनी, १ तीर्थंकर नाम, १ त्रस, १ बादर, १ प्रत्येक, १ शुभग, १ आदेय, १ यशकीर्ती, १ पचेन्द्रियजाति, १ मनुष्यगति, १ मनुष्यानुपूर्व्वी, और १ ऊंच गौत्र इन १२ प्रकृति का उदय रहता है.

१४ सोलवा पाप कर्मोदय द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक आठों कर्मोंका उदय पावे क्षीणमोह गुणस्थानमें-मोहनीय विना सातों कर्मों का उदय पावे. सयोगी. अयोगी केवली गुणस्थान में वेदनीय, आयु, नाम, गौत्र इन ४ कर्मोंका उदय पावे.

९५, सतरवा पापकर्म प्रकृतियोदयद्वार

पाप कर्मों की ८२ प्रकृतियों में से,

मिथ्यात्व गुणस्थान में-८२ ही प्रकृति का उदय पाता है.

सास्वादन में—४ स्थावर चतुष्क, १ मिथ्यात्व मोहनीय इन ५ विना ७७ का उदय पावे.

मिश्र गुणस्थान में-४ अनन्तान बन्धि चौक, ३ विकेन्द्रिय त्रिक, १ नरकानुपुर्व्वी, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी और १ अपर्याप्ता नाम इन १० विना ६७ प्रकृतिका उदय पावे.

अविरति गुणस्थान में-१नरकानुपूर्व्वी, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, इन २ बढने से ६९ का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थान में-४ अप्रत्याख्यानावरणीय चौक, ३ नरक त्रिक, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, और १ अयशः कीर्ति इन ११ विना ५८ का उदय पावे,

प्रमत गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानी चौक, १ तिर्यंचगति, १ नीच गौत्र ६ इन विना ५२ का उदय.

अप्रमत गुणस्थानमें-३ थीणद्धी त्रिक विना ४९ प्रकृतिका उदय.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-प्रथमके तीन संघयण विना४६का उदय पावे,

अनीयट बादर गुणस्थानमें-हांस्य षटक विना ४० का उदय पावे.

सूक्ष्म सम्परायमें-३, वेद और संज्वलन त्रिक विना ३४ प्रकृति का उदय पावें.

उपशान्त मोहमें-संज्वलनके लोभ३३ विना का उदय पावे.
क्षीण मोहमें-दो संघयण और दो-निद्रा विना २९ का ऊदय पावे.

सयोगी केवलीके-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, और ५ अन्तराय. इन १४ विना १५ उदय पावे.
अयोगी केवलीके-फक्त दोनों वेदनीयोंमेंसे एकका उदय रहता है.

१६, अठारवा क्षेत्रविपाक कर्मोदय द्वार.

क्षेत्र विपाकी फक्त१नाम कर्म हैसो, मिथ्यात्व सास्वादन, अविरति, तीनोंमें क्षेत्र विपाकी नाम कर्म का उदय है.

मिश्र, देशव्रतिसे जावत् अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षेत्र विपाकी कर्मोदय नहीं है.

उन्नीसवा क्षेत्रविपाककर्मप्रकृतियोदय द्वार

क्षेत्र विपाक प्रकृति चार सो-चारोंगतिकी अनुपूर्वी जानना.
मिथ्यात्व और अविरति गुणस्थानमें चारों अनुपूर्वीका उदय पावे.
सास्वादन गुणस्थानमें-नरकानुपूर्वी विना तीन अनुपूर्वीका उदय.

मिश्र देशव्रतिसे अयोगी केवली गुणस्थानतक क्षेत्र विपाकी कर्मकी प्रकृति का उदय नहीं होताहै.

१८, बीसवा भवविपाक कर्मोदय द्वार

भव विपाकी एक आयुष्य कर्महै सो.
मिथ्यात्वसे अयोगी केवली गुणस्थानतक भव विपाक कर्मकाउदयहै

९९ इक्कीसवा भवविपाक प्रकृतियोदयद्वार

भव विपाककी प्रकृति ४ सो-चारों गतिका आयुष्य जानना.
मिथ्यात्व अविरति गुणस्थानतक चारों आयुष्य का उदय पावे.
देशविरति गुणस्थान में-मनुष्य और तिर्यंच आयुका उदय पावे.
प्रमत गुणस्थानसे अयोगी केवलीतक-एक मनुष्य आयुका उदय.

१००, बावीसवा-जीवविपाकीकर्मोदयद्वार,

आयुष्य विना सातोंहि कर्मों जीव विपाकी हैं.
मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक सातोंही कर्मोंका उदय.
उपशान्त मोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना छे कर्मों का उदय.
सयोगी केवली और अयोगी केवलीके वेदनी, आयू, नाम, और गौत्र इन चारों कर्मोंका उदय.

तेवीसवाजीवविपाककर्मप्रकृतियोदय द्वार

जीव विपाकी प्रकृति ७८ होती हैः—५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २८ मोहनी, ४ गति, ५ जाति, १त्रस१, बादर, १ पर्याप्ता, १स्थावर, १सूक्ष्म, १ अपयर्याप्ता, १ सुभग, १ सुस्वर, १ आदेय, १ यशः, १ दुभग. १ दुस्वर अनादेय, १ अयशः, १ श्वासोश्वास, १ तिर्थंकर, २ खगति, यह २७ नामकी) २ गौत्र की, और ५ अन्तराय की. यों सब ७८ प्रकृतिमेंसेः—

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ सम्यक्त्व मोह, १मिश्रमोह, और १

जिननाम विना ७५ का उदय.

सास्वादन में-१ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, और १ मिथ्यामोह इन ३ विना ७२ का उदय.

मिश्रमें-४ अनन्तानु बन्धि चौक, ४ जाति, १ स्थावर नाम यह९.घटी जब ६३काही उदय रहा. और १ मिश्रमोह बढा तब ६४ प्रकृतिका उदय पावे.

अविरति सम्यग्दृष्टिमें-मिश्रमोह घटा, और सम्यक्त्व मोह बढा तब ६४काही उदय रहा.

देशविरति गुणस्थान में-४ अप्रत्याख्यानी चौक, १ नरकगति, १ देवगति, १ दौर्भाग्य १ अनादेय, और १ अयशःकीर्ती इन ९ विना ५५ का उदय पावे.

प्रमत गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानी चौक, १ और तिर्यंच गति इन ५ विना ५० का उदय पावे.

अप्रमत गुणस्थान में-३ थीणद्धी त्रिक, विना ४७ का उदय पावे.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-सम्यक्त्वमोहनीय विना ४६का उदय पावे.

अनीयटी बादर गुणस्थान में-हांस्य षटक विना ४० का उदय पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-३वेद और संज्वलन त्रिक इन ६ विना ३४का उदय पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-संज्वलके लोभ विना ३३का उदय पावे.

क्षीणमोह गुणस्थान में-निद्रा और प्रचला विना ३१का उदय पावे.

सयोगी केवलीकें-५ ज्ञानावरणी, ९ दर्शनावरणी, ५ अन्तराय इन १४ विना १७ का उदय पावे.

अयोगी केवली के-नाम कर्मकी ११ प्रकृति पहिले कही उनका ही उदय.

१०२, चौबीसवा-पुद्गलविपाकीकर्मोदय द्वार

पुद्गल विपाकी फक्त १ नाम कर्म ही है.

मिथ्यात्वसे अयोगी केवलीतक पुद्गल विपाकी कर्मोदय होता है.

पच्चीसवा पुद्गलविपाककर्मप्रकृतियोदयद्वार

पुद्गल विपाकी प्रकृति ३६ होती है:—५ शरीर ३ अंगोपांग ६ संघयण, ६ संस्थान, ४ वर्ण चतुष्क, १ निर्माण, १ अस्थिर, १ स्थिर, १ अशुभ १ शुभ, १ अगुरुलघू, १ उपघात, १ पराघात, १ प्रत्येक, १ साधारन यह ३६ इनमेंसे

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक विना ३४ का उदय पावे.

सास्वादन, मिश्र और अविरतिमें-१ आताप, और १ साधारण नाम इन विना विना ३२ का उदय पावे.

देशविरति में-वैक्रिय द्विक विना ३० का उदय पावे.

प्रमत संयतिमें-उद्योत नाम घटनेसे २९ रही और आहारक द्विक बढनेसे ३१ का उदय पावे.

अप्रमत संयति में-आहारक द्विक विना २९ का उदय पावे.

अपूर्व करणसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक-अन्तिम ३संघयण विना २६ का उदय पावे.

क्षीण मोह और सयोगी केवली के-दोनों संघयण विना २४ का उदय पावे.

अयोगी केवली के शरीर के अभाव से पुद्गल विपाकी प्रकृति का उदय नहीं पाता है.

१०४ छब्बीसवा सर्वघातिक कर्मोदयद्वार

मिथ्यात्व सें सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक सर्व घातिक तीनों कर्मों का उदय पावे.
उपशांत मोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना दो कर्मों का उदय.
सयोगी और और अयोगी केवली गुणस्थानमें-घातीक कर्मों का उदय नहीं पाताहै.

सतावीसवा सर्वघातिककर्मप्रकृतियोदयद्वार

बंधमें कहे मुझवही सर्व घातिक तीनों कर्मोंकी २०प्रकृतिहै, उसमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें-२० ही प्रकृति का उदय पावे.
सास्वादन गुणस्थानमें-मिथ्यात्व मोह विना१९ प्रकृतिका उदय पावे
मिश्र और अविरति गुणस्थान में-४ अनन्तान बन्धि चौक विना १५ का उदय पावे.
देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानी चौक विना ११का उदयपावे
प्रमत संयति गुणस्थानमें-प्रत्याख्यानी चौक विना-७का उदय पावे.
अप्रमतसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक-थीणद्धी त्रिक विना ४ का उदय पावे.
क्षीणमोह गुणस्थानमें-निद्रा और प्रचला विना ४ का उदय पावे.
सजोगी और अजोगी केवलीमें-सर्व घातिक प्रकृतिका उदय नहीं.

अठावीसवा देशघातिक कर्मोदय द्वार.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक देश घातिक चारों कर्मोंका उदय पावे.
ऊपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-मोहनिय विना तीन कर्मोंका उदय पावे.
सयोगी और अयोगी केवलीके देशघातिक कर्मोंका उदय नहीं.

उन्नतीसवा देशघातिककर्मप्रकृतियोदयद्वा

बन्धमें कहे मुझबही देशघातिक चारों कर्मोंकी प्रकृति २७है उसमेसें मिथ्यात्व, और सास्वादनमें-सम्यक्त्व मोह और मिश्र मोह विना २५ का उदय पावे.

मिश्रगुणस्थानमें-मिश्रमोह अधिक होनेसे २६ का उदय पावे.

अविरतिमें-सम्यक्त्व मोह बढनेसे और मिश्रमोह घटनेसे २६ काही उदय रहा-

देशविरतिसे अपूर्व करण गुणस्थानतक-सम्यक्त्व मोह विना २५का उदय पावे.

अनियट्ट बादर गुणस्थानमें-हांस्य षटक विना १९का ऊदय पावे.

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें-३ वेद और संज्वलन त्रिक विना १३का ऊदय पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में-संज्वलन के लोभ विना १२ का ऊदय पावे

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानमें घातिक कर्म प्रकृति का ऊदय नहीं पाता है.

१०८, तीसवा अघातिक कर्मोदय द्वार.

मिथ्यात्वसे अयोगी केवली गुणस्थानतक अघातिक चारों कर्मोंका उदय पाता है.

इकतीसवा अघातिककर्म प्रकृतियोदयद्वार

दोनों तरह के घातिक कर्मों की४७ प्रकृति छोड बाकी १५ रही सो अघाति अघातिककर्म की प्रकृति जाननी इनमेंसे मिथ्यात्व गुण-स्थान में २ आहारकद्धिक और १जिननाम विना ७३ का उदय.

सास्वादनमें १सूक्ष्म, १अपर्याप्ता, १साधारण, १आताप, और१नर कानुपूर्व्वी इन५विना ६८ उदय.

मिश्र गुणस्थानमें ४ जातिचतुष्क, ३ अनुपूर्व्वी १ स्थावर नाम, इन ८विना ६०, का उदय.

अविरतिमें—चारों अनुपूर्व्वीका उदय बढने से ६४ उदय.

देशविरति—३ देवत्रिक, ३ नरकत्रिक, २ वैक्रियद्विक, १ मनुष्यानुपूर्व्वी १ तिर्यचानुवूर्व्वी, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय, और १ अयशः कीर्ती इन १३ विना ५१ का उदय.

प्रमतमें—२ तिर्यचद्विक, १ उद्योत, १ निच गौत्र इन ४ विना ४७ का उदयरहा और आहारक द्विक बढाने से ४९ का उदय पाता है.

अप्रमतमें—आहाक द्विक विना ४७ का उदय.

अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक अन्तिम तीनों संघयण विना ४४ का उदय.

क्षीणमोहमें—१ वृषमनारच, और १नारच संघयण विना ४२का उदय

सयोगी केवलीके जिननाम अधिक होनेसे ४३ का उदय.

अयोगी केवली के—पाहिले कही सोही नामकर्म की १२ प्रकृत्तिका उदय पाता है.

बत्तीसवा-समुचय कर्मप्रकृतियोदय द्वार.

१ मिथ्यात्व में—५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीय की, २ वेदनीय की, २६ मोहनीयकी, ४ आयुष्य की, ६४ नामकी, २ गोत्रकी और ५ अन्तराय की यों सब ११७ का उदय पावें.

२ सास्वादन में—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी २

वेदनीयकी २९ मोहणीयकी ६ आयुष्य की ५० नामकी २ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १११ उदय पावे.

३ मिश्रमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी. २२ मोहनीयकी ४ आयुष्यकी, ५१ नामकी, २गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १०० का उदय पावे.

४ अविरतिमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी २२ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, ५५ नामकी, २ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब १०४ का उदय पावे.

५ देशविरतिमें—५ ज्ञानावरणीयकी ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १८ मोहनीयकी, २ आयुष्यकी, ४६ नामकी, २ गोत्र की और ५ अन्तरायकी यों ८७ का उदय पावे.

६ प्रमतमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ४३ नामकी, २ गोत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों सब ८१ का उदय पावे.

७ अप्रमतमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ४२ नामकी, १ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ७६ का उदय पावे.

८ अपूर्व करण मे ५ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १३ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ३९ नामकी, १गोत्र की, और ५ अन्तरायकी, यों सब ७२ का उदय पावे.

९अनियाट्टिबादरमें, ५ ज्ञानावरणीयकी ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ३९ नामकी १ गोत्र की और ५ अन्तरायकी यों सब ६६का उदय पावे.

१० सूक्ष्मसम्परायमें—५ ज्ञानावरणीयकी ६ दर्शनावरणीयकी

२ वेदणीयकी १ मोहनीयकी १ आयुष्य ३९ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों सब ६० का उदय पावे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थानमें--५ ज्ञानावरणीकी, ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १ आयुष्यकी, ३९ नामकी, १ गौत्र की और ५ अन्तरायकी यों सब ५९ का उदय पावे.

१२ क्षीणमोह गुणस्थानमें--५ ज्ञानावरणीयकी, ४ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १ आयुष्यकी, ३१ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों ५७ का उदय पावे.

१३ सयोगिकेवलीके--२ वेदनीय, १ आयु, ३८ नाम, १ गौत्र, यों ४२ का उदय पावे.

१४ अयोगीकेवलीके--१ वेदनीयके, १आयुकी, ९नामकी १ गौत्रकी, यों १२ का उदय पावे.

तेंतीसवा-समुच्चय कर्मोदय व्युच्छातिद्वार

मिथ्यात्व से सूक्ष्म सम्परायतक व्युच्छति नही आठोंका उदय पाताहै

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में--मोहनीय कर्म उदय की व्युच्छुति, सजोगी और अयोगी केवली केवली ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मोंकि उदयकी व्युच्छति होती है.

चौंतीसवा-कर्मप्रकृतियोदय व्युच्छातिद्वार

१ मिथ्यात्व से २ मोहनीयकी और ३ नामकी यों ५ का विच्छेदहै
२ सास्वादनमें ३ मोहनीयकी और ८नामकी यों ११उदयक विच्छेद
३ मिश्रमें ६मोहनीयकी और१६ नामकी यों२२का उदय विच्छेदहै.
४अविरतिमें ६मोहनीयकी और१२नामकी यों१८का उदय विच्छेद.

५ देशविरतिमें-१० मोहनीय, २ आयु, २३ नामकी, यों ३५ का उदय विच्छेद है.

६ प्रमतमें-१४ मोहनीयकी, ३ आयुकी, २४ नामकी, यों ४१ का उदय विच्छेद.

७ अप्रमतमें ३ दर्शनावरणीयकी, १४ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २५ नामकी, १ गौत्रकी यों सब ४६ का उदय व्युच्छेद है

८ अपूर्व करणमें ३ दर्शनावरणीयकी, १५ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी और १ गौत्रकी यों ५० का उदय व्युच्छेद होता है.

९ अनीयट बादरमें ३ दर्शनावरणीयकी, २१ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी, १ गौत्रकी, यों ५६ का उदय का व्युच्छेद.

१० सूक्ष्मसम्परायमें ३ दर्शनावरणीयकी, २७ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी और १ गौत्रकी यों ६२ का उदय व्युच्छेद.

११ उपशान्त मोहमें-३ दर्शनावरणीयकी, २८ मोहनीयकी, ३आयूष्य की, २८ नामकी, और १ गौत्र की, यों ६३का उदय व्युच्छेद होता है.

१२ क्षीणमोहमें-५दर्शनावरणीयकी, २८मोहनीयकी ३आयुष्यकी३० नामकी, और १ गौत्रकी यों ६५ का उदय व्युच्छेद होता है.

१३ सयोगी केवलीमें-५ ज्ञानावरणिय, ९ दर्शनावरणीयकी, २८ मोहनीय की, ३ आयूष्यकी २९ नामकी, १ गौत्रकी, और५अन्तराकी यों सब ८० का उदय व्युच्छेद्ध है.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानमें-५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी,, १ वेदनीयकी, २८ मोहनीयकी, ३ आयुष्यके, ५८ नाम

की १ गौत्र की, और ५ अन्तरायकी, यों सब ११० प्रकृति के उदय का व्युच्छेद होता है.

इति कर्मोदय नामक तृतीय प्रकरण समाप्तम्,

चतुर्थ प्रकरण-कर्मुदीरणा द्वार.*

कर्म ऊदीरणाके १२ द्वारों के नाम.

१ समुचय कर्म उदीरणा द्वार, २ ज्ञानावरणीय उदीरणा द्वार, ३ दर्शनावरणीयऊदारणाद्वार, ४ वेदनीय उदीरणाद्वार, ५ मोहनीय उदीरणा द्वार, ६ आयुष्य ऊदीरणाद्वार, ७ नामऊदीरणाद्वार, ८ गौत्र ऊदीरणाद्वार, ९ अन्तराय ऊदीरणाद्वार, १० समुचय कर्म प्रकृति ऊदीरणा द्वार, ११ कर्मऊदीरणा व्युच्छेद द्वार, और १२ कर्म प्रकृति ऊदीरणा व्युच्छेद द्वार.

११२, पहिला-समुचय कर्म उदीरणाद्वार

मिथ्यात्व, सास्वाद, अविरति, देशविरति, और प्रमत इन ५ गुणस्थानोंमें, आयुष्य विना सात कर्मोंकी ऊदीरणा होतीहै, और कोइक १ आवली मात्र बाकी रहे तब आयुष्य कर्म की ऊदीरणा करेतो आठ कर्मोंकी ऊदीरणा होती है.

मिश्रगुणस्थान में-तो आयुष्य विना सातोंही कर्मोंकी ऊदीरणा है. क्योंकि यहां मरता नहीं है.

अप्रमत, अपूर्व करण और अनिवृ बादर इन तीनों गुणस्थानमें-१ वेदनीय + और आयुष्य विना छः कर्मोंकी ऊदीरणा होती है.

* उदीरणाके द्वारो का खुलासा देखीये अर्थ काण्ड का पृष्ठ २१७ वा.

+ वेदनीय कर्मकी उदीरणी संक्लेश परिणाम से होता है और आगे के गुण-

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-पहिले तो ऊपोक्त छेही कर्मकी ऊदीरणा करे फिर एक आवली बाकी रहे तब मोहनीय विन पांच कर्मोंकी उदीरणा करे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-उपरोक्त पांचोंही कर्मों की उदीरणा होती है.

क्षीण मोहके-पहिले भागमें तो उपरोक्त पांचों कर्मोंकी ऊदीरणा होती है. और फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मोंका उदय होजाने से इनकी ऊदीरणा न होते फक्त नाम और गौत्र इन दोनों कर्मोंकी ऊदीरणा होती है.

सयोगी केवली के नाम और गौत्र दोनों ही कर्मोंकी ऊदीरणा है अयोगी केवली गुणस्थानमें ऊदीरणा नहीं. ×

११४, दुसरा-ज्ञानावरणीय उदीरणाद्वार

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति की उदीरणा.

सजोगी और अजोगी केवलीके ज्ञानावरणीयकी ऊदीरणा नही.

११५, तीसरा-दर्शनावरणीय उदीरणाद्वार

मिथ्यात्वसे प्रमत गुणस्थानतक दर्शनावरणीयकी ९ ही प्रकृति की ऊदीरणा.

स्थान मे अध्यात्मिकता प्रकट होनेसे संक्लेश भावन ही रहते है. फक्त जो उदयावली में कर्म ला रक्खे हैं सो उदय में आते हैं.

× यहां करण वीर्यका अभाव है. सर्व ग्रास उदय आगया है जो १२ प्रकृति का दल विद्यमानता है. परन्तु अविधा सत्तागत नहीं है कि जिसको आकर्ष कर उस की ऊदीरणा करनी पडे.

अप्रमत से क्षीण मोह के प्रथम भागतक थीणद्धी त्रिक विना ६ की ऊदीरणा.

क्षीण मोह गुणस्थान के अन्तिम भाग में निद्रा, प्रचला विना ४ की ऊदीरणा.

सयोगी और अयोगी केवलीके दर्शनावरणीयकी ऊदीरणा नही होती

११६, चौथा-वेदनीय ऊदीरणा द्वार.

अनेक जीवों की अपेक्षा कर मिथ्यात्व गुणस्थानसे लगा कर प्रमत गुणस्थान तक दोनों वेदनीयकी की ऊदीरणा होवे. ऊपर के गुणस्थानोंमें वेदनीयकी उदीरणा नही है.

११७, पांचवा-मोहनीयकी ऊदीरणा द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्व मोह और मिश्र मोह विना २६ की उदीरणा होव.

सास्वादन गुणस्थान में मिथ्यात्व मोह विना २५ की उदीरणा होवे

मिश्र और अविराति गुणस्थानमें ४ अनन्तान बन्धि चोक १ सम्यक्त्व मोह और १ मिथ्यात्व विना २२ का उदीरणा पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानीके चौक विना १८की उदीरणा

प्रमत अप्रमत गुणस्थानमें-प्रत्याख्यानी के चौक विना १४ की उदीरणा होवे.

अपूर्व करण गुणस्थान में सम्यक्त्व मोहनीय विना ११ की उदीरणा होवे.

अनियट्ट बादर गुणस्थान में हांस्य षटक विना ७की उदीरणा होवे

सूक्ष्म सम्पराय में ३ वेद और ३ संज्वलन त्रिक विना १ की उदीरणा होवे.

उपशान्त मोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक मोहनीय की उदीरणा नहीं होती है.

११८, छठा-आयु उदीरणाद्वार

मिथ्यात्व से अविरति गुणस्थान तक चारो गति के आयुष्य की उदीरणा.

देश विरति में मनुष्य और तिर्यंच दोनों आयुष्य की उदीरणा होवे.

प्रमत गुणस्थान मे एक मनुष्य के आयुष्य उदीरणा होवे.
अप्रमत से अजोगी केवली तक आयुष्यकी उदीरना नहीं. +

११९, सातवा-नाम उदीरणा द्वार

मिथ्यात्व में २ आहारक द्विक और १ तीर्थंकर नाम विना ६४ की उदीरणा.

सास्वादन में ३ सूक्ष्म त्रिक, १ आतापनाम, १ नरकानुपूर्व्वी विना ५९ की उदीरणा.

मिश्र में ४ जातिचतुष्क, ३ अनुपूर्व्वी, १ स्थावरनाम, इन विना ५१ की उदीरणा.

अविरति में चारों गति की अनुपूर्व्वी की उदीरणा बढनें

+ मनुष्यायु की उदीरणा प्रमत योग करके होती है, जो बहुत काल मे वेदने योग्य है उसे थोडे काल में वेदकर अपवर्तन करण विशेष कर वेदता है, उससेही सोपक्रम आयुष्य होता है. जिसे अकाल मरण कहते हैं. और अप्रमतादि गुणस्थान में अकाल मरण नहीं होता है. और साता वेदनीय असाता वेदनीयकी उदीरणा भी प्रमतपनेही होती है, (उदयतो चउदेही गुणस्थानोंमें पाता है.] इसलिये पीछे कहीसो २ वेदनीय और यहां कहीसो मनुष्य आयुष्य इन तीनोंकी उदीरणा का सप्तम गुणस्थानसेही व्यच्छेद किया है.

से ५५ की उदीरणा.

देशविरति में १ मनुष्यानुपूर्व्वी, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, २ वैक्रियद्विक, २ देवद्विक, २ नरकद्विक, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय १ अयशः इन ११ विना ४४ की उदीरणा.

प्रमत में १ तिर्यंच गति और १ उद्योतनाम यह दो तो घटाना, और आहारक द्विक वडाना तव ४४ कीही उदीरणा होवे. अप्रमत में आहारक द्विक घटाने से ४२ की उदीरणा होवे.

अपूर्व करण से उपशान्त मोह तक थीणद्धी त्रिक विना ३९ की उदीरणा.

क्षीण मोह और सयोगी केवलीके निद्रा और प्रचलाविना ३७ की उदीरणा.

अयोगी केवली गुणस्थान में नाम कर्म की उदीरणा नहीं होतीहै

१२०, आठवा-गौत्र ऊदीरण द्वार.

मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक दोनों गौत्रकी ऊदीरणा पावे प्रमत से सयोगी केवली गुणस्थान तक एक उँच गौत्रकी उदीरणा अयोगी केवली गुणस्थान में गौत्र कर्मकी उदीरणा नहीं होतीहै.

१२१, नावव-अन्तराय ऊदीरणा द्वार.

मिथ्यात्व से क्षीण मोह तक अन्तरायकी पांचों प्रकृतिकी उदीरणा सयोगी और अयोगी केवली के अन्तराय की उदीरणा नहीं.

१२२, दवशा-समुचयकर्मप्रकृतिऊदीरणाद्वार

मिथ्यात्व में ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीयं, २६ मोहनीय, ४ आयुष्य, ६४ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्त-

राय यों सब ११७ प्रकृति की उदीरणा.

सास्वादन में ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २५ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५९ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय यों १११ की उदीरणा होवे.

मिश्रमें-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २वेदनीय, २२ मोहनीय ४ आयुष्य, ५१ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय. यों १००की उदीरणा होवे.

अविरतिमें-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २२ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५५नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तरायकी यों १०४ की उदीरणा होवे.

देशविरति में-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, १८ मोहनीय, २ आयुष्य, ४४ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों ७८ की उदीरणा होवे.

प्रमतमें ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनी, १४ मोहनीय, १ आयुष्य, ४४ नाम१गौत्र, और ५ अन्तराय यों ८१ की उदीरणा होवे.

अप्रमतमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, ४ १ मोहनीय,४२ नाम, १ गौत्र और५ अन्तराय यों सब७३प्रकृतिकी उदीरणा होवे.

अपूर्व करणमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय १३ मोहनीय, ३९ नाम १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों सब ६९ की उदीरणा होवे.

अनियटि बादरमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, ७ मोहनीय, ३९ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों ६३ की उदीरणा होवे.

सूक्ष्म सम्परायमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, १ मोहनीय,३९ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों सब ५७ की उदीरणा होवे.

उपशान्त मोहमें-५ ज्ञानावरणी, ६ दर्शनावरणीय, ३९ नाम, १गौत्र और ५ अन्तराम. यों सब ५६ प्रकृतिकी उदीरणा होती है.

क्षीण मोहमे ५ ज्ञानावरणयि, ४ दर्शनावणीय, ३७ नाम, १ गोत्र, और ५ अन्तराय यों सब ५२ प्रकृति की ऊदीरणा होवे. सयोगी केवलीके ३८ नामकी और १ गौत्रकी यों ३९. की ऊदीरणा अयोगी केवळि के कर्म प्रकृतियों की ऊदीरणा नहीं होती है.

१२३, इग्यावा-ऊदीरणा व्युछिद्द्वार

मिथ्यात्वसे प्रमत गुणस्थान तक कर्म उदीरणा की वुच्छिती नहीं. अप्रमतसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक १वेदनी, और १आयु की उदीरणाका विच्छेद होती है.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में १ वेदनीय, १ मोहनीय, और १ आयुष्या इन तीनों कर्मों की उदीरणा की व्युच्छिती है. सयोगी केवली के ज्ञानावरणीय, दर्शणावरणीय, वेदनीय, मोहनीय आयुष्य, और अन्तराय इन ६ कर्मो की उदीरणा की व्युच्छिति होती है.

अयोगी केवली के आठों कर्मोंकी उदीरणा की व्युच्छिंती होतीहै.

१२४बारवा कर्मप्रकृतिउदीरणाव्युछिद्वार

मिथ्यात्व गुणस्थाण में-२ मोहनाय की और ३ नामकी यों ५ प्रकृति का विच्छेद होती है.

सास्वादन गुणस्थान में-३ मोहनीय की और ८ नाम की यों ११ का विच्छेद,

मिश्रगुणस्थानमें ६मोहनीयकी और १६नामकी, यों २२का विच्छेद

अविरति सम्यक्दृष्टि गुणस्थान में-६ मोहनीयकी, और १२ नामकी

यों १८ का विच्छेद.

देशविरति में १० मोहनीय, २ आयुष्यकी, और २३ नाम की यों ३५ का विच्छेद.

प्रमतमें १४ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २३ नामकी, और १ गौत्रकी यों ४१ का विच्छेद.

अप्रमतमें ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २५ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ४९ प्रकृति का विच्छेद.

अपूर्व करण में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १५ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी यों सब ५३ प्रकृति का विच्छेद.

अनिवृति बादरमें ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २१ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ५९ का विच्छेद.

सूक्ष्म सम्पराय में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २७ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ६५ का व्युच्छेद.

उपशान्त मोह में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २८ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी २८ नामकी और १ गौत्रकी यों सब ६६ का विच्छेद.

क्षीण मोह में ५ दर्शनावरणीयकी, २ वेदणीयकी, २८ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, ३० नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ७० का व्युच्छेद होता है.

सयोगी केवली मे ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वे

दनीय, २८ मोहनीय, ४ आयुष्य' २९ नामकी, १ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ८३ का विच्छेद.

इति कर्म उदीरणा नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्तम्

पञ्चम प्रकरण कर्मसत्ता द्वार.

समुचय कर्म सत्ताद्वार, २ ज्ञानावरणीय सत्तादार, ३ दर्शनावरणीय सत्ताद्वार, ४ वेदनीय सत्ताद्वार, ५ मोहनीय सत्ताद्वार, ६ आयुष्य सत्ताद्वार, ७ नाम सत्ताद्वार, ८ गौत्र सत्ताद्वार, ९ अन्तराय सत्ताद्वार, १० ध्रुव कर्म सत्ताद्वार, ११ ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, १२ अध्रुव कर्म सत्ताद्वार, १३ अध्रुव कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, १४ सर्व घातिक कर्म सत्ताद्वार, १५ सर्व घातिक कर्म प्रकृति सत्ता द्वार, १६ देश घातिक कर्म सत्ताद्वार, १७ देश घातिक कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, १८ अघातिक कर्म सत्ताद्वार, १९ अघातिक कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, २० समुचय कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, २१ कर्म सत्ता व्यूच्छतिद्वार, और २२ कर्म प्रकृति सत्ता व्युच्छति द्वार.

१२५, पहिला-समुचय सत्ता द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्तमोह गुणस्थानतक आठोंही कर्मोंकी सत्ता पावे क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना सात कर्मोंकी सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवली के वेदनी, आयु, नाम, और गौत्र त्र, इन कर्मोंकी की सत्ता.

१२६, दूसरा ज्ञानावरणीय द्वार.

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक ज्ञाना वरणीय की पांचों प्रकृति की सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवली की ज्ञानावर्णीय की सत्ता नहीं.

१२७, तीसरा-दर्शनावरणीय द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशम श्रेणिवाले के ९ प्रकृति की ही सत्ता.

अविरति से अनियट बादर गुणस्थान के पहिले भाग तक क्षपक श्रेणि वाले के ९ की ही सत्ता.

अनियट बादर के दूसरे भागसे क्षीण मोह गुणस्थान के पहिले भाग तक थीणद्धी त्रिक विना ६ प्रकृति की सत्ता पातीहै.

क्षीण मोह के दूसरे भागमें दोनों निद्रा विना ४ की सत्ता. और क्षीण मोह के अन्ति भागसे ऊपर के गुणस्थान में दर्शनावरणीयकी सत्ता नहीं है.

१२८, चौथा-वेदनीय सत्ता द्वार.

मिथ्यात्वसे अयोगी केवलीके प्रथमभाग तक दोनों वेदनीयकी सत्ता अयोगी केवलीके अन्तिम भागमें दोनोंमेसे एक वेदनीयकी सत्ता

१२९, पांचवा-मोहनीय सत्ता द्वार.

मिथ्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशमसम्यक्त्व और उपशम चारित्रवाले के मोहकी २८ ही प्रकृति सत्ता *

अविराति गुणस्थान से उपशान्त मोह गुणस्थान तक क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम श्रेणिवाले के अनन्तान बान्धि चौक

* क्योंकि उपशम श्रेणिवाला पडवाइ हाकेर पीछा मिथ्यात्व गुणस्थानमें आताहै

और दर्शनत्रिक इन ७ विना २१ की सत्ता. ×

और क्षपक श्रेणिवाले के ÷ नववे गुणस्थान के पहिले भागमें उपरोक्त २१ की ही सत्ता, दूसरे भागमें ४ अप्रत्याख्यानी चौक, और ४ प्रत्याख्यानी चौक, यों ८ प्रकृति टलनेसे १३ की सत्ता. तीसरे भागमें नपुसक वेदविना १२ की सत्ता, चौथे भाग में स्त्री वेदविना ११ की सत्ता, पांचवे भागमें हाँस्य षटक विना ६ की सत्ता. छट्ठे भागमें पुरुष वेद विना ५ की सत्ता, सातवे भागमें सज्वलन क्रोध विना ४ की सत्ता. आठवे भागमें सज्वलन मान विना ३ की सत्ता. नववे भागमें सज्वल की माया विना २ की सत्ता और सूक्ष्म सम्परायमें १ संज्वल के लोभ की सत्ता. उपर मोह की सता नहीं.

१२९, छठा-आयुष्य सत्ता द्वार.

मिथ्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थान तक जो पहिले आयुबन्ध किया हो तो चारों गतिके आयुकी सता, + और आयुबन्ध न करे तो १ मनुष्यायु की सता.

अविरति से अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षपक श्रेणिवालेके १ मनुष्यायु की सता.

× उपशम भाव में मोहनीयका उदय तो नहीं है परन्तु सत्ता रहती है.

÷ उपशम और क्षपके श्रेणी आठवे गुणस्थान से ही प्रारंभ होती है. इसलिये यहां ९वे गुणस्थान से ही ग्रहण किया है.

+ पाठान्तर अनन्तान बन्धी की विसंयोजना (क्षयकी प्रकृति मिथ्यात्व प्रत्यय कर फिर बन्ध करना,) होती है तब नरकायु ओर तिर्यचायुकाभी, विसंयोजना होती है. तब ही उपशम श्रेणीका प्रारंभ होता है. इसलिये उपशम श्रेणीके ८-९-१०और ११ इन चारों गुणस्थानमें दोनों आयुकी सत्ता नहीं पाती है. ऐसा भी एक मत है

१३१, सातवा-नाम सत्ता द्वार

मिथ्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशम श्रेणि-वालेके ९३ ❋ की ही सता.

अविरति गुणस्थान से अनियट बादर के पहिले भाग तक ९३ प्रकृति की सता.

अनियट्ट बादर के दूसरे भागसे सयोगी केवली गुणस्थान तक १ नरकगति, १ नरकानुपूर्व्वी. १ तिर्यंचगति, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, ४ जातिचतुष्क, १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ आताप, १ उद्योत, और १ साधारण इन १३ विना ८० की सता.

अयोगी केवली के अन्तिम भागमें १ मनुष्यगति, १ पचेन्द्रियकी जाति, १ त्रस, १ बादर, १ पर्याप्ता, १ यशःकीर्ती, १ आदेय, और १ सोभाग्य. इन ९ की प्रकृति सता रहती है.

१३२, आठवा-गौत्र सत्ता द्वार.

मिथ्यात्व से अयोगी केवली गुणस्थान के पहिले भागतक दोनों गौत्र की सता.

अयोगी केवली गुणस्थानके अन्तिम भागमें १ उंच गौत्र की सता.

१३३, नववा-अन्तराय सत्ता द्वार.

÷ तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता वाला जीव दुसरा तीसरा गुणस्थान नहीं स्पर्शता है. और मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर नाम, कर्म की सत्ता फक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त ही पाने का संभव है. क्योंके किसी क्षयोपशम सम्यक्त्वीने पहिले मिथ्यात्व अवस्था में नरकायुका बन्ध किया फिर सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थंकर नामकी उपार्जना करी, वो मरण समयमें सम्यक्त्वका वमन करके मिथ्यात्वमें जावे. (परन्तु दुसरा तीसरा गुणस्थान स्पर्शे नहीं.) वहां अन्तर मूहूर्त रहकर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करे इसलिये मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर नाम की सत्ता पातीहै.

मिथ्यात्वसे क्षीण मोह गुणस्थानतक अन्तराय की पांचों प्रकृति की सता.
सयोगी अयोगी केवली के अन्तराय की सता नहीं.

१३४, दशवा-ध्रुव कर्म सत्ता द्वार.

आयुष्य विना सतों कर्म ध्रुवसता वाले हैं.
मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक सातों कर्मों की सता.
सयोगी और केवली के वेदनी नाम और अन्तराय तीनोंकी सता.

१३५, इग्यारवा ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता द्वार

ध्रुवसता की १२६ प्रकृति–५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी २ वेदनीयकी, २६ मोहनीयकी, (मिश्र मोह और सम्यक्त्व मोह विना)१तिर्यंचगति, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, ५ जाति, १ औदारिक शरीर, १ तेजस शररि, १ कार्मण शरीर, १ औदारिकका अंगोपांग, ३ बंधन, ३ संघातन, ६ संघयण, ६ संठाण, २० वर्णादि, २ विहायोगति १ पराघात, १ उद्योत, १ आताप, १ उश्वास, १ अगुरुलघु, १ आपघात, १० त्रसदशका, १० स्थावर दशका, १० १ निर्माण नाम, (यों नामकी ७८)१नीच गौत्र, ५अंतराययें१२६ मिथ्यात्व से उपशांत मोह गुणस्थानतक उपशम श्रेणीवाले के १२६ कीही सत्ता.
अविरतिसे अनियटी बादर के पहले भागतक क्षपक श्रेणिवाले के भी १२६ कीही सत्ता.
अनियटि बादरके दूसरे भागमें ३ थीणद्धीत्रिक, १ स्थावर १ सूक्ष्म १ आताप, १ उद्योत १ साधारण, १ तिर्यचगति, १ तिर्यंचानुपूर्व्वी, और जाति चतुष्क, इन १४ विना ११२ की सत्ता. तीसरे भा-

गमें-४ अप्रत्याख्यानी चौक, और ४ प्रत्याख्यानी चौक विना १०४ की सत्ता, चौथे भाग में नपूंसक वेद विना १० की सत्ता पांचवे भाग में स्त्रीवेद विना १०२ की सत्ता, छठे भाग में-हांस्य षटक विना ९६ की सत्ता, सातवे भाग में-पुरुषवेद विना ९५ की सत्ता, आठवे भाग में-संज्वलन क्रोधविना, ९४ की और नववे भाग में-संज्वल मान विना. ९३ की सत्ता.

सूक्ष्म संपरायमें, संज्वलनके लोभ विना ९२ की सत्ता.

क्षीण मोह गुणस्थानके द्वि चरम-समय संज्वलके-लोभ विना ९१ की सत्ता, और अन्तिम समय में निद्रा और प्रचला विना ८९ की सत्ता.

सजोगी केवली जौर अयोगी केवलीके-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, ५ अंतराय इन १४ प्रकृति विना ७५ की सत्ता.

अयोगी केवलीके अन्तिम समय १ पचेन्द्रिय की जाति, १ वेदनी इन २ की सत्ता रहती.

१३६, बारवा-अध्रुव कर्मसत्ता द्वार

अध्रुव सत्ताके ४ कर्मः—१ मोहनीय, १ आयुष्य, १ नाम, और १ गौत्र. मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक उपशम श्रेणीवालेके चारों कर्मोंकी सत्ता.

अविरति से अयोगी केवलीतक क्षपक श्रेणिवाले के मोहनीय विना तीनों की सत्ता.

१३७, तेरवा-अध्रुव कर्मप्रकृतिसत्ता द्वार

ध्रुव सत्तामें कही उनसे बाकी रहीं अध्रुव सत्ताकी २२ प्रकृतिः—मिश्रमोहनीय, १ सम्यक्त्व मोहनीय, चारों गतिका आयु-

ष्य, २ तिर्यंचानुपूर्वी विन तनों अनुपूर्वी, १ आहारक शरीर, १ आहारक अंगोपांग, १ आहारक बन्धन, १ आहारक संघातन, १ वैक्रिय शरीर, १ वैक्रिय अंगोपांग, १ वैक्रिय बन्धन, १ वैक्रिय संघातन, १ तीर्थंकर नाम, ३ गति, १ ऊंच गोत्र, यह २२.

मिथ्यात्वसे उपशांत मोह गुणस्थानतक २२ कीही सत्ता.

क्षीण मोहसे अयोगी केवलीतक १ मनुष्यायु, १ जिननाम, १और ऊंचगौत्र, इन ३ की सत्ता.

१३८, चउदा सर्वघातिक कर्मसत्ता द्वार

मिथ्यात्वसे उपशांत मोह गुणस्थानतक-सर्व घातिक तीनों कर्मोंकी सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना-दो कर्मोंकी सत्ता.

सयोगी अयोगी केवली के सर्व घातिक कर्मोंकी सत्ता नहीं.

पंदरवा-सर्वघातिक कर्मप्रकृतिसत्ता द्वार.

मिथ्यात्व से उपशांत मोहगुणस्थानतक उपशम श्रेणीमें सर्व घातिक २० ही प्रकृति की सत्ता.

क्षपक श्रेणीसे अनियट बादर गुणस्थान के पाहिले भागतक तो २० ही प्रकृति की सत्ता.

अनिट बादर के दूसरे भागसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक ३ थीणद्धी त्रिक और १ मिथ्यात्व मोह विना १६ की सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में-दो निद्रा विना १४ की सत्ता.

सयोयी और अयोगी केवलीके सर्व घातिक की सत्ता नहीं.

१४०, सालवा-देश घातिककर्म सत्ता द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक-देशघातिक चारों कर्मों-की सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थानमें-मोहनिय विना तीनों कर्मोंकी सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवलीके देशयातिक कर्मोंकी सत्ता नहीं,

१४१, सत्तरवा-देश घातिककर्म प्रकृतिद्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक उपशम श्रेणि वाले के २७ कीही सत्ता.

क्षपक श्रेणिवालेके-अविरति से अपूर्व करण गुणस्थानतक २७ प्रकृति कीही सत्ता.

अनियट बादरके पहिले दुसरे और तीसरे भागमें-१ सम्यक्त्व मोह और मिश्र मोह विना, २५ की सत्ता चौथे भाग में नपुंसक वेदाविना २४ की सत्ता, पांचवे भाग में-स्त्रीवेद विना २३ की सत्ता छठे भागमें-हांस्य षटक विना २७ की सत्ता. सातवे भाग में-पुरुष वेद विना १६ की सत्ता, आठवे भाग में-संज्वलके क्रोध विना १५ की सत्ता, नववे भागमें-संज्वलके मान विना १४ की सत्ता. सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-संज्वलकी माया विना १३ की सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थानमें-संज्वलके लोभ विना १२ की सत्ता. सयोगी और अयोगी केवलीके देशघातिक की सत्ता नहीं है.

१४२, अठारवा-अघातिककर्म सत्ता द्वार

मिथ्यात्वसे-अयोगी केवली गुणन्थानतक-अघातिक चारों कर्मों की सत्ता.

उन्नीसवा-अघातिक कर्मप्रकृतिसत्तापाती

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-अघातिक १०१ प्रकृतिकी सत्ता पाती है.
सास्वादन और मिश्रगुणस्थानमें-१ तीर्थनाम विना १०० की सत्ता
अविरतिसे उपशांत मोह गुणस्थानतक-उपशम श्रेणिमें१०१की सत्ता
क्षपक श्रेणिमें-अविरतिसे अनियट बादर के प्रथम भाग में तीनों आयुष्य की सत्ता विना ९७ की सत्ता.

अनियट बादर के दुसरे भागसे अयोगी केवली गुणस्थान के प्रथम भागतक १ तिर्यंचगति, १ तिर्यंचानुपूर्वी, १ नरकगति, १ नरकानूपूर्व्वी, १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ आताप, १ उद्योत, ४ जाति चतुष्क, और १ साधारण इन १३ विना ८४ की सत्ता.
अयोगी केवलीके अन्तिम भागमें फक्त १३ की सत्ता रहती है.

१४४, बीसवा समुचय प्रकृति सत्ता द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-५ ज्ञानावरणीम, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २८ मोहनीय, ४ आयुष्य ९३ नाम, २ गौत्र, और १ अंतराय, यों १४८ की ही सत्ता.
सास्वादन और मिश्र गुणस्थानमें १ तीर्थंकर नाम विना १४७की सत्ता.
अविरतिसे उपशान्त मोहतक, उपशम श्रेणीवाले के ऊपरोक्त १४८ की ही सत्ता.

अविरातिसे अप्रमसंयतितक-उपशमश्रेणिगत क्षायिक सम्यक्त्वी के ५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २१ मोहनीय ४ आयुष्यकी, ९३ नामकी, २ गौत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों १४१ प्रकृतिकी सत्ता.

अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक-उपशम श्रेणी और क्षायिक सम्यक्त्ववी के-५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीय की २ वेदनी-

यकी २१ मोहनीय, २ आयुष्यकी ९३ नामकी, २ गौत्रकी और५ अन्तरायकी यों १३९ प्रकृतिकी सत्ता.

अविरति से अप्रमत गुणस्थानतक क्षपक श्रेणिगत क्षयोपशम सम्यक्त्वीके ५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीय, की, २८ मोहनीय की १ + आयुष्यकी,९३ नामकी, गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १४५ की सत्ता.

अविरति से अनियट बादर के पहिले भागतक-क्षपक श्रेणि गत क्षायिक सम्यक्त्वीके-५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी, २वेदनीय की, २१ मोहणी की, १ आयुष्यकी, ९३ नामकी, २ गौत्र ५ अंतरायकी, १३८की सत्ता.

अनियट बादर के-दुसरे भागमें ५ ज्ञानारणीय की ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी ,२१ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी ८० नाम की, २ गौत्र की और ५ अन्तरायकी यों १२२की सत्ता, तीसरे भागमें मोहनीयकी १३ प्रकृति होनेंसे ११४की सत्ता, चौथे भागमें-मोहनीयकी १२ प्रकृति होनेसे ११३ की सत्ता पांचवे भाग में-मोहनीयकी ११ प्रकृति होनेसे ११२ की सत्ता. छठे भाग में-मोहनीयकी प्रकृति होनेसे १०६ की सत्ता, सातवे भागमे मोहनीय की ५ प्रकृति होनेसे १०५ की सत्ता.. आठवे भाग में मोहनीयकी ३ प्रकृति होनेसे १०४ की सत्ता, और नववे भाग में मोहनीय की २प्रकृति होनेसे १०३ की सत्ता.

सुक्ष्म सम्पराय में-५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी २ वेदनीयकी १ मोहनीयकी १ आयूष्यकी, ८० नामकी २ गौत्र

÷ क्षपक श्रेणि करने वाला निश्चयसे चरम शरीरी होता है. उसने तीनो गतिका आयुष्यका क्षय किया फक्त १ मनुष्यायु सत्ता में है.

की और ५ अन्तरायकी १०२ की सत्ता.

क्षीण मोहमे के प्रथम भाग में-५ ज्ञानावरणीय की ६ दर्शनावरणीय की, १ वेदनीय की, १ आयुष्यकी, ८० नामकी, २ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १०१ की सत्ता. और दूसरे भागमें-दर्शनावरणियकी ४ ही प्रकृति पाने से ९९ की सत्ता

सयोगी केवलीमें-२ वेदनीय, १ आयुष्य, ८० नाम, २ गौत्र, की यों ८५ की सत्ता.

अयोगी केवली के-आद्य भागमें तो ऊपरोक्त ८५ की ही सत्ता. मध्य भाग में २ वेदनीयकी, आयुष्यकी, और ९ नामकी यों १३ की सत्ता. और अन्तिय भाग में-१ वेदनीयकी १ आयुष्यकी ९ नामकी, १ गौत्र की यों १२ की सत्ता.

१४५, इक्कासवा कर्म व्युच्छति द्वार

मिथ्यात्वसे, उपशान्त मोह गुणस्थानतक-कर्मोंकी व्युच्छाति नहीं.

क्षीण मोह गुणस्थान में मोहनीय कर्मकी व्युच्छाति होती है.

सयोगी आयोगी केवली गुणस्थानमें-४ घातिक कर्मकी व्युच्छाति

१४६, बावीसवा-कर्म प्रकृति व्युचति द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें कर्म प्रकृतिकी व्युच्छाति नहीं.

सास्वादन और मिश्रमें-फक्त १ तीर्थंकर नाम कर्मकी व्युच्छाति.

अविरति से अप्रमत गुणस्थानतक उपशम श्रेणिगत, उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्वी के कर्म प्रकृति की व्युच्छिाति नहीं क्योंकि (पडता है.)

अविरति से अप्रमत गुणस्थानतक उपशम श्रेणिगत क्षायि-

क सम्यक्त्वी मोहनीय कर्मकी ७ प्रकृति की व्युच्छति और अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक ७ मोहनीय की और २ आयुष्य की यों ९ प्रकृति की व्युच्छति होती है.

अविरतिमे अप्रमततक चरम शरीरके ३ आयुष्य की व्युच्छति.

अविरति से अप्रमततक क्षायिक सम्यक्त्वी चरम शरीरीके-७ मोहनीयकी और ३ आयष्य की यों १० प्रकृति व्युच्छति.

क्षपक श्रेणिगत-अपूर्व करण और अनियट बादर के प्रथम भागतक ऊपरोक्तही १० प्रकृसि की व्युच्छति. अनियट बादर के दुसरे भाग में-३ दर्शनावरणी, ७ मोहनीय, ३ आयुष्य, और १३ नामकी यों. २६ करि व्युच्छति. तीसरे भागमें मोहनीय की १५ प्रकृति की व्युच्छति होनेसे ३४ की व्युच्छति, चौथे भाग में—मोहनीयकी १६ व्युच्छति होनेसे ३५ व्युच्छति, पांचवे भागे मोहनीयकी १७ व्युच्छति होनेसे ३६ की व्युच्छति, छठे भागमें मोहनी-२३ व्युच्छति होनेसे ४२ की व्युच्छति सातवे भाग में- मोहनीयकी २४की व्युच्छति होनेसे ४३ की व्युच्छति, आठवे भागमें मोहनीय की २५ की व्युच्छति होनेसे ४४ की व्युच्छति और नववे भाग में:—मोहनीयकी-२६ की व्युच्छति होनेसे ४५ की व्युच्छति.

क्षपक श्रेणिगत सूक्ष्म सम्परायमें ३ दर्शनावरणीय, २७ मोहनीय, ३ आयुष्य, और १३ नामकी यों ४६ की व्युच्छति.

क्षीण मोहके प्रथम भागमें ३ दर्शनावरणीय, २८ मोहनीय ३ आयुष्य, १३ नामकी यों ४७ की व्युच्छति, और दूसरे भागमें दर्शनावरणीयकी ५ का व्युच्छेद होनेसे ४९ की व्युच्छति.

सयोगी केवलीके ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २८ मोहनीय. ३ आयुष्य १३ नाम, और ५ अन्तराय यों ६३ की

व्युच्छति.

अयोगी केवलीकी प्रथम भागमें तो उपरोक्त ६३ कीही व्यु च्छति मध्य भागमें ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २८ मोहनीय, ३ आयुष्य, ८४ नाम और ५ अन्तराय यों १३४ की व्यु-च्छति और अन्तिम भागमें ५ ज्ञानावर्णीय, १ वेदनीय, २८ मोहनीय, ८४ नामकी १ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १३६ की व्यूच्छति होती है.

फिर बाकी रही १३ ही प्रकृति यों को शुक्लध्यान के चौथे पाये रुप प्रबल ज्वाला में भस्मी भूत कर अर्थात् सर्व कर्मोंकी सर्व प्रकृतियें का सर्वथा प्रकारसे सर्वांश क्षय कर साकार उपयोग युक्त सहजानन्द अवस्था को प्राप्त होते हैं.

इति कर्मसत्ता नामक पञ्चम प्रकरण समाप्तम्

षष्टम् प्रकरणम् - कर्मभङ्ग द्वार.

१ समुचयकर्म भङ्गद्वार, २ ज्ञानावरणीय भङ्गद्वार, ३ दर्शनावरणीय भङ्गद्वार, ४ वेदनीय भङ्गद्वार, ५ मोहनीय भङ्गद्वार, ६ आयुष्य भङ्गद्वार, ७ नाम भङ्गद्वार, ८ गौत्र भङ्गद्वार, ९ अन्तराय भङ्गद्वार, १० बन्धिके भङ्गद्वार, और ११ इर्यावही भंगद्वार.

१४७, पहिला समुचय कर्म भंग द्वार

मिथ्यात्व, सास्वदन, अविरति, देशविरति, प्रमत इन ६ गुणस्थानोंमें १ आयुबन्ध के वक्त तो ८ कर्मोंका बन्ध, ८ हीका उदय और ८ हीकी सत्ता. यह भांगा पाता हैं (२) और आयुबन्ध न होवे उसवक्त ७ कर्मोंका बन्ध ८ का उदय और ८ की सत्ता.

यह भांगा पाता है. यों २ भांगे पावे.

मिश्र, अपुर्व करण और अनीयट बादर इन तीनों गुणस्थानों में आयुबन्ध न होनेके सबबसे ७ कर्मोंका बन्ध ८ का उदय और ८ की सत्ता. यह १ भांगा पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें आयुष्य और मोहनीय का बन्ध न होने के सबब से ६ कर्मोंका बन्ध, ८का उदय, और८ की सत्ता यह १ भाङ्गा पावें.

उपशान्त मो गुणस्थान में-एक साता वेदनीयका बन्ध मोहनीय बिना ७ कर्मोंका उदय, और ८ हीकी सत्ता यह १भाङ्गा पावे. क्षीण मोह गुणस्थानमें एक साता, वेदनीयका बन्ध, मोहनीय विना ७ का उदय, और इन ७ की साता यह १ भाङ्गा पावे.

सयोगी केवली गुणस्थान में-एक सत्ता वेदनीयका बन्ध. वेदनीय आयूष्य, नाम और गौत्र, इन चारोंका उदय और इन चारों की ही सत्ता. यह १ भाङ्गा पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं. ऊपरोक्त चारों कर्मोंका उदय, और चारों की सत्ता यह १ भाङ्गा पावे.

१४८, दुसरा-ज्ञानावरणीयकर्मभङ्ग द्वार.

मिथ्यात्वसें लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक-ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति का बन्ध, पांचोंका उदय, और पांचों की सत्ता यह १ भांगा पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-बन्ध नहीं, पांचों प्रकृतिका उदय और पांचोंकी सत्ता यह १ भांगा पावे.

☞ ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मोंके भांगे के खुलासेके लिये देखिये अर्थ काण्ड का पृष्ट २२३.

सयोगी और अयोगी केवली के ज्ञानावरणीय का बन्ध, उदय, सत्ता, तीनोंही नहीं.

१४९तीसरा-दर्शनावरणीय कर्मभंगद्वार

मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानमें (१) एकाकबन्ध, ४ का उदय, और ९ की सता. (२) ९ का बन्ध, ५ का उदय और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पाते हैं.

मिश्र गुणस्थान से अनीयट वादर के प्रथम भाग तक (१) थीणद्धीत्रिक विना, ६ का बन्ध, ४ का उदय, और ९ की सत्ता. और (२) ६ का बन्ध, ५ का उदय और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पाते है.

अनियट बादर के आठों भागमें और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें उपशम श्रेणीमें निद्रा प्रचला का बन्ध विना (१) ४ का बन्ध, ४ उदय और ९ की सता. (२) ४ का बन्ध, ५ का उदय, और ९ की सता यह दो भाङ्गे पाते हैं.

अनियठ बादर और सूक्ष्म सम्पराय के क्षपक श्रेणि में ४ का बन्ध, ४ का उदय, और ६ की सत्ता यह १ भङ्गा पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान मे बन्ध के अभाव से (१) चार का उदय, और ९ की सता, तथा ५ का उदय, और ९ की सत यह दो भाङ्गे पावे.

क्षीण मोह गुणस्थान के द्वी चरम समय में ४ का उदय और ६ की सता और अन्तिम समयमें दोनों निद्राकी सता टलनेसे ४ का उदय, और ४ कीही सता यह २ भाङ्गे.

सयोगी और अयोगी केवली के दर्शनावरणीय का बन्ध,

उदय, सता तीनों ही नही.

१५०, चौथा-वेदनीयकर्म भंग द्वार

मिथ्यात्व से लगा प्रमत संयाति गुणस्थान तक (१) असाता का बन्ध, असाता का उदय, और दोनों की सता, (२) असाता का बन्ध, साताका उदय, और दोनों की सता. (३) साता का बन्ध, असाता का उदय और दोनोंकी सता. और (४) साता का बन्ध, साता का उदय, दोनों की सत्ता. यह ४ भाङ्ग.

अप्रमत से सयोगी केवली तक (१) साताका बन्ध, असाताका उदय, और दोनों की सता. (२) साताका बन्ध, साताका उदय और दोनों की सता यह दो भाङ्ग पावे.

अयोगी केवली के द्वि चरम समयमें बन्ध के अभाव से (१)साताका उदय, दोनों की(२) और असाताका उदय दोनों की सता. यह दो भाङ्ग पावे. और अन्तिम समयमें (१)साताका उदय साता की सता. और(२)असाताका उदय, असाताकी सता यह दो भांगे पावे. यो ४ भांगे पाते हैं.

१५१, पांचवा-मोहनीय कर्म भंग द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २२ का बन्धस्थान है, जिसके भांगे ६ होते हैं और ७ का, ८ का, ९ का और १० का. यह उदयस्थान है, जिसके भांगे की चौवीसी ८ होती है.

सास्वादन गुणस्थान में २१ का बन्धस्थान है, जिसके भांगे ४ होते हैं. और ७ का, ८ का, ९ का यह तीनों उदयस्थान हैं जिसके भांगे की चौवीसी ४ होती हैं.

☞ वेदनीय कर्मके भाङ्गे के खूलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २२६ वा.

☞ मोहनीय कर्मके भङ्गके खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २२७ वा.

मिश्र गुणस्थानमें १७ का बन्धस्थान है, जिसके भांगे दो होते हैं. और ७ का, ८ का, और ९ का यह तीन उदयस्थान हैं, जिसके भाङ्ग की चौवीसी ५ होती है.

अविरति गुणस्थानमें १७ का बन्धस्थान है. जिसके भाङ्गे २ होते हैं, और ६ का, ७ का, ८ का ९ का यह चार उदयस्थान है, जिसके भाङ्ग की चौवीसी ४ होती हैं.

देशविरीत गुणस्थानमें १३ का बन्धस्थान है, जिसके भाङ्गे दो होते हैं, और ५ का, ६ का, ७ का, और ८ का, यह ४ उदय स्थान है, जिसके भाङ्ग की चौवीसी ८ होती है.

प्रमत गुणस्थानमें ९ का बन्धस्थान है, जिसके भाङ्गे दो होते है. और ४ का, ५ का, ६ का, और ७ का, यह४उदय स्थान हैं. जिसके भाङ्गे कि चौवीसी ८ होती है.

अप्रमत गुणस्थानमें-९ का बन्ध स्थान, जिसका भांगा१×होता हैं. और ४ का, ५ का, ६ का, और ७ का यह ४ उदय स्थान, है जिसके भांगे की चौवीसी ८ होती हैं.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-९ का बन्ध स्थान, जिसका भाङ्गा १: और ४ का, ५ का, ६ का यह तीन उदयस्थान जिसके भांगे चौवीसी ४ होती है.

अनियट बादर गुणस्थानमें-५ का, ४ का, ३ का, २ का, और

× चौवीसी बनानेकी सीधी रीति-हांस्य और रतिके युगल से तीनों वेदके तीन भाङ्गे, तैसेही शोक अराति के युगल से तीन वेदके तीन भाङ्गे करने से ६ भाङ्गे होते है. यह ६ क्रोधसे, ६ मानसे, ६ मायासे, और ६ लोभसे, यों २४ भाङ्गे होवे सो १ चौवीसी विशेष खुलासा अर्थ कांड में देखीये.

+ यहां से आगे अराति और शोक इस जुगल का अभाव होता है. इसलिये १ ही भांग पाता है.

१ का यों ९ बन्ध स्थान होते है. जिसके ९ भांगे अलग, अलग होते हैं. और १ का, तथा २ का, यह दो उदय स्थान हैं, जिसमें संज्वलकी चारों कषायोंमें की १ कषाय, और तीनों वेदों में का १ वेद, इन दोनों का उदय होता है. यों चारों कषायों को तीनों वेदों से ती गुणे करने से १२ भांगे होते हैं. और फिर वेद का उदय टलने से एक का उदय स्थान रहता है. सो चौ विध, त्रिविध द्विविध, और एक विध, यों१०उदयके भांगे होतेहै. तोभी यहां सामान्य विविक्षासे-४-३-२ और १ इन चारों बन्ध स्थानकी अपेक्षासे एकेक ही भांगा गिननेसे चारही भांगे कहने, यों यहां १६ भांगे होते हैं.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं होता है फक्त एक कीटीकृत संज्वल का लोभही का उदय है, जिसका एक ही भांगा पाता है.

उपशांत मोहसे अयोगी केवलीतक मोहका लवलेशही नहीं है.

मोहनीयके सर्व भाङ्गे की संख्याः—मिथ्यात्व, अविरति, देशविरति, प्रमत और अप्रमत, इन पांचों गुणस्थानों में-भाङ्गे की आठ आठ चौबीसीहै, और सास्वादन, मिश्र और अपूर्व करण इन तीनों गुणस्थानमें चार चार चौबीसीहै, सब५२ चौबीसी हुइ जिसके भाङ्गे ५२×२४=१२४८होतेहैं. और अनियट बादरके १६भाङ्गे, सूक्ष्म सम्परायका एक भाङ्गा यह १७ और पहलेके १२४८ मिलकर१२६५ मोहनी के भांगे होते हैं.

१५२, छठा आयुष्य कर्म भंग द्वार

आयुष्य कर्मके भाङ्गेके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २४१ वा.

आयुष्य कर्म के २८ भांगेः—१ नरकायुका बन्ध, नरकायुका उदय. २तिर्यंचायुका बन्ध, नरकायुका उदय, ३ मनुष्यायुका बन्ध नरकायुका उदय, ४ नरकायुका उदय, और नरक तिर्यंचायुकी सत्ता. ५ नरकायुका उदय और नरक मनुष्यकी सत्ता.

ऊपर जिस तरह नरकायु के ५ भांगे किये, तैसे ही देवायू के भी ५ भांगे जानना. विशेष इतनाही की नरकायु के स्थान देवायु कहना. यों दोनों गति के १० भाङ्ग हूवे.
१ तिर्यंचायुका उदय, और तिर्यंचायुकी सत्ता. २ तिर्यंचायुका बंध तिर्यंचायुकी सत्ता, ३ मनुष्यायुका बन्ध, तिर्यंचाकायु उदय, ४ देवायुका बन्ध, तिर्यंचायुका उदय, ५ नरकायु का बन्ध, तिर्यंचायुका उदय और नरकायु. तिर्यंचायु दोनों की सत्ता ६ एक तिर्यंचायुका उदय, और दो तिर्यंचायुकी सत्ता. ७ तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु मनुष्यायु की सत्ता, ८ तिर्यंचायुका उदय, और तिर्यंचायु देवायु की सत्ता. और ९ तिर्यंचायुका उदय और तिर्यंचु नरकायु की सत्ता.

ऐसे ९ही भांगे मनुष्यायुके कहना. यों सब२८ भांगे आयुष्य के होते हैं.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २८ ही भांगे पाते हैं. क्योंकि-चारोंही गति में मिथ्यात्व गुणस्थान पाता है. और मिथ्यात्वी चारों ही गति के आयुष्य का बन्ध करता है.

सास्वादन गुणस्थान में-नरकायु बन्ध न होनेसे तिर्यंच तथा मनुष्य के आयुर्बन्ध काल अवस्थाके दो भांगे विना २६ भांगे पातेहैं मिश्र गुणस्थानमें-यहां किसीभी गतिका आयुर्बन्ध न होनेके सबब से-बन्ध काल अवस्थाके देवता के दो, नरक के दो, मनुष्यके चार

और तिर्यंचके चार यों १२ भांगे विना १६ भांगे पाते हैं.

अविरति गुणस्थान में इस गुणस्थान वर्ती मनुष्य और तिर्यंच एक देवगति का आयुर्बन्ध करते हैं, इसलिये बाकी की तीनों गतिके आयुबन्ध अवस्था के दोनों के ६ भांगे टले. और सम्यग्दृष्टि देवता नारकी फक्त एक मनुष्यायुकाही बन्धकरते हैं. इसलिये दोनों के दो भांगा तिर्यंचायूकेबन्ध के टले. यों८ भांगे विना २० भांगे पावे.

देशविरति गुणस्थान में इस गुणस्थानवता मनुष्य और तिर्यंच दोनों ही होते हैं. वो फक्त देवायुकाही बन्ध करते हैं. इसलिये इनके आयुर्बन्ध काल अवस्था का एकेक भांगा पाता है. और परभवायुबन्ध पहिले एकेक भांगा, और आयुबन्ध किये बाद ४ भांगे पाते हैं, क्योंकि प्रथम चारों गति में से किसी एक गतिका आयुर्बन्ध कर फिर देशविरति पणा धारन करे, इस अपेक्षासे, यों ६ भांगे तिर्यंचके और ६ भांगे मनुष्यके मिलकर १२ भांगे पातेहै.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में इन गुणस्थानवर्ती फक्त मनुष्य ही होते है इसलिये ऊपरोक्त छेही भांगे मनुष्यके यहां पातेहै

अपूर्व करण से उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशम श्रेणी गति में (१) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु की सत्ता यह भांगा आयुर्बन्ध किये पहिले पावे, (२) और मनुष्यायुका उदय, मनुष्यायु देवायु दोनों की सत्ता. यह भांगा आयुबन्ध किये बाद पावे. यों दो भांगे पाते हैं.

इनके आयुर्बन्ध काल अवस्थाका भाङ्गा नहीं पाता है, क्योंकि अत्यन्त विशुद्ध परिणामी होनेसे आयु बन्ध नहीं करते हैं. और आयुबन्ध बाद जो श्रेणी प्रारंभ करेतो फक्त देवायु बन्ध वालेही करतेहैं. तीनों गतिके आयुबन्ध वाले श्रेणी नहीं क-

और अपूर्व करण से अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षपक श्रेणिवाले के मनुष्यका उदय, मनुश्यायु की सत्ता यह १ ही भांगा पाता है.

१५३, सातवा नाम कर्म भंग द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में बन्धस्थान ६ जिसके भांगे १३९२६ उदयस्थान ९ जिसके भांगे ७७७३ सत्ताके स्थान ६ जिसके स्थान २१२.

सास्वादन गुणस्थान में बन्धस्थान ३ जिसके भांगे ९६०८ उदयस्थान ७ जिसके भांगे ४०९७, और सत्ताके स्थान २ जिसके स्थान १८ होते हैं.

मिश्र गुणस्थान में बन्धस्थान २, जिसके भांगे १६, उदय स्थान ८ जिसके भांगे ४०९७, और सत्तास्थान २, जिसके स्थान ६ होते हैं.

अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान में बन्धस्थान ३, जिसके भांगे ३२, उदयस्थान८जिसके भांगे ५२, और सत्तास्थान४ जिसके स्थान ५४ होते है.

देशविरति गुणस्थान में बन्धस्थान २ जिसके भांगे १६, उदयस्थान ६ जिसके भांगे ५९१ और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान २२ होते हैं.

प्रमत गुणस्थान में बन्धस्थान २ जिसके भांगे १६, उदय

रते हैं. आयुर्बन्ध वाले क्षपक श्रेणी नहीं करते हैं क्योंकि वो निश्चयस में मोक्ष गामी ही होते है.

☞ नाम कर्म के भाङ्गे के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २४३ वे से तथा पृष्ट २६९ वेसे.

स्थान ७ जिसके भांगे ३१६ और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान २० होते हैं.

अप्रमत गुणस्थानमें बन्धस्थान२जिसके भांगे४उदयस्थान ४जिसके भाङ्गे ५९२ और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान ८ होते हैं.

अपूर्व करण में बन्धस्थान १, जिसके भांगे ५, उदयस्थान १ जिसके भांगे ३६० और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान ८ होतेहै

अनियट्ट बादरमें बन्धस्थान १ जिसके भांगा १, उदयस्थान१ जिसके भांगे९६ और सत्तास्थान ८ जिसके स्थान ४ होते है.

सूक्ष्म सम्परायमें बन्धस्थान १ जिसके भांगा १, उदयस्थान १ जिसके भांगे ९६, और सत्तास्थान ८ जिसके स्थान ४ होते हैं.

उपशान्त मोहमें-बन्ध स्थान नहीं, उदय स्थान १ जिसके भांगे ७२, और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं.

क्षीण मोहमें-बन्ध नहीं, उदय स्थान १, जिसके भांगे २४ और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं.

सयोगी केवलीके बन्ध नहीं, उदय स्थान ८, जिसके भांगे ६०० और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं.

अयोगी केवलीके बंध नहीं. उदयस्थान २, जिसके भांगे२ और सत्ता स्थान ६, जिसके भांगे ३ होते हैं.*

१५४ आठवा-गौत्र कर्मभङ्ग द्वार.

मिथ्यात्वमें-(१) नीच गौत्र का बन्ध, नीच का उदय, और नीचकी सत्ता, (२) नीचका बन्ध, और नीच ऊंच दोनों की

* इस नाम कर्मके सर्व भाङ्गोंका खुलासा अर्थ कांड में विस्तार से है.

** गौत्र कर्मके भांगेके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ट २८० वा

सत्ता. (३) नीचका बंध, ऊंचका उदय, और दोनों की सत्ता. (४) ऊंचका बन्ध, नीचका उदय, और दोनों की सत्ता. (५) उंचका बन्ध, उंचका उदय, और दोनों की सत्ता. यह पांच भांगे पाते हैं.

सास्वादनमें-ऊपरोक्त पांच भांगमें से प्रथम भांगा छोडकर *बाकी के ४ भांगे पाते हैं.

मिश्र अविरति, और देशविरति इन तीनों गुणस्थानमें नीच गौत्रके बंधके अभावसे चौथा और पांचवा दोनों भांगे पाते हैं.

प्रमतसे सूक्ष्म सम्परायतक-(१) ऊंचका बन्ध, ऊंचका उदय और दोनों की सत्ता यह एकही भांगा पाता है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-बन्धके अभावसे-ऊंचका उदय, और दोनों की सत्ता यह छठा भांगा पाता है.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-(१) ऊंच का उदय और दोनों की सत्ता यह छठा भांगा द्विचरम समय पर्यंत पाता है, (२) और ऊंचका उदय ऊंचकी सत्ता यह सातवा भांगा चरम समय में पाता है.

१५५, नववा-अन्तराय कर्मभङ्ग द्वार.

मिथ्यात्व से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानंतक अन्तरायकी पांचों प्रकृतिका बन्ध, पांचों का उदय, और पांचों की सत्ता. ये १ भांगा पाता है.

* नीचका बन्ध, नीच का उदय और नीचकी सत्ता फक्त तेउ काय और वायुकायमें होतीहै, और तेउ वायुसे चो बाद दुसरे स्थान अवतरते कितेक काल तक पाते है, और तेउ वायु में सम्यक्त्व ऐही नहीं तो पड्याइ होवे कहांसे इसलिये यह पहिला भांगा नहीं पाता है.

☞ अंतराय कर्मके भांगेके खूलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ठ २८१ वा

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-बन्ध के अभावसे-पांचोंका, उदय, और पांचोंकी सत्ता- यह १ भांगा पाता है.

सयोगी अयोगी केवलीके अन्तराय का बन्ध उदय सत्ता तीनों नहीं.

१५६, दशवा-बन्धीके भंग द्वार

बन्धी के भंग चार÷:—बन्धी, बन्धति बन्धेति, २ बन्धि, बन्धन्ति, नबन्धेति, ३ बन्धि, नबन्धे, नबन्धेति, और ४ नबन्धि, नबन्धे, नबंधेती.

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, नाम गौत्र, और अंतराय इन ५ कर्मों आश्रिय.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक-पहिला और दूसरा दो भांग पावे, उपशान्त मोहमेंपडवाइ होता है इसलिये तीसरा भांगा पावै. और उपशान्त मोहसे अयोगी केवलीतक एक चोथा भांगा पाता है.

वेदनीय कर्म आश्रिय-मिथ्यात्वसे सयोगी केवली गुण स्थानतक पहिलेके दो भांगे पावे, और अयोगी केवली के—१ चौथा भांगा पाता है.

मोहनीय कर्म आश्रिय-मिथ्यात्वसे अनियट बादर गुणस्थानतक पहिलेके दो भागे पावे, सूक्ष्म सम्पराय में-उपशांत श्रेणि वाले-के-तीसरा, और क्षपक श्रेणिवाले के चौथा भांगा पावे, उपशान्त

÷ बन्धी—गये काल में बन्धन किया, बंधान्ति वर्तमान में बन्धे सो, बन्धेति अनागत कालमें बन्धेगे सो.

बान्धिके भाङ्गके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट२८१वा

मोहमें पड़वाइ होता है सो तीसरा भांगा पावे. और क्षीण मोहसे अयोगी केवलीतक १ चौथा भांगा पाता है.

आयुष्य कर्म आश्रिय-मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति, देशविरति, और प्रमत इन ५ गुणस्थानों में-चारों ही भांगे पावे. मिश्र में-आयु वन्ध के अभावसे तीसरा और चौथा भांगा पावे, अप्रमत से उपशान्त मोहतक-तीसरा और चौथा दो भांगे पावे. क्षीण मोह से अयोगी केवलीतक-एक चौथा भांगा पावे.

१५७, इग्यारवा इर्यावहीके भंग द्वार

इर्यावहीके भांगे ८:—१ वन्धि, वन्धन्ति, वन्धेति, २ बंधि, वन्धन्ति, नवन्धेति, ३ वन्धि, नवन्धन्ति, बन्धेति. ४ वन्धि, नवन्धन्ति, नवन्धेति. ५ नबान्धि, वन्धन्ति, वन्धेति, ६ नबान्धि, बन्धन्ति नवन्धेति, ७ नबन्धि, वन्धन्ति, बन्धेति. और ८. नबान्धि, नवन्धन्ति, न वन्धेति-इनमें से:—

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-तीसरा, सातवा, और आठवा भांगा पावे.
सास्वादनसे सुक्ष्म संपरायतक-तीसरा और सातवा भांगा पावे.
उपशांत मोह गुणस्थान में-पाहिला और पांचवा भागा पावे.
क्षीण मोह और सयोगी केवली में-एक दूसरा भांगा पावे.
और अयोगी केवली गुणस्थान में-एक चौथा भांगा पावे.

इति कर्म भंग नामक-षष्टम प्रकरण नामक समाप्त.

---

* पांच भाव के खुलासा के लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ट २८२ वा-

सप्तम प्रकरणम भावादि द्वार*

भावादि १३ द्वारों के नाम.

१ मूल भावद्वार, २ औदयिक भावद्वार, ३ उपशमिक भावद्वार. ४ क्षयोपशमिक भावद्वार, ५ क्षायिक भावद्वार, ६ परिणामिक भावद्वार, ७ सन्नीवाइ भावद्वार, ८ समुचय भावद्वार, ९ श्रेणि द्वार, १० कर्मवेदे द्वार. ११ कर्मनिर्ज्जरा द्वार, १२ दशकरण द्वार, और १३ निर्ज्जरा बृद्धिद्वार.

१५८, पहिला मूल भाव द्वार

मूल भाव ५ हैं:—१ औदयिक, २ उपशामिक, ३ क्षयोपशमिक, ४ क्षायिक, और ५ परिणामिक इनमें से.

मिथ्यात्व, सास्वादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में १ औदयिक, १ क्षयोपशमिक, और २ परिणामिक यह ३ भाव पाते हैं. अविरति से अप्रमत गुणस्थानतक क्षयोपशमिक सम्यक्त्वी में १ औदयिक, २ क्षयोपशमिक, और ३ परिणामिक, यह ३ भाव पातेहैं क्षायिक सम्यक्त्वी में-क्षायिक भाव बढने से चार भाव पावे. और उपशामि सम्यक्त्वीमे भी चारही भाव पावे फक्त क्षायिके स्थान उपशम कहना.

अपूर्व करण गुणस्थान में-क्षायिक सम्यक्त्वी के-उपशमिक विना चार भाव पावे, उपशम सम्यक्त्वी के-क्षायिक विना चार भाव पावे और सर्व जीवों आश्रिय पांचों भाव पाते है.

अनियट बादर से उपशान्त मोह गुणस्थान तक-उपशम स

* पांच भाव के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २७२ वा

म्यक्त्वीके क्षायिक विना चार भाव पावे और क्षायिक सम्य-क्त्वीके पांचों भाव पावे.

क्षीण मोह गुणस्थानमें-उपशामिक विना चार भाव पावे.

सयोगी और अजोगी केवली गुणस्थान में-१ औदयिक, २ क्षायिक, और ३ परिणामिक यह ३ भाव पावे.

सिद्ध भगवंत में क्षायिक और परिणामिक दो भाव पावे

१५९, दुसरा औदयिक भाव द्वार

औदयिक भाव के २१ भेदः—४ गति, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ वेद, १ मिथ्यात्व, १ अविरति, १ अज्ञान, और १ असिद्ध.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-औदयिक भाव के २१ ही भेद पावे.

सास्वादन गुणस्थान में-मिथ्यात्व और अज्ञान विना १९भेद पावे.

मिश्र गुणस्थान में-मिथ्यात्व विना २० भेद पावे.

अविरति गुणस्थान में-अविरत विना १९ भेद पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-१ देवगति, १ नरकगति विना १७भेद पावे

प्रमत में-१ तिर्यचगति, १ असंयम विना १५ भेद पावे.

अप्रमत में-३ तीनों अशुभ लेश्या विना १२ भेद पावे.

अपूर्व करण और अनियट बादरमें-१ तेजु, १ पद्म लेश्या विना १० भेद पावे.

सूक्ष्न सम्पराय में-३ वेद ३ कषाय विना ४ भेद पावे.

ऊपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-लोभ विना ३ भेद पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में-शुक्ल लेश्या विना २ भेद पावे.

१६०, तीसरा उपशामिक भाव द्वार

ऊपशमिक भावके२ भेदः-१ उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र
मिथ्यात्वसे मिश्र गुणस्थानतक उपशमिक भाव नहीं.
अविरति और देशविरति गुणस्थानमें-एक उपशम सम्यक्त्व.
प्रमतसे उपशांत मोह गुणस्थान तक दोनों भेद पाते हैं,
क्षीण मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-उपशम भाव नहीं.

१६१. चौथा क्षयोपशमिक भाव द्वार

क्षयोपशमिक भावके १८-भेद-४ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन, ५ अन्तराय, १ क्षयोपशम सम्यक्त्व और १ क्षयोपशम चारित्र. १ संयमा संयम.

मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानमें-५ लब्धि, ३ ज्ञान, ३ दर्शन, यह ११ भेद पावे.
सास्वादन गुणस्थान में-५ लब्धि, ३ दर्शन यह ११ भेद पावे.
अविरति गुणस्थान में १ क्षयोपशम सम्यक्त्व बडने से १२ भेद पावे
देशविरति गुणस्थान में संयमा संयम बढनेसे १३ भेद पावे.

प्रमत अप्रमत गुणस्थान में संयमा संयम घटाना और १ मनपर्यवज्ञान तथा क्षयोपशम चरित्र बढानेसे १४ भेद पावे.

अपूर्व करण से उपशान्त मोह गुणस्थान तक १ क्षयोपशम सम्यक्त्व और क्षयोपशम चरित्र इन दो विना १२ भेद पावे.
क्षीणमोह से अयोगी केवली तक क्षयोपशम भाव नहीं है.

१६२, पांचवा-क्षायिक भाव द्वार.

क्षायिक भाव के ९ भेद ५ क्षायिक लब्धि, १ केवल ज्ञान, १ केवल दर्शन, १ क्षायिक सम्यक्त्व और १ क्षायिक यथाख्यात चारित्र

मिथ्यात्व से मिश्र गुणस्थान तक क्षायिक भाव नहीं. अव्रति से उपशान्त मोह गुणस्थान तक १ क्षायिक सम्यक्त्व क्षीणमोह गुणस्थान में १ क्षायक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र २ भेद पावे.

सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थान में ९ ही भेद पाते हैं.

सिद्ध भगवन्त में १ केवल ज्ञान, २ केवल दर्शन, और ३ क्षायिक सम्यक्त्व यह ३ भेद ३ पावे.

१६३, छठा परिणामिक भाव द्वार.

परिणामिक भावके ३ भेद १ जीवत्व, १ भव्यत्व, १ अभव्यत्व मिथ्यात्व गुणस्थान में तीनों भेद पाते है.

सास्वादन से अयोगी केवली तक १ जीवत्व, १ भव्यत्व, यह २ भेद पावे.

१६४, सातवा सन्नी पातिक भाव द्वार

मिथ्यात्व सास्वाद और मिश्र गुणस्थानों में उदयिक क्षयोपशमिक, और परणामिक यह त्रिसंयोगीक मूल १ भांगा पाताहै. और इसको अलग २ चारों गति में गिनने से उत्तर सन्नीपातिक भांगे चार होते हैं.

अविरति गुणस्थान में (१) उदयिक, क्षयोपशमिक, परिणामिक, यह १ त्रि संयोगी (२) उदयिक, उपशमिक, क्षयोपशमि परिणामिक यह १ चतु संयोगी (३) उदयिक, क्षयोपशमिक, परिणामिक, यह चतु संयोगी. यों मूल तीन भांगे पाते है. और इन तीनों को चारों गति से चौगुने करने से उत्तर भांगे १२ होते हैं.

= ९वे और १०वे गुणस्थानमें-क्षायिक चारित्र कितनेक आचार्य नहीं भी मानतेहैं-

देशविरति गुणस्थान में अविरति गुणस्थान के जैसेही मूल भांगे तो तीनो पाते ही हैं. और इन तिर्यंच मनुष्य गतिसे दुगुने करते उत्तर भांगे ६ होते हैं.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में एक मनुष्य गति आश्रिय तीनों भांगे पाते हैं.

अपूर्व करण से उपशान्त मोह तक उपशम श्रेणिवाले के (१) उदयिक, उपशामिक, क्षयोपशामिक, परिणामिक यह १ चतुसंयोगी भांगा पाता है. और क्षपक श्रेणिवाले के (१) उदयिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक, परिणामिक, यह १ चतुसंयोगी भांगा. और समुचय सर्व जीवों आश्रिय, उदयिक, उपशामिक, क्षयोपशामिक क्षायिक, और परिणामिक यह १ पंच संयोगी भांगा पाता है.

और क्षीण मोह से अयोगी केवली तक उदयिक, क्षायिक परिणामिक, यह १ त्रि संयोगी भांगा पाता है.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में १ ओदयिक भावके २१ भेद, २ क्षयोपशमिक भाव के ११ भेद, और ३ परिणामिक भावके ३ भेद, यों तीनों भवों के ३५ भेद पावे.

२ सास्वादन गुणस्थान में १ ओदायिक भावके १९ भेद, २ क्षयोपशमिक भावके ११ भेद, ३ और परिणामिक भावके २ भेद, यों तीनों भावों के ३२ भेद पावे.

३ मिश्र गुणस्थान में-१ औदायिक भाव के-२० भेद. २ क्षयोपशमिक भावके ११ भेद, ३ पारिणामिक भावके-२ भेद. यों तीनों भावोंके ३२ भेद पावे.

४ अविरति गुणस्थान में-१ औदायिक भाव के १९ भेद, २ ओपशमक भाव का १ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद. ४ क्षयो-

पशमिक भावके १२ भेद. और ५ परिणामिक भाव के दो भेद. यों पांचों भाव के ३९ भेद पावे.

५ देशविरति गुणस्थानमें-१ औदयिक भावके १७ भेद, २ ओपशमिक भावका १ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोप शमिक भावके १३ भेद. और ५ परिणामिक भावके २ भेद, यों पांचों भावके ३४ भेद पावे.

६ प्रमत संयति गुणस्थानमें-१ औदयिक भावके १५ भेद.२ औपशमिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोप शमिक भावके, १४ भेद, और ५ परिणामिक भाव के २ भेद, यों पांचों भावोंके ३४ भेद पावे.

७ अप्रमत संयति गुणस्थान में-१ ओदायिक भावके १२ भेद, २ उपशामिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका—१ भेद, ४ क्षयोपशामिक भावके १२भेद. और५ परिणामिक भावके २भेद यों पांचों भावोंके-३० भेद पावे.

८ अपूर्व करण गुणस्थान में-१ औदायिक भावके १० भेद२ ओपशमिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोप शमिक भावके १२ भेद और५ परिणामिक भावके२ भेद. यों पांचों भावोंके २७ भेद पावे.

९आनियट बादर गुणस्थान में-१ औदयिक भावके १० भेद, २ ओपशमिक भाव के २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोपशयिक भाव के १२ भेद और ५ परिणामिक भाव के २ भेद यों पांचों भावोंके-२७ भेद पावे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-१ औदायिक भाव के ४ भेद,२ उपशामिक भावके २ भेद, ३ क्षयोपशामिक भाव के १२ भेद, ४

क्षायिक भावका १ भेद. और ५ परिणामिक भाव के २ भेद यों पांचों भावोंके २१ भेद पावे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान में-१ ओदयिक भाव के-३ भेद, २ ओपशामिक भावके २ भेद, ३ क्षयोपशम शामिक भाव के १२ भेद,४ क्षायिक भावका १ भेद, और ५ परिणामिक भाव के२ भेद यों पांचों भावोंके २० भेद पावे.

१२ क्षीण मोह गुणस्थानमें-१औदायिक भाव के ३ भेद, २ क्षायिक भावके २ भेद,३ क्षयोपशामिक भावके १२ भेद, और ४परिणमिक भावके दो भेद यों चारों भावोंके १९ भेद पावे.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान में-१ औदायिक भावके ३ भेद, २ क्षायिक भाव के ९ भेद, ३ परिणामिक भावके २ भेद, यों तीन भावके १४ भेद पावे.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में १ औदयिक भावके २ भेद, २ क्षायिक भावके ९ भेद. ३ परिणामिक भावके २ भेद, यों तीनों भावके १३ भेद पावे.

१९९, नववा श्रेणि द्वार

श्रेणी दो-१ उपशम श्रेणी, और २ क्षपक श्रेणी.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत गुणस्थानतक क्षयोपशम सम्यक्त्व होनेसे श्रेणी नहीं करते हैं.

अपूर्व करण सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक दोनों श्रेणी करते हैं.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-१ उपशम श्रेणी.

क्षीण मोह गुणस्थान में-१ क्षपक श्रेणी.

= कितनेक स्थान सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में भव्यत्व पणा नही लिया

श्रेणिद्वार के खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ट १६ वा-

सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में-श्रेणी नहीं है.

१६७, दसवा कर्म वेदे द्वार

मिथ्यात्वंसे सूक्ष्म सपम्राय गुणस्थानतक आठोंही कर्म वेदतेहैं.
उपशांत मोह और क्षीण मो गूणस्थानमें-मोहनीय विनां७कर्म वेदे
सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानमें, १ वेदनीय, २ आयुष्य
३ नाम, और ४ गोत्र. इन चारों कर्मोको वेदते हैं.

१६८, इग्यारवा कर्म निर्ज्जरा द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गूणस्थानतक आठों कर्मोंकी निर्ज्जराहै
क्षीणमोह गुणस्थानमें-मोहनीय विना सात कर्मोंकी निर्ज्जरा.
सयोगी अयोगी केवली गुणस्थानमें-ऊपरोक्त चारों कर्मोंकी निर्जरा

१६९, बारवा-दशकरण द्वार.

दश करणके नाम-१ बन्ध करण, २ उत्कर्ष करण, ३ संक्रमण करण, ४ अपकर्षण करण, ५ उदीरणा करण, ६ सत्ता करण ७ उदय करण, ८ उपशान्त करण, ९ निधित करण, और १०निकाचित करण.
मिथ्यात्व गुणस्थानसे-अपूर्व करण गुणस्थानतक-१०ही करण पावे.
अनियट्ट बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-पाहिलेके७करण पावे
उपशांत मोहसे अयोगी केवलीतक-सत्ता और उदय यह दो करणपावे

१७०, तेरवा-गुण श्रेणी द्वारा

१ आयु कर्म विना सात कर्मोंकी निर्ज्जरा-मिथ्यात्व और मिश्र से

☞ दशकरणद्वार के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २७२वा

अविराति सम्यक्त्वीके असंख्यात गुण अधिक होती है.
२ इनसे देशविरातिके असंख्यात गुण अधिक निर्ज्जरा.
३ इनसे-प्रमत संयतिके असंख्यात गुण अधिक यिर्ज्जरा.
४ इनसे-अनन्तालबन्धि चौक बिसं जोजी जीवके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
५ इनसे-क्षायिक सम्यक्त्वी के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
६ इनसे-उपशम श्रेणी वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
७ इनसे-उपशान्त कषाय वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
८ इनसे-क्षपक श्रेणी वाले के असंख्याव गुणी निर्ज्जरा.
९ इनसे-क्षीण कषाय वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
१० इनसे-सयोगी केवली के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.
और ११ इनसे-अयोगी केवलीके असंख्यात गुण अधिक निर्जरा.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजकी सम्प्रदायके बाल ब्रम्हचारि मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज विरचित गुणस्थान रोहण अढीशतद्वारी ग्रन्थके प्रथम मूल काण्डका कर्मद्वारा रोहण नामक द्वितीय खण्ड.

समाप्तम
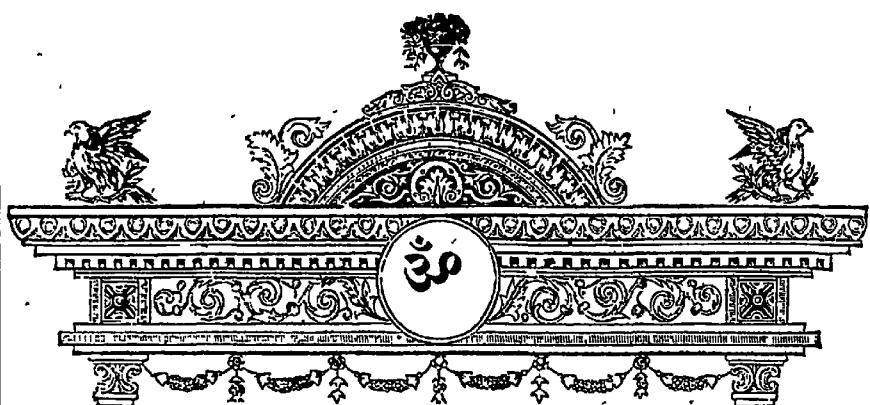
तृतीय खण्ड-संसार द्वारा रोहण.

संसारा रोहण खण्डके ४१ द्वारों के नाम.

१ आगतिद्वार, २ जागतिद्वार, ३ पागतिद्वार, ४ आजाति द्वार, ५ पाजातिद्वार, ६ जाजातिद्वार, ७ आकायद्वार, ८ पाकाया द्वार, ९ जाकायाद्वार. १० आदंडकद्वार, ११ पादंडकद्वार, १२ जादंडकद्वार, १३ सामन्य जीव भेदद्वार, १४ विशेष जीवभेदद्वार, १५ जीवयोनिद्वार, १६ कुलकोडी द्वार, १७ सूक्ष्म बादरद्वार, १८ त्रस-स्थावर द्वार, १९ सन्निअसन्नि द्वार, २० भाषकाभाषक द्वार, २१ अहारका नाहारकद्वार, २२ ओजादि आहारद्वार, २३ सचित्तादि अहार द्वार, २४ दिशी आहारद्वार, २५ पर्याप्तापर्याप्तद्वार, २६ पर्याद्वार २७ प्रणद्वार, २८ इन्द्रियद्वार, २९ इन्द्रिय विषयद्वार ३० सज्ञाद्वार, ३१ वेदद्वार, ३२, कषायद्वार, ३३ लेश्याद्वार, ३४ योगद्वार, ३५ शरीर द्वार, ३६ संघयण द्वार, ३७ संठाणद्वार, ३८ मरणद्वार, ३९ विग्रह अविग्रहगति द्वार, ४० स्वर्गद्वार औरभी षटस्थान हानीवृद्धिद्वार.

(१) प्रथम आगति द्वार

☞गति के तीनों द्वारोंका खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २९७ वा

चारोंही गतिके जीवों मनुष्यगतिमें आकर चउदेही गुणस्थानों स्पर्श सकते हैं.

१७२, दुसरा पागति द्वार.

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थान पर्यन्त चारों गतिके जीव पाते हैं.
देशविरति गुणस्थानमें-मनुष्य और तिर्यंच यह दो गति ही पातेहै
प्रमत संयतिसे अयोगी केवलीतक-एक मनुष्यगति पावे हैं.

१७३, तीसरा जा गति द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान वाले-मरकर चारों गति में जाते हैं.
सास्वादन गुणस्थानवाले नरक विना तीनों गति में जावे.
मिश्र गुणस्थान वाले मरते ही नहीं है.
अविरति गुणस्थानवाले-मनुष्य और देव दोनों गतिमें जावे.
देशविरति से उपशान्त मोह गुणस्थानवाले एक देवगतिमें जावे.
क्षीण मोह और सयोगी केवली गुणस्थान वाले मरतेही नहीं हैं.
अयोगी केवली गुणस्थानवाले एक मोक्ष में जावे.

१७४, चौथा-आजाति द्वार

जाति ५ है-१ एकेंन्द्रिय, २ बेन्द्रिय, ३ तेन्द्रिय, ४ चौरिन्द्रिय, और ५ पचेन्द्रिय.
मिथ्यात्व गुणस्थानसे प्रमत गुणस्थानतक पांचों जातिका आवे-
अप्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थान तक एकेन्द्रिय और पचेन्द्रिय दो जाति का आवे.

१७५, पांचवा-पाजाति द्वार

☞ जातिके तीनों द्वारोंका खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २९६ वा.

मिथ्यात गुणस्थान में पांचों जाति पावे.
सास्वादन गुणस्थानमें-एकेन्द्रिय विना चारों जाति पावे.
मिश्रसे क्षीण मोह गुणस्थान तक-एक पचेन्द्रियकी जाति पावे.
सयोगी अयोगी केवली गुणस्थानमें जाति नहीं-नो इन्द्रिय हैं.

१७६. छठा जा जाति द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान वाला पांचों जाति में जावे.
सास्वादन गुणस्थान वाला एकेन्द्रियविना चार जाति में जावे.
मिश्र, क्षीणमोह, सयोगी केवली, इन तीनों गुणस्थान वाले मरेनही
अविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान वाले एक पचेन्द्रियमें जावे.
अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती १ मोक्ष में ही पधारते हैं.

१७७, साववा-आ काया द्वार.

काया ६ हैं:-पृथ्वीकाय, २अपकाय, ३तेउकाय, ४वायुकाच, ५ वनस्पतिकाय, और ६ त्रसकाय.

मिथ्यात्व सास्वादन और मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में ६ काया के जीवों आते हैं.

अविरति से अयोगी केवली तक तेउ वायु छोडकर चार काया के जीव आते हैं.

१७८ आठवा पा काया द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में छेही काया के जीव पाते है.

सास्वादन से अयोगी केवली गुणस्थान तक एक त्रस काया केही जीव पाते हैं.

☞ काया के तीनों द्वारोंके खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट २९८ वा.

१७९, नववा-जा काया द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान वाला छेही काया मे मर कर जावे.
सास्वादन गुणस्थान वाला एक त्रस काया में जावे.
मिश्र क्षीणमोह सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थान वाले मरेनही.
अविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान तक के एक त्रस कायमे जावे
और अयोगी केवली गुणस्थान वाले एक मोक्ष में जावे.

१८०, दसवा आ दंडक द्वार

दंडक २४ हैं-ः१ सातों नरक का एक दंडक, १० दशोभवनपाति देवके दश दंडक, ५ पांचों स्वाथर के पांच दंडक, ३ तीनों बिक्लेन्द्रिय के तीन दंडक,१तिर्यंच पचेन्द्रिय का.१मनुष्यका, १ बाणव्यन्तर का, १ जोतिषी का' और १ विमाणीक देवोंका यों २४-

मिथ्यात्व गुणस्थान में चौबीस ही दंडक के जीवों आतेहैं

सास्वादन से अप्रमत गुणस्थान तक तेउवायु विना २२ दंडक के जीव आवे.

अपूर्व करण से अयोगी केवली तक तीन बिक्लेन्द्रिय विना १९ दंडक के जीव आवे.

१८१, इग्यारवा पा दंडक द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में चौबीस ही दंडक पावे.
सास्वादन मिश्र में पांच स्थावर विना १९ दंडक पावे.
अविरति गुणस्थान में तीन बिक्लेन्द्रिय विना १६ दंडक पावे.
देशविरति गुणस्थान मे १ मनुष्यका और तिर्यंचका २ दंडक पावे

☞ दंडक के तीनों द्वारके खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांड पृष्ठ २०८ वा.

प्रमत से अयोगी केवली गुणस्थान तक एक मनुष्यका दंडक पावे

१८२ बारवा-जादंडक द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान वाले चौवीस दंडक में जाते है.
सास्वादन गुणस्थान वाले ५ स्थावर विना १९ दंडक में जाते हैं.
मिश्र. क्षीण मोह, सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थानवाले मरेनही

अविरति गुणस्थानी पांच स्थार तीन बिक्लेन्द्रिय विना १६ दंडक में जावे.

देशविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान वाले एक विमानीक देव में जावे.

अयोगी केवली गुणस्थानी मोक्ष में ही पधारते हैं.

१८३, तेरवा-सामान्य जीव भेद द्वार

सामान्य जीवोंके १४ भेदः— १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ बादर एकेन्द्रिय, ३ बेन्द्रिय, ४ तेन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असन्नी पचेन्द्रिय, और७ सन्नी पचेन्द्रिय, इन७के अपर्याप्ता और७ के पर्याप्ता यों १४ भेद होते हैं.

मिथ्यात्व गुणस्थान में जीवके भेद १४ ही पावे.

सास्वादन गुणस्थान में १ बेन्द्रिय, १ तेन्द्रिय, १ चौरिन्द्रिय और १ असन्नि पचेन्द्रिय, इन४ का अपर्याप्ता और५ सन्नी पचेन्द्रियका पर्याप्ता और ६ अपर्याप्ता दोनों यों ६ जीवको भेद पावे.

श्र मीगुणस्थानमें-१ जीवका भेद सन्नीका पर्याप्ताही पावे.

☛ जीवके भेदके दोनों द्वारोंका खुलासके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट२९९वा यहां ९ लोकान्तिक देव अधिपति कोही ग्रहण किये हैं. नाकि उनके परिवारको.

अविरति गुणस्थानमें-सन्नीका पर्याप्ता अपर्याप्ता दोनों भेद पावे. देशविरति से अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ सन्नीका पर्याप्ता पावे

चउदवा-विशेष जीव भेद द्वार

विशेष ५६३ जीवके भेद-१४ नरकके, ४८ तिर्यंच के, ३०३ मनुष्य के, और १९८ देवता के यों ५६३ जीव के भेद होते हैं.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-५ पांच अनुत्तर विमान और ९ लोकान्तिक देव इन १४ का पर्याप्ता अपर्याप्त यों २८ विना१७० भेद पावे.

सास्वादन गुणस्थान में-७ नरक के पर्याप्ता, + ३ विकलेन्द्रिय, ५ असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय इन ८ के अपर्याप्ते, और ५ पांच सन्नि तिर्यंच पचेन्द्रिय के पर्याप्ते अपर्याप्ते दोनों, यों १८ तिर्यंचके, १०१ समुल्छिम मनुष्यविना २०२ मनुष्य के और ऊपरोक्त १७० देवता के यों ३९७ जीवके भेद पावे.

मिश्र गुणस्थान में-७ नरकके पर्याप्ते, ५ सन्नि तिर्यंचके पर्याप्ते १०१ सन्नि मनुष्य के पर्याप्ते. ऊपरोक्त १७० देवताके भेदों में से ८५ भेदोंमें से ८५ भेद अपर्याप्त के कमी करने से ८५ भेद देवताके यों सब १९८ जीवके भेद पावे.

अविरति गुणस्थान में-सातवी नर्कके अपर्याप्ता विना =नरकके १३ भेद, १० सन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय के. १५ कर्म भूमी, ५ देव कुरु, ५ उत्तर कुरु २५ के पर्याप्ता, अपर्याप्ता ५० मनुष्य के, और १५ परमाधामी, ३ किलविषी इन १८ देवताके पर्याप्ता अपर्याप्त यों ३६ भेद कमी करने से-१६२ देवता के, यों सब २३५ जीवके भेद पाते हैं.

+ नरकानुपूर्वीका उदय सास्वादन में न होनेसे अपर्याप्ता अवस्था में नहीं पाता है.
= सम्यक दृष्टि सातवीमें जाता नहीं. परन्तु वहां वेदना अनुभवसे समदृषि होजाताहै.

देशविरति गुणस्थान में-५ सन्नितिर्यंच के और १५ कर्मा भूमी मनुष्य के यों २० भेद पावे.
प्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थानतक फक्त-१५ कर्मा भूमी मनूष्य के ही भेद पाते हैं.

१८५, पंदरवा-जीव योनी द्वार

पृथ्वी-अप-तेउ-वाउ इन चारों की ७-७ लाख यों ७×४ २८, वनस्पति की २४ लाख. बेन्द्रिय-तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय इन तीनों की २-२ लाख यों २×३६ लाख, पचेन्द्रिय तिर्यंचकी ४ लाख, नरक की ४ लाख, देवताकी ४ लाख, और मनुष्यके १४ लाख. यों सब ८४ लाख जीवोंकी योनी इसमें से.
मिथ्यात्व गुणस्थानमें ८४ लाख ही जीवा योनी पावे.
सास्वदन गुणस्थानमें-पांचों स्थावरों की ५२ लाख विना ३२ लाख पावे.
मिश्र और अविरति में-तीनों विक्लेन्द्रियकी ६ लाख विना २३ लाख पावे.
देशविरति में-४ लाख तिर्यंच पर्चेन्द्रियकी और १४ लाख मनुष्यकी यों १८ लाख पावे.
प्रमत से अयोगी केवली गुणस्थानतक-१४ लाख मनुष्य की ही पावे.

१८६ सोलवा-कुलकोडी द्वार.

प्रथवी कायके १२ लाख क्रोड, अपकायके ७ लाख क्रोड

☞ जीवयोनी द्वारोंका खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३०० वा
,, कुल कोडी द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३०१ वा.

तेउ कायके ३ लाख क्रोड वायु कायके ७ लाख क्रोड, वनस्पतिके २८ लाख क्रोड, बेन्द्रियके ७ लाख क्रोड, तेन्द्रियके ८ लाख क्रोड चौरिन्द्रिय ९ लाख क्रोड, जलचरके १२॥ लाख क्रोड, स्थल चरके १० लाख क्रोड, खेचरके १२ लाख क्रोड. उरपरके १० लाख क्रोड, भुजपरके ९ लाख क्रोड, नरकके २५ लाख क्रोड देवताके २६लाख क्रोड, और मनुष्य के १२ लाख क्रोड, यों सब १ एक क्रोड साडी संताणवे लाख क्रोड कुल होते है इसमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ क्रोड ९७॥ लाख क्रोडही कुल पाते हैं.

सास्वादन में-५७ लाख क्रोड पांचों स्थावरके विना-१ क्रोड ४०॥ लाख क्रोड कुल पावे.

मिश्र और अविरतिमें-२४ लाख क्रोड बिक्लेन्द्रिय विना-१ क्रोड१६॥ लाख क्रोड कुल पावे.

देशविरतिमें-५३॥ लाख क्रोड तिर्यंच पचेन्द्रियके, और १२ लाख क्रोड मनुष्य के दोनों मिल ६५॥ लाख क्रोड कुल पावे.

प्रमतसे अयोगी केवलीतक-१२ लाख क्रोड मनुष्यकेही कुल पावे.

१८७, सतरवा-सुक्ष्मबादर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में सूक्ष्म बादर दोनों तरह के जीवों पावे.

सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक बादर जीव पावे.

१८८, अठारवा त्रस स्तावर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-त्रस और स्थावर दोनों तरहके जीव पावे.

सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक त्रस जीव पावे.

१८९ उन्नीसवा सन्निअसन्नि द्वार

☞ सूक्ष्म बादर द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३०१ वा.

,, त्रस स्थावर और सन्नी असन्नी द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट३०२वा

मिथ्यात्व और सास्वादन दोनों गुणस्थानमें-सन्नि असन्नि दोनों पावे
मिश्रसे क्षीणमोह गुणस्थानतक-एक सन्नीही जीव पाते है.
सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान वाले नो सन्नी नोअसन्नि.

१९०, बीसवा भाषक अभाषक द्वार

मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति, और सयोगी केवली इन चारों गु णस्थानोंमें भाषक अभाषक दोनों प्रकार के जीवों पावे.
मिश्र, देशविरति से क्षीण मोह गुणस्थानतक-एक भाषकही होतेहैं
अयोगी केवली गुणस्थानी-अभाषक होते हैं.

१९१, इक्कीसवा आहारक अनाहारक द्वार

मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति और सयोगी केवली × इन चारों गुणस्थानोंमें आहारक अनारक दोनों प्रकारके जीवों पाते हैं.
मिश्र, देशविरतिसे जावत क्षीणमोह गुणस्थानतक-एक आहारक ही जीव पाते है.
अयोगी केवली गुणस्थान वाले-एक अनाहारक होते हैं.

१९२, बावीसवा-आजादि आहार द्वार.

आहार ३ प्रकार का. १ ओज, २ रोम. ३ कवल.
मिथ्यात्व, सास्वादन और अविरति इन तीनों गुणस्थानोवाले. तीनों प्रकार का आहारलेते हैं.
मिश्र, देशव्रति से जावत सयोगी केवली गुणस्थान वर्ती जीवो

भाषक अभाषक द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३०३ वा.
अहारके तीनो द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३०३ वा.
×सयोगी केवली केवल समुदघात करती वक्त बीचके समय में अनाहारक होतेहैं.

ओज अहार विना दोनों प्रकारका अहार लेते हैं.
अयोगी केवली गुणस्थान व्रांति अनहारक हैं.

१९३, तेवीसवा-सचितादि अहार द्वार

आहार ३ प्रकार के-१ सचित्त, २ अचित्त, ३ और मिश्र:
मिथ्यात्वसे देशाविरति गुणस्थानतक-तीनों तरहका आहार करतेहैं.
प्रमत*सयोगी केवली गुणस्थानतक-एक अचित्त आहारी हैं.
अयोगी केवली गुणस्थानी अनाहारक हैं.

१९४, चौवीसवा-दिशी अहार द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानवाले-जघन्य=दिशीका उत्कृष्ट६दिशीकाअहारलेवे
सास्वादन गुणस्थानसे सयोगी केवलीतक-छेहों दिशीका अहार लेतेहैं
अयोगी केवली गुणस्थानी अनाहारक हैं.

१९५, पच्चीसवा-पर्याप्त अपर्याप्त द्वार.

मिथ्यात्व, सास्वादन, और अविरति इन तीनों गुणस्थानोंमें पर्याप्ता अपर्याप्त दोनों पावे.
मिश्र, देशाविराति से जावत-अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पर्याप्त ही पावे.

१९६, छब्बीसवा पर्या द्वार

पर्या ६ है:-आहार, २ शरीर, इन्द्रि, ४ शासोश्वासी ५ भाष, औ-

पर्याके दोनों द्वारोंका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २०२ वा

* कितनेक छद्मस्तता और प्रमता के सबध से प्रमत गुणस्थान में मिश्र अहार लेते.

= लोकके अन्तमें जो एकेन्द्रिय सुक्ष्म जीवों हैं. फक्त लोकके तरफ के तीनों दिशामें रहे हुवे पुद्गल ग्रहण करते है. अलोककी दिशाके ग्रहण नहीं करते हैं. क्योंकि अलोकमें पुद्गल हेही नहीं.

र ६ मन.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-एकेन्द्रिय आश्रिय ४, विक्लेन्द्रिय या असन्नि आश्रिय ५, और सन्नी आश्रिय ६ ही पर्या पावे.

सास्वादनमें-विक्लेंद्रिय के अपर्याप्ता आश्रिय ४, असन्नी आश्रिय ५ और सन्निपचेन्द्रिय आश्रिय छेही पर्या पावे.

अविरति गुणस्थानमें-अपर्याप्त के मरण आश्रिय ४, अपर्याप्ता आश्रिय ५, और पर्याप्ता आश्रिय छेही पर्या पाती है.

मिश्र देशविरतिसे सयोगी केवली गुणस्थानतक ६ ही पर्यापावे.

अयोगी केवलीके अन्तिम भागमें-१श्वाशोश्वास पर्या पाती है.

१८७, सत्तवीसवा प्राण द्वार.

प्राण१०हैं:-५पांचों इन्द्रियके५,तीन जोगके३,श्वासोश्वास१और अयुष्य

मिथ्यात्व गुणस्थानमें एकेन्द्रिय आश्रिय स्पर्शेन्द्रिय, काया श्वाशोश्व, और आयुष्य यह ४ प्राण, बेन्द्रिय आश्रिय, रसेन्द्रिय, और वचन का जोग अधिक होनें से ६ तेन्द्रिय आश्रिय घणेन्द्रिय बढने से ७, चौरिन्द्रिय आश्रिय चक्षु इन्द्रिय बढने से ८, असन्नी पचेंद्रिय आश्रिय श्रोतेन्द्रिय बढने से ९ और सन्नी आश्रिय दशों प्राण पाते हैं.

सास्वादन गुणस्थान में एकेन्द्रिय आश्रीय ४ प्राण छोड कर बाकी उपरक हे मुझबही ६-७-८-९-१० प्राण पाते हैं.

मिश्र से क्षीण मोह गुणस्थान तक दशो प्राण पातेहै.

सयोगी केवली में पांचों इन्द्रिय के ५ प्राणविना ५ प्राण पातेहैं. और अयोगी केवली में एक आयुष्य बल प्राण पावे.

प्राणद्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०४

१९८, अठावीसवा इन्द्रिय द्वार

इन्द्रिय ५ हैं १ श्रुतेन्द्रिय, २ चक्षुइन्द्रिय, ३ घणेन्द्रिय, ४ रसेन्द्रिय औा ५ स्पर्शेन्द्रिय.

मिथ्यात्व गुणस्थान में एकेन्द्रिय आश्रिय १ स्पर्शेन्द्रिय, बेन्द्रिय. आश्रिय दो जावत् पचेन्द्रिय आश्रिय पांचों इन्द्रियों पावे.
सास्वादन गुणस्थान में २ इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय तक पावे.
मिश्र से क्षीण मोह गुणस्थान तक पांचों इन्द्रियों पावे.

उनतीसवा-इन्द्रियाकी द्वार

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानी अणेन्द्रिय हैं.

१ श्रुतेन्द्रियकी ३. चक्षुरेन्द्रियकी ५, घणेन्द्रियकी २ रसेन्द्रियकी ५, और स्पर्शेन्द्रियकी ८ यों पाचों इन्द्रियकी २३ विषयहैं.
मिथ्यात्व गुणस्थान में जघन्य, ८ उत्कृष्ट २३ ही विषय पावे.
सास्वादन गुणस्थान में जघन्य १३ उत्कृष्ट २३ ही विषय पावे.
मिश्रसे क्षीण मोह गुणस्थान तक २३ ही विषय पावे.
सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में निर्विषयी है.

२००, तीसवा सज्ञा द्वार.

साज्ञा ४ हैंः—१ अहार २ भय, ३ मैथुन, और ४ परिग्रह.
मिथ्यात्व से प्रमत गुणस्थान तक चारो सज्ञा पाती है.
अप्रमत से अयोगी केवली गुणस्थान तक नो सन्ना है(सज्ञानही)

इन्द्रियके दोनों द्वारोंके खुलासेकेलिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट३०४-३०५ना
=केवली भगवंतके-कर्ण चक्षु प्रमुख द्रव्येन्द्रियोंतो है परन्तु वो उनके काम में नहीं आता है, क्योंकि-इन्द्रियोंके ग्रहण किये पाहिले ही सब पदार्थोंको जानते देखते हैं.

२०१, इकतीसवा वेद द्वार

वेद ३ हैं:—१ स्त्री, २ पुरुष, और ३ नपुंसक.
मिथ्यात्व से अनीयट्ट बादर गुणस्थान तक तीनों वेदो पावे.
सूक्ष्म सम्पराय से अयोगी केवली गुणस्थान तक अवेदी हैं.

२०२, बत्तीसवा-कषाय द्वार

कषाय ४ हैं:-१ क्रोध, २ मान, ३ माया, और ४ लोभ.
मिथ्यात्व से अनीयट्ट बादर गुणस्थान तक चारों कषाय पावे.
सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में एक लोभ कषाय.
उपशान्त मोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक अकषायी.

२०३, तेंतीसवा लेश द्वार

लेशा ६ हैं:-१ कृष्ण, २ नील, ३कापोत, ४तेजु, ५पद्म और शुक्ल.
मिथ्यात्व से प्रमत गुणस्थान तक ६ ही लेश्या.
अप्रमत गुणस्थान में उपरकी शुभ तीनों लेश्या पावे.
अपूर्व करण से सयोगी केवली गुणस्थान तक १ शुक्ल लेश्या पावे.
अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती अलेशी होते हैं.

२०४,—चौतीसवा योग द्वार

योग तीन १ मन, २ वचन, और ३ काया
मिथ्यात्व से स्वादन गुणस्थान में जघन्य १, मध्यम २, उत्कृष्ट ३, ही जोग पावे

सज्ञा, वेद, काषाय, इन तीनों द्वारोंका खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ३०६वा.
और योगद्वार लेश्या, द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०७ वा

मिश्रसे सयोगी केवली गुणस्थान तक तीनों जोग पावे.
अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती तो अजोगी ही होतेहैं.

२०५, पैंतीसवा-शरीर द्वार

शरीर ५ हैः—१ ओदारिक २ वैक्रिय, ३ अहारक, ४ तेजस और ५ कार्मण
मिथ्यात्व से अविरति गुणस्थान तक आहारक विन ४ शरीर पावे
प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में पांचों शरीर पावे.
अपूर्व करणसे अजोगी केवलीतक वैक्रिय आहारक विना ३ शरीर पावे.

२०६, छत्तीसवा-संघयण द्वार.

संघयण ६ हैः—१ वज्र वृषभ नाराच, २ वृषभ नाराच, ३ नाराच, ४ अर्ध नाराच, ५ किलिक, और ६ छेवटा.
मिथ्यात्वसे अप्रमत गुणस्थानतक, ६ ही संघयण पावे.
अपुर्व करणसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ वज्र वृषभ नाराच संघयण.

२०७, सैंतीसवा-संठाण द्वार.

संस्थान ६ हैं. १ समचतुरंस्र,२ निग्रोद्ध परिमंडल, ३ साधिक, ४वावन, ५ कुब्ज, और ६ हुंड.
मिथ्यात्वसे अयोगी केवली गुणस्थानतक, ६ ही संस्थान पावे.

अडतीसवा-मरण द्वार

शरीर द्वार के खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ट ३०८ वा.
संघयण द्वारोंके खुलासेकेलिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ट३०९वा.
संस्थान द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३१० वा.

मरण २ प्रकार के-समोया, और २ असमोया.
मिथ्यात्व,सास्वदन अविरतिसे अनियटा बादरतक-दोनों माणपावे.
मिश्र क्षीण मोह, सजोगी केवली. इन तीनों गुणस्थानोंमे मरेनहीं.
सुक्ष्म सम्पराय और उपशान्त मोह में और अयोगी केवली गुण-स्थान में-१असमोहा मरण पाता है.

उनचालीसवा विग्रहगति द्वार

मरण नन्तर गति २ तरह की-१ विग्रह (वक्र), और ऋजु शरल.
मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरतिसे उपशान्त मोहतक-दोनों गति करे
मिश्र, क्षीण मोह सयोगी केवली यह तीनो गुणस्थानी मरे नहीं.
अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती-१ ऋजु गति ही करे.

चालीसवा मरण द्वार

स्वर्ग २६ हैं-१२ देवलोक, ९ ग्रीवेक, ५ अनुत्तर विमान.
मिथ्यात्व गुणस्थान वाले-५ अनुत्तर विमान विना२१स्वर्गतक जावे
सास्वादन, अविरति और देशाविरति, तीनों गुणस्थानी १२ स्वर्ग तक जावे.
मिश्र, क्षीण मोह, और सयोगी केवली मरेही नहीं.
प्रमतसे अनियट बादर गुणस्थानतक-२६ ही स्वर्गमें जावे.
सूक्ष्म संपराय और उपशांत मोहवाले पांचों अनुत्तर विमानमें जावे और अयोगी केवलीतो मोक्षमें ही पधारते हैं.

२११, एकचालीसवा-षठस्थान वृद्धि द्वार

☞ मरण विग्रहगति और स्वर्गकी मर्याद इन तीनों द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३११ वा

☛ षटस्थान हानी वृद्धि द्वारोंका खुलासके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ२१२वा

षटस्थान-१संख्यातगुण,२असंख्यात, ३अनन्त गूण,४संख्यात भाग, ५असंख्यात भाग और ६ अनन्त भाग.

मिथ्यात्व से अपूर्व करण तक-आपसमें छे स्थान वढीये होते हैं.

अनियट बादर से अयोगी केवलीतक-आपस में तुल्य होते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल ब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज रचित गुणस्थान रोहण अढीशत द्वारी ग्रन्थका प्रथम मूल काण्ड का संसारा रोहण द्वार नामक तीसरा खंड
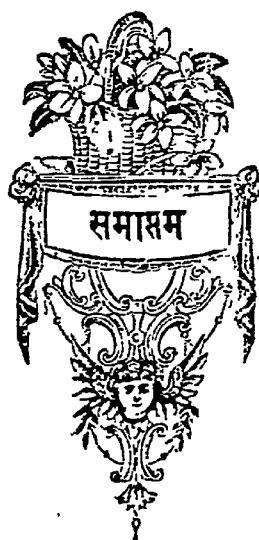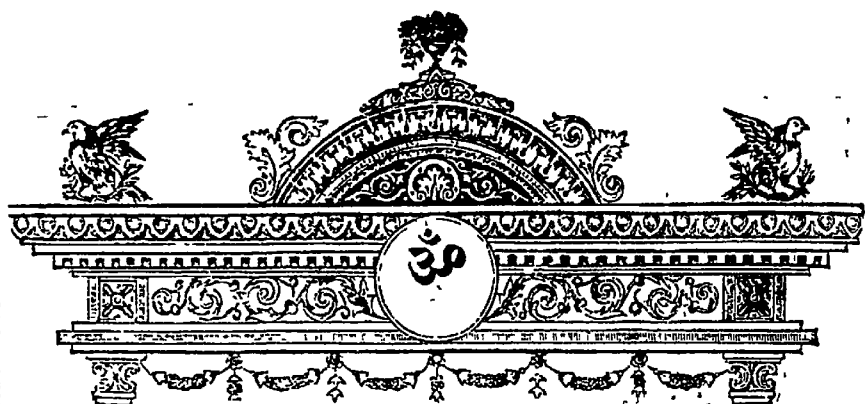
चतुर्थ खण्ड-धर्म रोहण

धर्मा रोहणके ४१ द्वारोंके नाम.

१मुल उपयोगद्वार २ अज्ञानद्वार, ३ ज्ञानद्वार, ४ दर्शनद्वार ५ समुचय उपयोगद्वार, ६ दृष्टिद्वार, ७ भव्याभव्यद्वार, ८ चरमाचरमद्वार, ९ परितापरितद्वार, १० पक्षीद्वार, ११ आत्माद्वार, १२ध्यानद्वार, १३ ध्यानके पर्येद्वार, १४ द्रव्यद्वार, १५ परिणामद्वार, १६ वीर्यद्वार, १७ तीर्थातीर्थद्वार, १८ सम्यक्त्वद्वार, १९ संजाता संजातिद्वार, २० लिंगद्वार, २१ चारित्रद्वार, २२ नियंठाद्वार, २३ कल्पद्वार, २४ परिसहद्वार, २५ प्रमादद्वार, २६ सरागी वीतरागीद्वार, २७ पडवाइ अपडवाइद्वार, २८ छद्मस्तकेवलीद्वार,२९ समुदघातद्वार ३० पांचदेवद्वार, ३१ परिणामीद्वार, ३२ करणद्वार, ३३ निवृत्तिद्वार, ३४ आश्रवद्वार, ३५ संवरद्वार ३६ निर्ज्जराद्वार, ३७ निर्ज्जराभेदद्वार, ३८ करणीफलद्वार, ३९ तीर्थंकर गात्रापार्जनद्वार, ४० तीर्थंकर गुणस्थान स्पर्शनद्वार, और ४१ मोक्षद्वार.

२१२, प्रथम-मूल उपयोग द्वार.

मूल उपयोग दो- साकर बहूत और अनाकार बहुता.

☞ उपयोग द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१३वा.

मिथ्यात्वसे अनियट बादर गुणस्थानतक-दोनों उपयोग पावे.
सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-एक साकर बहूता उपयोग पावे.×
उपशान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-दोनों उपयोग पावे

२१३, दुसरा अज्ञान द्वार.

अज्ञान ३ हैं.-१ मति अज्ञान, २ श्रुति अज्ञान, ३ विभंग ज्ञान.
मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानमें-तीनों अज्ञान पावे.
बाकी रहे बारेही गुणस्थानोंमें-अज्ञान नहीं पावे.

२१४, तीसरा-ज्ञान द्वार

ज्ञान ५ है.१मति, २ श्रुति, ३ अवधि, ४ मनः पर्यव, और५ केवल.
मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थान में-ज्ञान नहीं.
सास्वादन, अविरति और देशविरति गुणस्थानमें पहिले तीनों ज्ञान
प्रमतसे क्षीण मोह गुणस्थानतक-केवल विना चार ज्ञान.
सयरेगी और अयोगी केवली गुणस्थानों में-एक केवल ज्ञान.

२१५, चौथा-दर्शन द्वार

दर्शन ४है.-१चक्षु. २अचक्षु, ३अवधि, और ४ केवल.
मिथ्यात्वसे क्षीणमोह गूणस्थानतक-केवल विना तीनों दर्शन पावे.
सयोगी ओर अयोगी केवली गुणस्थानमें-एक केवल दर्शन पावे.

२१६, पांचवा समुचय उपयोग द्वार

समुचय उपयोग १२ है-५ ज्ञान, ३ आज्ञान, और ४ दर्शन.
मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानमें-३ अज्ञान२ दर्शन, यह ६उपयोग.

+ इस गुणस्थानकी स्थिति बहूतही थोडी होने से यहां एकही उपयोग वर्तता है.

सास्वादन, अविरति, और देशविरतिमें-३ज्ञान,३ दर्शन यह६उपयोग
प्रमतसे क्षीण मोह गुणस्थानतक४ज्ञान३ दर्शन यह ७ उपयोग.
सयोगी और अयोगी केवलीके-१केवल ज्ञान, और,२ केवल दर्शन

२१७, छठा, दृष्टि द्वार

दृष्टि ३है-१समदृष्टि, २ मिथ्यादृष्टि, और ३ सममिथ्यादृष्टि.
मिथ्यात्व गुणस्थानमें-१ मिथ्यादृष्टि.
मिश्र गुणस्थानमें-१ मिश्र दृष्टि.
सास्वादन, अविरतिसे अयोगी केवलीतक-एक समदृष्टि.

२१८, सातवा भव्याभव्य द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-भव्य अभव्य दोनों तरह के जीवोंहैं.
सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक भव्य जीवों.

२१९ आठवा चरमाचरम द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-चरम अचरम दोनों तरह के जीवों.
सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक चरम जीवों.

२२०, नववा परितापरित द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-परित अपरित दोनों तरह के जीवों.
सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक परत संसारी जीवों.

२२१ दसवा पद्वी द्वार

पद्वी २३ है-७ एकेंद्रियरतन, ७ पचेन्द्रियरत्न, और ९ बडी पद्वी.
मिथ्यात्व गुणस्थान में-७ एकेंद्रियरत्न, ७ पचेन्द्रियरत्न१ मंडलिक यों १५ पदी पावे.

दृष्टि, भव्याभव्य, चरमाचरम, परितापरित, और पद्वीका खुलासा अर्थ कांडके पृष्ठ३१४

सास्वदन और मिश्र गुणस्थान में १ मांडलिकराजकी पद्दि पावे.

अविरति में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मंडलिक, राजा, समदृष्टि, यह ६ पावे.

देशविरति में १ श्रावककी और २ समदृष्टिकी यह २ पद्दी पावे.
प्रमतसे सूक्ष्म सम्परायतक तिर्थंकर, साधु, समदृष्टि यह ३ पद्दी पावे
उपशान्त मोह में १ समदृष्टि, और २ साधुकी यह २ पद्दी पावे.
क्षीणमोह में तीर्थंकर, साधु, और समदृष्टि यह ३ पद्दी पावे.

सयोगी और अयोगी केवली में तीर्थंकर, केवली, साधु, समदृष्टि यह ४ पद्दी पावे.

२२२ इग्यारवा आत्मा द्वार

आत्मा ८ हैं:-१ द्रव्यात्मा, २ कषायात्मा, ३ जोगात्मा, ४ उपयोगात्मा, ५ ज्ञानात्मा, ६ दर्शनात्मा, ७ चरित्रात्मा और ८ वीर्यात्मा.

मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थान में ज्ञानात्मा, चरित्रात्मा, विना, ६ आत्मा पावे.

सास्वादन, और अविरति गुणस्थानमें चरित्र विना ७ आत्मा पावे
देशविरति गुणस्थान में चरित्राचरित होने से ७॥ आत्मा पावे.
प्रमत से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक आठोंही ८ आत्मा पावे.
उपशान्तमोहसे सयोगी केवली गुणस्थानतक कषाय विना ७ आत्मा
अयोगी केवली गुणस्थान में कषाय और योग विना ६ आत्मा पावे.

२२२ बारवा ध्यान द्वार

ध्यान ४ हैं १ आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, और ४ शुक्लध्यान.

आत्मा ध्यान और ध्यानके पाये का खुलासा अर्थ कांडके ३१६ वे पृष्टमें देखीये.

मिथ्यात्व गुणस्थान में १ आर्त और २ रौद्र ध्यान पावे.
सास्वादन और मिश्र गुणस्थान में निश्चयमें २ और व्यवहारमें ३
अविरति और देशविरति गुणस्थान में शुक्लविना ३ ध्यान.
प्रमत गुणस्थान में आर्तध्यान और धर्मध्यान २ ध्यान.
अप्रमत गुणस्थान में एक धर्म ध्यान.
अपूर्व करण से सूक्ष्म सम्पराय तक धर्म और २ शुक्ल ध्यान
उपशान्त मोह से अयोगी केवली तक एक शुक्ल ध्यान. ×

२१३, तेरवा ध्यान पाये द्वार.

ध्यानके १६ पाये-आर्तके ४, रौद्रके ४ धर्मके ४, और शुक्लके ४ यों १६ पायेवा ध्यानके
मिथ्यात्व गुणस्थान में आर्तके ४ और रौद्रके ४ यों ८ पाये पावे.
सास्वादन और मिश्र में धर्मध्यान का १ पाया बढने से ९ पावे.
अविरति गुणस्थान में धर्मध्यानके २ पाये होनेसे १० पावे.
देशविरति गुणस्थान में धर्मध्यानके ३ पाये होनेसे ११ पावे.
प्रमत गुणस्थान में आर्तध्यानके ४ और धर्मध्यानके ४ यों ८ पावे.
अप्रमत गुणस्थानमें धर्मध्यानके ४ ही पावे.

अपूर्व करण से सूक्ष्म सम्पराय तक धर्मध्यानके ४ और शुक्लध्यान १ यो ५ पाये पावे.
उपशान्त मोह गुणस्थान में शुक्लध्यान का एक पहला पाया.
क्षीणमोह गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक दूसरा पाया.
सयोगी केवली गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक तीसरा पाया.

+ कितनेक स्थान लिखा है कि-साधु विना धर्म ध्यान की नास्ति होनेसे पहिलेके पांचों गुणस्थान में पहिले दो ध्यान ही पातेहे. तैसे ही आठवे गुणस्थान से ऊपर एक शुक्ल ध्यान ही पाता है. और ऐसे ही पाये आश्रिय भी पाठान्तर हैं.

अयोगी केवली गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक चौथा पाया.

२२५, चऊदवा-द्रव्य द्वार

द्रव्य ६ हैं धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकास्ति, काल, जीवास्ति, और पुद्गलास्ति.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोगी केवली गुणस्थान तक छेही द्रव्य. पावे.

२२६, पंदरवा-परिणाम द्वार.

परिणाम ३ है—१ हायमान, २ बृद्धिमान, और ३ अवस्थित.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों तरह के परिणाम.

सास्वादन गुणस्थानमें एक हायमान परिणाम.

मिश्रगुणस्थानमें-हायमान और बृद्धमान दोनों परिणाम.

अविरातिसे अनियट बादर गूणस्थानतक-तीनों तरहके परिणाम.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-हायमान बृद्धमान दोनों परिणाम,

उपशान्त मोह गुणस्थान में-एक अवस्थित परिणाम.

क्षीणमोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक बृद्धिमान परिणाम

२२७, सोलवा-वीर्य द्वार.

वीर्य ३ प्रकारके-१ बालवीर्य, २ बाल पंडितवीर्य,और३पंडित वीर्य

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थान पर्यन्त एक बाल वीर्य.

देशविरति गुणस्थान में-एक बाल पंडित वीर्य.

प्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पंडित वीर्य.

द्रव्य द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ट ३१७ वा.

परिणाम,वीर्य,तीर्थ,औरसम्यक्त्व द्वारोंका खुलासेकेलिये देखीये अर्थकांडका पृष्ट३१८

२२८, संतरवा तीर्थातीर्थ द्वार

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र यह तीनों गुणस्थान अतीर्थ में.
अविरति से-सयोगी केवली गुणस्थानतक-तीर्थ में.
अयोगी केवली गुणस्थान-तीर्त तीर्थी है.

२२९, अठारव-सम्यक्त्व द्वार

सम्यक्त्व ६हैः-सास्वादन, मिश्र, उपशम, क्षयोपशम, वेदक और क्षायिक.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-सम्यक्त्व नहीं.
सास्वादन गुणस्थानमें-एक सास्वादन सम्यक्त्व.
मिश्र गुणस्थान में-एक मिश्र सम्यक्त्व.
अविरतिसे अप्रमत गुणस्थानतक-उपरोक्त २ विना४ सम्यक्त्वपावे
अपुर्व करण और अनियट्ट बादर में-वेदक विणा३ सम्यक्त्व पावे
सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोहमें-उपशम, क्षायिक२सम्यक्त्वपावे.
क्षीणमोहमें अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक क्षायिक सम्यक्त्व.

२३०, उनीसवा संयतासंयती द्वार

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-एक असंयति हैं.
देशविरति गुणस्थानवाले-एक संयतासंयाति है.
प्रमतसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक संयति ही हैं.

२३१, बीसवा-लिंग द्वार,

लिंग ३ है.१ स्वलिंग, २ अन्यलिंग, और ३ ग्रहलिंग.

संयति, लिङ्ग, और चारित्रके खुलासेके लिये अर्थ कांडका ३१९ वा पृष्ट देखिये

मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक-द्रव्ये लिंग तीनोंही पावे और भावे स्वलिंग विना दो लिंग पावे.

प्रमत गुणस्थानसे अजोगी केवली गुणस्थानतक द्रव्ये लिंग तीन और भावे लिंग १.

२३२, इक्कीसवा-चारित्र द्वार

चारित्र ५ हैं:—१ सामायीक, २ छेदोस्थापनीय, ३ परिहार विशुद्ध ४ सूक्ष्म सम्पराय और ५ यथाख्यात.

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-चारित्र नहीं.

देशविरति गुणस्थानमें-एक चरीता चरित्र.

प्रमत अप्रमत गुणस्थानमें-पहिले के चारित्र ३ पावे.

अपूर्व करण अनियट बादर में पहिले के चारित्र २ पावे.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-एक सुक्ष्म सम्पराय चारित्र.

उपशान्त मोहसे अजोगी केवलीतक-एक यथाख्यात चारित्र.

२३३, बावीसावा भव्याभव्य द्वार

नियंठे ६ हैं-१पोलाक, २ बुकस, ३ प्रति सेवना. ४ कषाय कुशील, ५ निग्रन्थ, और ६ स्नातक.

मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक. नियंठा नहीं पावे.

प्रमत अप्रमत गुणस्थान में-पाहिलेके नियंठे ४ पावे.

अपूर्व करणसे सूक्ष्म सम्परायतक-नियंठा-१ कषाय कुसील.

उपशान्त मोह और क्षीण मोहमें-नियंठा-१ निग्रंथ पावे.

सयोगी और अजोगी केवलीमें-नियंठा १ स्नातक पावे.

नियंठा द्वारका खुलासा के लिये अर्थ कांडका पृष्ट ३२२ वा देखीये.

२३४ तेवीसवा कल्प द्वार

कल्प ५हैं-स्थिति, अस्थिति, जिन, स्थिवर, और कल्पातीत. मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थान तक कल्प नहीं पावे. प्रमत से अनियट वादर गुणस्थान तक पांचों कल्प पावे.

सूक्ष्म सम्पराय से अयोगी केवली गुणस्थान तक पीछेके तीन कल्प पावे.

२३५, चौतीसवा-परिसह द्वार

परिसह २२ हैं १ क्षुधाका, २ त्रषाका, ३ शीतका, ४ उष्ण का, ५ दशमंसका, ६ अचेलका, ७ अरतिका, ८ स्त्रीका ९ चरिया का १० बैठनेका, ११ सैय्यका, १२ अक्रोशका, १३ बधका, १४ याचनाका, १५ अलाभका, १६ रोगका, १७ त्रणस्पर्शका, १८ जलमेलका: १९ सत्कारपुरस्करका, २० प्रज्ञाका, २१ अज्ञानका, २२ दंशण सम्यक्त्व का इनमें से.

मिथ्यात्व से अविरति तक २२ ही परिसह दुःख रूपहैं निर्जरा नहीं.

देशविरति से नियट्ट बादर तक २२ ही परिसह पावे उसमेंसे एक समय में २० वेदे. शीतका वेदेतो उष्णका नहीं, तैसे ही उष्णका वेदेतो शीतक नही, चलनेका वेदेतो बैठनेका नहीं, और बैठनेका वेदेतो चलनेका नही.

सूक्ष्म सम्पराय से क्षीण मोह गुणस्थान तक अचेल, अरति स्त्री, बैठनेका, अक्रोश, मल, सत्कार, यह ७ चरित्र, मोहके, उदय, के और दंशण परिसह सम्यक्त्व मोह के उदयका यों ८ परिसह विना १४ परिसह पावे. जिसमें से एक समय में १२ वेदे. शीतका वेदे तव उष्णका नही, उष्णका वेदे तब शीतका नहीं, चलनेका वे

कल्पद्वार और परिसहद्वार का खुलासा अर्थ कांडके ३२४ वा पृष्ट देखीये.

दे तब सैय्या का नहीं सैय्या, का वेदे तब चलनेका नही.

सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में क्षुधा, त्रषा, शीत, उष्ण, दंसमंस, चरिया, सैया, बध, रोग, त्रण, स्पर्श, और मेलका. यह ११ वेदनीय के उदय से होते हैं सो पाते है. जिसमें से एक समयमें९शीतका वेदतो उष्णका वेदेतो शीतका नही,चलनेका वेदे तो सैयाका नही, सैय्याका वेदेतो चलनेका नहीं.

२३६ पच्चीसवा प्रमाद द्वार

प्रमाद ५ है १ मद, २ विषय ३ कषाय, ४ निद्रा और ५ विकथा.
मिथ्यात्व से प्रमत गुणस्थान तक पांचों प्रमाद पावे.
अप्रमत से अयोगी केवली गुणस्थान तक प्रमाद नही पावे.

२३७ छव्वीसवा-सरागीबीतरागी द्वार

मिथ्यात्व से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक सयोगी जीवों हैं.
उपशान्त मोह गुणस्थान में उपशम रागी हैं.
क्षीण मोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक वीतरागी है.

२३८, सतवीस-पडवाइ द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान वले अपडवाइ.
सास्वादन और उपशान्त मोह गुणस्थान बाले पडवाइ.
मिश्रसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक पडवाइ अपडवाइ दोनों.
क्षीणमोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक अपडवाइ.

प्रमाद द्वारका खुलासा अर्थ कांडके ३२५ वे पृष्ट में देखीये.
सरागी बीतरागी द्वारका खुलासा अर्थ कांडका ३२६ वे पृष्ट में देखीये.
पडवाइ अपडवाइ, छद्मस्त केवली और समुदघात द्वारके खुलासेकेलिये अर्थ कांडका ३६७ वा पृष्ट देखीये.

२३९ अठावीसवा छद्मस्त केवली द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक छद्मस्त.
सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थान वाले केवली हैं.

२४०, उन्नतीसवा समुद्घात द्वार

समुद्घात ७ हैं १ वेदनीय, २ कषाय, ३ मरणांतिक, ४ वैक्रिय, ५ तेजस, ६ आहारक, और ७ केवली इनमें सेः—
मिथ्यात्व से अविरति गुणस्थान तक पहिली ५ समुद्घात पावे
देशविरति और प्रमत गुणस्थान मे पहिली ६ समुद्घात पावे.
अप्रमत से क्षीण मोह गुणस्थान तक समुद्घात नही होती है.
सयोगी केवली गुणस्थान में एक केवल समुद्घात होवे
अयोगी केवली गुणस्थान में समुद्घात नही होतीहै.

२४१ तीसवा देव द्वार

देव ५हैः—१ भव्य द्रव्य देव, २ नरदेव, ३ धर्मदेव ४ देवाधीदेव, और ५ भावदेव.

मिथ्यात्व से मिश्र गुणस्थान तक १ धर्मदेव, और २ देवाधीदेव, विना ३ देव पावे.

अविरति गुणस्थान में धर्मदेव विना ४ देव पावे.
देशविरति गुणस्थान में एक भव्य द्रव्य देव पावे.

प्रमत से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक नरदेव, भाव देव विना ३ देव पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में १ भव्यद्रव्यदेव, और२धर्मदेव यह २ देव पावे.

देव द्वारका खुलासा अर्थ कांडके ३२८ वे पृष्ट में देखीये.

क्षीणमोह गुणस्थानसे अजोगी केवली गुणस्थान तक धर्म देव और देवाधिदेव यह २ देव पावे

२४२, एकतीसवा-परिणामी द्वार

परिणामिके ४२ बोल ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ जोग, २ उपयोग, ५ ज्ञान, ३अज्ञान,३दृष्टि,५ चारित्र और ३ वेद यों ४२ इनमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३जोग, ६लेश्या, २ उपयोग, ३ अज्ञान, १ मिथ्यात्व दृष्टि, और ३वेद यों३१ बोल पावे.

सास्वादन गुणस्थान में ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि और ३ वेद, यों ३१ बोल पावे

मिश्र गुणस्थान में ४ गति, ५इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ अज्ञान, १ मिश्रदृष्टि, और ३वेद यों ३१ बोल पावे.

अविरति गुणस्थान में ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि, और तीन वेद यों ३१ बोल पावे.

देशविरति गुणस्थान में-२ गति ५ इन्द्रिय ४ कषाय ३ जोग ६ लेश्या २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि और तीन वेद यों २९ बोल पावे

प्रमत गुणस्थान में-१ मनुष्यागति ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ३

जीव परिणामी कर्ण और निष्ठति द्वारका की गाथा अर्थ कांडके ३२९ पृष्ठमें है.

जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान, १ दृष्टि, ३ वेद, ३ चारित्रयों ३२ बोल पावे.

अप्रमत गुणस्थान में-१ गति, ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ३ जोग, ३ लेश्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान १ दृष्टि ३ वेद और ३ चारित्र. यों २९ बोल पावे.

अपूर्व करण और अनियट बादर गुणस्थानमें-१ गति ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग १ लेश्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान, १ दृष्टि ३ वेद, और ३ चारित्र. यों २७ बोल पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-१ गति, ५ इन्द्रिय, ३ जोग १ लेश्या २ उपयोग, ४ ज्ञान १ दृष्टि १ सूक्ष्म सम्पराय चरित्र. यों १८ बोल पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें १ गती, ५ इन्द्रिय, ३ जोग, १ लेश्या, २ उपयोग ४ ज्ञान १ दृष्टि १ यथाख्यात चारित्र यों १८ बोल पावे.

सयोगी केवली गुणस्थानमें-१ गति ३ जोग, १ लेश्या, २ उपयोग १ केवल ज्ञान १ दृष्टि १ यथाख्यात चरित्र यों १० बोल पावे.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-१ गति, २ उपयोग १ केवलज्ञान, १ १ दृष्टि १ यथाख्यात चारित्र. यों ६ बोल पावे.

२४३, तीसवा करण द्वार.

करणके ५५ बोल-५ द्रव्य ५ शरीर ५ इन्द्रिय ४ मन, ४ वचन, ४ कषाय ६ लेश्या ७ समुद्घात ४ सज्ञा, ३ दृष्टि वेद और ५ आश्रव.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें—५ द्रव्य ४ शरीर ५ इन्द्रिय, ४ मनके, ४ वचनके ४ कषाय ६ लेष्या ५ समुद्घात पाहिली, ४ सज्ञा १ मि

थ्यात्व, ३ वेदे और ५ आश्रव यों ५० बोल पावे.
सास्वादन गुणस्थान में-उपरोक्त ५० बोलही पाते हैं फरक फक्त मिथ्यात्व दृष्टिके स्थान सम्यक दृष्टि कहना.
मिश्र गुणस्थानमें भी उपरोक्त ५० बोल, मिश्र दृष्टि कहना.
अविरति और देशविरति में-सास्वादन मुझबही ५० बोल पावे.
प्रमत गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ बचन,४ कषाय, ६ लेश्या, ३ समुद्घात (केवल विना) ४ सज्ञा, १ दृष्टि, ३ वेद यों. ४७ बोल पावे.
अप्रमत गूणस्थानमें-५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ वचन, ४ कषाय, ३ शुभलेश्या. ३ समुद्घात, १ दृष्टि और ३ वेद यों ३७ बोल पावे.
अपूर्व करण और आनियट बादर में-५ द्रव्य ३ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ बचन, ४ कषाय, १ लेश्या, ३ समुद्घात, और ३ वेद यों ३३ बोल पावे.
सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-५ द्रव्य ३ शरीर ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ बचन, १ कषाय, १ लेश्या, और १ दृष्टि. यों २४ बोल पावे.
उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें-१ कषाय विन २३ बोल पावे.
सयोगी केवली गूणस्थानमें-५ द्रव्य, ३ शरीर, २ मन, २ वचन, १ लेश्या, १ समुद्घात, और १ दृष्टि यों बोल १५ पावे.
अयोगी केवली गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ३ शरीर, १दृष्टि यों९बोल पावे.

तेंतीसवा-निवृति द्वार

निवृति के ८२ बोले-८ कर्म, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन

४ कषाय, ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ६ संठाण, ४ सज्ञा, ६ लेश्या ३ दृष्टि ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ जोग और २ उपयोग सब ८२ मिथ्यात्व मिश्र गुणस्थान में-१ शरीर ५ ज्ञान, २ दृष्टि इन ८ विना ७४ बोल पावे.

सास्वादन अविरति और देशविरति गुणस्थानमें-१ शरीर २ ज्ञान ३ अज्ञान और २ दृष्टि इन ८ विना ७४ बोल पावे.

प्रमत गुणस्थानमें-२ दृष्टि, १ ज्ञान, ३ अज्ञान इन ६ विना ७६ बोल पावे.

अप्रमत गुणस्थान में- ३ अशुभ लेश्या, ४ सज्ञा इन ७ विना ६९ बोल पावे.

अपूर्व करण और अनियट बादर में २-शरीर, २ लेश्या इन ४ विना ६५ बोल पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-३ कषाय, १ उपयोग इन ४ विना ६१ पावे.

उपशान्त मोहमें-१ कषायघटी, और १ उपयोग बढनेसे ६१ ही पावे.

क्षीणमोहमें-१ मोहनीय कर्म विना ६० बोल पावे.

सयोगी केवलीमें ४ कर्म, ३ शरीर, २ भाषा, २ मन, २० वर्णादि, ३ संठाण, १ शुक्ल लेश्या, १ केवल ज्ञान ३ जोग, २ उपयोग, यों ४५ बोल पावे.

अयोगी केवली में ४ कर्म, ३ शरीर २० वर्णादि, ६ संठाण १ दृष्टि, १ ज्ञान, और २ उपयोग यों ३७ बोल पावे.

२४४, चौतीसवा आश्रव द्वार.

आश्रवके ४२ भेदः—५ अव्रत, ५ इन्द्रियोंका अनिग्रह, ४ कषाय,

आश्रव और संवर द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३३० वा.

और २५ क्रिया. यों ४२ में से.

मिथ्यात्वसे मिश्रगुणस्थानतक-इर्यावही क्रिया विना ४१ भेद पावे.

अविरति गुणस्थानमें-मिथ्यात्वी क्रिया विना ४० भेद पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-अविरति क्रिया विना ३९ भेद पावे.

प्रमत गुणस्थानमें-५ अव्रत, प्रणाति पात-परिग्रही अनापउगी, पाडुची, सामन्तवणी, नेसत्थी, साहत्थी, आणवणी, समुदाणी ×इन १४ विना २९ भेद पावे.

अप्रमत गुणस्थान में-५ इन्द्रियके आश्राव, और १ आरंभ क्रिया, इन ६ विना. १९ भेद पावे.

अपूर्व करण और अनियट बादर में-मायाविति क्रिया विना १८ भेद पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-१ पेजवती क्रिया ही पाती है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-एक इर्यावही क्रियाही पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में आश्रव नहीं.

२४८, पैंतीसवा-संवर द्वार

संवरके ५७ भेदः—५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परिसह, १० यति धर्म १२ भावना और ५ चारित्र. यों ५७ भेद इसमें सेः-

मिथ्यात्वसे मिश्रगुणस्थानतक-संवर नहीं.

अविरति गुणस्थान में-१ सम्यक्त्व और १२ भावना यों १३भेदपावे

देशविरति गुणस्थानमें-१व्रत और २२ परिग्रह अधिक होनेसे ३६

× और कितनेक स्थान पांचों इन्द्रिय के ५ आश्रव भी यहां कमी करते है. कितनेक स्थान प्रमत गुणस्थान में और भी आरं मायाव्रतीया फरक दोही क्रिया कहीये तत्व केवली गम्य.

भेद पावे.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थानमें-१ सुक्ष्म सम्पराय और २ यथाख्यात चारित्र विना ५५ भेद पावे.

अपुर्व करण और अनियट बादर गुणस्थान में-परिहार विशुद्ध चारित्र विना ५४ भेद पावे.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-सूक्ष्म सम्परायविना ४ चारित्र, और ८ परिसह इन १२ विना ४५ भेद पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें-यथाख्यात विना ४चार चारित्र और ८ परिसह विना ४५ भेद पावे.

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थान में-पहिला ४ चारित्र और ११ परिसह विना ४२ भेद संवरके पावे.

२४७ छत्तीसवा-निर्जरा द्वार.

मिथ्यात्व, सास्वादन और मिश्र गुणस्थान में-अकाम निर्जरा.

अविरति से अजोगी केवली गुणस्थानतक-सकाम निर्जरा.

२४८ सैंतीसवा निर्जरा द्वार

निर्जराके १२ भेदः-१ अणसण २ ऊणोदरी, ३ भिक्षाचरी, ४ रसपरित्याग, ५ कायाक्लेश, ६ प्रतिसलेना, ७ प्रायाश्चित, ८ विनय, ९ वैयावच्च, १० सझाय, ११ ध्यान, और १२ का उसग्ग.

मिथ्यात्वसे अविरति, गुणस्थानतक-निर्जराक भेद नहीं पावे.

देशविरतिसे क्षीण मोह गुणस्थानतक निर्जराके १२ ही भेद पावे.

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानमें-१ शुक्ल ध्यान पावे.

२४९, अडतीसवा-कारणीफल द्वार

निर्जरा और करणी फलद्वारोंका खुलासके लिये देखीये अर्थ कांडकापृष्ठ२३१

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र गुणस्थानकी सफल करणी-
अविरतिसे अयोगी केवली गुणस्थानतक निष्फल करणी.

२५०, चालीसवा-तीर्थंकर गौत्रोपार्जनद्वार

अविरति, देशविरति, प्रमत, और अप्रमत इन चारों गुणस्थानोंमें रहे जीवों२० बोलोंमेके बोलोंका आराधन कर तीर्थंकर गौत्र उपार्जतेहैं.

२५१, एकचालीसवा-तीर्थंकर स्पर्शनाद्वार

अविरति, प्रमत, अप्रमत, अपूर्व करण, अनियट्टी बादर, सूक्ष्म संपराय, क्षीण मोह, सयोगी केवली, और अयोगी केवली इन ९ गुण स्थानोंको तीर्थंकर महाराज स्पर्शते हैं.

२५२ बेंतालीसवा-मोक्ष द्वार

मोक्ष ४ कारण से होवे-१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र और ४ तप.
मिथ्यात्व गुणस्थानमें मुक्तिका कारण नहीं.
सास्वादन और मिश्र गुणस्थानमें-व्यवहारमें मुक्तिका कारण नहीं.
निश्चयसे सत्ता मात्र फक्त ज्ञान दर्शन.
अविराति गुणस्थानमें मुक्तिके कारण-ज्ञान और दर्शन दो है.
देशविरातिसे अयोगी केवलतिक-मुक्ति के कारण चारोंही पावे.

☞ तीर्थ गौत्र उपार्जनके २० वोल अर्थ काण्डके ३३२ वे पृष्ठ में है.

☞ तीर्थंकर गुणस्थान स्पर्शन द्वारमें और मोक्ष द्वारके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ट ३३३ वा.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के
बाल ब्रम्हचारि मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज
रचित " गुणस्थानरोहण अढशित द्वारी",ग्रंथ
का चौथा धर्मा रोहन खण्ड
समाप्तम्.

श्री गुणस्थाना रोहण-अढीशतद्वारीका
द्वितीय-मूल काण्ड-समाप्तम्.
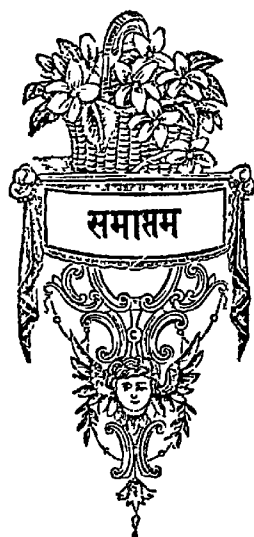
॥ श्री ॥

मुक्ती -- सोपान

श्री गुणस्थान रोहण अढीशतद्वारी का सांक्षिपत यन्त्र

		१	२	३	४	५
१	नाम द्वार	मिथयात्व	सास्वादन	मिश्र	अव्रति समादृष्टि	देश विरति
२	अर्थ द्वार	सत्यमें असत्यश्रधा	पडवाइ	मिश्रित	समकित	श्रावक
३	प्रश्नोत्तर द्वार	क्या गुण? ग्रीवेक तक जावे	" धर्म स्पर्श	" समझने लगा	" तत्वज्ञ हुवा	" अव्रतरोकी
४	प्रवेश द्वार	मूलस्थान	धर्म भ्रष्ट	हानी बृद्धि	निसर्ग अधिगम	७ प्रकृति क्षयोपशमी
५	लक्षण द्वार	३४ मिथ्यात्व सेवे	आर्त-रौद्र ध्यानी	शंकासील	ज्ञानी ६७ लक्षण	धर्मोत्साही ५३ लक्षण
६	दृष्टान्त द्वार	३६३ पाखण्डी	प्रसाद-अम्ब घडी वमन	सिकरण भोलाजीव	नदीकाटोल अम्र सूर्य	विषयव्यश्री १० श्रावक
७	गुण द्वार	अनन्त संसारी	अर्ध पुद्गल संसारी	शुक्ल पक्षी	७ बोलका अवन्ध	ज३-उ-१५ बारवा स्वर्ग
८	अवघेणा द्वार	अंगु० असं० १,००० यों	"	"	"	ज० ९ उ० ५०० धनु.
९	उत्पति द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	"	"	"

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
प्रमत संयती	अप्रमत संयती	अपूर्व करण	अनिवृति बादर	सूक्ष्म सम्पराय	उपशान्त मोह	क्षीणमोह	सयोगी केवली	अयोगी केवली
सदोष साधु	निर्दोषसाधू	उत्साहाही	निर्विषयी	फक्त सूक्ष्म लोभी	ढकादिया मोह	क्षयाकिया मोह	योगयुक्त केवल ज्ञानी	योग रहित केवल ज्ञानी
" सर्व विरति हुवे	" प्रमादछूटा	" वडी कषाय से निवृते	" -विषयसे भी निवृते	" अकषायी हुवे	क्यों पडे? मोह उद्भवने से	क्यागुण? भाव केवली	" द्रव्ये केवली	" मोक्षगामी
११ प्रकृति "	१५ प्र° "	१६ प्र° "	२१ प्र. "	२७ प्र. "	२८ प्र. उपशमी	२८ प्र. क्षयकरी	घातिकर्म "	आक्रिय
दया मूर्ति ६५ लक्षण	धर्मोधमी	धीर वीर	पूर्णशील	पूर्ण संतोषी	शान्त स्वभावी	परम शान्त	सर्वज्ञ	मोक्षात्मा
धन्ना शेठ व्योपारी	उत्कृष्टार्थी धन्ना अणगार	पंथानुगामी प्रसन्न चन्द्र	फटादुग्ध हरकेशी	निरंग वस्त्र गोतम स्वामी	ढकी अग्नि कुंडरिक	बुजि अग्नि स्कंध मुनि	निर्मल सूर्य महावीर	मेरु पर्वत गजसुकमाल
" कल्पातीत गमी	" कल्पतीत गमी	" "	" "	" "	३ भव अनुतरवी	उसी भव में मोक्ष	"	"
ज० १ हाथ ५०० धनुष्य	"	दो हाथ ५०० ध.	" "	" "	" "	" "	" "	" "
प्रत्येक हजार	प्रत्येक सो	१६२	"	"	५४	१०८	"	"

		१	२	३	४	५
१०	पावती द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	,,	,,	,,
११	खपती द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	,,	,,	,,
१२	क्षेत्र प्रमाण द्वार	सर्व लोक	त्रस नाडी	,,	,,	आधो और तिरछालोक
१३	क्षेत्र स्पर्शना द्वार	सर्व लोक	छठी नर्कसे ग्रीवेक	लोक का असंख्यात वा भाग.	छठी नर्क १२वा स्वर्ग	अधोग्रीज १२वा स्वर्ग.
१४	काल प्रमाण (स्थिति)	३ प्रकारकी	६ आंवली ७ समय	अन्तर मुहुर्त	ज. अन्त ६ सागर	ज०अन्त० ऊणा क्रोड पूर्व
१५	काल प्राप्त द्वार	मरे	,,	नहीं मरे	मरे	,,
१६	भाव प्रमाण द्वार	असख्य स्थान	,,	,,	,,	,,
१७	निरंतर गुण द्वार	प्रत्येक असंख्यात वे भाग	,,	,,	अवालिया के असंख्यात वे भाग	,,
१८	मार्गणा द्वार	४	०	३	२	१
१९	उपमार्गणा द्वार	०	१	१	३	४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
प्रत्येक हजार क्रोड	प्रत्येक सो	१६२	”	”	५४	१०८	प्रेत्यक क्रोड	१०८
प्रत्येक सो	”	१६२	”	”	५४	१०८	”	”
अढाइ द्वीप	”	”	”	”	”	”	”	”
अधोवीज अनन्तरवी	”	”	”	”	”	लोक का असंख्या वा भाग	सम्पूर्ण लोक	लोक का असंख्या तवा भाग
”	ज. १ समय उत्कृष्ट-अंत तर मुहूर्त	”	”	”	”	अन्तर मुहूर्त	ऊणा क्रोड पूर्व	पांच लघु अक्षर
”	”	”	”	”	”	नहीं मरे	”	मरे
”	”	”	”	”	१	१	१	१
८ समय	”	”	”	”	”	”	”	”
१	१	१	१	२	०	१	१	मोक्ष
५	७	२	२	७	२	०	०	०

		१	२	३	४	५
२०	परस्पर मार्गणा	३	१	२	५	५
२१	परस्पर उपमार्गणा	५	३	४	९	३
२२	अरोह उवरोह	१ उवरोह	१ अवरोह	२	२	२
२३	चडाचड गति	१	१	२	४	३
२४	अन्तर काल द्वार	अन्तर मु. ६६ सा०	" पल्याका अ संखात भाग अर्ध पुद्गल	" "	" "	" "
२५	विरह काल द्वार	०	एक समय अंतर मुहूर्त	"	०	०
२६	एकभव में स्पर्शना	१ ९००	१ २	१ प्रत्येकहजार	"	१ ९००
२७	बहुत भव में स्पर्शना	२ असंख्यात	२ ५	२ असंख्यात	"	२ ९०००
२८	परस्पर स्पर्शना	१ नियमा १० भजना	३ नियमा ८ भजन	३ नियमा ८ भजन	२ नियमा ९ भजन	३ नियमा ८ भजन
२९	पढमा पढम द्वार	२	२	२	२	२
३०	शाश्वता शाश्वत	शाश्वत	अशाश्वत	"	शाश्वत	"

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६	३	३	३	४	२	१	१	मोक्ष
१	५	२	२	२	१	१	१	१
२	२	२	२	२	१ अवरोह	१ उवरोह	१	१
३	३	३	३	४	२	१	१	१
,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,	० ०	० ०	० ०
०	अन्तर मुहूर्त ६ महीने	,,	,,	,,	,,	,,	०	अन्तर ६ मांस
१ १००	१ १००	१ ४	१ ४	१ ४	१ २	१	१	१
२ १००	२ १००	२ ९	२ ९	२ ९	२ ५	१	१	१
४ नियमा ७ भजना	३ नियमा ८ भजना	५ नि. ६ भजन	६ नि. ५ भजन	७ नि. ४ भजन	८ नि. ३ भजन	१० नि. ४ भजन	,,	,,
२	२	२	२	२	२	१	१	१
,,	अशाश्वत	,,	,,	,,	,,	,,	शाश्वत	अशाश्वत

		१	२	३	४	५
३१	परभव गमन द्वार	साथ जावे	"	नहीं जावे	साथ जावे	नहीं जावे
३२	भव संख्या द्वार	अनन्त	१ ७-८	"	"	"
३३	अल्पा बहुत द्वार	१२ अनंत गुणे	८ असंख्याते	९ असंख्याते	१० असंख्याते	७ असंख्याते
३४	किरिया द्वार	२४	२३	२४	२३	२२
३५	मूल हेतु (कारण)द्वार	५	४	४	४	४
३६	मिथ्यात्व हेतु द्वार	५	०	०	०	०
३७	अविरति हेतु द्वार	१२	१२	१२	१२	११
३८	कषाय हेतु द्वार	२५	२५	२१	२१	१७
३९	योग हेतु द्वार	१३	१३	१०	१३	१२
४०	समुचय हेतु द्वार	५५	५०	४३	४६	४०
४१	चार बन्ध द्वार	४	४	४	४	४
४२	समुचय कर्म बन्ध	८	८	७	८	८

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
"	"	"	"	"	"	"	"	"
१	१	१	१	१	१	१	१	१
६ संख्याते	८ संख्याते	३ यहतीनो	३ आपसमे तुल्य	३ संख्याते	१ सबसे थोडे	२ संख्यात गुण	४ संख्याते	११ अनन्ते
२१	२०	२०	२०	२०	१	१	१	०
३	३	२	२	२	१	१	१	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
१३	१३	१२	७	१	०	०	०	०
१४	११	९	९	९	९	९	७	०
२७	२४	२२	१६	१०	९	२	७	०
४	४	४	४	४	२	२	२	०
८	८	७	७	६	१	१	१	०

		१	२	३	४	५
४३	ज्ञानावरणीय बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
४४	दर्शनावरणी बन्ध द्वार	९	९	६	६	६
४५	वेदनीय बंध द्वार	२	२	२	२	२
४६	मोहनीय बंध द्वार	२६	२४	१९	१९	१५
४७	आयु बंध द्वार	४	३	०	२	१
४८	नाम बन्ध द्वार	६४	५०	३६	३७	३२
४९	गोत्र बन्ध द्वार	२	२	१	१	१
५०	अन्तराय बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
५१	ध्रव कर्म बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
५२	ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध	४७	४६	३९	३९	३५
५३	अध्रुव कर्म बन्ध द्वार	५	५	४	५	५
५४	अध्रुव कर्म प्रकृति बंध	७०	५६	३६	३९	३३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
५	५	५	५	५	०	०	०	०
६	६	६	४	४	०	०	०	०
२	१	१	१	१	१	१	१	०
११	९	९	५	०	०	०	०	०
१	१	०	०	०	०	०	०	०
३२	३१	३१	१	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०	०
३१	३१	२९	१८	१४	०	०	०	०
५	५	४	४	३	१	१	१	०
३३	२८	८	४	३	१	१	१	०

		१	२	३	४	५
५५	सर्व घाति कर्म बन्ध	३	३	३	३	३
५६	सर्व घातिककर्म प्रकृति बं	२०	१९	१२	१२	८
५७	देश घातिक कर्म बन्ध	४	४	४	४	४
५८	देश घातिक कर्म प्रकृति बंध द्वार	२५	२४	२३	२३	२३
५९	अघाति कर्म बध द्वार	४	४	३	४	४
६०	अघाति कर्म प्रकृति बन्ध	७२	५८	३९	४२	३६
६१	पुण्य कर्म बंध द्वार	४	४	३	४	४
६२	पुण्य कर्म प्रकृति बंध	३९	३८	३४	३७	३१
६३	पाप कर्म बन्ध द्वार	८	८	६	६	६
६४	पाप कर्म प्रकृति बन्ध	८२	६७	४४	४४	४०
६५	परावर्तमान कर्म बन्ध	६	६	६	६	६
६६	परावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध	८९	७४	४७	४९	३९

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
३	३	२	२	२	०	०	०	०
४	४	२	२	२	०	०	०	०
४	४	४	४	३	०	०	०	०
२३	२१	२१	१७	१२	०	०	०	०
४	४	३	३	३	१	१	१	०
३६	३२	३	३	३	१	१	१	०
४	४	३	३	३	१	१	१	०
३१	३३	३२-३	३	३	१	१	१	०
६	५	५	५	४	०	०	०	०
३६	३०	३०-२३	१९-१५	१४	०	०	०	०
६	६	४	२	१	१	१	१	०
३५	२९	२७	८	३	१	१	१	०

		१	२	३	४	५
६७	अपरावर्तमान कर्म बंध	५	५	५	५	५
६८	अपरावर्तमान कर्म प्रकृ-ति बन्ध द्वार	२८	२७	२७	२८	२८
६९	भूयस्कार कर्म बन्ध	१	१	१	१	१
७०	भुयस्कार कर्म प्रकृति बन्ध	८	०	०	४	२
७१	अल्पतर कर्म बन्ध	१	१	१	१	१
७२	अल्पतर कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	जो ऊपर	भूयस्कार	बन्ध के	स्थान	कहे है,
७३	अवस्थित कर्म बन्ध	जो भूयस्कार	बन्ध	पअल तर	बन्ध के	प्रथम समय
७४	अवस्थित कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	भूयस्कार	बन्ध के २९	स्थान या	अल्पतरके	२८स्थानका
७५	अव्यव कर्म बन्ध	०	०	०	०	०
७६	समुचय कर्म प्र० बंध	११७	१०१	७४	७७	६७
७७	कर्म बन्ध व्यछेद	०	०	१	०	०
७८	कर्म प्र० बन्ध व्यछेद	३	१९	४६	४३	५३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
५	५	५	३	३	०	०	०	०
२८	२८	२८	१४	१४	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	७	५	५	१	०	०	०.
१	१	१	१	१	१	१	१	०
उनकोउलटे	पढने से	अल्पतर	कर्म	प्रकृति	वन्ध के	स्थान	होते	हैं.
वन्धा	वोवन्ध	जितने	काल	तक रहे	उसे अ	वस्थित	वन्ध	कहना.
वंध किये वा	द फिर वो	वंध जित	ने काल	रहेसो अ	वस्थित	कर्म	प्रकृति	वन्ध
०	०	०	०	०	०	०	”	”
६३	५९	२६	१८	१७	१	१	१	०
०	०	१	१	२	७	७	७	८
५७	६१	९०	१०३	१०२	११९	११९	११९	१२०

		१	२	३	४	५
७९	समुचय कर्मोदय द्वार	८	८	८	८	८
८०	ज्ञानावरणी उदय द्वार	५	५	५	५	५
८१	दर्शनावरणी उदय द्वार	९	९	९	९	९
८२	वेदनीय कर्मोदय द्वार	२	२	२	२	२
८३	मोहनीय कर्मोदय द्वार	२६	२५	१९	१९	१५
८४	आयु कर्मोदय द्वार	४	४	४	४	२
८५	नाम कर्मोदय द्वार	६४	५९	५१	५५	५५
८६	गोत्र कर्मोदय द्वार	अनन्त	२	२	२	२
८७	अन्तराय कर्मोदय	२	५	५	५	५
८८	ध्रुव कर्मोदय द्वार	५	४	४	४	४
८९	ध्रुव कर्म प्रकृति उदय	२७	२६	२६	२६	२६
९०	अध्रुव कर्मोदय	६	६	६	६	६

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
८	८	८	८	८	७	७	४	४
५	५	५	५	५	५	५	०	०
९	६	६	६	६	६	६	०	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
११	११	१०	४	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
४४	४२	३२	३२	३२	३२	३७	३७	९
१	१	१	१	१	१	१	१	१
५	५	५	५	५	५	५	०	०
४	४	४	४	४	४	४	१	०
२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	१२	०
६	६	६	६	६	५	५	४	४

		१	२	३	४	५
९१	अध्रुव कर्म प्रकृति	९०	८५	७४	७८	६१
९२	पुण्य कर्मोदयद्वार	४	४	४	४	४
९३	पुन्य कर्म प्रकृत्तियोदय	३९	३८	३६	३८	३२
९४	पाप कर्मोदय द्वार	८	८	८	८	८
९५	पाप कर्म प्रकृत्तियोदय	८२	७७	६७	६९	५८
९६	क्षेत्र विपाक कर्मोदय	१	१	०	१	०
९७	क्षेत्रविपाक कर्मप्रकृत्ति	४	३	०	४	०
९८	भव विपाक कर्मोदय	१	१	१	१	१
९९	भवविपाक कर्मप्रकृत्ति	४	४	४	४	२
१००	जीवत्व पाक कर्मोदय	७	७	७	७	७
१०१	जीवविपाक कर्मप्रकृत्ति	७५	७२	६४	६४	५५
१०२	पुद्गल विपाकी कर्मोदय	१	१	१	१	१

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६२	४८	४५	३९	३३	३२	३०	२९	१२
४	४	४	४	४	४	४	४	४
३२	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	१२
८	८	८	८	८	८	७	४	४
५२	४९	४६	४०	३४	३३	२९	१५	१
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
७	७	७	७	७	६	६	४	४
५०	४७	४६	४०	३४	३३	४१	१७	११
१	१	१	१	१	१	१	१	१

		१	२	३	४	५
१०३	पुद्गल कर्मप्रकृत्तियोदय	३४	३२	३२	३२	३०
१०४	सर्व घाती कर्मोदय	३	३	३	३	३
१०५	सर्वघातिक कर्मप्रकृतीयोदय	२०	१९	१५	१५	११
१०६	देश घाति कर्मोदय	४	४	४	४	४
१०७	द. घा. कर्मप्रकृतियो	२५	२५	२६	२६	२५
१०८	अघाति कर्मोदय	४	४	४	४	४
१०९	अ. घा. कर्मप्रकृत्तियो	७३	६८	६०	६४	५१
११०	समुचेकर्म प्रकृतीयोदय	११७	१११	१००	१०४	८७
१११	कर्मोदय व्यच्छद द्वार	५	११	२२	१८	३५
११२	कर्म प्र.उदयवाच्छेद्वार	०	०	०	०	०
११३	समुचय कर्म उदीर्णाद्वार	८	८	७	८	८
११४	ज्ञानावरण यिउदीराण	५	५	५	५	५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२४	२४	०
३	३	३	३	३	२	२	०	०
७	४	४	४	४	४	२	०	०
४	४	४	४	४	३	३	०	०
२५	२५	२५	१२	१३	१२	१२	०	०
४	४	४	४	४	४	४	४	४
७६	४७	४४	४४	४४	४४	४२	४३	१२
८१	७६	७२	६६	६०	५१	५७	४२	१२
४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०
०	०	०	०	०	१	१	४	४
८	६	६	६	६-२	५	५-२	२	०
५	५	५	५	५	५	५	०	९

		१	२	३	४	५
११५	दर्शना वरणी ऊदीरणा	९	९	९	९	९
११६	वेदनीय कर्म ऊदीरणा	२	२	२	२	२
११७	मोहनीय ऊदीरणा	२६	२५	२२	२२	१८
११८	आयुकर्म ऊदीरणा	४	४	४	४	२
११९	नामकर्म ऊदीरणा	६४	५९	५१	५५	४४
१२०	गोत्रकर्म ऊदीरणा	२	२	२	२	२
२२१	अन्तराय ऊदीरणा	५	५	५	५	५
१२२	समुचयकर्मप्र. ऊदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७
१२३	कर्मोदीरणा युच्छेद	०	०	०	०	०
१२४	कर्मप्र.उदीरणा०युच्छेद	५	११	२२	१८	३५
१२५	समुचय कर्म सत्तद्वार	८	८	८	८	८
१२६	ज्ञाना वरणी कर्मसत्ता	५	५	५	५	५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	६	६	६	६	६	६	०	०
२	०	०	०	०	०	०	०	०
१४	१४	११	७	१	०	०	०	०
१	०	०	०	०	०	०	०	०
४४	४२	३२	३२	३२	३२	३७	३७	०
१	१	१	१	१	१	१	१	०
५	५	५	५	५	५	५	०	०
८१	७३	६२	६३	५७	५६	५२	३८	०
०	२	२	२	२	३	३	६	०
४१	४२	५३	५२	६५	६६	७०	८३	०
८	८	८	८	८	८	७	४	४
५	५	५	५	५	५	५	०	०

		१	२	३	४	५
१२७	दर्शना वरणी कर्मसत्ता	९	९	९	९	९
१२८	वेदनयि कर्मसत्ता	२	२	२	२	२
१२९	मोहनीय कर्मसत्ता	२८	२८	२८	२८-२१	२८-२१
१३०	आयुकर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४-१	४-१
१३१	नाम कर्म सत्ताद्वार	९३	९३	९३	९३	९३
१३२	गोत्र कर्म सत्ताद्वार	२	२	२	२	२
१३३	अन्तराय कर्मसत्ता	५	५	५	५	५
१३४	ध्रुव कर्म सत्ताद्वार	७	७	७	७	७
१३५	ध्रुव कर्म प्रकृत्ति सत्ता	१२६	१६२	१२६	१२६	१२६
१३६	अध्रुव कर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४	४
१३७	अ. कर्म प्रकृत्ति सत्ता	२२	२२	२२	२२	२२
१३८	सर्व घाती कर्म सत्ताद्वार	३	३	३	३	३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
९	९	९	९	९	९	९	०	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
२८-२१	२८-२१	२८ २४ २१	२५-५३ १२-११ ५४३२	२८ २४ २११	२८ २४ २१	०	०	०
४-१	४-१	४-२-१	१	२ १	४ १	१	१	१
९३	९३	९३	९३ ८०	९३ ८०	९३ ८०	८०	८०	८० ९
२	२	२	२	२	२	२	२	२-१
५	५	५	५	५	५	५	०	०
७	७	७	७	७	७	७	३	३
१२६	१२६	१२६	१२६ ९३	१७६ ९२	१२६	२१ ८२	७५	७५
४-३	४-३	४-३	४-३	४-३	४-३	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	३	३	३
३	३	३	३	३	३	२	०	०

		१	२	३	४	५
१३९	स.घा. कर्मप्रकात्ति सत्ता	२०	२०	२०	२०	२०
१४०	देशघाति कर्मसत्ता	४	४	४	४	४
१४१	दे. घा. कर्मप्रकृत्तिसत्ता	२७	२७	२७	२७	२७
१४२	अघाति कर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४	४
१४३	अघा. कर्मप्रकात्तिसत्ता	१०१	१००	१००	१०१ ९७	१०१ ९७
१४४	समुचयकर्मप्रकात्तिसत्ता	१४८	१४७	१४७	१४८	१४८
१४५	कर्म व्युच्छातिद्वार	०	०	०	०	०
१४६	कर्मप्रकात्तिव्युच्छतिद्वार	०	१	७-१० क्षायिक	७-१० ”	७-१० ”
१४७	समुचय कर्मभङ्गद्वार	२	२	१	२	२
१४८	ज्ञानावरणी भङ्गद्वार	१	१	१	१	१
१४९	दर्शणावरणयिभङ्गद्वार	२	२	२	२	२
१५०	वेदनीय भङ्गद्वार	४	४	४	४	४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२०	२०	२०	२८ १६	२० १६	२०	१४	०	०
४	४	४	४	४	४	३	०	०
२७	२७	२७	२७ १४	२७ १३	२७	१२	०	०
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ८४	१०१	८४	८४	८४ १३
१४८	१४८	१४८ १४२	१४८ १४२	१४८ १४२	१४८ १४२	१०१ ९९	८५	८५ १३ १२
०	०	०	०	०	०	१	४	४
७-१० ११	९-१०	९-१०	९-१० ४५	९ ४६	९	४७ ४२	६३	६३ १३४ १२६
२	२	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	०	०
२	२	२	२	१	२	२	०	०
४	२	२	२	२	२	२	२	४

		१	२	३	४	५
१५१	मोहनीय भङ्गद्वार	६चौ, ६भां	४चौ, ४भां	४चौ, २भां	८चो, २भां	८चो, २भां
१५२	आयु भङ्गद्वार	२८	२६	१६	२०	१२
१५३	नामभङ्गद्वार	१३९२६ १११३ २३२	९६०८ ४०९७ १८	१६ ४०२७ ६	३२ ५२ ५४	१६ ५९१ २२
१५४	गोत्र भङ्गद्वार	५	४	२	२	२
१५५	अन्तराय भङ्गद्वार	१	१	१	१	१
१५६	बन्धीके भङ्गे	१०	१०	८	१०	१०
१५७	इयावही भङ्गद्वार	३	२	२	२	२
१५८	मूल भावद्वार	३	३	३	३ ४	३ ४
१५९	ओदयिक भावद्वार	२१	१९	२०	१९	१७
१६०	उपशमिक भावद्वार	०	०	०	१	१
१६१	क्षयोपशमिक भाव द्वार	११	११	११	१२	१३
१६२	क्षायिकभावद्वार	०	०	०	१	१

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
८चौ, १भां	८चौ, १भां	४चौं१	१६भां	१	०	०	०	०
६	६	२ १	२ १	२	२ १	१	१	१
१६ ५९२ ८	४ ५९२ ८	५ ३६० ८	१ ९६ ४	१ ९६ ४	७२ ४	२४ ४	६०० ४	२ ३
१	१	१	१	१	१	१	१	२
१	१	१	१	१	१	१	०	०
१०	१०	८	८	८	७	५	५	४
२	२	२	२	२	२	१	१	१
३ ४	३ ४	४ ५	४ ५	४ ५	४ ५	४	३	३
१५	१२	१०	१०	४	३	३	३	२
२	२	२	२	२	२	०	०	०
१४	१४	१२	१२	१२	१२	१२	०	०
१	१	१	१	१	१	२	९	९

		१	२	३	४	५
१६३	परिणामिक भावद्वार	३	२	२	२	२
१६४	सन्निपातिभावद्वार	१ ४	१ ४	१ ४	३ १२	३ ६
१६५	समुचयभावभेदद्वार	३५	३२	३३	३६	३४
१६६	श्रेणिद्वार	०	०	०	०	०
१६७	कर्मवेदद्वार	८	८	८	८	८
१६८	कर्मनिर्ज्जराद्वार	८	८	८	८	८
१६९	दशकरणद्वार	१०	१०	१०	१०	१०
१७०	गुणश्रेणिद्वार	सकाम निर्ज्जरानहीं	"	"	तीसरेसं ख्यातगुणी	चौथेसे अंसख्या
१७१	आगतिद्वार	४	४	४	४	४
१७२	गतिद्वार	४	४	४	४	२
१७३	जागतिद्वार	४	३	०	२	१
१७४	आजातिद्वार	५	५	५	५	५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	१	१	१
३४	३१	२७	२७	२१	२०	१२	१४	१३
०	०	२	२	२	१	१	०	०
८	८	८	८	८	७	७	४	४
८	८	८	८	८	८	७	४	४
१०	१०	१०	७	७	२	२	२	२
पांचवेसे असंख्या	छेवेसेअ संख्यागुणी	सातवेसे असंख्या	आठवेसे असंख्या	नववेसे असंख्या	दशवेसे असंख्या	ग्यारवेसे असंख्य	बारवेसे असंख्या	तेरवेसे असंख्या
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	०	०	मोक्ष
५	२	२	२	२	२	२	२	२

		१	२	३	४	५
१७५	पाजाति द्वार	५	४	१	१	१
१७६	जाजाति द्वार	५	४	०	१	१
१७७	आकाया द्वार	६	६	६	४	४
१७८	पाकाया द्वार	६	१	१	१	१
१७९	आकाया द्वार	६	१	०	१	१
१८०	आदण्डक द्वार	२४	२२	२२	२२	२२
२८१	पादण्डक द्वार	२४	१९	१६	१६	२
१८२	जादंडक द्वार	२४	१९	०	१६	१
१८३	सामान्य जीवभेद द्वार	१४	६	१	२	१
१८४	विशेष जीवभेद द्वार	१७०	३९७	१९८	२३५	२०
१८५	जीवायोनी द्वार	८४ लक्ष	३२ लक्ष	२६ लक्ष	२६ लक्ष	१.८ लक्ष
१८६	कुल कोडी द्वार	१ क्रोड ९७॥ लक्ष क्रोड	१ क्रोड ४०॥ लक्ष क्रोड	१ क्रोड १६॥। क्रोड क्रोड	६५॥ लक्ष क्रोड	१.२ लक्ष क्रोड

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	१	१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	मोक्ष
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	१	१	१	१	१	०	०	मोक्ष
२२	२२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	०	०	मोक्ष
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
१४ल	१४ल	१४ल	१४ल	१४ल	१४ल	१४ल	१४ल	१४ल
”	”	”	”	”	”	”	”	”

		१	२	३	४	५
१८७	सूक्ष्मबादर द्वार	२	१	१	१	१
१८८	त्रसस्थावर द्वार	२	१	१	१	१
१८९	सन्नी असन्नी द्वार	२	२	१	१	१
१९०	भाषक अभाषक	२	२	१	२	१
१९१	आहारक अनाहारक	२	२	१	२	१
१९२	ओजादिआहार	३	३	२	३	२
१९३	सचित्तादि आहार	३	३	३	३	३
१९४	दिशीआहारद्वार	३-६	६	६	६	६
१९५	पर्याप्ता यपर्याप्ताद्वार	२	२	१	२	१
१९६	पर्याद्वार	४ ५ ६	४ ५ ६	६	४ ५ ६	६
१९७	प्राणद्वार	४से१०	६से१०	१०	१०	१०
१९८	इन्द्रयद्वार	१से५	२से५	५	५	५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	१	१	२	१
१	१	१	१	१	१	१	२	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२
१	१	१	१	१	१	१	१	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६
१	१	१	१	१	१	१	१	१
६	६	६	६	६	६	६	६	६
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	९	१
९	९	९	९	९	९	९	०	०

		१	२	३	४	५
१९९	इंद्रिय विषयद्वार	८से२३	१३से२३	२३	२३	२३
२००	सज्ञाद्वार	४	४	४	४	४
२०१	वेदद्वार	३	३	३	३	३
२०२	कषायद्वार	४	४	४	४	४
२०३	लेशाद्वार	६	६	६	६	६
२०४	योगद्वार	३	३	३	३	३
२०५	शरीरद्वार	४	४	४	४	५
२०६	संघयणद्वार	६	६	६	६	६
२०७	संठाणद्वार	६	६	६	६	६
२०८	मरणद्वार	२	२	०	२	२
२०९	विग्रहगतिद्वार	२	२	०	२	२
२१०	स्वर्ग मर्यादद्वार	२१	१२	०	१२	१२

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	०	०
४	०	०	०	०	०	०	०	०
३	३	३	३	०	०	०	०	०
४	४	४	४	१	०	०	०	०
६	३	१	१	१	१	१	१	०
३	३	३	३	३	३	३	३	०
५	३	३	३	३	३	३	३	३
६	६	१	१	१	१	१	१	१
६	६	६	६	६	६	६	६	६
२	२	२	२	१	१	०	०	१
२	२	२	२	२	२	०	०	१
२६	२६	२६	२६	५	५	०	०	मोक्ष

		१	२	३	४	५
२११	षटस्थानहानीवृद्धि द्वार	२	२	२	२	२
२१२	मूलउपयोगद्वार	२	२	२	२	२
२१३	अज्ञानद्वार	३	०	३	०	०
२१४	ज्ञानद्वार	०	३	०	३	३
२१५	दर्शनद्वार	३	३	३	३	३
२१६	समुचय उपयोगद्वार	६	६	६	६	६
२१७	दृष्टिद्वार	१	१	१	१	१
२१८	भव्याभवयद्वार	२	१	१	१	१
२१९	चरमाचरमद्वार	२	१	१	१	१
२२०	परितापरितद्वार	२	१	१	१	१
२२१	पक्षीद्वार	१५	१	१	६	२
२२२	आत्माद्वार	६	६	६	७	७

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	२	२	तुल्य	,,	,,	,,	,,	,,
२	२	२	२	१	२	२	२	२
०	०	०	०	०	०	०	०	०
४	४	४	४	४	४	४	१	१
३	३	३	३	३	३	३	१	१
७	७	७	७	७	७	७	२	२
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
३	३	३	३	३	२	३	४	४
८	८	८	८	८	७	७	७	६

	१	२	३	४	५
२२३ ध्यानद्वार	२	२-३	२-३	३	२
२२४ ध्यानकेपायेद्वार	८	४	९	११	८
२२५ षटद्रव्यद्वार	६	६	६	६	६
२२६ परिणामद्वार	३	१	२	३	३
२२७ वीर्यद्वार	१	१	१	१	१
२२८ तर्थितर्थिद्वार	१	१	१	१	१
२२९ सम्यकत्वद्वार	०	१	१	४	४
२३० संयता संयतीद्वार	१	१	१	१	१
२३१ लिंगद्वार	३ २	३ २	३ २	३ २	३ २
२३२ चारित्रद्वार	०	०	०	०	॥
२३४ नियंठाद्वार	०	०	०	०	०
२३४ कल्पद्वार	०	०	०	०	०

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	२	२	२	२	१	१	१	१
४	५	५	५	५	१	१	१	१
६	६	६	६	६	६	६	६	६
३	३	३	३	२	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
४	४	३	३	२	२	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
३ १	३ १	३ १	३ १	३ १	३ १	३ १	३ १	३ १
३	३	४	४	१	१	१	१	१
४	४	१	१	१	१	१	१	१
५	५	५	५	३	३	३	३	३

		१	२	३	४	५
२३५	परिसहद्वार	०	०	०	०	२२
२३६	प्रमादद्वार	५	५	५	५	५
२३७	सारागी वीतरागी द्वार	सरागी	,,	,,	,,	,,
२३८	पडवाइअपडवाइ द्वार	अपठवाइ	पडवाइ	२	२	२
२३९	छद्मस्त केवली	छद्मस्त	,,	,,	,,	,,
२४०	समुत्पातद्वार	५	५	५	५	६
२४१	देवद्वार	३	३	३	४	१
२४२	पारिणामीद्वार	३१	३१	३१	३१	२९
२४३	करणद्वार	५०	५०	५०	५०	५०
२४४	निवृत्तिद्वार	७४	७४	७४	७४	७४
२४५	आश्रवद्वार	४१	४१	४१	४०	३९
२४६	संवरद्वार	०	०	०	१३	३५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२२	२२	२२	२२	१४	१४	१४	११	११
५	०	०	०	०	०	०	०	०
"	"	"	"	"	उपशम रागी	वीतरागी	"	"
२	२	२	२	२	पडवाइ	अपडवाइ	"	"
"	"	"	"	"	"	"	केवली	केवली
६	०	०	०	०	०	०	१	०
३	३	३	३	३	२	२	२	२
३२	२९	२९	२२	१८	१८	१८	१०	६
४७	३७	३३	३३	२४	२३	२३	१५	९
७६	६९	६१	६१	६१	६१	६०	४५	३७
२५	१२	१८	१८	१	१	१	१	१
५५	५५	५४	५४	४५	४५	४५	४२	४२

	१	२	३	४	५
२४७ निर्ज्जराद्वार	अकाम	,,	,,	सकाम	,,
२४८ निर्ज्जराभेदद्वार	०	०	०	०	१२
२४९ करणीफलद्वार	सफल	,,	,,	अफल	,,
२५० तीर्थकरगोत्रोपार्जन	०	०	०	उपार्जे	,,
२५१ तीर्थकरस्पर्शनाद्वार	०	०	०	स्पर्शे	०
२५२ मुक्तिद्वार	०	सत्ता	सत्ता	२	४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
"	"	"	"	"	"	"	"	"
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१	१
"	"	"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	०	०	०	०	०	०
स्पर्शे	"	"	"	"	०	१	"	"
४	४	४	४	४	४	४	४	४

इस यन्त्रमें बिन्दी है सो नास्तिका चिन्ह है, और " ऐसे कामा है सो आस्तिका चिन्ह है. यह चिन्ह १ कोष्टसे १४ वे कोष्टतक अनुक्रम जानना.

❀इति गुणस्थान रोहण अढीशत द्वारी का संक्षेपित यन्त्र समाप्त